मोहन राकेश के कथा साहित्य में पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन के स्वरूप का अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल्0 उपाधि हेतु प्रस्तुत
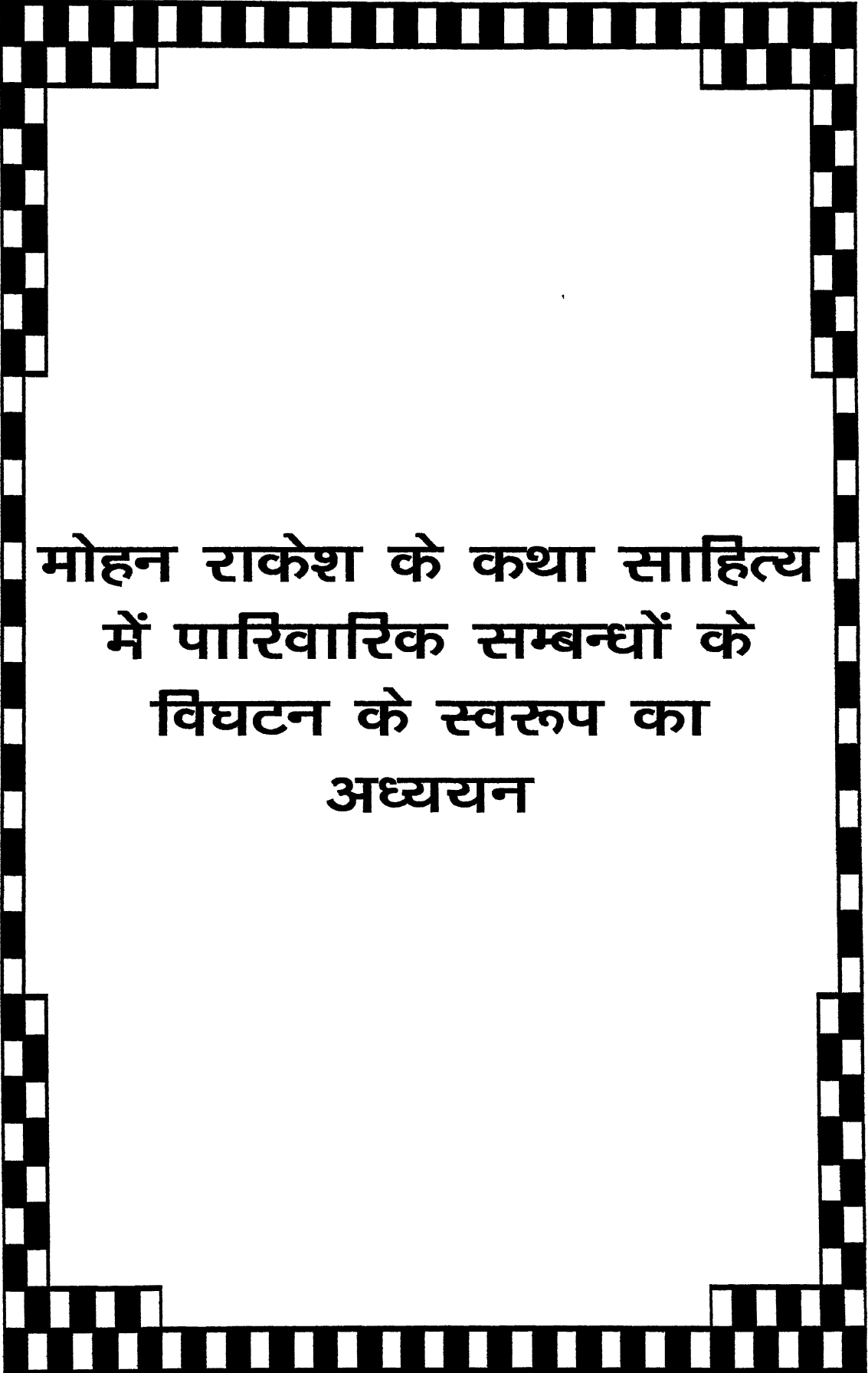
शोध प्रबन्ध
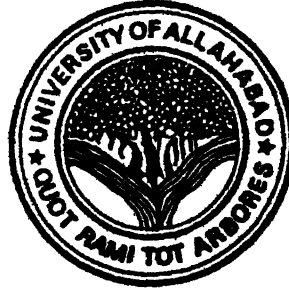
निर्देशिका :
डॉ० (श्रीमती) गिरिजा राय
रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्ता :
वीरेन्द्र सिंह यादव
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

मोहन राकेश के कथा साहित्य में पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन के स्वरूप का अध्ययन

भूमिका

मोहन राकेश समकालीन कथाकारो मे अन्यतम है। उन्होने हिन्दी कथा को आडम्बर, कृत्रिमता, सस्ती भावुकता और जुमलेबाजी से अलग करके एक आत्मीय रिश्ता प्रदान किया, एक नयी अर्थ दृष्टि दी थी और एक नया सभावना कुल ससार दिया जो गत वर्षों से लगातार आगे आने को कसमसा रहा था। यही कारण है कि मोहन राकेश के कथा साहित्य मे सवेदना की आधुनिकता है, अनुभव का खरापन है और सप्रेषण का सीमित आधार है। कहानीकार के रूप मे राकेश हिन्दी की नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर है उनकी कहानियो की उपलब्धि अप्रतिम है। उनके जीवन मे अनेक सदर्भ ऐसे आये जब उन्हे मोह–भग की स्थिति से गुजारना पडा अनेक जीवन्त अनुभवो के कडवे कसैले घूँट पीने पडे। अत उनका कथा साहित्य इस मोह–भग के त्रासद अनुभवो को हर बार नयी शैली मे शब्दबद्ध करता रहा। जिसमे प्राय अकेले पडे उस व्यक्ति का चित्रण हुआ है जो आज के समाज मे परिवर्तित मूल्यो और साम्बन्धिक यन्त्रणा को अपने अकले क्षणो में झेलते जाने के लिए अभिशप्त है। हॉ, यह सच है कि राकेश का अकेलापन अपने समाज से कटे हुए व्यक्ति का अकेलापन नही है, बरन समाज के भीतर लुटते–पिटते, जीते–भोगते और लगातार अर्थहीनता की ओर बढते व्यक्ति का अकेलापन है। मोहन राकेश के कथा साहित्य के सम्बन्ध मे मात्र इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उनका कथा साहित्य स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय सामान्य बौद्धिक जन के वास्तविक जीवन का मौलिक और प्रमाणिक आकलन है।

मोहन राकेश जी को पढने का मौका मुझे प्रतियोगी परीक्षाओ के समय मिला था। उनका 'अषाढ का एक दिन' नाटक पढकर मै उनकी ओर आकर्षित हो गया और मैंने उनका सम्पूर्ण साहित्य धीरे–धीरे पढ डाला। परिणामत मेरे मन मे उन पर शोध कार्य करने की इच्छा जागृत हुई। मेरी रूचि तब और प्रबल हो गयी जब मेरे शोध निदेशक डॉ0 गिरिजा राय जी ने 'मोहन राकेश के कथा साहित्य मे पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन के स्वरूप का अध्ययन' विषय पर शोध करने की अपनी सहज स्वीकृति दे दी। फलत डी फिल्0 के शोध प्रबन्ध के सिलसिले मे मोहन राकेश पर शोध कार्य करने का मौका प्राप्त हुआ।

प्रथम अध्याय मे पारिवारिक विघटन समस्या और स्वरूप के अन्तर्गत परिवार का अर्थ देते हुए इसके विघटन के अर्थ पर भी प्रकाश डाला गया है। आज सयुक्त परिवार, एकल परिवार, (नाभिक या न्युक्लियर परिवार) मे विभाजित हो रहे है और एकल परिवार जो पति–पत्नी एव एक–दो बच्चो का छोटा सा कुनबा होता है उसमे भी दरारें पड रही हैं ये सब औद्योगीकरण की देन है। क्योकि आज स्त्री अपने आधिक्रारो के प्रति सचेत हो गयी है और उसने परम्परावादी सती सावित्री वाली छवि को उठाकर एक तरफ रख दिया है। उसने घर से बाहर निकलकर कार्यक्षेत्र मे सक्रियता दिखाई है जिससे पुरूष के अह को चोट पहुँची है और यही अह की टकराहट सम्बन्धो मे दरारे पैदा कर रही है। चूँकि मोहन राकेश का सम्पूर्ण कथा साहित्य स्त्री–पुरूष सम्बन्धो पर ही निर्भर है अत इसी परिप्रेक्ष्य मे स्त्री की पराधीनता को

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य मे विश्लेषण करते हुए एक जीवन्त बहस करने का प्रयास भी इसमे किया गया है। अध्याय के अन्त मे मोहन राकेश के कथासाहित्य मे उनके स्त्री–पुरूष सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी दिखाने की कोशिश भी की गयी है।

द्वितीय अध्याय मे पारिवारिक विघटन से सम्बन्धित कहानियो का सक्षेप मे विवेचन किया गया है जिसमे आज के जीवन परिवेश को आधुनिकता के सन्दर्भ मे लिया गया है, वैसे कथाकारो मे आधुनिकता सम्बन्धी दृष्टिकोण मे मतवैविध्य है। हिन्दी कहानी मे आधुनिकता का प्रारम्भ प्रेमचद की कहानी 'कफन' से माना है, परन्तु 'कफन' कहानी के पात्र निष्क्रिय रूप से गहनतम सकट झेलने मे सक्षम है पर कही भी उनके मन मे अस्तित्व सकट के प्रति सवाल नहीं हुआ, और न ही उनका पारिवारिक विभाजन। हॉ बाप–बेटो के सम्बन्धो मे अजनबीपन एव सशय की स्थिति मे द्वन्द्व जरूर चलता है यही पर इसे आधुनिक माना जा सकता है। परन्तु यहॉ पर स्वातन्त्रयोत्तर भारत की कहानियो का विवेचन किया गया है जिसमे पारिवारिक विघटन का स्वरूप और विघटन के कारणो की स्वतन्त्र पहचान को आका गया है।

तृतीय अध्याय मे हिन्दी उपन्यास के चरित्र मे पारिवारिक विघटन के बीज खोजने का प्रयास किया गया है। उपन्यास के जन्म, 'परीक्षागुरू' से लेकर वर्तमान समय तक के उन उपन्यासो को लिया गया है। जिनमे सयुक्त परिवारो का विघटन विश्रृखल परिवारो का उत्थान एव पति–पत्नी के बदलते सम्बन्धो को निष्पक्ष रूप से विवेचित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे मोहन राकेश की कहानियो को पारिवारिक विघटन के संदर्भ में विवेचित करने का प्रयास प्रमुख है। मोहन राकेश की कहानियॉ सम्बन्धो के विघटन और जुडे रहने की प्रक्रिया, आर्थिक विवशता और जिन्दगी के दोहरेपन, बिलगाव और खण्डित होने की प्रक्रिया, मानवीयता और नये मूल्यो की खोज, विभाजन की त्रासदी इत्यादि विभिन्न व्यतिरेक स्तरो की हैं। पारिवारिक विघटन के कारणो को मसीही अंदाज मे चित्रण करने वाले कारकों में समकालीन भ्रष्टाचार और उससे उत्पन्न अमानवीयता और व्यंग्य राकेश की कहानियो के नियामक तत्व है।

पंचम अध्याय मे राकेश के उपन्यासो मे मानवीय सम्बन्धो और उनके शुक्ल–कृष्ण पक्षो को बदलते हुए सामाजिक मूल्यो के सन्दर्भ में पहचानने की कोशिश की गयी है। राकेश के उपन्यासो मे मुख्य रूप से दाम्पत्य सम्बन्धो की टकराहट एव विवाहित जीवन की अर्थहीनता का सशक्त रूप उभरता है। 'अन्धेरे बन्द कमरे' की दुनिया दिल्ली जैसे महानगर की जटिलताओ की दुनिया है। दिल्ली का यथार्थ 'अन्धेरे बन्द कमरे' का यथार्थ है। 'न आने वाला कल' विसगति और विसगति, मानवीय सम्बन्धो के बीच जिन्दा रहने की अकुलाहट और और अस्तित्व की चेतना का उपन्यास है। इसमे आधुनिकता अनिश्चतता के सन्दर्भ स्पष्ट है। 'अन्तराल' मे अभावो की निरन्तरता और सम्बन्धो को नाम न देने की अभिव्यक्ति है। उपन्यास मे आज के व्यक्ति की मन स्थिति को व्याकृत और आकृत किया गया है। 'अन्तराल' मे सम्बन्धो के विघटन की आधुनिकता रागात्मक तनावो की है।

षष्ठ्म अध्याय यद्यपि अन्वेशक का विषय नही है परन्तु राकेश के नाटको मे ही वास्तविक जीवन की त्रासदी है, इसलिए राकेश के कथा साहित्य मे पारिवारिक विघटन के स्वरूप मे यहाँ उनके नाटको का समग्र अवलोकन करने का प्रयत्न अन्वेषक ने किया है क्योकि राकेश के ऐतिहासिक नाटको को वर्तमान पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विषमताओ, दुर्बलताओ और अभावो के सन्दर्भ मे देखकर आलोचनात्मक न्याय दिया जा सकता है। राकेश के नाटको मे जिन्दगी की तस्वीर है उसमे ऐतिहासिक निरन्तरता और नियति प्रतिफलित है। 'आषाढ का एक दिन' मे समकालीनता का बोध है। इस नाटक मे स्त्री–पुरूष के सम्बन्धो की विडम्बन और एक–दूसरे के अभाव की रिक्तता आदि से अन्त तक है। 'लहरो के राजहस' मे राकेश ने बडी सफलता के साथ आधुनिक व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वो की अभिव्यक्ति की है। 'आधे–अधूरे' की पृष्ठभूमि अति आधुनिक है। इस नाटक मे आज के मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन की गाथा है, स्त्री–पुरूष के सघर्ष और तनाव का दस्तावेज है। 'आधे–अधूरे' में आधुनिकता का बोध एक–दूसरे से कट जाने मे सम्बन्धो के तनाव मे जाहिर होता है।

सप्तम् अध्याय मे उपसहार का सृजन किया गया है। इसमे मोहन राकेश के कथा साहित्य मे पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन को आधुनिकता के सन्दर्भ मे विवेचित, विश्लेषित किया गया है। क्योकि इसमे निष्कर्ष यही निकलता है कि मोहन राकेश के सम्पूर्ण कथा साहित्य एव नाटको मे राकेश का अकेलापन अपने समाज से कटे हुए व्यक्ति का अकेलापन नही है, वरन समाज के भीतर लुटते–पिटते, जीते भोगते और लगातार अर्थहीनता की ओर बढते व्यक्ति का अकेलापन है।

शोध प्रबन्ध के अन्त मे परिशिष्ट दिया गया है। परिशिष्ट के पूर्वार्द्ध मे राकेश जी की समग्र रचनाओ की सूची दी गई है, इसमे प्रत्येक पुस्तक का प्रकाशन एव सस्करण भी दिया गया है। परिशिष्ट के उत्तरार्द्ध मे सहायक सन्दर्भ ग्रन्थो की सूची दे दी गई है। वे ग्रन्थ कोश एव समाचार–पत्र, पत्रिकाए , जो अन्वेषक के विषय विश्लेषण की आधारशिला बन सके है। साथ मे प्रत्येक ग्रन्थ का प्रकाशक एव सस्करण भी दिया गया है।

आभार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्ति मे मेरी प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष सहायता करने वाले तथा प्रोत्साहित करने वाले हित चितको के प्रति कृतज्ञता–भाव प्रकट करना मेरा प्रथम कर्तव्य है।

जीवन मे कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जिनसे उऋण होना सम्भव नही होता और न उऋण होने की इच्छा ही होती है। इसी तरह का ऋण मुझ पर है– श्रद्धेय गुरूवर्य डॉ0 गिरिजाराय जी की कृपा का। यह शोध प्रबन्ध आपके अशीर्वाद एव कृपापूर्ण सुदक्ष एव सक्षम निर्देशन का परिणाम है। इसे मै अपना सौभाग्य समझता हूँ। सातत्यपूर्ण व्यस्तता के बावजूद आपने निरन्तर प्रोत्साहन एव प्रेरणा देकर मेरी अत्यन्त सहायता की है। पिता तुल्य डॉ0 विद्याशकर राय जी ने बार–बार मुझे प्रोत्साहित कर मेरा मार्गदर्शन किया। आपका इतना सक्रिय एव आत्मीयपूर्ण निर्देशन न होता तो इस शोध प्रबन्ध की मै कल्पना भी नही कर सकता था। आपकी इस सहृदयता को आभार के चन्द लब्जो मे

बाधकर मै सीमित नही करना चाहता। इस कार्य के दौरान आपसे मुझे जो स्नेह, प्रेरणा और आत्मीयता मिली, वह आजीवन नही भुलाई जा सकती है। आपके इसी स्नेह, प्रेरणा और आशीर्वाद का मै सदैवअभिलाषी रहूँगा।

जिन विद्वानो के विचारों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे मुझे शोध–प्रबन्ध को तैयार करने मे सहायता मिली उनमे विभाग के गुरूजनो डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी, दूधनाथ सिह, डॉ राम कमल राय,डॉ राजेन्द्र कुमार, डॉ सत्य प्रकाश मिश्र, डॉ मीरा दीक्षित, डॉ0 भूरे लाल जी आदि के नाम उल्लेखनीय है इन सभी गुरूजनो के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबध के प्रणयन मे मुझे विभिन्न पुस्तकालयो से सामग्री सकलित करने में मदद मिली। इनमे हिन्दी सग्रहालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग हिन्दुस्तान एकेडमी इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग पुस्तकालय, केन्द्रीय पुस्तकालय, केन्द्रीय ग्रन्थालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, केन्द्रीय पुस्तकालय दिल्ली प्रमुख है। मै इन पुस्तकालयो की उत्तम व्यवस्था तथा व्यवस्थापको के सहयोग के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ। विशेषरूप से शिवभारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स के मगलाप्रसाद जी एव लाल बहादुर जी के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होने समय–समय पर हमारे द्वारा मागी गयी पुस्तके शीघ्रता से उपलब्ध करायी, जिनके चलते मुझे शोध सामग्री का अकाल नहीं झेलना पडा और शोध विषय का तल स्पर्शी अध्ययन करने मे सहायता प्राप्त हुई।

पूज्यनीय बडे भइया एव सरक्षक तुलसी राम जी, मनमोहन सिह आचार्य जी, भगवान सिह जी तथा हरगोविन्द सिह जी के अशीम धैर्य, त्याग तथा शुभ कामनाओ का ही यह फल है जिन्होने इस शोध प्रबन्ध को पूरा कराने मे किसी भी भौतिक ससाधनो की कमी नही रहने दी। आप सभी बन्धुओ के इस सक्रिय सहयोग तथा उचित परामर्श, वैचारिक सहयोग तथा निरन्तर प्रोत्साहन ने जो प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की है इसे आजीवन भुलाया नही जा सकता है। कमल एव सहदेव सिह तथा सभी मित्रो के सहयोग के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होने अपने अमूल्य समय को निकालकर मेरी छोटी–छोटी आवश्यकताओ का ख्याल रखा और उन्हे शिद्दत के साथ पूरा किया। जिससे इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने मे इतनी सक्रिय गति मिली।

वीरेन्द्र सिंह यादव

शारदीय नवरात्र
14 अक्टूबर 2002 ई0

(वीरेन्द्र सिह यादव)
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

मोहन राकेश के कथा साहित्य में पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन के स्वरूप का अध्ययन

विषयक्रम

प्रथम अध्याय

पारिवारिक विघटन : समस्या और स्वरूप

प्रथम् अध्याय

पारिवारिक विघटन : समस्या और स्वरूप

परिवार किसी भी समाज मे एक विशिष्ट स्थिति एव महत्व रखता है। परिवार के बिना समाज की कल्पना सर्वथा असम्भव है। सामान्यता परिवार का आरम्भ विवाह के साथ ही होता है। क्योकि परिवार मे पति–पत्नी को ही मूल इकाई के रूप मे समाविष्ट किया जाता है। सतान युक्त परिवार विकसित श्रेणी मे आता है। कुछ समाजो मे निसन्तान दम्पत्ति वाला परिवार अपूर्ण परिवार माना जाता है। पूर्व इतिहास के अवलोकन करने पर यह बात ज्ञात होती है कि सतान परिवार की एक आवश्यक शर्त रही है जिसके अभाव मे केवल पति–पत्नी को ही परिवार के रूप मे मान्य नही किया गया है बल्कि परिवार मे माता–पिता भाई–बहन तथा अन्य रक्त सम्बन्धी भी अभिन्न रूप मे जुडे हुए है। एन्डरसन का कथन है– "परिवार का एक रूप वह है जिसमे हम जन्म लेते है (Family of orientation) और दूसरा रूप वह है जिसमे हम बच्चो को जन्म देते है (Family of Procreation) परिवार की सार्वभौमिकता इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि हममे से कोई ऐसा व्यक्ति नही है जो परिवार के इन दोनो रूपो मे से किसी का भी सदस्य न हो।"[1] यह कथन परिवार की इसी सार्वभौमिकता को स्पष्ट करता है। विज्ञान के वर्तमान युग मे मनुष्य ने आश्चर्य जनक वस्तुओ का आविष्कार किया है, अतीत मे मानव ने मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए अमृत तक की खोज कर ली, लेकिन इस तथ्य का शायद ही कोई अपवाद हो कि परिवार का निर्माण आज भी मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण खोजो मे से एक है।

परिवार मानव समाज का इतना सर्वव्यापी और विराट यथार्थ है कि इसे किसी संकुचित और सक्षिप्त परिभाषा में बॉधकर विश्लेषित करना सहज नहीं है। शाब्दिक रूप से परिवार अथवा अग्रेजी का शब्द Family [2] लैटिन Famulus से बना है। जिसका अर्थ है 'सेवक' इससे स्पष्ट होता है कि परिवार का तात्पर्य किसी भी ऐसे समूह से है जिसके सदस्य सेवा भाव से एक दूसरे के साथ रहते है। सस्था के रूप मे, अन्य समाजो मे परिवार का रूप लगभग एक समान ही है, लेकिन आकार और सगठन के दृष्टिकोण से भिन्न–भिन्न समाजो मे इसका रूप भी एक दूसरे से कुछ भिन्न पाया जाता है। यही कारण है कि परिवार को

परिभाषित करने मे विभिन्न विद्वानो के विचारो मे भी कुछ भिन्नता दिखाई देती है।

बर्जेस एव लॉक ने परिवार की परिभाषा विस्तार से ही है– "परिवार ऐसे व्यक्तियो का समूह है जो विवाह, रक्त अथवा गोद लेने के सम्बन्धो द्वारा सगठित है, एक छोटी सी गृहस्थी का निर्माण करते है, और पति–पत्नी , माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई तथा बहन के रूप मे एक दूसरे से अन्तर्क्रियाऐ करते तथा एक सामान्य सस्कृति का निर्माण तथा देख–रेख करते है।"[3]

मैकाइवर और पेज ने परिवार की सक्षिप्त परिभाषा देते हुए कहा है कि परिवार "ऐसा समूह है जो यौन–सम्बन्धो पर आश्रित है तथा इतना छोटा और शक्तिशाली है कि सतान के जन्म पालन–पोषण की व्यवस्था करने की क्षमता रखता है।"[4] मैकाइवर ने अपनी परिभाषा में यौन सम्बन्धो को परिवार के सगठन को आधारभूत तत्व माना है लेकिन यह केवल पश्चिमी दर्शन Philosophy ही सिद्ध हुआ है।

ऑगवर्न और निमकॉफ के अनुसार "परिवार लगभग एक स्थाई समिति है जो पति–पत्नी से निर्मित होती है, चाहे उनके सन्तान हो अथवा न हो।"[5] अपनी बाद की पुस्तक मे निमकॉफ ने यह भी स्वीकार किया है कि "बच्चों के बिना परिवार का निर्माण नही हो सकता।"[6] ऑगवर्न ने यह तर्क दिया कि बच्चों के बिना परिवार पति–पत्नी के सम्बन्ध को केवल दाम्पत्य सम्बन्ध ही कहा जा सकता है, इसे परिवार कहना बहुत अनुचित प्रतीत होता है।

किग्सले और डेविस ने परिवार को परिभाषित करते हुए कहा है, "परिवार ऐसे व्यक्तियो का समूह है जिनके एक दूसरे के प्रति सम्बन्ध सगोत्रता (Consanguinity) पर आधारित होते है और जो इस प्रकार एक–दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते है।"[7]

वास्तविकता यह है कि परिवार, पति–पत्नी, बच्चो तथा निकट सम्बन्धियो का अपेक्षाकृत एक स्थायी सग़ठन है, जिसे विवाह सन्तानोत्पत्ति और वशनाम के आधार पर व्यवस्थित रखा जाता है। परिवार रूपी इस सस्था के गठन द्वारा व्यक्तियो ने (छोटे स्तर पर) परस्पर सुरक्षा की गारटी ली थी और दी थी इसका उद्देश्य व्यक्ति का अस्तित्व सुखमय और खतरे रहित बनाने का था। वर्तमान समय मे इस परिवार रूपी सस्था मे विघटन के बीज उत्तरोत्तर विकसित

हो रहे है। "सच तो यह है कि भारतीय परिवार भी देश के समान, एक अजीब कसमकस, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या, कलह और तू–तू मै–मै के दौर से गुजर रहा है।"[8] इसी तरह सयुक्त परिवार के विघटन को परिभाषित करते हुए डॉ0 वीरेन्द्र सक्सेना लिखते है – "आज सयुक्त परिवार टूट रहे है और उसके स्थानो पर एकाकी परिवारो को अच्छा समझा जा रहा है। अत परिवार के नाम पर आज हम जो भी कल्पना करते है, उसमे पति–पत्नी और उसके अविवाहित बच्चों को ही सम्मिलित माना जाता है।"[9]

सयुक्त परिवार के बीज विघटन को देखने से पहले सर्वप्रथम पारिवारिक विघटन की अवधारणा को समझा जा सकता है। पारिवारिक विघटन का अर्थ पारिवारिक अव्यवस्था से है, चाहे यह पारस्परिक निष्ठा और पारस्परिक नियन्त्रण की कमी से सम्बन्धित हो अथवा व्यक्तिवादिता की वृद्धि से। अधिक स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि "पारिवारिक विघटन मे हम किन्ही भी उन बन्धनो की शिथिलता, असामन्जस्य अथवा पृथक्करण (Dissolution) को सम्मिलित करते है जो समूह के सदस्यो को एक–दूसरे से बॉधे हुए थे।"[10]

इस प्रकार पारिवारिक विघटन का अर्थ केवल पति–पत्नी के सम्बन्धो में तनाव उत्पन्न होना ही नही, बल्कि माता–पिता और बच्चो के सम्बन्धो मे तनाव उत्पन्न होना भी परिवार के लिए उतना ही घातक होता है। वही दूसरी ओर मॉरर का मत है कि पारिवारिक विघटन का अर्थ पारिवारिक सम्बन्धो मे बाधा पडना है। अथवा यह सघर्षों की श्रृंखला का वह चरम रूप है जो परिवार की एकता को खतरा पैदा कर देता है। ये सघर्ष किसी प्रकार के भी हो सकते है और सघर्षों के इसी क्रम Sequence को पारिवारिक विघटन कहा जा सकता है।"[11] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि पारिवारिक सम्बन्धो के सीमित तनाव से परिवार का विघटित होना आवश्यक नही है बल्कि पारिवारिक संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। या यूँ कहा जाय कि परिवार मे जिस चेतना और निष्ठा के आधार पर सदस्य एक–दूसरे से बधे रहते है और असीमित दायित्व की भावना को महसूस करते है उस चेतना और निष्ठा में कमी अथवा कोई गम्भीर बाधा पडना ही पारिवारिक विघटन है। मार्टिन न्यूमेयर के शब्दो मे पारिवारिक विघटन का अर्थ परिवार के सदस्यो मे मतैक्य Consensus और निष्ठा Loyalty का समाप्त हो जाना, अथवा बहुधा पहले के सम्बन्धो का टूट जाना, पारिवारिक चेतना की समाप्ति हो जाना अथवा पृथकता मे वृद्धि हो जाना है।"[12]

पारिवरिक विघटन की उपर्युक्त परिभाषाओ से कुछ तथ्यो पर प्रकाश पडता है कि विघटन का अर्थ परिवार मे किन्ही भी सदस्यो के सम्बन्धो का टूट जाना है इसके साथ ही पारिवारिक विघटन का सम्बन्ध केवल पति–पत्नी के सम्बन्धो के तनाव से नही है। पारिवारिक सगठन मे कुछ मतभेद सदैव पाये जाते है लेकिन पारिवारिक विघटन का सम्बन्ध सघर्षों की उस सीमा से है जिसमे प्रत्येक वस्तु स्थिति को सन्देह से देखा जाये। वास्तविकता यह है कि पति–पत्नी के स्नेह सम्बन्ध इतने आन्तरिक होते है कि परिवार को इन्ही सम्बन्धो से शक्ति और एकता प्राप्त होती है लेकिन इन बन्धनो मे कोई भी शिथिलता आने पर अधिकतर अवसरो पर परिवार विघटित हो जाते है। अधिकाश बुद्धिजीवियो का विचार है कि पारिवारिक विघटन का रूप पारस्परिक पृथक्करण विवाह–विच्छेद, सहायता करने मे असफल रहना तथा शारीरिक उत्पीडन आदि के रूप मे देखने को मिलता है। वास्तव मे ये दशाएं स्वयं मे महत्वपूर्ण अवश्य है लेकिन परिवार को आवश्यक रूप से विघटित नही करती। बहुत से पति–पत्नी एक दूसरे से बिल्कुल असहमत होते हुए भी उपर्युक्त अभिव्यक्ति इसलिए नही करते क्योकि उनके धार्मिक विश्वास उन्हे वैसा करने से रोकते है। अथवा उनके आर्थिक स्वार्थ उन्हे ऊपरी रूप से एक–दूसरे से बाधे रहते है। इसलिए अन्तत· पारिवारिक विघटन का अर्थ पारिवारिक बन्धनो की नियन्त्रण शक्ति मे कमी हो जाना तथा सदस्यो मे मतैक्य का समाप्त हो जाना ही है।

परम्परागत सयुक्त परिवार मे हुए इन परिवर्तनो ने इसके आकार को छोटा कर दिया है इसे औद्योगीकरण की देन ही कहा जा सकता है क्योकि "पिछले डेढ सौ वर्षों मे परम्परागत सयुक्त परिवार और ग्रामीण रचना का गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। उत्पादन की इकाई के स्थान पर परिवार उपयोग की इकाई मे रूपातरित हुआ है। परिवार को सश्लिष्ट रखने वाले सूत्र सगोत्रता के सम्बन्धो के बजाय दाम्पत्य सम्बन्धो मे परिवर्तित हो रहे है। परिवार अब सर्वोपयोगी सामाजिक उपकरण नहीं रह गया है। वह अपनी अधिकांश आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, चिकित्सात्मक, धार्मिक तथा अन्य सामाजिक, सास्कृतिक क्रियाओ से रहित हो रहा है। इसके स्थान पर वह एक छोटे से विशेषीकृत और स्नेहपूर्ण सघ का रूप ले रहा है। कई पीढियो के सदस्यो से मिलकर बने विशाल सयुक्त परिवार से चल कर अधिकाधिक, पति–पत्नी और अविवाहित बच्चो के परिवार की छोटी इकाई का रूप ले रहा है।"[13] यही वह

पारिवारिक इकाई है, जिसे समाजशास्त्री नाभिक परिवार (एकाकी परिवार, या न्युक्लियर फैमिली) कहते है जिसके सदस्य केवल पति–पत्नी तथा उनके अविवाहित बच्चे ही है। हैरिस ने एकाकी परिवार को परिभाषित करते हुए कहा है, "एक एकाकी परिवार उन व्यक्तियो का छोटा समूह है जो जैविकीय भूमिका निभाने के अतिरिक्त एक दूसरे के प्रति सस्थागत सामाजिक दायित्यो को पूरा करते है तथा ऐसा करने के साथ ही विश्वासो और मूल्यो का पालन करते है। जिनकी उनसे परिवार के अन्तर्गत पूरा करने की आशा की जाती है।"[14] इन परिवारो को तात्कालिक (Immediate) तथा प्राथमिक (Primary) परिवार भी कहा जाता है ऐसा इस कारण कि इसके सदस्य केवल वही व्यक्ति हो सकते है जिन्होने इसमे जन्म लिया हो अथवा दम्पत्ति (Spouse) द्वारा गोद ले लिये गये हो। भारत में अभी तक एकाकी परिवारो की सख्या बहुत कम थी क्योकि परम्परा के प्रचलन मे सयुक्त परिवारो को ही अच्छा समझा जाता था। आज औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के फलस्वरूप एकाकी परिवारो की सख्या लगातार बढती जा रही है और इसे सामाजिक रूप से मान्यता भी मिल गयी है।

एकल परिवार मे आज पति और पत्नी की वर्तमान स्थिति बिल्कुल ही परिवर्तित हो गयी है। आधुनिक युग मे स्त्री की स्थिति विशेष रूप से इतनी जटिल हो गयी है कि उसके पद और भूमिका मे कठिनता से ही सामजस्य रह पाता है, क्योकि स्त्री घर मे सरक्षिका और मा का कार्य करने के अतिरिक्त जीविका उपार्जन का कार्य भी कर रही है, उच्च शिक्षा प्राप्त होने के बाद भी घर में निष्क्रिय सी बैठी रहती है और पहले की अपेक्षा कम संतानों की इच्छा रखती है। अपने परम्परागत कार्यों के अतिरिक्त उससे एक साथी, सलाहकार, व्यावहारिक नर्स, प्रेमिका और गृह स्वामी आदि उन सभी कार्यों को करने की आशा की जाती है जो एक ही व्यक्ति द्वारा कठिनता से पूरे किये जा सकते हैं। यूँ कहा जाय कि "आधुनिक परिवार पत्नी की स्पष्ट या प्रच्छन्न दासता पर टिका है . परिवार के अदर वह पुरूष बुर्जुआ है और उसकी पत्नी सर्वहारा का प्रतिनिधित्व करती है।"[15] स्त्री के इस बढते दायित्व बोध ने उसे विद्रोही बना दिया है फलस्वरूप उसने इन नई भूमिकाओ के प्रति असतोष तथा परस्पर विरोधी कार्यों के प्रति असतोष जाहिर करना शुरू कर दिया है जो पारवारिक विघटन के लिए अनुकूल वातावरण बना देता है।

स्त्री–पुरूषो मे व्यक्तिवादिता बढने से वैवाहिक सम्बन्धो की स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। स्नेह और प्रेम की आशा से किये गये विवाह के बाद यदि एक पक्ष मे व्यक्तिवादी भावनाएं प्रबल हो जाये, तब सामान्यत दोनों पक्ष इसे अपना दुर्भाग्य मानने लगते है और इसका स्वाभाविक परिणाम विवाह–विच्छेद के रूप मे सामने आता है। वास्तव मे विवाह का आरम्भ प्रेमपूर्ण बन्धनो से होता है लेकिन विवाह की स्थिरता के लिए इन बन्धनो के अतिरिक्त कुछ अन्य दशाओ का भी होना आवश्यक है। विशेषरूप से पति–पत्नी की मनोवृत्ति और विचारों में समानता होना परिवार के सगठन के लिए आवश्यक है। यही पारस्परिक निर्भरता की कमी स्त्री–पुरूष सम्बन्धो मे दरार पैदा करती है। वर्जेस और लॉक का कथन है कि "यद्यपि विवाह एक वैधानिक और धार्मिक बन्धन माना जाता है, यह वास्तव मे एक वैयक्तिक बन्धन है जिसमे पति–पत्नी के विचारो, इच्छाओ और मनोवृत्तियो का परिवारकी सस्थनात्मक सरचना से भी अधिक महत्व है। इसलिए पारिवारिक तनावो की प्रवृत्ति तथा पारिवारिक विघटन से उनके सम्बन्ध को जानना आवश्यक हो जाता है।"[16] वास्तव मे वैयक्तिक तनाव वे प्राथमिक तनाव है जो पति–पत्नी के व्यक्तित्व से सम्बन्धित होते है। उदाहरण के लिए पति–पत्नी के परस्पर–विरोधी स्वभाव, सामाजिक मूल्यो मे विरोध, व्यवहार प्रतिमानों की भिन्नता, यौनिक असन्तुष्ट, दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित विरोधपूर्ण भूमिकाओ और मानसिक रूप से विकार युक्त व्यक्तित्व के कारण परिवार मे जो तनाव उत्पन्न होते है इन्ही तनाव के कारण, पति–पत्नी एक–दूसरे पर सदैव दोषारोपण करते रहते है और प्रत्येक स्थिति के लिए दूसरे को उत्तरदायी मानते हैं। पारस्परिक अविश्वास, सामान्य विषयो पर मतभेद, झगडालू प्रवृत्ति तथा मानवीय व्यवहार इन दशाओं का स्वाभाविक परिणाम होता है जो दोनो प्राणियों के बीच विघटन उत्पन्न कर देता है।

पति–पत्नी की सामाजिक स्थिति मे परिवर्तन हो जाने से अक्सर नये प्रकार के तनाव जन्म ले लेते हैं। इन तनावो की प्रकृति भी भिन्न–भिन्न सामाजिक वर्गों मे भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। उच्च सामाजिक वर्ग मे लडकी को अपने पति के यहॉ उतनी स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती है जो उसे अपने पिता के घर मे मिलती रही थी। कभी–कभी भिन्न व्यवहार प्रतिमानो तथा जीवन स्तर सम्बन्धी विशेषताओ के कारण भी वह अपनी नयी दशाओं मे अनुकूलन नही कर पाती। मध्यवर्ग मे पति तथा पत्नी दोनो की ही महात्वाकाक्षाए बहुत अधिक होती

है। लेकिन उनके साधन बहुत सीमित होने के कारण, हमेशा नये–नये तनाव उत्पन्न होते रहते है। इससे निराशा और पारस्परिक असंतुष्टि को प्रोत्साहन मिलता है तथा इस प्रकार से परिवार के विघटित हो जाने की आशका उत्पन्न हो जाती है। निम्न वर्गों मे मानसिक और आर्थिक सुरक्षा पहले से ही काफी अधिक होती है। ऋण लेने का स्वभाव, मादक द्रव्यो का प्रयोग स्त्री के प्रति उदासीनता इस वर्ग मे परिवार के सम्बन्धो को तोडने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

साधारणतया निर्धनता, बेरोजगारी, स्त्रियो द्वारा आर्थिक जीवन में प्रवेश तथा पत्नी की अपने पति पर आर्थिक निर्भरता भी स्त्री–पुरूष सम्बन्धो में दरार उत्पन्न करता है। निर्धनता और बेरोजगारी के कारण पत्नी अपने पति को निकम्मा और अनुत्तरदायी समझने लगती है जबकि पति अपनी पत्नी को असहयोगी और झगडालू समझकर उसकी अवहेलना करना आरम्भ कर देता है। यह पारस्परिक अविश्वास का वातावरण दम्पत्तियो को अनैतिकता की ओर ले जाता है। स्त्रियो द्वारा आर्थिक जीवन मे प्रवेश करने से इस तरह के बहुत से परिवार इसलिए विघटित हो जाते है कि परम्परावादी स्वभाव के कारण पुरूषो का मन सन्देहपूर्ण बन जाता है अथवा स्त्रियॉ फिर उन उत्तरदायित्वों को पूरा करना जरूरी नही समझती जिन्हें केवल वे ही कुशलतापूर्वक पूर्ण कर सकती है। पति पर पत्नी की आर्थिक निर्भरता सदैव पारिवारिक विघटन का कारण नही होता लेकिन यदि एक शिक्षित और कुशलता प्राप्त स्त्री आर्थिक अभावों के बाद भी अपने पति पर पूर्णतया निर्भर होती है, तो अक्सर वह अनेक प्रकार के तनावो से घिर जाती है। मुक्त सामाजिक व्यवस्था वाले समाजो में यह दशा विशेष रूप से पारिवारिक विघटन का कारण सिद्ध हुई है। इस तथ्य को सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री इलटॉट और मेरिल ने भी स्वीकार किया है– "The famıly was in a very real sence a vırtully self sufficient economıc unit."[17]

कुछ व्यवसायों की प्रकृति स्वयं इस प्रकार की होती है जो अनेक प्रकार के तनाव देकर स्त्री पुरूष सम्बन्धों मे तनावो को जन्म देकर पारिवारिक विघटन की सम्भावना उत्पन्न कर देते हैं। उदाहरण के लिए चल चित्रो मे नायक नायिका की भूमिका करने वाले व्यक्ति थियेटर कम्पनियो के मैनेजर तथा व्यवसायिक कम्पनियो के सेल्स प्रतिनिधि अपनें परिवारों के लिए अधिक समय न दे सकने के कारण कभी–कभी पारिवारिक विघटन का कारण बन जाते है।

एकल परिवारो मे स्त्री–पुरूष सम्बन्धो के विघटन मे एक तीसरे व्यक्ति के आ जाने के कारण भी दरारे पड जाती है यदि दोनो के अतीत जीवन मे कोई प्रेम सम्बन्ध रहते है तो "बाद मे पति –पत्नी मे से किसी को यह पता लगता है कि दूसरे साथी का कोई ऐसा अतरग अतीत भी रहा है जिसमे उसकी स्वय की साझेदारी नही रही, तो रूमानी प्रेम का प्रासाद ताश के महल की भॉति बिखरने लगता है।"[18]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अनेक वर्गगत वैयक्तिक सामाजिक तनाव परिवार की शान्ति और सुव्यवस्था पर आघात करके पारिवारिक विघटन का कारण बनते है इसके अतिरिक्त स्त्री–पुरूष के सम्बन्धो मे विघटन पति और पत्नी की आयु मे अधिक अन्तर, दुर्लभ स्वास्थ्य, सास्कृतिक पृष्ठभूमि की भिन्नता, पति–पत्नी के जीवन मे सास अथवा श्वसुर का अवाछित हस्तक्षेप भी सहायक होते हैं। इन सब का मूल कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से औद्योगीकरण ही माना जाता है।

पारिवारिक विघटन की समस्या स्त्री विमर्श और नारी के स्वत्व से जुडी हुई है। जैसे–जैसे समाज मे नारी की निरीह स्थिति मे बदलाव आया है और वह अबला से सबला बनने की तरफ अग्रसर हुई है वह अपने अधिकारो के प्रति सजग और सचेत हुई है । पुरूष तंत्रात्मक समाज के बधनो के खिलाफ उसने विद्रोह किया है। इस विद्रोह मे परिवारिक विघटन का बीज छिपा है। स्त्री के क्रांतिवीर तेवर से परिवार की बुनियाद हिल गयी है और पारिवारिक विघटन भिन्न–भिन्न रूपों मे समाज मे पसरता जा रहा है। पुरूष का परम्परागत मानस स्त्री के मौलिक अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता। वह दबाना चाहता है और स्त्री अपनी पुरानी गुलाम मानसिकता वाली छवि सती–साध्वी या पति–परमेश्वरी को तोडकर अपना स्वतन्त्र वजूद बनाना चाहती है। सामंती समाज में स्त्री मॉ, बहन, पत्नी, प्रेमिका, दासी आदि के रूप मे थी– उसका अपना अलग वजूद नही था। आधुनिकता और बौद्धिकता के कारण वह अपने निज स्वरूप और अपनी भावनाओ एव इच्छाओ के प्रति सचेत हुई है। इस सजगता से टकराहट होती है और पारिवारिक विघटन की शुरूआत होती है। अभी भी पुरूष स्त्री मे परम्परागत कुललक्ष्मी/कुलबधू वाले स्वरूप को ही ढूँढता है, वह उसी का आकाक्षी है। स्त्री को आधुनिक होना उसे बर्दास्त नही है। उसे वह कुलटा और परिवार तोडने वाली आदि विशेषणो से नवाजने लगता है। उस पर चरित्रहीनता और स्वैराचार का

आरोप लगता है। ''वास्तविकता यह है कि पुरूष स्वभावत अहकारी है वह अपनी सामाजिक स्थिति को सर्वोच्चता मे रखकर देखता है और स्त्री को निम्न स्तर पर रखकर ही। यदि स्त्री अधिक पढी-लिखी, जागरूक तर्कशील, बुद्धिमान है तो उसकी सर्वोच्चता को शायद खतरा पैदा हो जायेगा और झूठे अहंकार वाद का शिकार व्यक्ति ये सब कैसे सहन कर लेगा कि स्त्री की सामाजिक आर्थिक स्थिति उससे सर्वोच्च 'हायर ऑडर' की हो जाये और उसकी निम्न या उसकी बराबर। आज तक यही होता आया है और आज भी उसके भीतर यही सोलहवी शताब्दी की सोच काम कर रही है कि स्त्री उसकी निजी सम्पत्ति है लेकिन, इस सम्पत्ति की गुणवत्ता को वह कतई बढाना नही चाहता, उसे कमजोर करके रखने में ही अपनी सार्थकता, सुरक्षा समझता है। पुरूष के मन मे यह भय, असुरक्षा की भावना और स्त्री को दबाकर, कुचलकर नियन्त्रण मे रखने की इसकी विरोधी दृष्टि सदियो से काम कर रही है।''[19]

'समर्पण को सेवा का सार' कहकर प्रसाद जी नारी के उसी सामती रूप को प्रोत्साहित करते है जो अपनी सारी आकाक्षाओ को पुरूष के चरणो मे समर्पित कर देती है। अपने व्यक्तित्व को पुरूष के 'महान' व्यक्तित्व मे गला घुला देती है। आधुनिक स्त्री नर-नारी समता मे विश्वास करती है। जहॉ पुरूषो से वह किसी मायने मे कम नही है। इस तथ्य को डॉ0 रमेशकुन्तलमेघ भी स्वीकार करते है- ''आजकल नारी की ऐतिहासिक कर्मभूमिकाए (गृहणी, धात्री, जननी, उपचारिका, सेविका, दासी आदि) जो शय्या और रसोई की धुरी मे केन्द्रित थी, अब बदल रही है। वह गृह के बाहर काम धन्धों को अपना रही है। और गृह के अन्दर की नीरस मजदूरी से स्वतन्त्र हो रही है। गृह की धुरी के ढीला होने के साथ ही विवाह की संस्था के अस्तित्व के प्रश्न उठ रहे है अर्थात श्रम के विभाजन (घरे और बाहिरे) के सामंन्ती आधार टूट रहे हैं और नई स्त्री 'एक-यौनता' की धारणा को स्वीकार कर रही है।''[20] यह सच है कि सामती समाज मे स्त्री का दर्जा शूद्र का था, बल्कि उससे भी नीचे का था।

पूँजीवाद के उदय के साथ जीवन मे आधुनिकता बौद्धिकता का प्रवेश होता है, वैज्ञानिक दृष्टि का विकास होता है, स्त्री-पुरूष के समान अधिकारो की घोषणा होती है। इसके साथ ही हजारो सालो की बेडियॉ एक झटके के साथ ही टूट जाती है और स्त्री के कदम आत्म सम्मान की दिशा मे बढ चलते है। स्त्री को कानूनी अधिकार मिलतेहै। सन 1956 ई0 के पहले स्त्री का कानूनी अधिकार शून्य

था। धीरे–धीरे उसमे बढोत्तरी हो रही है और यही से स्त्री की अपनी स्वतन्त्र पहचान बननी शुरू होती है।

स्त्री विमर्श की महीन और व्यापक जानकारी पाने के लिए विश्वस्तर पर घटने वाली चार घटनाओ को रेखाकित करना बेहद जरूरी है।

एक, 1789 की फ्रासीसी क्राति जिसने स्वतत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी चिरवाछित मानवीय आकाक्षाओ को नैसर्गिक मानवीय आधिकार की गरिमा देकर राजतन्त्र और साम्राज्यवाद के वरक्स लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के स्वस्थ और अभीप्सित विकल्प को प्रतिष्ठित किया।

दूसरा, भारत मे राजा राममोहनराय की लम्बी जद्‌दोजहद के बाद 1829 मे सती प्रथा का कानूनी विरोध जिसने पहली बार स्त्री के अस्तित्व को मनुष्य के रूप मे स्वीकारा।

तीसरा, सन् 1848 ई0 मे सिनेका फालस न्यूयार्क मे ग्रिम के बहनो की रहनुमाई में आयोजित तीन सौ स्त्री–पुरूषो की सभा जिसने स्त्री दासत्व की लम्बी श्रृंखला को चुनौती देते हुए स्त्री मुक्ति आन्दोलन की नीव धरी।

चौथा, 1867 मे प्रसिद्ध अग्रेज दार्शनिक और चिंतक जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा बिट्रिश पार्लियामेट मे स्त्री के वयस्क मताधिकार के लिए प्रस्ताव रखा जाना जिसने कालान्तर मे स्त्री–पुरूष के बीच स्वीकारी जाने वाली अनिवार्य कानूनी और संवैधानिक समानता की अवधारणा को बल दिया।

संयुक्त रूप से ये चारो घटनाये एक तरह से विभाजक रेखाएं है जिसके एक ओर पूरे विश्व मे स्त्री उत्पीडन की लगभग एक सी यूनीवर्सल परम्परा है तो दूसरी ओर इससे मुक्ति की लगभग एक सी तडप और अकुलाहट भरी संघर्ष कथा।

भारतीय संदर्भ मे स्त्री–विमर्श दो विपिरीत ध्रुवो पर टिका हुआ है। एक ओर परम्परागत भारतीय नारी की छवि है जो सीता और सावित्री जैसे जड पात्रों में अपना मूर्त रूप पाती है। दूसरी ओर घर परिवार तोडने वाली स्वार्थी(होम ब्रेकर) और कुलटा रूप मे विख्यात पाश्चात्य नारी की छवि है जो अक्सर पुरानी फिल्मो मे खलनायिका के रूप मे उकेरी जाती रही है।

साहित्य जीवन की भावनात्मक अभिव्यक्ति होते हुए भी भावनाओ द्वारा अनुशासित नही होता। मूलत वह बीज रूप मे विचार से बधा होता है जिसका पल्लवन–पुष्पन भविष्य मे होता है तो जडो का जटिल जाल सुदूर अतीत तक चला जाता है। और अपने भौतिक अस्तित्व से ऊपर उठकर विराट को महसूसने की क्षमता ही लेखक के ज्ञान और सवेदना को उन्मुक्त और घनीभूत करते हुए विजन का रूप दे डालती है। यह विजन ही मुक्ति बोध के शब्दो मे ज्ञान को 'संवेदनात्मक ज्ञान' और सवेदना को 'ज्ञानात्मक सवेदन' का रूप दे रचना मे वाछित बौद्धिक सयम और अनुशासन बनाए रखता है। आलोचक को धडकते जीवन से सीधे मुखातिब नही होना है, लेकिन एक हाथ जीवन की नब्ज पर रखकर दूसरे हाथ से जीवन को प्रतिबिम्बित करती रचनाओ की नब्ज को टटोलना है इसका दायित्व दोहरा और चुनौती भरा है। विमर्श का अर्थ है जीवन्त बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियो, सस्कारो और वैचारिक प्रतिबद्धताओ का समाहार करते हुए उलट–पुलट कर देखना, उसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय सदर्भो मे निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना।

स्त्री विमर्श विपरीत दृष्टियो मे बधी स्त्री–छवि के परस्पर सघर्ष, स्खलन और भजन का प्रमाणिक इतिहास है। भोर की खुमार भरी नीद तोडने के लिए 'देवरानी जेठानी की कहानी' और भाग्यवती सरीखी–रचनाओ को निश्शक भाव से प्रभात फेरियों का दर्जा दिया जा सकता है। समाज सुधार के सजग और सायास गढे उददेश्य, पात्र कथानक और घटनाओ से बुनी इन रचनाओ मे राजा राम मोहन राय, विधासागर, रानाडे, महर्षिकर्वे, महर्षि दयानद तक के समाज सुधार आन्दोलन की परम्परा, अनुगूज और छाप साफ दिखायी पडती है।बाल विवाह विरोध, विधवा विवाह समर्थन, स्त्री शिक्षा (जिसका पाठ्यक्रम अनिवार्यता स्त्रियोपयोगी विषयो जैसे सिलाई, बुनाई, कढाई से अटा पडा था। लडकों को दी जाने वाली विज्ञान जैसी आधुनिक शिक्षा से पूर्णतया वचित) और आवश्यकता पडने पर आर्थिक स्वावलम्बन पर बल आज बहुत ही साधारण और हास्यास्पद से मुद्दे जान पडते है, लेकिन उस समय इनकी अहमियत थी। सन् 1860 ई0 मे विद्यासागर बहुत ही मशक्कत के बाद कानूनी तौर पर लडकियो के लिए विवाह की न्यूनतम आयु दस वर्ष करा पाय थे। सन् 1829 ई0 में बहुतेरे प्रयासो के बाद यह आयु बढाकर तेरह वर्ष ही हो पाई थी। अठारह वर्ष न्यूनतम आयु का प्रावधान

शारदा ऐक्ट 1956 ई0 के बाद ही सम्भव हो पाया था जबकि 'भाग्यवती' श्रद्धाराम फिल्लौरी प0 उमादत्त के जरिये लडके और लडकी के विवाह की न्यूनतम आयु क्रमश ग्यारह और अट्ठारह का सदेह देकर वक्त से थोडा आगे चलने का सकेत देते है।

सदी का वर्क बदलने पर हिन्दी साहित्य मे उभरने वाला स्त्री–विमर्श इतना जड, उपदेशात्मक और इकहरा नही रह गया था। लेकिन यह भी तय है कि उसका रेखाकन अब भी पुरूष और परिवार के सन्दर्भ मे ही किया जाता था। इसकी प्रमुख वजह थी सामाजिक राजनीतिक जीवन मे पुरूष नायको के साथ स्त्रियों की प्रत्यक्ष भागीदारी। प्रारम्भ मे समाज सुधारकों के परिवारो की स्त्रियॉ प्रादेशिक स्तर पर आम जनता के उद्बोधन का मत्र फूंकने आगे बढाई गई थी, वक्त के साथ उन्होंने दो उल्लेखनीय कार्य किए। प्रथम, वैयक्तिक तौर पर परिवार के पुरूष अनुशासन। दिशा निर्देशन से मुक्त हो स्वायत्त सत्ता महसूस की। दूसरे , अपनी आवाज को सगठित कर अखिल भारतीय पहचान देने की कोशिश की। सन् 1817 ई0 मे वीमैस इडियन एशोसिएशन की स्थापना, सन् 1925 ई0 में 'नेशनल काउसिल ऑव वूमैन इन इडिया' की स्थापना और सन् 1927 ई0 में अखिल भारतीय महिला परिषद का अस्तित्व मे आना अपने आप मे ऐतिहासिक और क्रान्तिकारी घटनाये थी। जिनकी अनुगूज आज भी स्वतन्त्र भारत के सविधान और कानून मे सुनी जा सकती है। सन् 1946 ई0 में 'अखिल भारतीय महिला परिषद' द्वारा प्रस्तुत अधिकारो और कर्तव्यो के चार्टर मे वर्णित कुछ मागो को भारतीय संविधान मे ज्यों का त्यो स्थान दिया गया। जैसे धारा 44 के अन्तर्गत देशभर में समान सिविल कोड लागू किया जाना धारा 15 के अन्तर्गत लिंग, जाति धर्म के आधार पर सामाजिक आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र मे भेदभाव न किया जाना ; धारा 16 के अतर्गत लिंग, जाति, धर्म के आधार पर सरकारी नौकरियो और दफ्तरो मे भेद भाव न किया जाना। जिसने स्त्री को अपनी चिर–पोषित 'अबला' छवि को तोडकर एक नये जुझारू व्यक्तित्व और रचनाशील भूमिका मे आविर्भूत होने के लिए प्रेरित किया। सामाजिक उथल–पुथल के इस दौर मे हिदी कथा साहित्य भी नारी की स्वायत्तता और स्वतंत्र चेतना को शिद्दत से चित्रित करता। लेकिन विडम्बना यह रही कि इस बिन्दु पर आकर लेखक निर्वैयक्तिक नही रह पाया। उसका पुरूष अह या सस्कार, जो भी कहे स्त्री की इस आत्मनिर्भर विचारवान सघर्षशील छवि को स्वीकार नही पाया।

हिन्दी के अति आरम्भिक उपन्यासो का उद्‌भव स्त्री–चेतना से ही हुआ, यह एक अटल सत्य है। स्त्री चेतना के बीज मन्त्र से हिन्दी के अति आरम्भिक उपन्यास अनुप्राणित रहे है और इनका प्रारम्भिक उद्‌देश्य स्त्री चेतना की सर्वप्रथम प्राथमिकता मे स्त्री शिक्षा निहित है। प्रथम गद्य रचना 'देवरानी जिठानी की कहानी' से स्पष्ट है कि अशिक्षित और मूर्ख महिलाए परिवार के जीवन को अत्यन्त दु खद और शिक्षित महिलाए नरकतुल्य घर को स्वर्ग जैसा सुखद बना देती है। "हिन्दी मे उपन्यास की रचना का श्री गणेश स्त्री शिक्षा निमित्त ही हुआ था। इस स्त्री शिक्षा के मूल मे स्त्री चेतना ही है। 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'वामा शिक्षक', 'भाग्वती' और 'सुन्दर शीर्षक' परीक्षागुरू–पूर्व उपन्यासो मे स्त्री चेतना ही मूलाधार है।"[21]

आधुनिक काल मे प्रेमचद की निर्मला कितनी पच्चीकारी करके सामाजिक कुरीतियो की पृष्ठभूमि में निर्मला के जरिये औसत भारतीय स्त्री की आंसू भरी अनूठी तस्वीर गढने की कोशिश की गई है, उसे तोडकर सुधा के रूप–रंग–रेखा विहीन चरित्र की आउट लाइस सी दिलोदिमाग पर हावी हो जाती है,निर्मला की पीडा और दीनता के सेलीब्रेसन से ज्यादा सुधा के चरित्र का आकस्मिक एव अविश्वसनीय टर्न कही ज्यादा जरूरी लगता है।

दूसरा उदाहरण 'गोदान' की मालती के रूप में लिया जा सकता है जिसके पर कतरने के प्रयास मे बेचारे प्रेमचन्द पसीने– पसीने हो गये हैं। मालती यानी सुशिक्षित, स्वतन्त्र चेता आत्मनिर्भर प्रोफेसनल युवती जो पुत्र की तरह घर के दायित्वो को संभाले है। और मित्र की तरह पुरूष मडली में घूमती है। वर्जनाओं और कुन्ठाओं से मुक्त एक स्वस्थ व्यक्ति की तरह। उसकी यह पारदर्शिता वाली उन्मुक्तता 'मेहतानुमा'पुरूषों के लिये खतरा है। इसलिये वे खिसियाकर फतवेबाज़ी करने लग जाते है–"स्त्री में जब पुरूष के गुण आ जाते है तो वह कुलटा हो जाती है।"[22]। प्रेमचद्र जो भी हों (मेहता या पुरूष) सर्जक के रूप मे समाज को 'कुलटाओ' का रोल मॉडल अपनी रचनाओं के जरिये नहीं दे सकते थे। इसलिये मालती की उर्जा और तेजस्विता को 'चैनेलाइज' करते हुए उसे समाज सेवा और राष्ट्र सेवा के वृहत्तर आयामों से जोडकर विपरीत दिशा की ओर मोड देते हैं। अब वह राष्ट्रवादनी है। साध्वी है। स्त्री अस्मिता और स्त्री सरोकारों से दूर स्वाधीनता सग्राम की एक सेनानी मात्र है। यहॉ अचानक 'सीमंतनी उपदेश' जैसी रचनाओ का ख्याल आ जाता है।

महादेवी वर्मा भी स्त्री प्रवक्ता की हैसियत से स्त्री की दुर्दशा पर निरन्तर लिखती रही है, लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से 'सीमंतनी उपदेश' और 'श्रृखला की कडियो मे बुनियादी फर्क है। महादेवी वर्मा जहॉ पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के अभिजात प्रेम और अनुशासन को स्वीकारती हुई स्त्री के लिए थोडी सी 'मानवीय' ढील की अपेक्षा करती रही हैं, वही 'सीमतनी उपदेश' की अज्ञात लेखिका उजड्ड गवई मिजाज मे स्त्रियो को चेताती है। चेताने की इस कोशिश मे पुरूष सत्तात्मक व्यवस्था का शोषक रूप अनायास इस कदर बेनकाब हो जाता है कि घबराकर खुद ही अपनी नग्नता पर शर्मसार हो उठता है।महादेवी वर्मा के अनुसार "हमे न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए, न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरूषों के निकट कोई उपयोग नही है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अग बन नही सकेंगी।"[23]

अपनी सीमाओ के चलते प्रेमचन्द भले ही युगानुरूप स्त्री की बदलती छवि अपनी रचनाओ मे नही उकेर सके, लेकिन उन्ही के समकालीन जैनेन्द्र ने निर्भीकता पूर्वक उसे मानवीय अस्मिता से दीप्त अवश्य किया, असल मे हिन्दी कथा साहित्य मे यही से पहली बार स्त्री विमर्श एक गम्भीर और मानवीय चिता के रूप में नये आयाम और ऊंचाइया लेने लगता है। कभी –कभी लगता है वह इग्लैंड रिटर्न्ड मालती ही थी जो मेहता और प्रेमचन्द द्वारा थोपे गये कानूनों, वर्जनाओ, अनुशासनों के बीच भी अपने वजूद को पूरी ऊचाई और फैलाव दे पाई। कोई सामान्य स्त्री होती तो शायद कल्याणी (उपन्यास–कल्याणी) की तरह स्वतन्त्रता और वर्जना, अस्मिता और पति सापेक्ष पत्नी की परतंत्र भूमिका के निरंतर द्वद्व तले पिसे आत्मपीडन और हिस्टीरिया की शिकार हो जाती। यह ठीक है कि प्रेमचन्द की तरह जैनेन्द्र के यहॉ सामाजिक सरोकार अपनी तमाम स्थूलता और व्यापकता मे उपस्थित नही है, लेकिन 'पत्नी' कहानी की सुनदा और 'त्यागपत्र' की मृणाल (अज्ञेय रचित 'रोज' की मालती और 'नदी के द्वीप' की रेखा भी) क्या बहुत गहराई से उस व्यवस्था को प्रश्न चिन्हित नही कर देती जो स्त्री को तिल भर भी स्पेस देने को तैयार नहीं ?

यह वह दौर था जब स्त्रियॉ अपने अधिकारों के लिए निष्फल लडाई लड रही थी। सन् 1867 ई0 में जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा वयस्क मताधिकार की माग किये जाने के वावजूद सन् 1920 ई0 मे अमरीका मे तथा सन् 1928 ई0 मे

ब्रिटेन मे स्त्रियो को वयस्क मताधिकार मिल पाया था। जबकि पुरूष को लगभग सौ साल पहले सन् 1932 ई0 में (ब्रिटेन के सन्दर्भ मे) यह अधिकार मिल चुका था। मानसिक रूप से सामती युग मे जी रहे भारतीय समाज मे स्त्री की निजता और अस्मिता की स्वीकृति की अपेक्षा करना बालू से तेल निकालने का प्रयास करना था। स्वतत्रता के तुरन्त बाद तमाम कोशिशों के बावजूद पार्लियामेंट मे शारदा ऐक्ट को पास न किया जाना हमारी समाज व्यवस्था के इसी सामती और जड चरित्र की कथा कहता है। अततः सन् 1956 ई0 मे दो किस्तो में बॅटकर हिन्दू कोड बिल के रूप में पारित हो जाने के बावजूद क्या आज व्यावहारिक स्तर पर इसे जन स्वीकृति मिल चुकी है? बावजूद पिछले तीन चार वर्षों की कोशिशों के महिला आरक्षण बिल अभी तक ससद में पारित नही हो पाया है, बावजूद इस घोषित 'तथ्य' के कि हर राजनीतिक दल व्यक्तिगत तौर पर ऐसे बिल को तुरन्त पारित कर देने का पक्षधर है। जबकि स्त्री की सारी लडाई समानता और वजूद के लिए है।

स्त्री विमर्श के सन्दर्भ मे हिन्दी कथा साहित्य की पडताल करने के लिए उन धरातलो को पहचानने की जरूरत पड जाती है जिन्होंने यथार्थ जीवन के सन्दर्भ मे स्त्री विमर्श को एक खास उठान और गढन दी – इस दृष्टि से तीन प्रमुख धरातल स्पष्ट दिखाई पडते है।

– अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष।

– सन् 1970 ई0 के आस–पास रचा गया साहित्य।

– इसका पूर्ववर्ती साहित्य एवं परवर्ती साहित्य।

सदी के आखिरी डेढ– दो दशको का स्त्री विमर्श अपेक्षाकृत अधिक जटिल, अनेक आयामी, धारदार और विवादास्पद है, फिर भी यहॉ अभी इन्सान अपनी इन्सानियत से इतना नही गिरा कि देह सम्बन्धों मे संस्कार और वर्जनाओ को अगूठा दिखाता चले, किन्तु रूग्ण मानसिकता वाले लोगों की सही जगह अस्पताल है या फिर पागलखाना। दूसरे, तमाम घोषणाओं के बावजूद साहित्य व लेखक का प्रलाप हो सकता है, न खिलवाड का मैदान। लेखक मूलत स्रष्टा है, इसलिए आर्कीटैक्ट की तरह नई उर्ध्वगामी सम्भावनाों की तलाश और निर्माण उसका सतत् अन्वेषण है और अन्तिम लक्ष्य भी।

लिग शब्द स्त्री की पुरूष से भिन्न शारीरिक प्राकृतिक मानसिक, बौद्धिक, नैतिक सरचना को उद्घाटित करते हुए उसकी स्वतत्र और मानवीय अस्मिता को रेखाकित करता है, वही देह शब्द मानवीय पहचान के बुनियादी सवाल को दर किनार कर उसे भोग्या और वस्तु बना डालता है। अब तक उसे 'देवी' होने की वजह से 'पूजा' जाता था या देह बनने की कोशिश मे 'नरक का द्वार' कहकर फटकारा जाता था। परन्तु वह देह के प्रति सचेत लापरवाही दिखाते हुए उन्मुक्त दैहिक सम्बन्धो को अपनी मुक्ति का पर्याय् मान बैठी। क्योकि उन्मुक्त दैहिक सम्बन्ध रजामदी से स्थापित किये गये हो या बलात आरोपित किये गये हो, उनकी शारीरिक–मानसिक–भावनात्मक परिणतियो का शिकार मात्र स्त्री होती रही है।

स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास मे बाधक होने के कारण विवाह सस्था के प्रति पूर्णतया अनास्थावान होते हुए भी विवाह द्वारा मिलने वाली सामाजिक मानसिक आर्थिक सुरक्षा ने उसे हमेशा निर्णायक रूप से दुर्बल बनाया। फलत गालियो और आंसुओ के जरिये अपने आवेश और आक्रोश की 'पनीली' अभिव्यक्ति और फिर पुरूषो तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के समक्ष विकल्पहीन समर्पण। उदाहरण के लिए शशि प्रभाशास्त्री के 'नावे' एव 'सीढियॉ' उपन्यास, मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप' मजुल भगत का 'अनारो' कुसुम असल का 'उसकी पचवटी', ऊषा प्रियवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारे' और 'रूकोगी नही राधिका' मन्नू भण्डारी का 'आप का बन्टी'। इस दौर के कथा साहित्य की स्त्री व्यक्ति के रूप मे अपने आप पहचानने और तत्पश्चात समाज के साथ अपने सम्बन्ध को पुनर्परिभाषित करने मे संकोच करती है। बंधा–बधाया दर्रा यदि सदियो से उसकी गुलामी का प्रतीक रहा है तो उसके विपरीत चलकर स्वतत्रता हासिल की जा सकती है। ऐसे आसान नुस्खे बुद्धिजीवी लेखक और सवेदनशील समाज का चिंतन नहीं है। आज भी भारतीय समाज मे (जिसमे शिक्षित समुदाय भी शामिल है) फेमिनिस्ट होना गाली समझा जाता है और इसका प्रतिकार करते हुए सीता–सावित्री नुमा भारतीय छवि को पोषित करने का दुराग्रह बढा है।

साहित्य मे कृष्णा सोबती को बोल्ड लेखिका के रूप मे चौकी हुई विद्रूप कोशिशे उनके कथा साहित्य का गम्भीर और गहन विश्लेषण करने मे हमेशा बाधक रही हैं। "आज तक स्त्री के साथ समाज ने मानवीय ढग से व्यवहार नही किया और न ही उसे पूर्ण मनुष्य के रूप मे स्वीकृति दी है। इसलिए उसके

साथ अमानवीयपूर्ण व्यवहार को कृष्णा सोवती ने अपनी लेखनी मे दिखाया है तथा इसके लिए पितृक सत्ता को दोषी ठहराया है जो उसके प्रति हिसक दृष्टिकोण रखता आया है।"[24] कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' की प्रमुख नायिका मित्रो निर्लज्जतापूर्वक मुह खोलकर अपनी शारीरिक अतृप्ति का सार्वजनिक बखान करती फिरती है प्रतीक्षारत डिप्टी के साथ 'मिलन' की उत्कठा मे धडकती– लपकती शोख मित्रो उपन्यास के अन्तिम पृष्ठो मे अपने समस्त ताप, ओज और सौन्दर्य सहित उपस्थित हुई है। परिवार के महत्व को समझते हुए पुन सरदारी की बाहो मे समा जाती है जहॉ जीवन कभी खत्म नहीं होता, बचपन जवानी और बुढापे के रूप मे सम्पूर्णता और विविधता मे अनन्तकाल तक बना रहता है। कृष्णा सोबती की नारी स्थूल दृष्टि से देखने पर कामनाओ द्वारा सचालित विशुद्ध देह के स्तर पर जीवन जीती नारी है, लेकिन जरा सी गहराई मे उतरते ही वह स्त्री अस्मिता की ऊचाइयो को छूने के प्रयास में जिन मानवीय मूल्यो के प्रति आस्था व्यक्त करती है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। मित्रो और रत्ती के जरिए वर्जनात्मक स्त्री को उन्होने पहले–पहल हिन्दी कथा साहित्य मे इट्रोड्यूस किया, वह पूरी ऊर्जा और उत्साह के साथ नब्बे के दशक मे कर्मक्षेत्र मे उतरी है। इसके विपरीत यह नारी बनी–बनाई कसौटियो को तोडने या उन पर स्वय कसने के तनाव भरे द्वद्व से मुक्त होकर समाज मे अपनी पुख्ता पहचान बनाने के लिए विशेष रूप से आग्रहशील हुई है। मदा (इदन्नमम), सारग (चाक), और कदम बाई (अल्मा कबूतरी) इसकी उदाहरण है। आखिरी दशक के हिदी कथा साहित्य की स्त्री तमाम कोशिशो के बाद सहचर पुरूष को उतना मानवीय नही बना सकी, लेकिन अपने लिए आत्म सम्मान पूर्वक जीवन जीने का रास्ता तलाश सकी है। "मेहरून्निसा परवेज ने निश्चित रूप से स्त्री लेखन की जरूरत को स्पष्ट किया है कि नारी के मौन को शब्द नारी ही दे सकती है। उसके दु.ख को औरत ही समझ सकती है। वह ही पहचान सकती है। औरत के शरीर पर अंकित घावो के निशानो को। पुरूष के लिए स्त्री अब तक क्या थी? 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'। रमणी, प्रेयसी देह रूमानी ख्याल, यादों की सुन्दरी । लेकिन स्त्री ने ही स्त्री की देह पर अंकित खूनी घावो के निशानों को दिखाया है कि किस प्रकार वह उत्पीडित, उपेक्षित है।"[25]

निजी सुखो की झोक मे क्या व्यक्ति समाज को बदरग भविष्य नही देगा? ये कल्चर स्पर्म बैक, सरो गेटेड मदर, ह्मूमन क्लोनिग की सम्भावनाए,

समलिगी सम्बन्धों के प्रति बढती आसक्ति। इन पर गम्भीरता पूर्वक पहली बार दो टूक राय उठाने का जोखिम उठाया है। मृदुला गर्ग ने 'कठ गुलाब' उपन्यास मे। मृदुला गर्ग मानती है कि पुरूष अनादि काल से प्रकृति का अनवरत दोहन और स्त्री का मानसिक शोषण करता आया है जिसके चलते आज धरती और स्त्री दोनो बजर हो गई है। दुलार और स्नेहिल स्पर्श से दोनो लहलहा सकती है। बशर्ते पुरूष डूबकर उनकी परिचर्या मे जुट जाए। आने वाला समय यदि बीहड और बंजर है तो हुआ करे, उर्वर सम्भावनाओ के बीज तो मुट्ठी मे बद है उपन्यास का आस्थावादी स्वर तमाम वैज्ञानिक पेचीदगियो से मुठभेडकर अंतत· मनुष्यता का जयघोष करता है। इक्कीसवी सदी का स्त्री–विमर्श का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण 'दीवार में एक खिडकी रहती थी' मे देखा जा सकता है। विपिन के समरूप यहाॅ रघुबर है और पत्नी सोनाली के आने से वह कार्य अपने स्तर पर तथा सोनाली के उपयोग के आधार पर करता है और सम्पूर्ण सृष्टि जैसे उसकी अभ्यर्थना में व्यस्त और नत हो जाती है।

पुरूष के सन्दर्भ मे ही क्यों साहित्य और समाज दोनो जगह स्त्री की स्थिति/छवि पर विचार किया जाए ? स्त्री के सन्दर्भ मे समाज और पुरूष की भूमिका, मानवीयता और दायित्व पर विचार क्यो नही पल भर के लिए किया जाता ? कई बार कोण बदल देने से सारे निष्कर्ष सिरे से बदल जाते है।

'मुझे चाद चाहिए' की तरह दैहिक जरूरतो के कीचड मे सरोबार किया जा सकता है इसलिए आज जरूरी हो उठा है कि जो कुछ भी उपलब्ध है – समाज या परम्परा के रूप में, सस्थाओ, इतिहास और संस्कार के रूप में – उसका बेबाक भाव से मूल्यांकन किया जाए, वर्ग–वर्ण आदि लौकिक भेदो से ऊपर उठकर व्यक्ति को समाज तथा समाज को व्यक्ति के सन्दर्भ में पढ–गुनकर उन्हे निरंतर ग्रो करने के लिए भरपूर स्पेस दिया जाए। स्त्री लेखिकाओं के लेखन के केन्द्र मे स्त्री की भयावह समस्याये है। पितृसत्तात्मक मर्यादाओ की तीखी आलोचना है जिसने स्त्री समाज का खुला दमन किया है । कृष्णा सोबती का लेखन हो अथवा महाश्वेता देवी का मन्नू भण्डारी का लेखन हो अथवा गगन गिल का, चित्रा मुद्गल का लेखन हो अथवा मेहरून्निसा परवेज का उसमे स्त्री मुक्ति के लिए जो फीड बैक आ रही है वही स्त्री समाज की चेतना का विकास कर सकेगी। अभी इस दिशा मे एक लम्बी, बीहड यात्रा तय करनी है।

भारतीय समाज मे जो नारी जागरण उन्नीसवी शताब्दी मे प्रारम्भ हुआ था उसे बीसवी शताब्दी मे विकास मिला और शिक्षा प्राप्त कर नारी सामाजिक राजनीतिक जीवन मे आगे बढी। स्वतन्त्रता के आस–पास भारतीय नैतिक मूल्यो मे जो परिवर्तन हुआ उसने नारी को भी आन्दोलित किया। मध्यवर्गीय मानसिकता से बाहर निकल कर उसने आधुनिक युग मे प्रवेश किया और स्वतन्त्रता की माग करने लगी। परन्तु पुरूष केन्द्रित समाज मे यह सरल कार्य नही है। स्त्रियो के प्रति हमारा व्यवहार गैर बराबरी पूर्ण इसलिए भी रहा है, क्योंकि अभी तक सामती मानसिकता नही टूटी है। पारिवारिक सतर पर आज भी उनके साथ सामंती किस्म का क्रूर व्यवहार होता है। इतना ही नही जो लोग मचो पर नारी मुक्त का प्रयास करते है, वही लोग अपने घरो मे स्त्री के साथ बर्बरता पूर्ण, पक्षपात पूर्ण सामती व्यवहार करते है। भारतीय समाज में कदम–कदम पर ऐसे तीखे विरोधाभास मौजूद है जिनके कारण स्त्रियों के प्रति हमारा व्यवहार पक्षपातपूर्ण, हिंसक एव उत्पीडन कारी रहा है। पितृसत्तात्मक समाज ने उनके लिए ऐसे मूल्य, नैतिक सिद्धान्त सुनियोजित ढग से गढे है जिनमें आजीवन उनकी बेटियां, बधुए, ढलती, गलती रहती है। पुरूष उनपर अपना वर्चस्व, प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है लेकिन औरते न तो प्रभुत्व चाहती है आर न ही वर्चस्व, अपितु वे तो अपने स्वत्वाधिकारो, अस्मिता,गरिमा को चाहती है ताकि उनके साथ जो पक्षपातपूर्ण, अछूतो, उत्पीडितो जैसा हिसक असभ्य व्यवहार होता है वह न हो। इस द्वन्द्व मे हमारी पाम्परित पारम्परिक इकाइया टूटने लगी है और इसका सीधा प्रभाव भारतीय नारी में देखा जा सकता है। नारी ने जो नयी शिक्षा प्राप्त की उससे उसमे नयी जागरूकता आयी और उसकी वैयक्तिक आकांक्षाए भी सजग हुईं। इससे मानव सम्बन्धो मे एक नया तनाव उत्पन्न हुआ जिसका चित्रण मोहन राकेश ने अपनी रचनाओ मे किया है। "स्त्री–पुरूष के निजी सम्बन्धो को उनके बीच विकसित नये पीडा–बोध, अलगाव और विघटन को जिस गहराई से राकेश ने समझा और अभिव्यक्ति किया है वैसे उनके समकालीनो मे कोई नही कर सका।"[26]

मानवीय सम्बन्धो मे जो परिवर्तन होता है उसका प्रभाव समाज की सभी इकाइयो पर पडता है और नारी पुरूष सम्बन्ध भी उससे अछूते नही रह सकते, क्योकि पुरानी मर्यादाये टूट रही है औरएक नयी व्यवस्था जन्म ले रही है इस यथार्थ की पहचान उनके कथा साहित्य मे देखी जा सकती है। दाम्पत्य

जीवन के परम्परित रूप मे परिवर्तन हुए है, और स्त्री–पुरूष का जीवन अब सरल नही रह गया है। संस्था के रूप मे 'विवाह' आज उसी तरह स्वीकृत नही है जैसे पहले। आज एक अजीब तरह की कुठा–घुटन–ऊब पति–पत्नी सम्बन्धो मे घर कर गये है। लहरो के राजहस की भूमिका मे मोहन राकेश लिखते है – "स्त्री–पुरूष का आमने सामने होना और एक–दूसरे तक अपनी बात न पहुँचा पाना, क्या यही उनकी वास्तविकता नही है।"[27] कहानियो मे राकेश जी आदर्शवादी दृष्टि नही अपनाते, वे यथार्थ को लेकर आगे बढते हैं। आधुनिक मध्यवर्गीय नारी की अपनी स्थितियॉ हैं और अपने स्वप्न। पुरूष भी स्वय को अहं मुक्त नहीं कर पाता और इसलिए अहं की टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कई बार पति–पत्नी के बीच एक ठडा मौन व्याप जाता है, जैसे सब कुछ ठहरा हुआ है। अपनी नारी दृष्टि मे मोहन राकेश जिस यथार्थ से परिचालित है, उसे नारी–पुरूष सम्बन्धों मे देखा जा सकता है। कई एक बार सजीव सी उदासी दिखाई देती है जिसे हम उनकी जीवन रेखाओ मे भी पाते है।

आजादी के बाद भारतीय नारी के अधिकारों में मांग बढी है और नारी का कार्यक्षेत्र भी बढा है। शहरी जीवन मे एक नया वर्ग पनपा है – काम काजी महिला वर्ग जिसकी अपनी विवशताए है, काम करने की। पर इसी के साथ उसके अपने तनाव और दुख दर्द भी हैं। इनका चित्रण करते हुए राकेश जी उनके प्रति एक सहानुभूति का भाव रखते है।

आज आधुनिकता का समग्र मानदण्ड अस्तित्ववाद है और कुंठा, अकेलापन, अजनबीपन, परायापन, खालीपन, फालतूपन, आतंक, भय, मृत्यु, संत्रास आदि के इर्द–गिर्द ही अस्तित्ववाद की धुरी घूमती रहती है। इन विकारो से त्रस्त मानव की त्रासदी अति परिचय से अजनबीपन की मर्मस्पर्श पीडा है। भीड में रहते हुए भी अपरिचय और नितान्त अकेलेपन की विडम्बना ने सारे पारिवारिक सम्बन्धो को विघटित कर दिया है। बढती हुई अपूर्व जिजीविषा प्रगतिशीलन, व्यवस्था के प्रति विद्रोह व नौकरी पेशा नारी की बदलती संवेदना, अपनी अस्मिता की पहचान मे खुद से कटे हुए पुरूष, वैज्ञानिक उन्नति मे यान्त्रिक संतानोत्पत्ति ने पति पत्नी पुत्र–पुत्री माता–पिता, भाई–बहन के सम्बन्धो को प्रश्नो में आबद्ध कर दिया है। असगत स्थितियो मे नर–नारी के शरीर को विवरण देकर उभारना भी आधुनिकता की देन है।

महायुद्धो के परिणामस्वरूप यन्त्रीकरण हुआ। इस यन्त्र सभ्यता के दबाव ने सवेदनशील व्यक्ति को उद्वेलित किया और शहरीकरण नेमानवीय सम्बन्धो में तनाव उत्पन्न किया। स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कथा साहित्य मे यही स्थिति अभिव्यक्ति पा रही है और इसे ही मूल्यो का सकट कहा जा सकता है। महानगरो की उमडती भीड जुलूस, आपाधापी, अजनबीपन की एक यान्त्रिक पीडा परिवारो को बेचैन करने लगी, पर जैसे–जैसे तनाव और दबाव बढते गये वह बेचैनी एक बेचारगी मे बदलती चली गयी। बहुत से शहरी, आपाधापी और यत्र चक्र से स्तब्ध होकर रह गये, कुछ अतर मथन मे लग गये। अततः जब शहरी व्यक्ति को अनुभव होता है कि सबकुछ विश्रृंखलित और विपर्यस्त है तथा सार्थकता के प्रयत्न निरर्थकता में प्राप्य है तब वह पाता है कि पुराने मूल्य, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, भातृत्वभावना श्रद्धा सब मिटने की प्रक्रिया मे है। मूल्यगत विघटन स्थितियो की भयावहता और उसकी अतर्चेतना मे धस बैठा है, अकेलापन, अजनबीपन और त्रास साथ ही उसे अहसास है मानव सम्बन्धो की जटिलता और विडम्बना का।

बहुत से व्यक्तियो की एक वस्तु के प्रति एक सी धारणा उनके पारस्परिक सगठन का प्रतीक है। दो विरोधी धारणाओ का आविर्भाव संघर्ष को जन्म देता है, जिससे विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है क्योकि परस्पर विरोधी धारणाओ से समाज का मतैक्य विघटित होता रहता है। वर्तमान समाज मे मतैक्य का अभाव है। यही कारण है कि वह प्रगतिशील होते हुए भी विघटित होता रहा है। आधुनिक युग में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राजनीति आदि के प्रति नवीन धारणायें जन्म ले रहीं हैं अत· मूल्य परिवर्तन हो रहे है।

वर्तमान समय मे स्त्री का कार्यक्षेत्र बदल गया है। अब वह पुरूष की भांति कारखानों में काम करने लगी है, अर्थोपार्जन मे योग दे रही है। इस परिवर्तन के अनुसार उसके स्तर मे भी परिवर्तन होना चाहिए था, लेकिन स्तर का निर्धारण मूल्यों के आधार पर होता है और मूल्य इतने शीघ्र नही बदलते। यही कारण है कि इस दिशा मे अब नारी को पर्याप्त सम्मान नही मिला है उसे सदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। युग युगान्तर से मूल्यान्वेषण की जिज्ञासा मानव मे बदलती रही है। सदियो से दार्शनिक व साधक यह जानने को उत्सुक रहे है कि वह अतिम कसौटी कौन सी है जिस पर घिसकर हम किसी भी वस्तु की धातु को पहचान सकते है।

स्पष्टत. मोहन राकेश का कथा साहित्य स्त्री पुरूष सम्ब्न्धो से प्रारम्भ होता है और एक अर्थहीनता की अनुभूति के साथ समाप्त हो जाता है। उनका वह केवल एक अनुभव है इसका सबसे अधिक प्रभाव प्रेम पर पडा है, प्रेम को जो लोग क्षमता कहते है वे यह भी नही याद रखते कि यह क्षमता एक आदर्श भी है मूल्य भी है। आज तो वह केवल स्थिर भर है, जो क्षमता का नही विवशता का अनुभव है । आज हम न तो एक दूसरे के बिना रह सकते है और न एक दूसरे को बर्दास्त कर सकते हैं। हम त्याग करते है, नफरत करते है, भागते है या ऊब कर समझौता कर लेते हैं, इसी सिलसिले में जिदगी बीती जाती है। प्रेम के सम्बन्ध मे यही परिवर्तित मानसिकता मोहन राकेश के सम्पूर्ण कथा साहित्य का सार है।

स्वतन्त्रता के बाद हमारे चारो ओर जो परिवेश फैला है उसमे निरतर एक बदलाव चल रहा है। समकालीन रचनाकार मानव मूल्य, नैतिकता, अनैतिकता, वैज्ञानिकता और टैकनोलाजिक प्रगति के बीच भूख, नवीन परिस्थिति मे यौन सम्बन्ध आदि विविध प्रश्नों के समाधान ढूंढना चाहता है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में विकसित व्यक्तिगत, स्वार्थ, अवसर वादिता, अनिश्चितता, ग्लानि, अलसता, असमजस और सामाजिक बोध से घिरकर साहित्य की मन शक्तिया उठी है। उसकी चेतना भूमि मे जो भी अकुर पडता है वह विकृति है खण्डित है उसकी संवेदना से रिक्त होकर जो भी चित्र उभर रहे हैं वे भी भयावह, दंशक बाधाओ को कंपा देने वाला, भूख, भोग अनैतिकता और टूटते बिखरते सायो का ही प्रतिबिम्ब है कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास सभी मे यह परिवेश हमे देखने को मिलता है। इनमें आधुनिक जीवन की तमाम विषमताए, विसगतियॉ अभिव्यक्ति हुई है जिसमें समूचे जीवन को रोये रेशे के साथ देखा जाता है। आज के रचनाकारों ने जो देखा है, भोगा है सहा है वही सब प्रामाणिक अनुभूति के आइने में छिपता—छिपाता दिखाई दे रहा है। आज के कथा साहित्य का चित्रण व्यक्ति के जीवन के उन्ही त्रासद प्रसगो एव घटनाओ से प्रेरित है जो आज के नये मूल्यो की एक महागाथा के समान है।

मोहन राकेश इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि पुराने जमाने के दम्पत्तियों मे स्त्री के प्रति सोच आज बदल रही है क्योंकि नये युग मे औद्योगीरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया तेजी से फैल रही है, जिससे कस्बाती जीवन शुरू हो गया है। लडकियॉ भी पढाई कर रही है। नये युग के चकाचौध

तडक–भडक ने आज के समूचे जीवन की जीवन प्रणाली को बदल दिया है एक तरफ यह नगरीय जीवन है दूसरी तरफ अतीत है, जिसकी स्मृतियॉ उसके मनोराज्य को कौधती हुई उसे इन्सानी रिश्ते से जोडती है। इस पीडामय द्वन्द्व में मानव भटक गया है। वर्तमान के दम्पत्ति कई समस्याओ मे उलझे हुए है। उनकी कल्पनाए यथार्थ के ताप मे जलकर झुलस गयी है, विवाह हुआ पर नौकरी नही, नौकरी मिली तो संतोषप्रद नही और जीवन की इच्छा पूर्ण कर सके इतनी आय नही है जीवन में एक निराशा फ्रस्ट्रेशन जम चुका है। स्वच्छ मकान की जगह अधेरी कोठरी, बदबूदार वातावरण जीवन की आशाओ के सहारे सोचते विचारते ही जीवन का आगे चलते रहना? सौदर्यवती स्त्री के बदले घर की स्त्री ऐसी हो गई है जिसके मुख पर तेज नही मात्र झुर्रियों की काति है। दफ्तर से लौटते समय जीवन का आनद नही ऐसा महसूस होता है जैसे बोझ ढोते चल रहे हो। पत्नी की खीज से पुरूष भीतर ही भीतर घुलता जा रहा है। उसका मन द्विधा मे है वह अतीत को बेहतर समझता है वह अतीत में जाना चाहता है पर कुछ नही कर सकता। आखिर विवश भाव से सभी परिस्थितियो को आज के दम्पतित्व झेल रहे है। किसी के जीवन मे आनद नही उत्साह नही बस है तो टूटन, विवशता, ऊब तथा निराशा, जिससे वह मन ही मन डूबता उतरता रहता है।

दाम्पत्य सम्बन्धी विचारधारा मे मोहन राकेश पारिवारिक विघटन मे स्त्री–पुरूष दोनो के पढे लिखे को उत्तरादायी ठहराते है। क्योकि दोनो का समान शिक्षित होना नौकरी करना और कुछ व्यक्तिगत कारणो से इच्छाओ के विपरीत जीते चले जाने के साथ–साथ तनाव में जीना एक दूसरे को अपने अनुपयुक्त समझकर नये ढंग से जीने का प्रयत्न आदि प्रमुख तत्व है। कुछ ऐसी स्थितयॉ हैं जिनमें कुछ घर टूटते है तो कुछ नये बनते दिखाई देते है। बच्चे पिता से छूटकर यातनामयी हो जाते है क्योंकि दोनो के साथ सामंजस्य बैठाने में वह टूट जाता है। सम्बन्धों के बीच आई यह दूरी नये सेतु का निर्माण नही कर पाती है। फलत दम्पत्ति अलग–अलग स्थितियों में जीते हुए दुर्निवार पीडा व टूटन को झेलते हुए जीवन के अतिम रूप मे समा जाते है। स्त्री पुरूष के सम्बन्धो की यह स्थिति और परिणति पूरी कचोट भरी वेदना के साथ मोहन राकेश के सम्पूर्ण कथा साहित्य (गद्य लेखन) के केन्द्र मे है। मानव जीवन की विसगतियों से उपजा यह पीडा बोध न केवल मोहन राकेश के कथा साहित्य का विषय है वरन समूची पीढी द्वारा मिश्रित कथा यात्रा का अनिवार्य सोपान है।

मोहन राकेश की दृष्टि स्त्री–पुरूष सम्बन्धों पर है और उनके कथा साहित्य में इन्ही बदलते रिश्तो पर विवेचन करना ही प्रस्तुत शोध का विषय है।

सन्दर्भ

1 सोसाइटी, इट्स ऑरगनाअजेशन एण्ड ऑपरेशन – एण्डरसन पार्कर, पृ0 160

2 आक्सफोर्ड हिन्दी इंग्लिस डिक्सनरी आर0 एस0 एम0 सी0 ग्रीगर, पृ0 609

3. Famıly is 'a group of persons unıted by the tıes of marrıage, blood or adoptıon constıtutıng a single household, ınteractıng and communıcatıng wıth each other ın respectıve socıal role, of husband and wıfe, mother and father son and daughter, brother and sıster, an ! creating and maintaınıng a common culture-- Burgess and Lock, Famıly P.8.

4. The family ıs a group defined by sex-relatıonship sufficiently precıse and endurıng to provıde for the procreatıon and upbrıngıng of chıldren Maclver and page, Socıety, P 138

5. Famıly ıs a more or less a durable assocıatıon of husband and wife with or wıthout chıldren Ogburn and Nımkoff, A Handbook of Socıology, P 459

6 If there is no offspring born, ıt would be improper to speak of a famıly, for there ıs no such thıng as a Chıldless famıly a more correct expressıon in such a case would be Childless marriage M. F. Nımkoff, The Famıly , P.8 Quoted by P. H Prabhu, lbid

7. Family is a group of persons relatıons to one another are based on consanguinity and who are therefore kın to one another. Kingsley Davıs, Human Socıety.

8. प्रश्नचिन्ह के जगल मे परिवार , आधुनिक परिवेश और नवलेखन – शिवप्रसाद सिह, पृ0 36

9 काम सम्बन्धो का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी, – डॉ0 वीरेन्द्र सक्सेना, पृ0 276

10 Famıly dısorganızatıon ıncludes any weakness, maladjustment, or dıssolutıon of the tıes bındıng members of thıs group together – Ellıott and Merrıll, Ibıd , P 345

11 It ıs the dısruptıon of the famıly relatıonshıp, however, ıs but the clımax of long serıes of conflıcts whıch have threatened the unıty of the famıly These confects

may be of any kind This sequence of conflict may appropriately be called family disorganization. – Mowrer

12 Family disorganization means the breakdown of consensus and loyalty often the disruption of previous existing relationship or the loss of family consciousness and the development of detachment – Martin Neumeyer

13 रूरल सोसियोलॉजी इन इण्डिया – डॉ० ए० आर० देसाई, पृ० 40

14. A nuclear family is a set of people who play biological roles and institutionalized social roles to one- another and, in so doing develop beliefs and values which inform set of expectations (roles) which are peculiar to them. C C harris, The Family, (1969) P 70.

15 द ओरिजन ऑफ द फैमिली–फ्रीडरिख एंगेल्स– 1943, पृ० 79

16 Although marriage is a legal status it is a very personal relationship, in which the wishes, desires and attitudes of the spouses have become more important than the institutional structure. The nature of tensions and the way they contribute to the disorganization of the individual family have become correspondingly important. Burgess and Locks, The Family from Institution to Companionship, P. 456 Chap, 1

17 Social disorganisation – Eltot Merril, P 345

18 The Family – Burgess and Locks, P 590

19 नारीवादी विमर्श – राकेश कुमार, पृ० 51

20 क्योकि समय एक शब्द है– डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, पृ० 506

21 आलोचना अक अप्रैल–जून सन् 2002 ई0, पृ0 102

22 गोदान – प्रेमचन्द्र, 1993, पृ0 127

23 श्रृखला की कडियां, अपनी बात भूमिका से – महादेवी वर्मा

24 'कृष्णा सोबती का स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्ष्य' – नारीवादी विमर्श – राकेश कुमार, पृ0 207

25 'हिन्दी मे स्त्री लेखन दशा और दिशा' – नारीवादी विमर्श – राकेश कुमार, पृ0 46

26 कहानीकार – मोहन राकेश – डॉ0 सुषमा अग्रवाल, पृ0 15

27 लहरो के राजहस – भूमिका अश

द्वितीय अध्याय

हिन्दी कहानियों में पारिवारिक विघटन का अंकन

परिन्दे, दोपहर का भोजन, वापसी, शेष होते हुए,
सम्बन्ध, मछलियाँ, नन्हों, यही सच है,
मित्रो मरजानी, टूटना, सेलर, पिता,
एक नाव के यात्री, गुलकी बन्नो,
खोई हुई दिशाएं

द्वितीय अध्याय

हिन्दी कहानियों में पारिवारिक विघटन का अंकन

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् परिवार का विघटन, सामाजिक सम्बन्धो का छिन्न भिन्न होना, यान्त्रिक विसगतिया, राजनीतिक भ्रष्टाचार और मनुष्य के बीच फैले हुए व्यापक असतोष ने नई कविता को जन्म दिया। नई कविता के माध्यम से आधुनिकता का दौर हिन्दी कहानी मे आया। आज की कहानी मे विस्तृत जीवन–परिवेश लिया है और उसके विविध पक्षो के उभरे दबे कोनो को उजागर करने का प्रयत्न किया है। यह आज की कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आधुनिकतावादी दृष्टिकोण से ही कहानी के शाश्वत् मूल्यो मे परिवर्तन हुआ जिससे पुरानी कहानी का आन्तरिक ढॉचा चरमरा कर टूट गया। आधुनिकता के दौर मे लिखी गई कहानियो मे घटनाओ का वाग्जाल, भाषा, परिवेश, पात्र, बिम्ब और सकेतो का तेवर बदला। आज की कहानी 'मै' से निकलकर 'वह' की कहानी हो गई है। आधुनिक बोध की कहानी जीवन बोध से जुडी है। आधुनिकता की प्रक्रिया मे लिखी गई कहानियो मे सहानुभूति की सच्चाई, भोगे हुए क्षण को लिखने की बाध्यता, शाश्वत् रूप से नवीनता की प्रक्रिया और सम्बन्धों की तलाश की सम्वेदना देखने को मिलती है। आज का कहानीकार बदलते जीवन मूल्यो मे जिन्दा है इसलिए भौतिक दृष्टि से सुखी रहते हुए मानसिक और आत्मिक दृष्टि से अधिक तुष्ट रहना चाहता है। इसलिए आज के कहानीकार ने जीवन की परिस्थितियों से मोर्चा लेने के लिए पिटे–पिटाये लीक, टेकनीक और भाषा के तेवर को बदला है, साथ ही लेखक की अभिव्यक्ति का ढग स्वय का होता है जिससे कहानीकार की आत्म–स्फीति कहानी मे मिलती है।

डॉ0 नामवर सिह के अनुसार–" आज का जीवन ही कुछ ऐसा विरोधाभास पूर्ण हो गया है कि व्यक्ति स्वय यातनाओ और पीडाओ के लिए उत्तरदायी है। वह किन्ही भावनाओ को झेलने और स्वीकार करने के लिए मजबूर है। इसलिए आज के सजग कहानीकारो ने 'दर्द' से छटपटाते हुए आज के ऐसे व्यक्ति और समाज की दुखती रग पर हाथ रखने की कोशिश की है जिससे यह भी पता नही है कि दर्द कहॉ है और क्या है।"[1] ? यह सच है कि आधुनिकता के दौर मे लिखी गई कहानियो की प्रक्रिया जटिल है जिसे भाषा मे बॉधना सम्भव नही है क्योकि आधुनिक भावबोध की कहानी पुरानी कहानियो के शाश्वत आग्रह को अस्वीकार कर स्वानुभूति की सच्चाई को भिन्न–भिन्न ढग से अभिव्यक्ति करती हुई निरन्तर प्रवाहमान है। सामान्यत जीवन मे

अनुभव का धरातल समान नही होता है। इसलिए व्यक्ति की अभिव्यक्ति मे भिन्नता पायी जाती है। अनुभव और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया अनवरत् गति से चलने वाली है। इसलिए आज की कहानी अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति की विविधता और नित नवीनता के कारण परिवर्तित होने वाली प्रक्रिया है।

कहानी मे आधुनिकता का प्रारम्भ कुछ लोग प्रेमचद की कहानी 'कफन' से मानते हैं। क्योकि 'कफन' कहानी ने परम्परावादी पारिवारिक सम्बन्धो के ढॉचे मे कुछ हद तक परम्पराओ को तोडा है। इसमे उस समय के यथार्थ परिवेश का चित्रण हुआ है। कुछ हद तक पात्रों की अन्वेषित दृष्टिकी झलक मिलती है, पर इस कहानी मे आधुनिकता की दृष्टिनही मिलती है। क्योंकि 'कफन' कहानी के पात्र निष्क्रिय रूप से गहनतम मानवीय सकट को झेलने में सक्षम हैं, पर कहीं भी उनके मन मे अस्तित्व सकट के प्रति सवाल उत्पन्न नही हुआ, न तो कही क्रान्ति की लहर उठती है। बाप–बेटे सम्बन्धो के अजनबीपन एव सशय की स्थिति मे टकराते हैं यही आधुनिकता की झलक मिलती है। सन् 1950 से आधुनिकतावादी दृष्टिकी कहानियो का प्रारम्भ होता है। स्वतन्त्रता के बाद नवीन स्थितियो का उन्मेष हुआ। जीवन के हर क्षेत्र मे उसका व्यापक प्रभाव दिखाई दिया। साहित्य मे भी नये भाव–बोध का जन्म हुआ। क्योकि आजादी के बाद मनुष्य के अस्तित्व सम्बन्धी अनेक प्रकार के सकट उपस्थित हुए। औद्योगिक काल की तेज रफ्तार, यन्त्रीकरण की स्थिति और युद्ध के परिणाम के कारण मनुष्य के मन मे संघर्ष करने की प्रवृत्ति जन्म ले चुकी थी। जिससे व्यक्ति के आन्तरिक और वाह्य सघर्ष का प्रतिमान बदल चुका था। एक तरफ पुराने कहानीकार समस्या–प्रधान कहानी लिख रहे थे और समस्या को घटनाओं से ओत–प्रोतकर समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त करते थे। दूसरी तरफ मानसिक सघर्ष की कहानियॉ लिखी जा रही थीं। परिणाम यह हुआ कि पुराने खेवे का रचना स्रोत धीरे–धीरे क्षीण होने लगा, और आधुनिकतावादी दृष्टिकोण को लेकर लिखने वाले कहानीकारो के रचना स्रोत मे एक तीव्र बहाव आया। कहानी मे पारिवारिक विघटन के बीज बिन्दु आधुनिकता की देन है इसलिए यह आधुनिकता का दौर सन् 1950 से लेकर अब तक है। बदलते पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से स्वातत्रयोत्तर हिन्दी कहानी के स्वरूप को डॉ0 रमेशचन्द्र लबानिया ने इस प्रकार रेखाकित किया है – "टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्ध, बनते हुए नवीन सम्बन्ध, नारी का आर्थिक सघर्ष, नारी का प्राचीन भावभूमि से निकलकर नवीन भावभूमि मे प्रवेश, बदलता हुआ परिवेश, मानव के अस्तित्व का प्रश्न, प्रेम और यौन सम्बन्धो की समस्याएँ एव मनुष्य का टूटता हुआ व्यक्तित्व आदि।"[2] देश स्वतत्र

हुआ और भारतीयो ने विज्ञान के साथ कदम मिलाये जिससे उसको आइडेटिटी एव रिकग्नेशन मिलने लगा। साथ ही इस देश मे एक नई सभ्यता की बयार बहने लगी। जिससे व्यक्ति अपनी सडती परम्परा के शव को अपने ही हाथो कफन देने का प्रयत्न करने लगा। गॉव कस्बो की ओर, कस्बे नगराभिमुख होने लगे क्योकि वह चमक दमक, आकर्षण, रोजगार, मनोरजन तथा सुख–सुविधाओ के केन्द्र बने हुए थे। इन नगरो मे एक अलग प्रकार का बोध पनपने लगा जो प्राचीन भारतीय सस्कृति के लिए एक नई वस्तु थी। कस्बे मे वही लोग बचे जो अपनी वृत्ति के साथ समायोजन करने मे सक्षम थे, या जो नयेपन मे मिसफिट हो गये थे, ऐसे लोग नगरो मे जाकर भी अपनी मनोवृत्ति को सॅजोये रहे। गॉव अभी वीरान नही हुए, क्योकि वह पूरे हिन्दुस्तान के अस्सी प्रतिशत थे। वहॉ भी प्राय रिटायर्ड, रिजेक्टेड, किसी अन्य काम और स्थान के अनुपयुक्त लोग रहने लगे या अपनी ग्रामीण स्वछन्द प्राकृतिक प्रवृत्ति से चिपके रहे और कुछ लोगो को ये तीनों ही पसन्द नही आये।

यह परिवर्तन सामाजिक स्तर के साथ–साथ व्यक्तिगत स्तर पर भी जमा हुआ है। मानव के सम्बन्धों मे तथा विचारधारा मे महान परिवर्तन हुए हैं। यान्त्रिकी के इस निविड वन मे सत वेगमय जीवन की अवकाश हीनता, निरर्थकता, अजनबीपन, सत्रास, घुटन, मृत्युबोध और अनेक कुँठाएँ तथा विकृतियॉ जन्म ले रही हैं। कहानी का कथा तत्व सिमट गया है और उसका आकार बिन्दु मात्र हो उठा है। उसकी प्रभाव–तीव्रता भी फलत बिन्दु पर केन्द्रित है। उस बिन्दु मे अपार जगत और समस्त काल–प्रवाह समाहित है। जीवन का सक्रमण इतना अबाध और अपार हो गया है कि कथाकार के मन मे समा नहीं पा रहा है। मथनो से भरा, जटिल ग्रन्थियो से उलझा अपना मानस सब के सुख–दुख को वह कहानियो मे अकित कर देना चाहता है। जीवन के व्यस्त क्षण, सत्रस्त क्षण, आवेगो को खोलते क्षण, परिवेश और परिस्थितिगत सस्थान् के बीच मानवीय भाव और सवेदना व्यापक किन्तु झीने होते जा रहे हैं। परिणामत भाव की सघनता विरल और क्षीण होती जा रही है। वास्तव मे आज का प्रत्येक क्षण अनगिनत साधारण तीव्रता वाले विविध अनुभव चक्रो का है न कि एक या दो प्रबल प्रचण्ड अनुभव का।

स्वतन्त्रता के बाद कहानी मे बदलते पारिवारिक विघटन के सन्दर्भों को निम्न बिन्दुओ से पहचाना जा सकता है–

1 अकेलापन के कारण पारिवारिक विघटन।

2 परम्परागत मान्यताओ और नैतिक बोध के पतन के कारण पारिवारिक विघटन।

3 आधुनिक नारी के परिवर्तित जीवन के कारण पारिवारिक विघटन।

4 बदलते स्त्री–पुरुष सम्बन्धो के कारण पारिवारिक विघटन।

5 आर्थिक दबाव और मूल्यो के पतन के कारण पारिवारिक विघटन।

6 अस्तित्व रक्षा और उत्कट जिजीविषा के कारण पारिवारिक विघटन।

7 पीढी सघर्ष के कारण पारिवारिक विघटन।

अकेलापन के कारण पारिवारिक विघटन

परिवार मे आधुनिकता की दृष्टि तथा नवीनता का बोध एक नया सस्कार उत्पन्न कर रहा है। आधुनिक व्यक्ति परम्परागत मूल्यो से तो मुक्त हो रहा है, पर नवीनता को पूर्ण रूप से अपना नही पा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके सामने जिन्दगी का कोई मूल्य ही नहीं है। हर मूल्य उसके व्यक्तित्व को दबाना चाहता है, अत मूल्यहीनता की स्थिति कही उसकी नियति है, जैसे जिन्दगी उसके हाथो से फिसलती जा रही है। जिन्दगी का सत्रास न मालूम उसे कहॉ ले जायेगा। ऐसी स्थिति मे आज का व्यक्ति अतीत व भविष्य दोनो से कटा हुआ है। वह अजीब रिक्तता भोगता हुआ अकेलेपन के अभिशाप को ढो रहा है।

नारी ही नहीं, पुरुष को भी अकेलेपन और सत्रास तथा तनाव से पीडित होना पडा है। विज्ञान की प्रगति ने हमारी सवेदना को ऐसा बना दिया है और परिणाम स्वरूप व्यक्ति की चिन्तना के आयाम सीमित होकर रह गये हैं वह आर्थिक वैयक्तिक हो गया है। उसकी यह वैयक्तिक प्रकृति उसे अकेलेपन के क्षेत्र मे दूर तक खीच कर लेगयी है और वहॉ उसने पाया है कि वह अकेला छूट गया है। इस अकेलेपन को लेकर वह शेष समाज से अपने को कटा हुआ महसूस करता है। उसके इस अकेलेपन के विक्षोभ मे मध्यमवर्गीय हिन्दी कहानीकार भी सहयोगी है और उसने अपनी अनेक रचनाओ मे पुरुष के इस अकेलेपन को और टूटन को अभिव्यक्ति दी है। आधुनिक व्यक्ति ऐसी स्थिति से गुजर रहा है जहॉ वह प्रत्येक क्षण अकेलापन अनुभव करता है। वह बोलना चाहता है पर वह ऐसा है कि उसके बोलने से उसका जायका खराब हो जाता है। उसकी जिन्दगी केवल समय काटने के लिए है। न वह मर सकता

है, न ही जी सकता है, परन्तु वह कुछ देर मे श्रोता से भी ऊब महसूस करने लगता है। उसका मन होता है कि वह सम्बन्धियो को गोली मार दे। वह गोली मारते समय उनके डरे हुए चेहरे देखकर हॅसना चाहता है निर्मल वर्मा के परिंदे एव अमरकान्त की कहानी 'दोपहर के भोजन' मे इस अकेलेपन के बोध को देखा जा सकता है।

डॉ0 नरेन्द्र मोहन के शब्दो मे–"मानव स्थितियो को उजागर करने वाला बोध मूल रूप मे महानगरीय है। महानगर के जीवन के उसके हुए परिवेश मे यत्रता, भय, अकेलेपन और व्यर्थता का अहसास जितना तीव्र और सघन है, उतना गॉव के परिवेश मे नहीं। हॉलाकि गॉव और शहर की सक्रान्ति चेतना का गहरा सवेदानात्मक बोध इधर की कहानियो में हुआ है। महानगरीय तनाव और यातना और व्यक्ति का एहसास एकायामी न होकर बहुविध और जटिल होता है।"[3]

परिन्दे

'परिन्दे' निर्मल वर्मा द्वारा लिखित एक सशक्त कहानी है। लतिका एक छोटे से हिल स्टेशन पर स्थित एक गर्ल्स स्कूल मे अध्यापिका और हॉस्टल की वार्डन है। सर्दियो मे जब स्कूल की लम्बी छुट्टी होती है और हॉस्टल की सारी लडकियॉ अपने घर चली जाती है, परन्तु लतिका स्कूल के छात्रावास मे ही बनी रहती है, छुट्टियॉ बिताने कहीं भी नही जाती। हर साल यही होता है। घर जाने को तैयार लडकियॉ जब उससे पूछती हैं कि क्या वह अपने घर नही जा रही, तो लतिका कहती है–उसे हिमपात पसन्द है, इसलिए वह वही रहेगी। यह लतिका की विवशता है। वह अपने सारे सम्बन्धो एव सम्पर्कों से कटी हुई है। इसलिए वह यह नही सोच पाती कि कहॉ जाए और जाकर क्या करे? वह अपने उस अकेलेपन का अभिशाप भोगने के लिए विवश है और उसकी इस विवशता की पृष्ठभूमि मे उसके जीवन का एक प्रेम–प्रसग मूल कारण है। कुछ वर्ष पूर्व, एक पिकनिक के सिलसिले मे डाक्टर मुखर्जी ने उसका परिचय मेजर गिरीश नेगी से कराया था। कालान्तर मे इस परिचय ने उन दोनो के बीच अन्तरग घनिष्ठता का रूप धारण कर लिया था। और लतिका को ऐसा लगने लगा कि अब वह अपने सारे अभाव को भर लेगी, परन्तु क्रूर नियति उन दोनो के बीच व्यवधान बनकर आ खडी हुई। एक बार मेजर नेगी जो कही गये तो फिर लौटकर ही नही आये। इस दुर्घटना ने लतिका को ऐसा आघात पहुॅचाया कि वह उससे उबर नही पाती है। वह उसी स्मृति को सहलाती एक कटी हुई जिन्दगी जी रही है। इसी के समानान्तर कथा ह्यूबर्द्ध, डाक्टर मुखर्जी अपने–अपने रागात्मक–सम्बन्धो की पीडा और यत्रणा को मन के भीतर सॅजोए अपने–अपने ढग से लक्ष्यहीन दिशा की ओर बढते चले जा रहे हैं।

चैन किसी को भी नही है। अपने अतीत की कटु–मधुर स्मृतियो से कोई भी छुटकारा नही पा रहा है। सबका जीवन उन परिंदो के समान है जो प्रत्येक शीत ऋतु मे अनजाने मैदानो की ओर उडते जाते हैं, बीच मे किसी पहाडी स्थान पर क्षण भर विश्राम कर फिर आगे बढ जाते हैं। प्रतिवर्ष यही होता है। इस कहानी के पात्र भी इन्ही परिन्दो के समान है, जिनकी जीवन–यात्रा उसी एक सीमित दायरे मे चक्कर काटती चलती रहती है–लक्ष्यहीन, अपने–अपने दर्द और उससे मुक्ति की आकाक्षा को मन मे सॅजोए।

निर्मल वर्मा की परिंदे कहानी को डॉ0 नामवर सिह नयी कहानी की पहली कृति मानते हैं क्योकि इसमे वे समय की सगीतमय गूज महसूस करते हैं–" परिंदे कहानी मे पियानो के सगीत के सुर रुई के छुई–मुई रेशो से अब तक मस्तिष्क की थकी मादी नसो पर फडफडा रहे हैं। सगीत के सुर मानो एक ऊॅची पहाडी पर चढकर हॉफती हुई सासो को आकाश की अबाध शून्यता मे विखेरते हुए नीचे उतर रहे हैं।"[4] इस तथ्य को डॉ0 नामवर सिह ने एक साक्षात्कार मे (सुरेन्द्र पाण्डेय से) 'परिंदे' के बारे मे यह प्रतिक्रिया व्यक्त की–"एक स्थिति मे कैद कुछ लोग परिन्दे की तरह से हैं और वह कहानी एक छटपटाहट, एक व्यापक छटपटाहट व्यक्त करती है और वह केवल प्रेम की छटपटाहट नही है, एक स्थिति से निकलने की बहुत व्यापक रूप से हो सकती है।"[5] प्रसिद्ध रूसी कथाकार चेखव ने रूसी कथासाहित्य मे, नयी कहानी के रूप और ढॉचे मे एक नई क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। चेखव की नई शैली की कहानियो मे अपने समकालीन रूसी समाज की असहायता, विवशता और किकर्त्तव्य–विमूढता की सारी मन· स्थिति प्रतिबिम्बित हो उठी थी कि 'हम क्या करे' कहॉ जाये? निर्मल वर्मा की कहानियो का मूल स्वर भी यही है कि हम क्या करे? व्यक्ति मानो निरुद्देश्य, लक्ष्यहीन जीवन जीता चला जा रहा है। वह अपने अतीत की स्मृतियो से चिपटा और उन्ही मे डूबा यह सोच ही नही पाता कि उसे कहॉ पहुॅचना है, क्या करना है? परिन्दे आजादी के भारतीय समाज के एक वर्ग–विशेष मे पनप रही इसी मानसिकता का सशक्त चित्रण करती है।

पक्षियो की तरह विहार करने की लतिका की ललक, फिर उसकी विषण्ण भाव–स्थिति, व्यक्तिवादी धारणा का सुन्दर उदाहरण है। नगरो मे इसका और प्रकोप है, जिसे नगर बोध कह सकते हैं।" नगर बोध का यह आभाष बीतते समय के साथ लतिका को आतकित करता रहता है और वह सोचती है कि वह भी अपनी सहयोगिनी मिस वुड के समान ओल्ड मेड बनकर रह जायेगी। दिनोदिन बढती जाती उसकी वय ने

उसके पहले वाले उत्साह को जैसे क्षीण कर डाला है मेजर नेगी की स्मृति ही जैसे उसके सम्पूर्ण अस्तित्व की चेतना बन कर रह गयी है अपूर्ण आनन्द की अनुभति के बाद सहसा जो खालीपन उसके जीवन मे भर आया था, उसकीपूर्ति फिर सम्भव न हो सकी। इसलिए नेगी की याद आने पर उसके चेहरे पर एक उनीदा–सा खालीपन घिर आता है और डाक्टर मुखर्जी उससे पूछते हैं–"मिस लतिका, आप इस साल भी छुटिटयो मे यही रहेगी।"[6] लतिका से कोई जबाब देते नहीं बनता और सहसा लगता है, जैसे कही बहुत दूर बरफ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजाने देशों की ओर उडे जा रहे हैं पहाडों की सुनसान नीरवता से परे, उन विचित्र शहरो की ओर जहॉ वह कभी जायेगी , अब उसमे जाने के लिए पहले जैसा उत्साह नहीं जगता। यही लतिका की विवशता हैं। पारिवारिक सम्बन्धो के सम्पर्कों से कटकर, अपने आप में सीमित रहने का भी एक मनोवैज्ञानिक सुख होता है लतिका इसी आत्मतुष्टि का अनुभव करती है।

असफल प्रेम आत्मपीडन की मनोवाध्यता प्रेम की असफलता (गिरीश नेगी की मृत्यु) से कुठित लतिका वर्तमान के असमायोजन में असमर्थ है, शीतकाल मे परिन्दो के उड जाने से जो सूनापन आ जाता है उसी तरह प्रेम परिन्दे के उड जाने से उसका जीवन वीरान हो गया है, स्मृतियो से आत्मपीडन ही उसके हाथ बचा है, वह प्रेम उसकी मनोवाध्यता बन गया है। उसे भुलाकर पुन किसी पृरुष के वरण का साहस उसमे नही है। बीतता यौवन अतृप्तियॉ उसे पीडित करती हैं– पर गिरीश नेगी की स्मृतियो मे वह मकडी के जाले की तरह उलझती जाती हैं। डॉ0 मुखर्जी लतिका को यही समझाते हैं कि मरने वाले के सग खुद थोडे ही मरा जाता है अथवा "किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जानबूजकर न भूल पाना, हमेशा जोक की तरह उससे चिपटे रहना यह भी गलत है।"[7] इस बीच लतिका में भी धीरे–धीरे अपने आप परिवर्तन होता है लतिका स्वीकार करती है कि अब वैसा दर्द नही होता है सिर्फ उसकी याद करती हूॅ जो पहले कभी होता था। डॉ0 मुखर्जी लतिका से भिन्न स्वभाव वाला है। वह विधुर है, स्वय दु खी है परन्तु अपने दु ख के प्रति अनासक्त है। जिन्दगी के अनुभव ने उसे प्रौढ बना दिया है। वह हर स्थिति मे स्वय को उबार लेता है और जीवन को उसकी सहजता और सम्पूर्णता मे जीता है। मुखर्जी लतिका से कहता है–"जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी, मुझे जिन्दगी बेकार सी लगी थी। आज उस बात को अरसा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूॅ, उम्मीद है काफी अरसा और जिऊॅगा। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं, अपनी पत्नी से प्रेम नही करता था। आज भी करता हूॅ।"[8]

दोनो ही बाते सच है पर, जैसे वह कहना चाहते हो, जिन्दगी इससे आगे भी चलती रहती है। लतिका डॉ0 मुखर्जी की इन्ही बातो के कारण उन्हे बहुत मानती है। वह अपने को सम्हालने का अपने मन को बहलाने का बहुत प्रयत्न करती है, परन्तु अपने भावात्मक रीतेपन को भरने का कोई उपाय नही खोज पाती।

परिन्दो के माध्यम से प्रेम मे इन्तजार को ही मानव नियति माना है। प्रस्तुत कहानी के सारे पात्र अपने लोगो को भूलते हुए प्रतीत होते हैं। लतिका गिरीश को भूल जाना चाहती है, डॉ0 मुखर्जी अपनी पत्नी को भूल गये हैं। यहॉ व्यक्ति निष्ठता है। सभी अपनी–अपनी दृष्टिसे निर्णय लेते हैं। परिन्दे की मूल सवेदना यही है क्योकि कहानी के प्रमुख पात्र–लतिका, ह्यूबर्ट, डाक्टर मुखर्जी अपने–अपने रागात्मक सम्बन्धो की पीडा और यत्रणा को मन के भीतर सॅजोए अपने–अपने ढॅग से लक्ष्यहीन दिशा की ओर बढते चले जा रहे हैं। चैन किसी को भी नही है। अपने अतीत की मधुर स्मृतियो से कोई छुटकारा नहीं पा सका है।

परिन्दे के माध्यम से मानवीय सम्बन्धो मे एक नया मोड निर्मल वर्मा ने दर्शाया है क्योकि घरेलू सम्बन्ध टूट रहे हैं। इस समस्या का समाधान कही नही दीखता। हर एक की आवाज अपनी आवाजे होती हैं, अपनी चुप्पी। जितना पुराना घर हो उतनी ही परिचित, उतनी ही भयावह। किस चुप्पी के होटो पर कौन सी आवाज ने ॲगुली रखी है, क्या कभी कोई जान सकता है? नामवर सिह का कथन है कि "परिन्दे से यह शिकायत दूर हो जाती है कि हिन्दी कथा साहित्य अभीपुराने सामाजिक सघर्ष के स्थूल धरातल पर ही 'मार्क टाइम' कर रहा है। समकालीनो मे निर्मल पहले कहानीकार हैं जिन्होने इस दायरे को तोडा है–बल्कि छोडा है और आज के मनुष्य की गहन आन्तरिक समस्या को उठाया है।"[9]

दोपहर का भोजन

'दोपहर का भोजन'– अमरकान्त द्वारा लिखित कहानी मध्य निम्न वर्ग के जीवन की ओर इशारा करती है। परिवार मे पति चन्द्रिका प्रसाद पत्नी सिद्धेश्वरी एव तीन बेरोजगार पुत्रो सहित कुल पॉच प्राणी हैं। इसमे मॉ सिद्धेश्वरी आर्थिक तगी को झेलती हुयी अपने पुत्रो को खाना बनाकर खिलाती है और अन्त मे खाना न बचने पर स्वय पानी पीकर सो जाती है क्योकि उसके सामने विवशता है और इसी विवशता मे उसे व्यवस्थित रहना है। पति बेरोजगार हो गया है एवम् बडा पुत्र रामचन्द्र (आयु) भी कुछ नही कमाता है, मझला (आयु) पढने मे बहुत तेज नही है छोटा प्रमोद (आयु) अभी बहुत बडा नही हुआ है। फलस्वरूप मॉ झूठ बोलकर एक दूसरे को खुश करने की

कोशिश करती रहती है और किसी तरह परिवार रूपी इस सस्था को टूटने से बचाने का प्रयत्न करती है।

'दोपहर का भोजन' कहानी मे पारिवारिक सम्बन्धो की नीरसता, घुटन एवम् माता–पिता और बेटो के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को रेखाकित किया गया है। डॉ0 नामवर सिह के कथानुसार–"अमरकात प्रेमचद्र परम्परा के कहानीकार हैं। उन्होने अपनी कहानियो मे मानवीय मूल्यो को उभारने का प्रयास किया है। आज की कहानियों के पाठक का जो बहुत बडा वर्ग तथा कथित निम्न वर्ग–मध्यवर्ग के परिवारो मे रहता है, उनकी जिन्दगी की तहो मे भी खोजने को बहुत कुछ पडा हुआ है कितने ही प्राइवेट मजाक होते हैं, हाथ और मुँह के बीच मे भी बहुत सी बाते पैदा होती रहती हैं, अमरकात ने अपनी कहानियॉ यही से उठायी और इस तरह हमारी ऑखो मे हमारी ही जिदगी के जाने कितने पर्दे उठ गये हैं। इस क्षेत्र में अमरकात की कहानियॉ किसी भी नये लेखक के लिए चुनौती हैं।"[10]

यह सच है कि अमरकात के सभी पात्र अदर ही अदर उस यथार्थ को महसूस करते हैं और उस घुटन मे विवशता भी देखते हैं परन्तु जिन्दगी के ढर्रे मे कोई परिवर्तन नजर नही आता है और तभी तो सिद्धेश्वरी–मुशी चन्द्रिका प्रसाद तथा तीनो बेटे, बडा रामचन्द्र, मझला मोहन तथा छुटका प्रमोद अपने परिवार की जर्जर आर्थिक स्थिति को इतनी कम उम्र मे ही जान गये हैं। खाना खाते समय मझला दार्शनिक अदाज मे कहता है कि "नही रे बस। अव्वल तो भूख नहीं।"[11] यह कथन मोहन की उम्र के हिसाब से वक्त के हालात का है जिसने उसे मॉ से इस रूप में बोलने पर विवश कर दिया है। मधुरेश के अनुसार–" दोपहर का भोजन मे जिस निर्मम तटस्थता के साथ, एक परिवार के माध्यम से समूचे निम्न मध्यमवर्ग के त्रासद अभावो को अकित किया गया है, अपने समय की मूलधारा को अतिक्रमित कर पाने के कारण आज भी उस कहानी का ऐतिहासिक महत्व है।"[12] मॉ सिद्धेश्वरी जो परिवार की धुरी है, जिसके त्याग एव बुद्धिमानी के कारण पूरा परिवार चल रहा है क्योकि पति चन्द्रिका प्रसाद भी मकान किराया–नियन्त्रण विभाग की क्लर्की से उनकी छँटनी हो चुकी है और वे काम की तलाश मे इन्तजाररत हैं तीनो बच्चे भी समय के हिसाब से बेरोजगार हैं। सिद्वेश्वरी किसी तरह से एक दूसरे को खुश करके टूटा–फूटा खाना खिलाकर उन्हे सतुष्ट करने का प्रयास करती है साथ ही यह भी कोशिश करती है कि वे एक दूसरे के प्रति स्नेह भी करते रहे। रामचन्द्र जो सिद्धेश्वरी का इक्कीस वर्षीय बडा लडका है स्थानीय दैनिक समाचार पत्र के दफ्तर मे अपनी इच्छा से प्रूफरीडरी सीखता है और दिन भर घर मे

नही रहता है पर खाना खाने के समय सिद्धेश्वरी उसे प्रेम पूर्वक खिलाती है—"सिद्धेश्वरी ने खाने की थाली लाकर सामने रख दी और पास ही बैठकर पखा करने लगी। रामचद्र ने खाने की ओर दार्शनिक की भॉति देखा। कुल दो रोटियॉ, भरा कटोरा पनिऔआ दाल और चने की तली तरकारी। रामचद्र ने रोटी को निगलते हुए पूछा, मोहन कहॉ है? किसी लडके के यहॉ पढने गया है। आता ही होगा दिमाग उसका बडा तेज है और उसकी तबीयत चौबीसो घन्टे पढने मे लगी रहती है। हमेशा उसी की बात करता रहता है।"[13] मॉ सिद्धश्वरी एव बेटे रामचन्द्र का यह सवाद इतना नीरस एव वासा सा लगता है जैसे कि वे अपनी—अपनी जिदगी से इतने व्यस्त एवं थक गये हो कि केवल खाने के समय ही समय मिलता है। मॉ भी झूँठ—मूठ का बहाना बनाकर किसी तरह से उसे उलझाये रखना चाहती है क्योकि वह जानती है कि यह बात सच है कि उसका मझला लडका दिन भर गायब रहता है, प्राइवेट इम्तहान देने की तैयारी कर रहा है फिर भी रामचन्द्र से वह वास्तविकता को छुपा लेती है कि परिवार मे भाइयो के प्रति कोई विवाद जन्म न ले।

'दोपहर का भोजन' कहानी में टूटते परिवार को बचाने का प्रयत्न है। मॉ स्वय भूखी रहकर, पानी पीकर सो जाती है। परिवार के हर व्यक्ति से झूठ बोलकर लगाव और दिलचस्पी पैदा करती रहती है। किन्तु यह कथा का केन्द्र बिन्दु नही है, कथा का केन्द्र बिन्दु है गगा शरण बाबू की लडकी की शादी तय हो गयी। लडका एम0ए0 पास है' इसे सुनकर उसे बडी निराशा होती है। सिद्धेश्वरी की सीमित ससाधनो के बीच यह विवशता है कि उसे उसी मे सम्पूर्ण परिवार को खुश रखना है यदि वह खुद भी अपने शरीर को भूखा रखकर भी अपने बच्चो एव पति का पेट भरती है तो इससे उसको आत्मसन्तुष्टि मिलती हैं मुशी पति को खिलाकर जब स्वय सिद्धेश्वरी खाने बैठती है तब उसे स्थिति के बारे मे अन्दाज लग जाता है कि खाना शायद ही शेष बचा हो—"सिद्धेश्वरी उनकी जूठी थाली लेकर चौके की जमीन पर बैठ गयी। बटलोई की दाल को कटोरे मे उडेल दिया, पर वह पूरा भरा नही। छिपुली मे थोडी सी चने की तरकारी बची थी, उसे पास खीच लिया। रोटियो की थाली को भी उसने अपने पास खीच लिया उसमे केवल एक रोटी बची थी। मोटी, भद्दी और जली। उस रोटी को वह जूठी थाली मे रखने जा ही रही थी कि अचानक उसका ध्यान ओसारे मे सोये प्रमोद की ओर आकर्षित हो गया। उसने लडके को कुछ देर तक एकटक देखा, फिर रोटी को दो बराबर टुकडो मे विभाजित कर दिया। एक टुकडे को तो अलग रख दिया और दूसरे टुकडे को अपनी जूठी थाली मे रख लिया। तदुपरान्त एक लोटा पानी लेकर खाने बैठ

गयी। उसने पहला ग्रास मुँह मे रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी ऑखो से टप–टप ऑसू चूने लगे।"[14] सिद्धेश्वरी की यह रोने की प्रवृत्ति अपने भाग्य तथा आर्थिक समस्याओ को लेकर तो है ही साथ ही आने वाले भविष्य के आहटपन की ओर भी है इसलिए जब पति मुशी चन्द्रिका प्रसाद उसे गगाशरण बाबू की लडकी की शादी के बारे मे कहते हैं तब उसे ऐसा लगता है कि पता नही सिद्धेश्वरी जैसी हालत उस लडकी की भी हो सकती है इसलिए वह उदास हो जाती है।

'दोपहर का भोजन' नामक कहानी मे अमरकान्त ने पारिवारिक सम्बन्धो की बदलती हुई स्थितियो के बारे मे परम्परागत ढॉचे को न अपनाकर एक नया प्रयोग करने की कोशिश की है जिसमे मॉ रूपी सिद्धेश्वरी के माध्यम से यह सन्देश देना चाहा है कि मॉ ही वह धुरी है जिसमे सम्पूर्ण परिवार बॅधा रह सकता है।

परम्परागत मान्यताओं और नैतिक बोध के पतन के कारण पारिवारिक विघटन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय युवक एव युवतियो ने परम्परागत मान्यताओ और रूढ नैतिकता के प्रति विद्रोह करना शुरू किया। विशेषकर युवको ने परम्परागत मान्यताओ के बन्धन को तोडना मानो अपना धर्म ही मान लिया है। नई–नई वैज्ञानिक उपलब्धियो के साथ तथा आधुनिक ससार के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुड जाने के कारण भारतीय युवक ने पश्चिमी दर्शन, सस्कृति तथा रहन–सहन को स्वीकार किया जिसके माध्यम से परम्परागत भारतीय मूल्यो मे परिवर्तन हुआ। नया भारतीय नवयुवक अपने सजग अस्तित्वबोध के कारण, परम्परागत आदर्शों के बारे मे प्रश्न करने लगा और उनमे व्यापक परिवर्तन की माग करने लगा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही नये भारत मे जीवन गत आस्था के दो स्पष्ट स्वरूप दिखाई देने लगे। एक वह था जो पुराने आदर्शों, मूल्यो और रूढियो के साथ पूरी सच्चाई से जुडा हुआ था और उससे न मुक्त होना चाहता था न मुक्त होने की बात सोच सकता था। दूसरा वर्ग सभ्यता के नये उपकरणो को स्वीकार करने के साथ–साथ समस्त प्राचीन रूढियो और अन्धविश्वासो को समाप्त करके नये जीवन को अपनाने की बात करता था। इस प्रकार प्राचीन मूल्यो और आधुनिक मूल्यो मे एक व्यापक टकराहट दिखाई देने लगी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आज हर वस्तु और बात का परीक्षण किया जाने लगा, फलस्वरूप पारम्परिक आदर्शों के प्रति अध श्रद्धा खत्म होने लगी है, प्राचीन भारत धर्म परायण था। तब समस्त कार्य धर्म सम्मत होते थे। किन्तु वैज्ञानिक प्रगति ने धर्म को अवैध सिद्ध कर दिया है। वर्ण

व्यवस्था एव जाति–व्यवस्था भी आज के समाज मे सम्भव नही हैं आज जीवन सम्बन्धी दार्शनिक मान्यताएँ भी अव्यावहारिक सिद्ध हो चुकी हैं क्योकि जन्म–मृत्यु के कई रहस्य आज वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे उद्घाटित किये जा चुके हैं। अत आज का व्यक्ति धर्म के प्रति आस्थावान दिखाई नहीं देता है।

कमलेश्वर के कथनानुसार–"परिवार मानवीय सम्बन्धो की एक महत्वपूर्ण इकाई है इसमे भी पारम्परिक कई मान्यताएँ आज खोखली सिद्ध हो गयी हैं। आज हमे परिवार का रूप विघटित हुआ तो दृष्टिगत हो ही रहा है किन्तु परिवारगत् भावना, सेवा, श्रद्धा आदि तत्व वहाँ दृष्टिगत नही होते। आज एक पिता को पुत्र चाहिए इसलिए कि वह वृद्धावस्था मे उनकी सेवा कर सके, इसलिए नही कि वह अपना परलोक सुधार सके।"[15] आज व्यक्ति परलोक की नही इहलोक की बात सोचता है। पुत्र आज पिता की सेवा करे अथवा उसे वृद्धावस्था मे घर से निकल जाने को विवश कर दे यह उसकी इच्छा की बात है। (वापसी–ऊषाप्रियम्वदा)। 'मझले' कितना कुछ सोचकर नौकरी से वापस घर आये पर उसे ऐसा ही लगेगा जैसे वह कोई अपने घर मे न आकर नकली स्थान मे आ गया है। (शेष होते हुए–ज्ञानरजन)। 'मैं' किसी भी सदस्य के बारे मे चाहे वह माँ ही क्यो न हो सोचे कि इससे तो पीछा छुडाना ही है पर सम्बन्धो का चक्रव्यूह वह नही तोड सकता है–(सम्बन्ध–ज्ञानरजन)।

वापसी

ऊषा प्रियवदा की कहानी वापसी मे आधुनिक मध्यवर्गीय शहरी परिवार की दो पीढियों के आन्तरिक वैषम्य का यथार्थ चित्र बडी सफाई और बारीक सहानुभूति से अकित किया गया है। कहानी मे गजाधर बाबू पुरानी पीढी के और उनके दूर रहकर पलने–पुसने वाले बच्चे, दो पुत्र, एक पुत्रवधू, एक पुत्र और उसकी माँ, जिसका होना यही है, कि वह इनकी माँ, यानी पोषिक है नयी पीढी के हैं। गजाधर बाबू पारिवारिक व्यवस्थाक्रम के अनुसार परिवार से अलग नौकरी करने लगे हैं। पर जब अवकाश प्राप्तकर उल्लसित मन से बच्चो के बीच आते हैं। कुछ ही दिनो मे यह यथार्थ स्पष्ट होने लगता है कि न तो वृद्ध गजाधर बाबू ही परिवार की व्यवस्था मे अब खप सकते हैं, न बच्चे ही गजाधर बाबू की व्यवस्था मे समा सकते हैं। कुछ भी आवेश–जन्य घटना घटित नही होती पर एक खामोश अन्तर्व्यथा, एक अनावश्यक असतुलन परिवार की व्यवस्था को बिगाड जाता है। गजाधर बाबू को इसका अहसास होता है। एक दिन स्वाभाविक सहज ढग से वे दूसरी नौकरी करने के लिए फिर से परिवार से निकल

पडते हैं। परिवार भी सहज ढग से उन्हे विदाई देता है और फिर अपने काम मे लग जाता है।

वापसी आधुनिक जीवन मे पारिवारिक विश्रृखलता को लेकर चलने वाली सहज, यथार्थ ओर मार्मिक कहानी है।वापसी के गजाधर बाबू न तो अनुपयोगी है और न ही फालतू। रिटायर होने पर भी गृहस्थी को चलाने योग्य सामर्थ्य उनमे है। वे आत्म निर्भर है, परोपजीवी नही। पर गृहस्वामी होते हुए भी गृहस्वामी के अधिकार उनके पास नही है। सामने तो नही, पर पीठ पीछे उनके बच्चे और उनकी पत्नी जब–तब उनके प्रति जो भाव व्यक्त करते हैं, वे घर मे उनकी स्थिति को बाहरी आदमी की स्थिति बना देते हैं। छोटा बेटा कहता है–बाबू जी को बैठे–बैठे यही सूझता है।''[16] साथ ही बडा बेटा कहता है, ''बूढे आदमी हैं, चुपचाप पडे रहे। हर चीज मे दखल क्यो देते हैं?'' पत्नी ने बडे व्यग्य से कहा ''कुछ और नही सूझा तो तुम्हारी पत्नी को ही चौके मे भेज दिया।''[17] अभिप्राय यह कि पूरा परिवार उनके प्रति उपेक्षा का भाव रखे हुए हैं।

आखिर वह क्या है जिसने गजाधर बाबू की स्थिति अपने ही घर मे परदेशी–बाहरी आदमी की स्थिति बना दी है इसका उत्तर पाने मे कहानी का स्वर पकड मे आ जाता है– '' घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक मे कुर्सियो को दीवार से सटाकर बीच मे गजाधर बाबू के लिए पतली सी चारपाई डाल दी गयी थी।''[18] डॉ0 कुसुम वार्ष्णेय के शब्दो मे–''कहानी मे अकेलेपन की अनुभूति असगत होने की स्थिति की उपजीव्य है, कहानी का थीम अकेलापन नही, 'मिसफिट' होने का एहसास है जो नायक मे अकेलेपन को भी गहरा करता है।''[19] लेखिका ने शुरू से ही जो बिम्ब केन्द्र मे रखा है वह गजाधर बाबू की असगत स्थिति को प्रकट करता है–''अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होने पाया कि बैठक मे उनकी चारपाई नही है   पत्नी की कोठरी में झाका तो अचार, रजाइयो और कनस्तरो के बीच अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कही टागने को दीवार पर नजर दौडाई फिर उसे मोडकर अलगनी के कुछ कपडे खिसकाकर, एक किनारे टाग दिया।''[20] रिक्त स्थान की पूर्ति बहुत जल्दी हो जाती है, किन्तु जो स्थान पहले ही भरा हो, उसमे किसी चीज का समा जाना कठिन होता है। अन्य वस्तुओ को खिसकाकर ही नयी वस्तु वहॉ 'फिट' होती, किन्तु यदि वस्तु जीवत हो और जीवत लोगो के बीच ही उसे 'फिट' होना हो, तो इस नयी व्यवस्था के लिए कोई तैयार नही होता। जैसे कोई एक 'घेरा' है जिसमे लोग

अपने स्वभाव और व्यक्तित्व के अनुसार उसमे फिट है, उस जीवन को जीने के आदी हो गये हैं। कोई दूसरा व्यक्ति जब उसमे प्रवेश करता है, तो उसे फिट करने के लिए दूसरे व्यक्तियो को खिसकना पडता है, जिसके कारण खिसकने वाले व्यक्तियो मे उस आगन्तुक व्यक्ति के प्रति स्वागत और सौहार्द का भाव नही वरन् खीज, उपेक्षा और ऐसा ही कुछ और पैदा होने लगता है– ऐसा व्यक्ति उस सकुचित स्थिति मे चुपचाप पडा रहे तो ठीक अन्यथा सुनना पडता है–"बूढे आदमी है, चुपचाप पडे रहे। हर चीज मे दखल क्यो देते हैं।"[21] किन्तु चुपचाप पडे रहने पर भी तो गजाधर बाबू की स्थिति सगत नही हो पाती वे अपने को सिकोड लेते हैं, किसी की बात मे हस्तक्षेप नही करते। और अचानक ही उन्होने निश्चय कर लिया है कि "अब वह घर की किसी बात मे दखल न देगे पर किसी बात मे हस्तक्षेप न करने के लिए निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातवरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर मे ऐसी असगत लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक मे उनकी चारपाई थी।"[22]

'वापसी' पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन की स्पष्ट अभिव्यक्ति परिवार के ढॉचे मे आये मूलभूत परिवर्तन की ओर सकेत करती है। क्योकि एक ऐसा व्यक्ति जो सभी लोगो के लिए शिकायत का मौका देता रहता है कारण यह है कि गजाधर के आने से अन्य लोगो का अस्तित्व सकुचित हो जाता है, जिससे सबको शिकायत रहती है "अमर और उसकी बहू की शिकायते बहुत थी। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक मे ही पडे रहते हैं, कोई आने–जाने वाला हो तो कही बैठाने की जगह नही। अमर को अब भी छोटा समझते थे औरमौके–बेमौके टोक देते थे।"[23]

"हमारे आने से पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी?" गजाधर बाबू ने पूछा, पत्नी ने सिर हिलाकर जताया कि नही। पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था। बहू को कोई रोक–टोक न थी, अमर के दोस्तो का प्राय यही अड्डा जमा रहता था और अदर से नाश्ता चाय तैयार होकर जाता रहता था। बसती को भी यही अच्छा लगता था।"[24] गरज यह कि सब अपने ढग से जी रहे थे। गजाधर बाबू के आने से व्यवधान पडता है। कोई उन्हे खपा नही पाता, अपनी जीवन–गति का अग नही बना पाता, अपने मनो–विनोद तक मे शामिल नही करना चाहता।

यह कैसा अन्तर्विरोध है कि आदमी परायो मे अपना है और अपनो मे पराया बन गया है। एक ओर गजाधर बाबू का अवकाश प्राप्ति के बाद परायो के बीच से आने का दृश्य है और दूसरी ओर अपनो के बीच से लौटने का दृश्य।

"गजाधर बाबू ने कमरे मे जमे सामान पर एक नजर दौडाई'–दो बक्स, डोलची, बाल्टी–"यह डिब्बा कैसा है, गनेशी?" उन्होने पूछा। गनेशी विस्तर बॉधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दु:ख, कुछ लज्जा से बोला, "घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिये हैं। कहा, बाबूजी को पसन्द थे, अब कहॉ हम गरीब लोग आपकी खातिर कुछ कर पायेगे।" घर आने की खुशी मे भी गजाधर ने एक विषाद का अनुभव किया, जैसे एक परिचित, स्नेह, आदरमय, सहज ससार से उनका नाता टूट रहा था। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा जिसमे उन्होने कितने ही वर्ष बिताये थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था।"[25] दूसरा दृश्य है, घर से वापसी का

"नरेन्द्र ने बडी तत्परता से विस्तर बॉधा और रिक्शा बुलाया। गजाधर बाबू का टिन का बक्स और पतला सा विस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ मे लिए गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गये । एक दृष्टि उन्होने अपने परिवार पर डाली। फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पडा। उनके जाने के बाद सब अन्दर लौट आये, बहू ने अमर से पूछा, "सिनेमा ले चलियेगा न? बसन्ती ने उछलकर कहा, भइया हमे भी।" गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके मे चली गई। बची हुई मठरियो को कटोरदान मे रखकर अपने कमरे मे लायी और कनस्तरो के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा अरे नरेन्द्र, बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमे चलने तक की जगह नही है।"[26] क्या स्थितियो की यह विषमता विसगत जीवन–स्थिति का सकेत नहीं करती? यह विसगत स्थिति ही तो है, जिसने गजाधर बाबू को अकेला छोड दिया है। पर क्या वे अकेलेपन से ऊबकर घर से भागते हैं या कि विसगत बनकर रहने की असहनीय स्थितियो से उबरने के लिए? यह ठीक है कि वह दूसरो की स्थिति नही बदल सकते, दूसरो के स्वभाव नही बदल सकते, पर अपनी स्थिति तो बदल ही सकते हैं, खुद को उनसे काट तो सकते हैं। और अपने को विसगति स्थिति से बचाने के लिए ही वे लौट पडते हैं, जहॉ वे पहले स्थापित थे। डॉ0 प्रेमनारायण सिन्हा की टिप्पणी महत्वपूर्ण है–"वापसी के द्वारा अपने ही घर मे व्यर्थ हो गये एक रिटायर्ड आदमी को दुनियॉ की भीड मे घर से वापस भेजकर दिखाया गया है कि आज का आदमी, सम्बन्धो का नही, ससर्गो का हो गया है। उपयोगिता ने आदमी को जितना आवश्यक बनाया है, उपयोगी नही होने पर उतना ही अनावश्यक भी बना दिया है। बिगडे हुए रेडियो या बन्द घडी की व्यर्थता की तरह रिटायर्ड आदमी की भी व्यर्थता हो जाती है, इसी दृष्टि से वापसी का नायक भी व्यर्थ है।"[27] डॉ0 नामवर सिह

ने निष्कर्ष रूप मे यह कहा है कि वापसी कहानी अकेलेपन की अनुभति को लेकर लिखी गयी है, वह अकेलापन बहुत व्यापक भेले ही न हो, पर है वास्तविक और सामाजिक ही–"यह सच है कि वापसी के नायक का अकेलापन आज बहुत व्यापक नही है, किन्तु इतने ही से यह अवास्तविक नही हो जाता और न किसी कहानी के लिए अग्राह्य ही गरज यह कि वापसी का अकेलापन सारे समाज का भले ही नहो, किन्तु वह सामाजिक तो है ही। अकेलापन, जाहिर है कि व्यक्ति को ही महसूस होता है किन्तु वह व्याधि तो सामाजिक ही कही जायेगी।"[28] दूसरी ओर डॉ0 इन्द्रनाथ मदान इसे आधुनिकता से जोडते हुए लिखते है कि "बाबू गजाधर की दोबारा वापसी मे जब वह अपने घर मे मेहमान बन जाता है, बेघर हो जाता है। आज इन्सान अपने परिवेश से इतना कटता जा रहा है कि उसे परायेपन, अजनबीपन, बेगानेपन का बोध होने लगता है, यह नगर बोध का परिणाम है, जिसके साथ आधुनिकता का बोध जुडा हुआ है।"[29]

शेष होते हुए

ज्ञानरजन की कहानी 'शेष होते हुए' मे फासला पीढियो के बीच का है। कहानी बाहर से घर लौटने वाले एक मॅझले भाई के दृष्टिकोण से लिखी गयी है, जो पारिवारिक स्थिति पर अफसोस कर रहा है। सदस्यो के बीच निकटता और सप्रेषण लगभग समाप्त है। बडे भाई और उसकी पत्नी ने पिछवाडे अलग कमरे बनवा लिये हैं, बेटी ने अपने कमरे के लिए बरामदे मे पार्टीशन खडा कर लिया है, और उसके दरवाजे पर स्कूल जाते समय ताला लगा देती है। छोटे भाई ने छत पर अकेला कमरा हथिया लिया है। बच्चे अपने–अपने दोस्तो की खातिरदारी शेष परिवार से अलग अपने–अपने कमरो मे करते हैं। खाने का वक्त सबका अलग–अलग है। मॅझले यह देखकर महसूस करता है कि एक घर मे यहॉ कई घर हो गये हैं, एक–दूसरे से अलग और स्वतन्त्र। कहानी मे सहानुभूति की दिशा अपरिभाषित है। बच्चे बेहद खुदगरजी से माता–पिता के कमरे से अच्छी–अच्छी सब चीजे अपने कमरो मे उठा ले जाते हैं। पिता भी अन्य मध्यवर्गीय पिताओ जैसे गुर्राते रहते हैं। मॉ आहत नजर और दु खी आवाज के साथ झाड–पोछ मे व्यस्त रहती है और बच्चे इससे ऑखे चुराते रहते हैं। कहानी का अन्त भविष्य की ओर रेखाकित कर यह कहकर समाप्त हो जाता है कि मॅझला जब अगली बार यहॉ आयेगा तो हालात और भी बिगड चुके होगे क्योकि शायद अभी लोग पूरी तरह टूटे और विखरे नही है क्योकि अभी सक्रान्ति अपनी परिणति की ओर केवल शुरू हुई है।

'शेष होते हुए' कहानी मे मानवीय सम्बन्धो के बदलाव और विघटन का बोध कराया गया है। पिता, मॉ, भैय्या, भाभी टीनू–सबका अलग–अलग ससार है। पूरे घर मे दमघोटू वातावरण रहता है। मॉ गुमसुम रहती है और पिता चिडचिडे। उमग गुम हो गयी है पिता से टीनू तक सब अज्ञात परिणाम वाले भविष्य के लिए वर्तमान की स्थितिया झेल रहे हैं। कहने को यह एक बडा परिवार है और इतने लोग एक साथ रहते हैं पर यथार्थ यह है कि परिवार के सभी बडे और छोटे सदस्य एक–दूसरे से बचना चाहते हैं तथा अपने–अपने घेरे मे सिमटे हुए है। इस कहानी मे 'शेष होते हुए' सम्बन्धो की प्रामाणित पहचान करायी गयी है घर पहुॅचने पर मझले की मनोदशा, मॉ, पिता, भाई, बहन, भाभी का निहायत सामान्य औपचारिक, निरुत्साहित और ठडा रुख–वात्सल्य और स्नेह जैसी मनोवृत्तियो के स्रोत के सूख जाने का बोध कराता है। परिवार के सभी सदस्य स्वय मे सिमटे हुए हैं। और एक दूसरे से अलग और कटे पडे हैं यहॉ एक ही घर मे कई घर हो गये हैं। सब एक दूसरे से इस प्रकार कटे–कटे रहते हैं कि कोई भी एक दूसरे का सामना नही करना चाहता। पूरा घर अदर ही अदर खण्डित होता चला जाता है किन्तु बचाव का उपाय किसी के पास नहीं है। परिणाम स्वरूप पूरी कहानी मे एक दर्द है–मध्यमवर्गीय पारिवारिक सम्बन्धो के अभिशाप का दर्द, जिसमे सब कुछ शेष होता चला जा रहा है। यहॉ कोई सघर्ष नही किया जा सकता, सिर्फ ध्वश को निज के टूटने तक किसी तरह सहा जा सकता है।

'शेष होते हुए' कहानी मे मझले ने लौटते समय परिवार की स्थिति को इस प्रकार देखा–''एक ही घर मे कई घर हो गये हैं। हर व्यक्ति के कमरे दूसरे से अलग एक स्वतन्त्र और पृथकता ज्ञापित करने वाला स्वभाव है। निजी व्यवस्था की प्रवृत्ति कुछ लोगो मे छोटे पैमाने पर अन्दर ही अन्दर प्रयत्नशील है। ऊपर वाले कमरे मे टीनू ने एक अलमारी मे शीशे की रकाबियॉ गिलास, प्याले और स्टोव भी छोड रखा है। उसके दोस्त वही चाय पीते हैं। टीनू अपने कमरे मे केवल अपने कमरे को अच्छा से अच्छा रखता है। दूसरे कमरो की अच्छी चीजे ला–लाकर अच्छा कर लेता है।''[30] मझले ने यह भी देखा कि–''भाभी का कमरा गुदडी बाजार है लेकिन दैनिक उपयोग मे आने वाली सबसे नयी सुन्दर और फैशनेबल चीजें उन्ही के कमरे मे हैं। प्रसाधन सामग्रियो की जैसी सुगध भाभी के कमरे मे व्याप्त रहती है वैसी कहीं नही होती।''[31] मझले के लिए यह प्रवेश अग्नि से कम दाहक नही है। उसे यह प्रतीत होता है जैसे वह किसी नकली जगह के सामने व्यर्थ खडा हो गया है। मझले इन और कठोर दृश्यो को स्वीकार कर लेता है–''मॉ–पिता के कमरे मे कुछ नही है।''[32] 'सबका मन कडुवा हो

गया है।"[33] "पिता कहने लगे, तुम क्या जानो, मेरी छाती मे हमेशा हाहाकार मचा रहता है।"[34] टीनू गुस्सा और बदतमीजी करने लगा है।"[35] वह कहता है "मॉ को नये मैनर का नही पता है। घर मे सात लोग हैं, सात बार टेबुल पर खाना रखा जाता है।"[36] "घर अदर ही अदर खडित हो रहा है।"[37] सहानुभूति की दिशा यहॉ अपरिभाषित है क्योकि बच्चे बेहद खुदगरजी से माता–पिता के कमरे से अच्छी–अच्छी सब चीजे अपने कमरो मे उठा ले जाते हैं। पिता "हर दूसरे मध्यम वर्गीय पिता सरीखे।"[38] माता पर गुर्राते हैं कि सारा दोष उसका ही है। मॉ आहत नजर और दु:खी आवाज के साथ झाड–पोछ मे व्यस्त रहती है और बच्चे इससे ऑखे चुराते हैं। मॅझला भी अपने स्वागत मे मॉ की ओर से एक ठण्डापन महसूस करता है क्योकि उसके मध्यमवर्गीय सस्कार जवान बेटे को छाती से भीचकर प्यार करने नही देते। स्थिति की पीडा उस समय और सघन हो जाती है जब मझला यह सोचता है कि किसी तरह इससे सघर्ष नही किया जा सकता है। कहानी वहॉ और नुकीली हो जाती है जब मझला छुट्टी समाप्त होने पर घर से जाना चाहता है तो सोचता है कि सूटकेस लेकर निकलेगा तो–"टीनू छत से उतरकर आ जायेगा, और तारा पार्टीशन से बाहर। भाभी–भैय्या को पीछे से बुला लायेगी और वे दोनो शान्त मझले के चले जाने की प्रतीक्षा मे खडे रहेगे। मझले को जाहिर होगा कि ये सब लोग किसी एक स्थान से नहीं, अलग–अलग जगहो से आये हैं, जब वह वापस नौकरी पर लौटता होता है। घर के लोगो के इकट्ठे होने का दृश्य इसलिए मझले को बडा झूठा और अटपटा सा लगता है।"[39]

इस मध्यमवर्गीय वातावरण मे बच्चो के भीतर एकान्त ओर स्वतन्त्रता की आकाक्षा का होना डरावना प्रतीत होता है। आपस मे एक दूसरे के और माता–पिता के लिए किसी लगाव का न होना, अलगाव और परायेपन को ही रेखाकित करता है। जाते समय मझले ने समय की क्रूरता और निरकुशता को तीव्रता से अपने भीतर घॅसते पाया "अगली बार जब मझला घर आएगा तब काल उसके सामने कुछ और बिगडे हुए तथा कठोर दृश्य उपस्थिति करेगा। क्योकि अभी लोग पूरी तरह टूटे और बिखरे नही है। अभी सक्रान्ति अपने अन्जाम की तरफ केवल शुरू हुई है।"[40] स्पष्ट है कि बच्चो ने ही घर मे रहते हुए भी माता–पिता की उपेक्षा आरम्भ कर दी है, और ये बच्चे अभी वैसे समृद्ध बालिग भी नही हैं जिनके लिए मॉ की जरूरत खत्म हो जाती है। और मजा यह कि यहॉ गलती किसी की नही है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि शेष होते हुए (ज्ञानरजन) का घर अब पुराना घर (स्वीट होम) नही रह गया है जो दुर्दम्य आकर्षण से मनुष्य को अपनी ओर खीचता था और स्नेह की अटूट डोर मे बॅधा हुआ मनुष्य खिचा चला आता था। नयी परिस्थितियो मे घर एक कृत्रिम सेट सरीखा हो गया है जिसका काम पूरा हो चुका है, अब वह केवल नष्ट हो जाने के लिए बचा है। इस सेट सरीखे परिवार मे सदस्यो के बीच स्नेह सूत्र विरल हो गये हैं। घर के सभी सदस्य उन सम्बन्धो का निर्वाह करने वाले अभिनेता हैं। बदले हुए सामाजिक ढॉचे मे परिवार के वृद्धजन, युवा पीढी के आश्रय मे निरतर निरादर और अपमान झेलने के लिए विवश है। मूल्यो और सम्बन्धो के विघटन से पुरानी और नयी पीढी का वैषम्य निरन्तर बढ रहा है यह 'शेष होते हुए' कहानी मे स्पष्ट हो जाता है।

सम्बन्ध

'सम्बन्ध' कहानी ज्ञानरजन द्वारा लिखित मॉ–पुत्र के सम्बन्धो पर एक नया प्रश्न चिन्ह खडा करती है। इसमें एक अजनबी श्रोता के साथ एकालाप की शैली अपनाई गई है। कहानी उत्तम पुरूष मे कही गयी है। क्रिया पर कम, भावना पर अधिक जोर दिया गया है। युवक एक खुशनुमा दिन बिताकर घर लौटता है, और घर को मनहूस पाता है, मॉ से यह भी सुनता है कि छोटा भाई आत्महत्या की धमकी देकर घर से चला गया है। जागने पर देखता है कि वापस आ गया है। युवक के मन मे मॉ के प्रति जबरदस्त आक्रोश है साथ ही भाई के प्रति एक तटस्थ सहानुभूति भी रखता है। युवक परिवार के प्रति स्वीकार करता है कि मैं ऐसा सौभाग्यशाली व्यक्ति नहीं हूँ जो माता–पिता के प्यार से खुश रहते हैं। कहानी का उद्देश्य अगर सहानुभूति को भाई और मॉ की ओर मोडना है तो भी वक्ता की भावनाओ के ब्यौरे ही बहुत से पाठको की सवेदनशीलता को अखरते रहते हैं।

ज्ञानरजन की सम्बन्ध कहानी में पारिवारिक विघटन का स्वरूप मॉ एव बेटे के नये रूप को उभारता है। कई प्रश्न अनुत्तरित से दिखते हैं जैसे मॉ के विरुद्ध बेटे की गाली–गलौज इतने बेतुके ढग से हिसात्मक है कि कहानी का पूरा उद्देश्य मॉ पर आक्षेप नही, बल्कि बेटे का परदाफाश करना है। उपेन्द्रनाथ अश्क के अनुसार–"यह कहानी' आज के युवक की सवेदना पर एक व्यग्य है कितनी गलत बात है कि लोग इस कहानी को समझते नही।"[41] कहानी कहने वाले युवक के मन मे परिवार के सम्बन्धो के प्रति गहरा रोष है–" बस , सोचकर रह जाता हूँ कि जिस तरह आपकी मॉ बचपन मे मर गयी थी, मेरी भी मर गयी होती।"[42] पारिवारिक सम्बन्धो के प्रति वितृष्णा

को उजागर करते हुए युवक कहता है कि– "मैं अपने भाई के बारे मे यह सोचने पर मजबूर हो गया कि उस बेचारे को मर ही जाना चाहिए।"[43] इसके आगे कहने वाला युवक यह भी स्वीकार करता है कि –"मैं उन सौभाग्यशाली महापुरुषो मे नही हूँ जो अपने माता–पिता और घर की खौफनाक कल्पना की आसानी से हत्या कर चुके हैं।"[44]

कहानी मे लेखक पारिवारिक सम्बन्धो के द्वन्दो और तनावो से ऊपर उठकर एक व्यापक सामाजिक, बेकारी की समस्या को झेलता हैं कहानी का नायक 'मैं' बेकारी मे भाई की दुर्दशा पर भावुक नहीं होता, अपितु उसकी मृत्यु तक की कल्पना कर लेता है। मॉ उसके लिए मॉ न होकर मॉ का भ्रम है जिसके प्रति उसके मन मे कुछ ऐसा तीखा व तिक्त है कि वह उसे 'यू वूमैन' कहकर अपने भीतर का पूरा जहर बाहर उगल देना चाहता है। घर मे सबके प्रति उसके सम्बन्ध धीरे–धीरे समाप्त होते चले जा रहे हैं। कही कुछ घटित नही होता, सब कुछ पूर्वत रेगता रहता है वाह्य स्थितियॉ चट्टान की तरह दृढ हैं जबकि व्यक्ति का अन्तर बदलाव के लिए तडपता रहता है। इसी कुलबुलाहट मे वह जडवत् हो जाता है। यह है पूर्ववर्ती पीढी की कारगुजारी जो स्वय तो अपने बद दिमाग की सडाध गधाती ही रहती है, युवा पीढी मे विकास को भी अवरुद्ध करती है। कहानी कहने वाला मैं अपनी भावनाओ का विश्लेषण नही करता। उसके वक्तव्य एव व्यग्योक्तियो की सीमा चरम पर है। दरवाजा खुलने पर मॉ को देखकर कहता है–

"निसन्देह वह एक मानव आकृति थी। यह अधिकाश घरो मे रहने वाली परिचित आकृति है जो दिन ब दिन मानवीय होती जा रही है। इस तरह के चेहरो, आकृतियो को देखकर, मैं समझता हूँ आप स्वस्थ नही सकते। हॉ उसके दरवाजे पर आ जाने के बाद मुझे लगता रहा कि मेरे शरीर ने किसी बर्फीली सुरग से गुजरना शुरू कर दिया है।"[45] लडके की शिकायती टिप्पणियो की ध्वनि को कुछ उपहासपूर्ण, कुछ गभीर रखकर और उसकी तीव्र भावनाओ के औचित्य का कोई कारण न देकर कहानीकार ने पाठक को वक्ता के ससार मे प्रवेश करने से रोक दिया है। कुछ सकेत मॉ के सम्बन्धो के प्रति विवादास्पद से दिखते प्रतीत होते है–" आप यह भी देखिए कि समय मानवीय सम्बन्धो के सिलसिले मे किस तरह से काम करता है। एक लम्बे समय तक जो स्त्री मेरे लिए केवल मॉ थी अब कभी–कभी ही मॉ लगती है या मॉ का भ्रम। बल्कि कभी–कभी अब ऐसा हो जाता है, न चाहते हुए भी कि जबडे दब गये हैं और अन्दर से एक–दो शब्द हिचकिचाती हुई खामोशी के साथ निकल जाते है, 'यू वूमैन' (ध्वनि गेट

आउट फ्राम माई लाइफ)। 'यू वूमैन' के उच्चारण मे तीखा कटा–फटा ग्राफ भी बनता होगा। फिर भी मुझे इसका अफसोस नही होता क्योकि यह बात अब बहुत ठडी हो गयी है।"[46] कही–कही उसे मॉ के प्रति एकाधिकार भाव का बोध एव प्यार झलकता दिखायी देता है और बीमार भाई के लिए उसके झुकाव से क्षुब्ध है–"उसके ऊपर लोगो की कृपा निरन्तर बढती जा रही थी और मैं नही चाहता कि खतरा भयानक रूप से बडा हो जाए। वह अपने मरने तक सब कुछ बचा और सुरक्षित देखते रहने की तमन्ना लिए खडी है, चाहे वह घी का खाली डिब्बा हो, कुर्सी हो या छोटे भाई का शरीर। प्रेम और घृणा की अस्पष्ट भावनाओ की ओर सकेत किया गया है–"यह बात दूसरी है कि बचपन मे पिता की बलिष्ठ मुट्ठी मे पकडे और बेत से बेतहाशा पीटे जाने के वक्त केवल मॉ के आने की ही प्रतीक्षा होती थी। लडका जल्दी ही इस मधुर स्मृति से बाहर निकलकर कहता है–'लेकिन अब कल और आज के तरीके से बिल्कुल सोचा नही जा सकता। तालमेल खत्म हो गया है जैसे या एक बिल्कुल बदला हुआ तालमेल बन गया है'"[47]

सम्बन्धो का उद्देश्य अगर सहानुभूति को भाई और मॉ की ओर मोडना है तो भी वक्ता की भावनाओ के ब्योरे ही बहुत से लोगो की सवेदनशीलता को अखरते हैं मॉ की ऑखो को देखकर आखिर कौन कहेगा कि "वे ऑखे इस तरह की थी जैसे खाल को चाकू से चीर दिया गया हो और लहू समाप्त होकर लपलपाती हुई सफेदी मे बदल गया हो।"[48] अधिकाश कथाकारो ने अपनी कथा मे माता–पिता और सन्तान मे से किसी एक पक्ष के साथ सहानुभूति को स्पष्ट रूप से जोडा है लेकिन ज्ञानरजन ने अपनी इस सम्बन्ध कहानी मे छाये अलगाव–बोध के लिए दोषी कोई को या फिर कोई को भी नही दोषी ठहराते हैं लेखक इस ओर सकेत करता है कि समय और परिवर्तन निश्चित रूप से पारिवारिक सम्बन्धों मे विघटन लायेगे। मधुरेश के अनुसार–" एक तेजी से सक्रमण शील समाज मे ज्ञानरजन मूल्यो के सघर्ष को तीखी विडम्बना के साथ अकित करते हैं। प्रेम विवाह और दाम्पत्य जैसी सस्थाएँ हो या फिर मॉ और पिता जैसे सम्बन्ध, लेखक को यह पाकर खुशी होती है कि अब कही भी लोग फालतू भावुक नही है चीजे जैसी वे हैं, उन्हे उनके लिए सही और वास्तविक रूप मे पकडने की कोशिश ही ज्ञानरजन की कहानियों का मूल कथ्य है।"[49]

आधुनिक नारी के परिवर्तित जीवन के कारण पारिवारिक विघटन

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय नारी के जीवन मे पर्याप्त परिवर्तन आया है पारिवारिक सन्दर्भों की दृष्टि से स्वातन्त्रयोत्तर कहानी मे इसका वर्णन मिलता है। एक

ओर जहॉ परिवार का परम्परागत स्वरूप टूटा, वहीं दूसरी ओर स्त्री स्वतन्त्रता के कारण नवयुवक स्त्रियो के स्वरूप मे परिवर्तन आया। जो स्त्रियॉ आजीविका के साधन स्वय जुटाती थी, उनकी मानसिकता मे धीरे–धीरे व्यापक परिवर्तन आया और इस प्रकार उन्होने जीवन और चिन्तन के स्तर पर पुरुषो के समान ही स्वय को प्रस्तुत करने की कोशिश की। स्वातन्त्रयोत्तर नारी के इस नये रूप को लेकर नये कहानीकारो ने अनेक कहानियॉ लिखी, जिसमे पारिवारिक विघटन से लेकर नारी के इस नये अहपोषित स्वरूप तक का चित्रण किया गया है।

आज नारी स्वतन्त्र जीवन जीना चाहती है। इसलिए वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पदार्पण कर रही है। वह पुरुष की दासी बनकर जीवन नही जीना चाहती। वह अपने जीवन का रास्ता स्वय ही तय करना चाहती है। नारी और पुरुष अपनी–अपनी जगह पूर्णत्व की खोज मे प्रयत्नशील है, किन्तु खोज की हर दिशा उनके व्यक्तित्व को खण्डित कर रही है। इस खोज मे आधुनिक नारी के कई चित्र उभर रहे हैं। परम्परागत वर्जनाओ से आधुनिक नारी जैसे–जैसे मुक्त हो रही है, नवीन समस्याओ का सामना करने लगी है। आर्थिक स्वावलम्बिता और मानसिक–स्वतन्त्रता के कारण वह अपने जीवन को अच्छा या बुरा बनाने के लिए स्वतन्त्र है। किन्तु इस आत्मनिर्भरता का यह मतलब नही कि वह बिना पुरुष के सम्पर्क के जीवन व्यतीत कर सकती है। पुरुष के साथ रहना उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है, चाहे वह परम्परागत पत्नी–धर्म का निर्वाहन करती हो। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसे कई विपरीत स्थितियो का सामना करना पडता है। विचित्र बात यह है कि आधुनिक स्त्री, चाहे वह कितनी ही स्वतत्र हो अब भी पुरुष सस्कार से आक्रान्त है। इसका एक कारण शायद यह है कि हजारो वर्षों की परम्परा से पुरुष–सस्कार का प्रभाव स्त्री के मानसिक सगठन का हिस्सा बनकर रह गया है। इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाना इतनी जल्दी सभव भी नहीं है। दूसरा कारण यह भी है कि पुरुष अब भी स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का हिमायती होकर भी, स्त्री को पुरुष सस्कार से मुक्त नहीं होने देता।

उषा प्रियम्वदा की 'मछलियॉ', शिव प्रसाद सिह की 'नन्हो' तथा मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' कहानी आधुनिक नारी के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण की कहानियॉ हैं। अपने पूर्ण व्यक्तित्व की खोज मे नारी कई बार ऐसे विविध बिन्दुओ पर आकर रुक जाती है, जहॉ उसके लिए यह फैसला करना कठिन हो जाता कि उसका मार्ग किस दिशा को जाता है। आधुनिक नारी अब उस पारम्परिक पत्नी–बोध से मुक्त हो गई है जिसमे केवल पतिव्रता धर्म ही उसके जीवन का प्रमुख सार था। अब वह पति और प्रेमी

दोनो मे वैसे कोई भेद नही करती। पति के होते हुए किसी पर–पुरुष से प्रेम करना उसके लिए पतिव्रता–भग नही है। यौन–मुक्ति जहॉ जीवन की आवश्यकता है वहॉ एक ही पुरुष के साथ सारी जिन्दगी बिताने मे क्या स्वार्थ है, किन्तु ऐसी स्थितियो मे आधुनिक नारी के मन मे द्वन्द्व चलता रहता है और वह भीतर–भीतर टूटती रहती है।

मछलियॉ

उषा प्रियम्वदा की कहानी 'मछलियॉ' परम्परावद्ध भारतीय लडकी विजी पर केन्द्रित है। विजी अपने मगेतर के साथ रहने और विवाह करने की इच्छा से भारत से अमेरिका आती है लेकिन पाती है कि उसमे अब मगेतर की कोई दिलचस्पी नहीं है। उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया अपनी बगाली प्रतिद्वन्द्विनी मुकी से प्रतिशोध लेने की है। इसी ने तो अपनी आधुनिकता से लडके को जीत लिया है। कहानी मे मनीष लडके या मुकी के लिए कोई सहानुभूति नही जगाई गयी है। मूल्यबोध की पृष्ठभूमि एक परम्परागत ढॉचे का अनुसरण करती है। भली लडकी की तरह पहले विजी इस आशा और प्रतीक्षा मे बनी रहती है कि लडके का हृदय–परिवर्तन होगा। लडके (मनीष) मे कोई व्यक्तित्व गत आकर्षण नहीं है लेकिन परम्पराओं से ग्रस्त विजी सगाई को विवाह जैसा अनुबन्ध ही मानती है। मगेतर के कैनाडा चले जाने और उसे पुन पाने की सभी सम्भावनाओ के नष्ट हो जाने के बाद वह नटराजन की तरफ ध्यान देना शुरू करती है जिसने उसके आगमन के समय ही उससे दोस्ती कर ली थी। मगर यहॉ भी बहुत देर हो चुकी है। नटराजन मुकी के साथ विवाह की योजना बना रहा है। नटराजन का मुकी के साथ कोई शारीरिक सम्पर्क नही रहा है, वह उसके प्रति आकर्षण का कारण स्वय समझ नहीं पाती है। क्योकि परम्परागत भारतीय वातावरण से बाहर निकलकर उन मनोवैज्ञानिक तत्वो के विश्लेषण की योग्यता विजी मे नही है। जो ऐसे प्रेम–सम्बन्धो मे सक्रिय रहते हैं। दोनो पुरुषो को खो देने का दोष मुकी पर डालते हुए वह उससे यह कहकर बदला लेती है कि वह नटराजन के साथ प्रेम व्यापार चलाए हुए है। अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद मुकी भी स्थिति के विश्लेषण व परीक्षण के लिए तैयार नही है। केवल मुकी के कथन के आधार पर ही वह नटराजन के साथ निश्चित हुए विवाह को झट तोड देती है।

'मछलिया' मे भारतीय और अमरीकी सस्कारो की टकराहट उजागर होती है। विजी जो भारतीय परिवेश मे पली एक लडकी है, अमरीकी वातावरण मे अपने–आपको मिसफिट पाती है इसके माध्यम से कथाकार ने प्रेम–सम्बन्धो के खोखलेपन को व्यक्त किया है। मछलिया मे चार व्यक्तियो को आधार बनाया है–विजी,

मनीष, नटराजन और मुकी। अनमे आपसी सम्बन्ध सुलझते कम हैं, उलझते अधिक हैं और उलझन एक तरह की गुजलक बनती गई है। इन चार व्यक्तियो के आपसी सम्बन्धो मे तीन तिकोन बनते हैं—विजी—मनीष—नटराजन, विजी—मनीष—मुकी और मुकी—नटराजन—विजी। इन तिकोनो, हर व्यक्ति दो के बीच तीसरा बनकर आता है और तीसरा व्यक्ति सम्बन्धो मे पेच डाल देता है। 'मछलिया' कहानी मे विजी हर तिकोन मे है, लेकिन तीसरे तिकोन मे वह तीसरा बिन्दु बनकर रह जाती है। उसकी वफादारी कहानी के अन्त तक मनीष के लिए बनी रहती है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार—"आधुनिक पारिवारिक विघटन की समस्या मछलियॉ मे ऑका गया है। इसलिए इसमे 'वापसी' कहानी की सरलता नहीं है, सम्बन्धो की जटिलता है। इसे पॉच तरह के सम्बन्धो मे आका जा सकता है—विजी—मनीश, विजी—नटराजन, मुकी—नटराजन, मनीष—मुकी और विजी—मुकी इनके सम्बन्धो मे तनाव है जो आधुनिकता के बोध को उजागर करता है।"[50] हर सम्बन्ध पूरा न होकर अपनी जगह अधूरा और कटा हुआ है। इसके बावजूद प्रेम की सबसे अधिक मधुरता विजी और नटराजन के सम्बन्धो मे है और सबसे अधिक कटुता विजी और मुकी के तनाव मे है—"अब मुकी की गर्दन पकडकर उसे भीचने की इच्छा होती है, मन होता है कि उसकी काफी मे जहर पिला दे, उसके एपार्टमेण्ट मे आग लगा दे और सिल्क की तहो मे लेटी मुकी लपटो मे घिर जाये और उसकी चीखे और चटखती लकडियो मे खो जाये। विजी चाहती है कि कुछ ऐसा कर सके जिससे मुकी तडपकर रह जाये, जिससे बहुत—बहुत दिनो तक उसके मुख पर हॅसी न आये, और वह ऊॅचा, दर्प भरा सिर नीचे झुक जाये।"[51]

डॉ0 गार्डन चार्ल्स एडरमल के अनुसार—"पाठक की सहानुभूति शायद विजी के साथ रहती है क्योकि वह परम्परागत पृष्ठभूमि से आयी है और अपने लिए चुने गये पुरुष के प्रति वफादार रहने की पूरी कोशिश करती है। परम्परागत भारतीय वातावरण से बाहर निकलकर उन मनोवैज्ञानिक तत्वो के विश्लेषण की योग्यता उसमे नही है जो ऐसे प्रेमसम्बन्धो मे सक्रिय रहते हैं"[52] विजी पर भारतीय सस्कार हावी हैं और वह अपने प्रेम मे दृढ है। उसे मुकी का यह कहना कि मनीष के लौटने पर इस बात को सामने करेगे कि उनकी भावी पत्नी को उनके एक मित्र ने हडप लिया है, विजी को बुरा लगता है। मनीष के साथ सम्बन्ध टूट जाने पर भी विजी नटराजन को एक मित्र की तरह समझाती है। वह प्रेमी या पति उनकी दृष्टि मे कभी हो ही नही सकता। डॉ इन्द्रनाथ मदान के अनुसार—"इसका अत भी खुल जाने की गवाही देता है जब मुकी नटराजन के घोषित विवाह पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। इनके टूटते सम्बन्ध मे

आधुनिकता की सवेदना है।"[53] मछलिया कहानी मे एक नया मोड आता है। विजी और मनीष के बीच नटराजन नही आता, मुकी आ जाती है और मुकी के निकट आकर मनीष यह अनुभव करने लगता है कि विजी के लिए उसके मन मे अब कुछ नही रह गया है। वह सीधी और सरल लडकी है और इसलिए आधुनिक नही है। उसमे मनीष को बॉधने के लिए न तो मानसिक गहराइयॉ हैं और न ही वह उसे सन्तोष दे सकती है। उसे तो ऐसी पत्नी चाहिए जो मुकी जैसी कलात्मक और यौगिक हो। मुकी की अपनी स्थिति स्पष्ट है कि वह यदि मनीष को विजी से बेहतर लगती है तो इसमे उसका दोष नही है और न ही यह उसका अपराध है विजी के लिए यह स्थिति असह्य है। विजी इन दोनो के प्रेम–सम्बन्ध से परिचित होकर शोर मचाती है–"आज भी नारिया ईर्ष्या से जल रही हैं, वे किसी औरत के बनते कामो को फूटी ऑखो नहीं देख सकती हैं।"[54] एक नया मोड मनीष–मुकी के टूटते सम्बन्ध की ओर भी उठता है। मनीश को मुकी भी नही बॉध सकी। वह यह अनुभव करने लगती है कि मनीष ने विजी से छुटकारा पाने के लिए उसका नाम बीच में घसीट लिया है। उधर विजी इस परिणाम पर पहुँचती है कि मनीष की जगह नटराजन तो ले नही सकता, लेकिन वह नटराजन के साथ नयी जिन्दगी घड सकती है। इस बीच नटराजन और मुकी अपने गठबधन का निश्चय कर चुके हैं। नटराजन इस परिणाम पर इसलिए पहुँचता है कि मनीष के लिए विजी के मन मे उतना ही प्यार है जितना की पहले था। मुकी के साथ अपना विवाह सम्पन्न कर नटराजन अनुभव करता है कि विजी जितनी मन मे अपनी है, वह मुकी कभी नही हो सकती। नटराजन की इस कमजोरी का लाभ उठाते हुए विजी, मुकी से बदला लेने का और उसे नीचा दिखाने का निश्चय करती है। वह नटराजन को लिफ्ट देती है और भारत लौटने के लिए उससे एक हजार डॉलर माग लेती है। वह अमरीका से विदा लेने से पहले मुकी को यह भी बता देती है कि नटराजन उसे बराबर मिलता रहा है और यह पैसा उसे इसलिए दिया गया है कि ताकि वह डाक्टर के पास भी जा सके और भारत भी लौट सके। इस तरह उषा प्रियम्वदा ने कहानी मे इनके आपसी सम्बन्धो के विघटन के बीच एक और पेच डाल दिया है। कहानी का अन्त एक सकेत से किया गया है कि विजी, एक छोटी मछली भी पलटकर मुकी पर, बडी मछली पर बदला लेने के लिए भरपूर वार करती है जिससे मुकी और नटराजन का गठबन्धन एक बार तो खटाई मे पड ही जाता है।

निष्कर्ष रूप मे कान्ता (अरोडा) मेहदीदत्ता ने इस कहानी का विश्लेषण इस प्रकार किया है–"मछलिया एक जटिल मानसिकता की कहानी है। इस जटिलता

की स्थिति को पॉच विविध स्तरो पर अकित किया गया है–विजी–मनीष,विजी–नटराजन, मुकी–नटराजन, मुकी–मनीष, मुकी–विजी इनके पारस्परिक सम्बन्धो में तनाव को ही कहानी का आधार बनाया गया है। कहानी मे अधिकाशत भावनाओ के स्तर पर उलझने हैं, केवल अत मे मोहभग की अनुभूति मुकी और नटराजन के सम्बन्ध विच्छेद के साथ धनी हो पायी है। कहानी मे मछलियो का सकेत कहानी के भीतर से उभरकर इसके अनेक स्तरो को अन्वित के एक ही धागे मे बॉधे रख सका है। यह इसलिए भी सभव हो सका है कि कहानी के मूल स्वर मे व्यक्ति की मानसिक विरूपताऍ, उच्चाकाक्षाऍ, अभावपूर्ति के लिए प्रयोग मे लाया जाने वाला नारी सुलभ छल गहराता गया है, हॉलाकि इसे वर्गीय मानसिकता तक खींच लाने का प्रयास इस कहानी को एक विशिष्ट नारी की मानसिकता की कहानी बना देता है।"[55]

नन्हों

नन्हो शिव प्रसाद सिह की एक सशक्त कहानी है। जिसमे भारतीय नारी के अनन्य प्रेम का चित्रण है। 'नन्हों' मॉ बाप द्वारा निश्चित किये अपने भाग्य को भाग्य मान लेती है। नन्हों के माता–पिता एक विश्वासघात के चक्कर मे फॅसकर विकलाग व्यक्ति से उसकी शादी कर देते हैं, कुछ दिनो बाद नन्हो का पति स्वर्ग सिधार जाता है, फलस्वरूप देवर रामसुभग उसकी देखरेख में रह जाता है, मूलरूप से नन्हों के माता–पिता ने रामसुभग से ही शादी का प्रस्ताव रखा था परन्तु बाद मे लडका बदलकर नन्हो की शादी मिसरीलाल से हो गयी थी। अत ममेरा भाई होने के कारण नन्हो उसे देवर ही मानती थी, एक सहज आकर्षण मे रामसुभग उसे (नन्हो) प्यार करना चाहता है परन्तु नन्हो विधवा से सधवा नहीं होना चाहती है यह उसके चरित्र की विशेषता है जो पुरानी मान्यताओं की ओर सकेत करता है।

शिव प्रसाद सिह की नन्हों कहानी मे पारिवारिक विघटन पति–पत्नी के बीच एक तीसरे व्यक्ति के आ जाने से होता है। यह एक सशक्त कहानी है जिसमे भारतीय नारी के अनन्य प्रेम का चित्रण है। नन्हो मॉ बाप द्वारा निश्चित किये गये अपने भाग्य को भाग्य मान लेती है तथा शादी के कुछ ही दिनो बाद जीवन पर्यन्त विधवा हो जाती है। देवर रामसुभग के प्रयत्न करने पर भी वह उससे यही कहती है कि वह अपने वैधत्य को छोडकर सधवा नही होना चाहती। यह उसके चरित्र की विशेषता है। नन्हो एक भारतीय सस्कारो मे पली बढी स्त्री है। सप्तशती को नन्हो दिल से मानती है और जो उसके साथ घटित होता है उसे भूलना चाहती है परन्तु रामसुभग जो देवर है भाभी को नही भूल पाता है उन्मादवश अपनी भौजी की बॉह पकड लेता है। नन्हो कहती

है—"सरम नही आती तुम्हे । नन्हो सापिन की तरह फुफकारती हुई बोली, 'बडे मर्द थे तो सबके सामने बॉह पकडी होती, तब तो स्वाग किया था, दूसरे के एवज बने थे, सूरत दिखाकर ठगहारी की थी, अब तुम्हे दूसरे की बहू का हाथ पकडते सरम नही आती।"[56] रामसुभग के अन्तरमन मे दबी वासना, नन्हो के प्रति आकर्षित करती रहती है परन्तु इस अपमान ने उसे घर छोडने पर मजबूर कर दिया। डॉ0 मिथिलेश रोहतगी के अनुसार—'अपनी कर्तव्य भावना को विजयी बनाकर आदर्श विधवा का जीवन जीने का प्रयास करती है पर राम सुभगसिह को मन से नही निकाल पाती। नन्हो की विशेषता है कि जब वह चूडियॉ पहनना नही जानती थी, जबरदस्ती पहना दी गई। अब जब वह उतारना नहीं चाहती थी, उतार दी गई हैं।"[57] शादी ब्याह दो दिलों का सगम होता है और वह औरत जो अपनी शादी पर न सोचे और एक ऐसी औरत जिसकी शादी उसकी जिन्दगी मे दस्तावेज बन गयी हो जिन्दगी सिर्फ नन्हो की गिरो ही नही बनी बल्कि उसने तो नन्हो के समूचे जीवन को रेत–भरी परती की तरह वीरान भी कर दिया। पति मिसरी लाल लगडा उस पर अकाल मृत्यु ने अदर से उसे तोडकर रख दिया। अब देखभाल के लिए रामसुभग ही बचा था। परन्तु पिछली घटना ने उसे नन्हो के आगे आने मे साहस से पराजय करनी पडी, उसे इतना भी साहस नही हुआ कि उसे सात्वना भी दे सके—"कॉच की चूडियॉ भी किस्मत का अजीब खेल खेला करती हैं। नन्हो जब इन्हें पहनना नही चाहती थी तब तो ये जबरदस्ती उसके हाथ मे पहनायी गयीं, और अब जब वह इन्हें उतारना नहीं चाहती, तो लोगो ने जबरदस्ती हाथो से उतरवा दी।"[58] अपनी गलतियो के प्रति जब रामसुभग भौजी से माफी मागता है तो नन्हो कहती है—"कसूर कैसा लाला तुम जिसे कसूर कहते हो वह मेरे भाग्य का फल था। तुम समझते हो कि बाबूजी को कुछ नही मालूम था। मालूम तो उन्हे तभी हो गया जब डोला भेजने की बात हुई। बिगडने वाली बात को सभी पहले से जान लेते हैं, जिनके पास बल है, उसे नही होने देते, जो कमजोर हैं उसे धोखा देकर छिपाते हैं।"[59] कलकत्ता से आया रामसुभग को अपने प्रति भौजी के दृष्टिकोण मे परिवर्तन नजर आता है उसके मन मे एक नया उत्साह पैदा होता है और वह सोचता है कि —"क्या भाग्य की गणना फिर सही हो जायेगी? पर नन्हो से कुछ कह पाना उसके लिए सदा ही कठिन रहा है। वह आज भी पिछली घटनाओ को भूला नहीं था, पर नन्हो भी तो ऐसी पहले न थी।"[60] मधुरेश के अनुसार—"इसमे स्त्री प्रेम को अवरुद्ध औरकुठित करने वाली सामाजिक सरचना को विश्लेषित करने की कोशिश प्रमुख दिखाई देती है। नन्हो सामाजिक–विधि निषेधो को, उसमे निहित पीडा और अवसाद को, गहरी सवेदनशीलता

से उभारती है। आवेग और अवरोध का तनाव कहानी मे बहुत जीवन्त और विश्वसनीय रूप मे अकित हुआ है। मुँह दिखाई मे दिया गया रुमाल रामसुभग को लौटा देने से ही समाप्त नहीं समझा जा सकता।"[61] एक जवान स्त्री का पति यदि स्वर्ग सिधार गया हो और वह असमय विधवा हो, गयी हो साथ ही सामने एक जवान खूबसूरत नौजवान जिसे वह स्त्री अपना पहला प्यार मानती हो और समय की क्रूर विडम्बना उसे वह सब करने से रोके जो उसे प्रकृति की तरफ से सहज रूप मे प्राप्त हुआ है। नन्हो का यह दुःख उसका दुखी देवर रामसुभग समझता है परन्तु अब नन्हों कहती है कि "लाला मैं तो दुख की साझीदार हूँ, सुख कहाँ है अपने पास, जो दूसरो को दूँ। उदासी मे पली, उदासी मे ही बढी। जन्मी तो माँ मर गयी, बडी हुई तो बाप की बोझ बनी। मैं भला दूसरे की उदासी क्या दूर कर सकूँगी।"[62] नन्हो की यह उदासी समय की क्रूर नियति ने पैदा की है कुछ उसके सस्कारो के बँधे होने के कारण जो न चाहते हुए भी उसे रामसुभग से सम्बन्ध स्थापित करने से रोकती है। हॉलाकि रामसुभग यह सब चाहता है परन्तु पुरानी घटनायें उसे ऐसा नही करने देती हैं, अन्त मे रामसुभग ने भौजी नन्हो के घर से अपने घर जाने की आज्ञा माँगी तो–"नन्हो ने आचल से हाथ निकाला और रामसुभग की ओर हाथ बढाकर कहा, यह तुम्हारा रुमाल है लाला।"[63] एक बार तो ऐसा लगा जैसे नन्हो ने रुमाल देकर रामसुभग से अपने सम्बन्धो को बिल्कुल समाप्त कर लिया और रामसुभग को मानो काठ ही बना दिया हो पर नन्हो के स्पष्टीकरण ने उसे भविष्य के प्रति सचेत कर दिया। नन्हो कहती है–"बाबू ने तुम्हारा मुँह देखकर मुझे अनदेखा सुहाग सौंपा था, तुम्हारी माँ ने उसी के अमर रहने के लिए रूपये दिये थे, आशीर्वाद मे। बडो ने जो दिया उसे मैने माथे पर ले लिया। मैं कमजोर थी बाबू, भाग्य से हार गयी। पर आज तो मैं अपने पैरो पर खडी हूँ, आज तुम मुझे हारने मत दो। तुम्हारा रुमाल मेरे पाँव बाँध देता है लाला, इसे लौटा रही हूँ, बुरा न मानना। . रामसुभग ने धीरे से रुमाल ले लिया। नन्हो उसका जाना भी न देख सकी। आँखे जल मे तैर रही थी। दीये की लौ जटामासी के फूल की तरह कई फाको मे बँट गयी। नन्हो ने किवाड तो बन्द कर लिया, पर साँकल न चढा सकी।"[64] यह सामान्य अह नन्हो को रामसुभग की ओर आकर्षित होने से रोकता है और वह अदर ही अदर टूटती विखरती जाती है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि यह इड और इगो का सघर्ष है–" नारी जन्य स्वाभाविक इच्छा उसे (नन्हो) रामसुभग की ओर आकृष्ट करती है, पर पतिव्रत धर्म और सासारिक मर्यादा और रिश्ते का यथार्थ उसके पैर रोक देते हैं।

इसलिए किवाड बन्द करके भी वह कुण्डी नही चढा पाती। इड और इगो यही सघर्ष नन्हो का कथ्य है।"[65]

यही सच है

मन्नू भडारी की कहानी 'यही सच है' की नायिका दीपा एक पढी–लिखी लडकी है। किशोरावस्था में वह निशीथ के सम्पर्क मे आती है और उससे प्रेम करने लगती है। वह रात–दिन उसके प्रेम मे खोई रहती है। कुछ समय बाद निशीथ कहीं बाहर चला जाता है और फिर लौटकर नही आता। दीपा धीरे–धीरे उसे भूलती चली जाती है। बाद मे सजय उसके जीवन मे आता है और दीपा उसके प्रति आकर्षित हो उससे प्रेम करने लगती है। सजय के प्रति उसका यह प्रेम उसके ह्रदय से निशीथ के प्रति प्रेम को पूरी तरह से भुला देता है। अब वह सजय के प्रेम मे ही पूरी तरह से डूबी रहती है, इस समय निशीथ की उसे याद तक नही आती। उसे लगता है कि निशीथ से उसका प्यार करने लगना उसकी किशोरावस्था की मूर्खता मात्र थी। वह सोचती है कि किशोरवस्था के प्रेम में केवल वेग होता है, गहराई नही रहती। इसी कारण वह जिस तीव्र गति से उठता और पनपता है, उतनी ही तेजी से शीघ्र समाप्त भी हो जाता है और तब अपने उस प्रेम और प्रेमास्पद के लिए दीया के मन मे एक गहरी उदासीनता और विरक्ति भर जाती है परन्तु जब निशीथ उस शहर को छोडकर चला गया था, तब दीपा स्वय को कितनी अकेली और असहाय महसूस करने लगी थी। परन्तु अब सजय के प्यार को पाकर तो उसे ऐसा लगता ही नही कि उसने जीवन मे निशीथ से कभी प्यार भी किया था उस पहले प्यार को उसकी सम्पूर्णता मे कभी जिया भी था। अब तो सजय ही उसका सर्वस्व बन गया है, वह अहर्निश उसी के प्रेम मे डूबी रहती है।

कहानी 'यही सच है' पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन की दृष्टि से एक नया आयाम उत्पन्न करती है। यह एक घोर यथार्थवादी प्रेम–कहानी है। इसमे प्रेम सम्बन्धो के पुराने आदर्श परक रूप की पूर्ण अवहेलना करते हुए नर–नारी के पारस्परिक प्रेम सम्बन्धो को एक तर्क पूर्ण यथार्थवादी दृष्टि से समझने–समझाने का प्रयत्न किया गया है। दीपा के जीवन मे दो प्रेमी एक के बाद दूसरे क्रम मे आते हैं, वह परिस्थिति वश कभी सजय की ओर झुकती है और कभी निशीथ की ओर। वह जिस स्थिति मे होती है और उस स्थिति मे उसका जो प्रेमी उसके निकट सम्पर्क मे आ जाता है, वह उसी के प्रति अपने प्रेम को सच्चा समझने लगती है। सजय के प्यार ने उसके खालीपन को भरा और उसे महसूस ही नही हुआ कि उसने कभी निशीथ जैसे प्राणी से प्रेम किया था। एक बार नौकरी के 'इन्टरव्यू' के सिलसिले मे दीपा कलकत्ता जाती है।

वहाँ रेस्तरा मे अचानक निशीथ से उसकी मुलाकात हो जाती है पहले तो दीपा केवल औपचारिकता निभाती है परन्तु निशीथ की सहायता ने दीपा को एक बार उसकी अतीत की स्मृतियो को जगा दिया और वह निशीथ के प्रति सहानुभूति और आत्मीयता के साथ पेश आने लगती है। निशीथ के उस अव्यवस्थित और उखडे हुए से जीवन को देख दीपा यह महसूस करने लगती है कि उसकी इस दशा के लिए वह स्वय जिम्मेदार है। दीपा सोचती है कि उसके विरह मे ही निशीथ ने अपनी यह हालत कर रखी है। निशीथ का अविवाहित रहना, साथ ही मुलाकातो मे मौन रहने की प्रवृत्ति दीपा को शकित कर देता है। वह सोचती है–"मैं जानती हूँ, तुम कुछ नही कहोगे। सदा के मितभाषी जो हो। फिर भी कुछ सुनने की आतुरता लिए मैं तुम्हारी तरफ देखती रहती हूँ। पर तुम्हारी नजर तो लेक के पानी पर जमी हुई है शानित, मौन। और आत्मीयता के ये क्षण अनकहे भले ही रह जाएँ, पर अनबूझे नही रह सकते। तुम चाहे न कहो पर मैं जानती हूँ तुम भी मुझे अपना ही समझते हो। तुम जानते हो, आज भी दीपा तुम्हारी है।"[66]

मन्नू भण्डारी प्रेम की विषम परिस्थितियो मे नारी के निर्णायक क्षण को द्वन्द्व के रूप मे चित्रित करती हैं। उनकी नारी जटिल परिस्थिति मे अनिश्चय के मध्य खडी हुई है। व्यापक सामाजिक सन्दर्भो मे उनका यह व्यष्टि–चितन सवेदना के आधार पर किया गया है। 'यही सच है' की दीपा इसी प्रकार की पात्र है वह सजय और निशीथ दोनो मे से किसे चुने, निर्णय नही कर पाती। कलकत्ता प्रवास मे निशीथ के सम्पर्क ने दीपा को यह सोचने पर मजबूर किया कि व्यक्ति का पहला प्यार ही सच होता है फलस्वरूप वह मन ही मन निशीथ को प्यार करने लगती है। सजय के प्रति उसका दूसरा प्यार तो, निशीथ के चले जाने पर, उसके उस प्यार के अभाव की पूर्ति मात्र था। वह सचमुच प्यार नही था। वह तो उसके माध्यम से निशीथ को भूलने का प्रयत्न कर रही थी। वह अपने आप मे एक भुलावा भर था। उन क्षणो मे वह सोचती है कि उस समय सजय ने उसके प्रति जो सहानुभूति और सम्वेदना प्रदर्शित की थी, उसी के आभार स्वरूप वह सजय के प्रति आकर्षित हो उठी थी। यह सोचती हुई वह अपने उस प्रथम प्रणय के सुखद सपनो मे खो जाती है। उसका मन करता है कि वह निशीथ को यह बताकर कि सजय के साथ उसकी शादी होने जा रही है, उसके मन मे कचोट उत्पन्न कर दे और इसी सन्दर्भ मे वह सोचती है कि क्या जो निशीथ मे उसे सहज मिला और सजय मे खोजने पर भी नही मिल सका और यह सब सोचते हुए उसे लगता है कि निशीथ के प्रति उसका प्यार ही सच है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के

कथनानुसार–"मन्नू भण्डारी ने प्रेम को आधार बनाकर भी कहानियाँ लिखी हैं। इस दृष्टि से 'यही सच है' उनकी सफल कहानी है। इस कहानी मे प्रेम तिकोन को एक नई दृष्टि से उठाया गया है।"[67] दीपा सजय एव निशीथ के सम्पर्को को समय के अनुसार पूरा तवज्जो देती है। क्योकि अपने कलकत्ता प्रवास मे दीपा ने जितने दिन गुजारे वह निशीथ के रोमान्टिक प्रेम मे डूबी रही और मन मे उसी प्यार की गहरी छाप लिए कानपुर लौट आती है। कानपुर लौटकर भी वह बराबर अपने पहले प्यार की गहरी अनुभूति मे डूबी रहती है, बराबर निशीथ के प्रेमपत्र की प्रतीक्षा करती रहती है। अब उसका मन सजय से भी मिलने को नही करता। उसे कलकत्ता से लौटे बहुत दिन बीत गये हैं, परन्तु निशीथ का एक भी पत्र नही आता। काफी लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त वहाँ से समाचार आता भी है तो उसकी कलकत्ता रहने वाली सहेली द्वारा भेजे गये तार के माध्यम से। उसमे इरा उसे उसकी नियुक्ति की सूचना और बधाई देती है। उस तार को पढकर दीपा को यह धक्का लगता है कि उसे यह सूचना निशीथ ने स्वय क्यो नहीं दी, यह उसी की भाग–दौड का फल था। निशीथ द्वारा की गई अपनी इस उपेक्षा से दीपा के मन को बडी ठेस पहुँचती है और वह डगमगाने लगती है, यह सोचकर कि क्या निशीथ उससे प्यार नही करता? अपनी उसी अस्थिर मन स्थिति मे जब वह अपने कमरे मे सजे डरे परदे, बुकरैक, फूलदान टेबल आदि को देखती है तो उसे सजय की याद हो आती है, क्योकि ये सारी चीजे सजय ने ही उसे उपहार मे दी थी। पर तभी उसके मन मे सूनापन भर आता है और उस सूनेपन पर निशीथ की याद उभर आती हैं।

निशीथ का कलकत्ते से औपचारिक पत्र दीपा को आहत कर देता है वह स्वय को बिखरा–बिखरा सा महसूस करती है, उसका मन अवसाद से भर जाता है। निशीथ के प्रति उसकी सारी कोमल भावनाएँ चूर–चूर हो जाती हैं। तभी एक दिन सजय अचानक उसके पास पहुँच जाता है और उसे देखकर भाव–विह्वल हो उठता है, वह रजनीगन्धा के ढेर सारे फूल लिए मुस्कराता उसके सामने आ खडा होता है। दीपा, सज्ञाहीन सी क्षण भर उसे देखती रह जाती है, जैसे पहचानने का प्रयत्न कर रही हो। फिर, जैसे उसकी खोयी हुई चेतना लौट आई हो, वह विक्षिप्त सी दौडकर उससे लिपट जाती है। भाव विह्लता के उन क्षणो मे जैसे उसके अन्तर मे छिपा सत्य निकला हो, वह सजय से आतुर सी होकर कहती है–"तुम कहाँ चले गए थे सजय।"[68] वह सजय की बाहो मे समा जाती है। और उन्ही क्षणो मे दीपा के सामने एक और सत्य उभरता है कि यही सच है यह स्पर्श, यह सुख, यही क्षण ही सत्य है, वह जो बीत गया–सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार–"इस कहानी मे आत्मीयता के

क्षण ही सच हैं, भले ही वह अनकहे रह जाये। कहानी मे उसी सच की अभिव्यक्ति है।"[69] कला जगत मे एक सिद्धान्त मान्य है—क्षणवाद। जीवन में हमें सुख के प्राप्ति के जो क्षण मिल जाये, वे ही अपने होते हैं। हमे उनकी अवहेलना कर अप्राप्य की मृग मरीचिका मे नही भटकना चाहिए। दीपा मानो इसी क्षणवाद मे आस्था रखने वाली एक सामान्य चरित्र वाली लडकी है। कुछ लडकियाँ ऐसी होती हैं कि बहुत जल्दी ही दूसरो से प्रभावित हो उठती हैं, उनके प्रति जो भी व्यक्ति सहानुभूति और सम्वेदना दिखाता है, वे उसी से प्रभावित हो प्रेम करने लगती हैं। उनके लिए प्रेम की एकनिष्ठता, शाश्वतता आदि अपरिचित से शब्द होते हैं। ऐसी लडकियाँ अत्यधिक भावुक होती हैं और भावुक व्यक्ति अस्थिर स्वभाव का होता है। दीपा ऐसी ही भावुक लडकी है। ऐसी लडकियाँ जब किसी से प्यार करने लगती हैं, तो उसी प्यार को सच समझ रात–दिन अपने प्रेमी के ध्यान मे ही डूबी रहती हैं। प्रेम करना उनका स्वभाव सा बन जाता है। वस्तुत इस क्षण को कथा साहित्य मे एक कमजोर लडकी की कहानी कहा जा सकता है और समाज मे ऐसी कमजोर लडकियो की कोई कमी नहीं है। इसी धरातल पर आकर यह कहानी विशुद्ध यथार्थवादी बन जाती है। दीपा परिस्थितियो के विरुद्ध सघर्ष नही कर पाती। नई परिस्थितियाँ उसे प्रभावित कर अपने अनुसार मोड लेती हैं। उसका प्यार परम्परावादी रोमाटिक प्यार के समान न तो आदर्शवादी ही है और न विरहवादी। विरह उसे सताता अवश्य है, परन्तु अधिक समय तक नहीं। उसका सरल और भोला भावुक मन वर्तमान को ही सत्य समझ अतीत से अपना पीछा छुडा लेने मे किसी भी प्रकार के सकोच का अनुभव नही करता।

दीपा वह नारी है जो कार्यशील बनकर आत्मनिर्भर बनती है जीवन को भटकाने वाले भावुक क्षणो मे वह अधिक देर न बहकर ठोस वर्तमान मे लौट आती है जीने के लिए। दीपा अब तक की प्रचलित प्यार की रूमानी, आदर्शवादी तसवीर को तोडती है। प्यार की दो स्थितियो को वह अपने अनुभूति के क्षणो मे सम्पूर्णता से स्वीकार करती है और उनके आनुषगिक अनुभवो को भोगती है। स्थिति के गुजर जाने के बाद वह व्यर्थ ही उसके पीछे छूटे हुए अवसाद से देर तक नही चिपकी रहती, उससे ऊबकर दूसरे विकल्प को अपनाने की भी क्षमता रखती है। इस अर्थ मे अपनी समकालीन अन्य कहानी–नायिकाओ से वह भिन्न है। परिन्दे की लतिका से भी वह अलग है विगत से चिपके रहने की लतिका वाली रोमाटिक जिद दीपा मे नहीं है। यो वह आधुनिक नही है। एक तरफ वह हिन्दुस्तानी लडकी की बहुत सारी कमजोरियाँ लिए हुए है। पर, प्यार की तरफ उसकी अप्रोच जरूर आधुनिक है। दो प्यार के बीच

उसकी उडेलती मन स्थिति किसी अस्थिर मन की द्योतक नहीं, भाव प्रवण लडकी के व्यक्तित्व की एक अनिवार्य स्थिति मात्र है ऐसे क्षण शायद सभी सवेदनशील व्यक्तियो के जीवन मे आते हैं, जब उन्हे दोनो ध्रुवो का सत्य बराबर उचित लगने लगता है।

इस तरह 'यही सच है कहानी' बीसवीं सदी की प्रेमिका के एक नये बदलते रूप रग की तस्वीर प्रस्तुत करती है। आज प्रेमिका की भूमिका ही नही बदली है, उसे अर्थपूर्ण बनाने वाले सम्बन्धित मूल्य भी क्रमश बदलते चले गये हैं। भावुक, रोमाटिक, आदर्शवादी, अमूर्त प्रेम–मूल्य की जगह यथार्थवादी भौतिक आत्मीय प्रेम ने ले ली है जिसमे गहराई भी है और सम्प्रेषण भी है। पहले के भावात्मक प्रेम की तरह वह मौन नही है। दीपा का यही सच है का प्यार इसी परिवर्तित प्रेम मूल्य का अवश्यम्भावी बोध कराता है।

बदलते स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के कारण पारिवारिक विघटन

देश की आजादी के बाद स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में एक विशेष परिवर्तन नजर आता है। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है जिसे स्वातन्त्रयोत्तर सभी कहानीकारों ने अपनी कहानियो मे रूपायित करने का प्रयत्न किया है। तमाम दुनिया की भाषा कुल मिलाकर दो स्त्री–पुरुषो की बातचीत है जो उनके सम्बन्धों के मुताबिक बदलती रहती है। राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, श्री कान्त वर्मा आदि अनेक समकालीन कहानीकारों ने स्त्रीरुपुरुष के पारस्परिक सम्बन्धो में होने वाले इसी परिवर्तन का चित्रण किया है। चाहे वह सम्बन्ध पति–पत्नी का हो या प्रेमी–प्रेमिका का, उनका जो स्वरूप आज की कहानियों मे देखने मे आता है वह पूर्ववर्ती कहानियो मे चित्रित स्त्री–पुरुष के सम्बन्धो से नितान्त भिन्न है।

आज स्त्री और पुरुष दोनों स्वतन्त्र व्यक्तित्व चाहते हैं। यही कारण है कि आज विवाह जैसे परम्परागत बन्धन ढीले पड गये हैं। एक जमाना था, जब किसी पिता की पुत्री किसी पिता के पुत्र के साथ एक झटके के साथ जुड जाती थी। अग्नि और ब्राह्मणो की साक्ष्यो मे, जाति के कुछ सदस्यो की उपस्थिति मे सात फेरे खाकर पुरुष के साथ जन्म–जन्मान्तर के लिए हो जाती थी। विवाह एक आकस्मिक घटना थी। वह एक एक्सिडेन्ट मात्र था। पति अच्छा हो या बुरा, जुल्मी हो या दयालु, शराबी हो या जुआरी, पत्नी के साथ ईमानदार हो या न हो, स्त्री की जीवन–चर्या मे वैसे कोई फर्क नही पडता था। भाग्य और भगवान पर भरोसा रखकर पति सेवा मे सारी जिन्दगी बिता देने के अभिशाप को झेलना उसकी मजबूरी थी। वह विवाह से पहले पिता की पुत्री,

विवाह के बाद पति की पत्नी और उसके बाद पुत्रो की मॉ इन रूपो मे जिन्दगी भर गुलाम बनकर रहती थी। पर आधुनिक नारी कानूनी रूप से और उससे ज्यादा आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है। उसकी आर्थिक स्वावलम्बिता ने उसे अपने लायक पुरुष चुनने एव न चुनने की शक्ति दी है। यही कारण है कि परम्परागत विवाह सस्था नाकारा साबित होने लगी है। एक ओर पुरुष स्वतन्त्र रूप से 'सेक्स जीवन की माग कर रहा है तो दूसरी और स्त्री विवाह–सस्था को अपने व्यक्तित्व रक्षा के अनुसार मोडना मरोडना चाहती है। इन दो मॉगों के आपसी तनाव पर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के कई प्रश्न समस्याओ का नैरन्तर्य बरकरार है। इस पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं–"कहानीकारो (साथ ही उपन्यासकारों) ने यदि सबसे अधिक लिखा है तो जीवन के बदलते हुए पति–पत्नी, या कहना चाहिए स्त्री–पुरुष के नये सम्बन्धो के बारे मे।" कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' एक ऐसी पात्र है जो सामाजिक मर्यादाओ को ताक मे रखकर सारे परम्परागत निषेधों को एक ही झटके मे खत्म कर देती है। राजेन्द्र यादव की 'टूटना' का नायक किशेर भी सामती अभिजात्य मे पली लीना से सामजस्य नही बिठा पाता और दोनों अदर ही अदर टूटते–बिखरते रहते हैं।

मित्रो मरजानी

'मित्रो मरजानी' कृष्णा सोबती की एक लम्बी कहानी है। गुरदास घर का मुखिया है। पत्नी धनवन्ती सहित तीन पुत्र एव उनसे तीन पुत्र वधुएँ हैं। प्रमुख कथानक द्वितीय पुत्र सरदारी लाल एवम् उसकी पत्नी मित्रो को लेकर घूमता रहता है। मित्रो मरजानी नई धारणाओ मे विश्वास करने वाली असाधारण व्यक्तित्व तथा असाधारण चरित्र की नारी है। मित्रो मरजानी चूँकि अवैध सतान है इसलिए उसपर अपनी मॉ सहित ससुराल का दबाव नहीं रहता है। अत उसका चरित्र अत्यन्त उन्मुक्त, मन अत्यन्त उच्श्रृखल मद–मदान्ध हाथी के सदृश मस्त है। वह अपने पति सरदारी लाल से सतुष्ट नहीं है। उस पर पौरूष हीनता का आरोप लगाकर मित्रो मरजानी स्वय दूसरे पुरुषो के प्रति आकर्षित है। वह अपनी सास धनवन्ती से अपने पति की पौरूष हीनता की बात कहते हुए सकोच नहीं करती। उधर पति सरदारी लाल इस नारी को पाकर विक्षिप्त तथा असतुष्ट रहता है असमान भावनाओ के मध्य वह अपने को सबसे बडा भाग्यहीन मानता है। कहानी के अन्त मे मित्रो मरजानी अपने पति सरदारी लाल के प्रति आकर्षित होकर प्रेम करने लगती है क्योकि उसकी मॉ सरदारी लाल की ओर आकर्षित हो गयी थी। कहानी का कथ्य मुख्य रूप से वर्जनाविहीन समाज की भविष्य कल्पना मे रत दृष्टिगत होता है।

मित्रो मरजानी कृष्णा सोबती की लम्बी कहानी जो बाद मे कहानी के पेट से निकला हुआ लघु उपन्यास बन गया है। नई कहानी आन्दोलन में कम कहानी लिखकर कृष्णा सोबती ने उपनी विशेष पहचान बनाई है। कृष्णा सोबती की कहानियॉ को मोटे तौर पर तीन वर्गों मे बॉटा जा सकता है "प्रथम मे जिन्हे आमतौर पर स्त्री–पुरुष सम्बन्धो की कहानियॉ कहा जा रहा है। मित्रो मर जानी इसी तरह की कहानी है।"[70] मित्रो मर जानी मे आधुनिक नर–नारी सम्बन्धो के विखराव को कृष्णा सोबती ने रोमाटिक बोध से हटा करके आधुनिक बोध मे रेखाकित किया है। इस कहानी मे चार पति–पत्नी परम्परागत परिवार की परम्परा को निभाते दृष्टिगत प्रतीत होते हैं। "कृष्णा सोबती ने आधुनिक बोध को अपनी कहानियो मे यथार्थ रूप मे अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियो मे प्रेम, वासना, वात्सल्य, जीवन की घुटन, व्यक्ति तथा समाज के परस्पर सम्बन्ध आदि विभिन्न आयामो को देखा जा सकता है। गुरुदास–धनवन्ती का पारिवारिक जीवन भारतीय परम्परा के अनुसार आदर्श पति–पत्नी का है। दोनो मे परस्पर सहानुभूति, सहृदयता की भावना पाई जाती है। ढलते दाम्पत्य जीवन की सध्या मे भी दोनो के स्नेह की गहराई अत्यन्त गहन रूप मे दृष्टिगत होती है।–"एक नही अनेक बीती पुरानी मीठी बाते आखो मे घूम गई। रह–रहकर धनवन्ती अपने सुख–दुख के साथी के पॉव पर हाथ फेरती रही और रोती रही।"[71] यह उदाहरण सम्बन्धो की गहराई एव गम्भीरता को एक नया आयाम देता है। बनवारी–सुहागवन्ती का पारिवारिक जीवन भी बिना किसी अवरोध के चलता रहता है क्योकि सुहागवन्ती प्राचीन मान्यताओ मे विश्वास करती है। वह अपनी देवरानी मित्रो को कामुकता से विमुख करने के लिए गृहस्थ की शिक्षा मर्यादा का उपदेश देती है "देवरानी, बहू–बेटियों के लिए तो घर–गृहस्थी की रीति ही लच्छमन की लीक। जाने–अनजाने फलागी नही कि "[72] मधुरेश के अनुसार–"कृष्णा सोबती बौद्धिक और किताबी सहानुभूति से बचकर जीवत परिवेश के बीच से हाड–मास की वास्तविक स्त्री को मित्रो के रूप मे गढकर मित्रो मरजानी मे एक सम्पूर्ण और कद्दावर औरत को जैसे पहली बार हिन्दी कहानी की जमीन पर खडा करती हैं। उसकी जिदा दिली, चुहल और खिलदरापन, उसे एक ऐसा व्यक्तित्व देते हैं जो आतक और पीडा एक साथ उपजाते हैं। उसका अग–सग मे पूरा होना और उतने ही मुॅहफट तरीके से इस 'होने' को व्यक्त करना जैसे सारे परम्परागत निषेधो को एक ही झटके मे ध्वस्त कर देता है।"[73] इस कहानी का तृतीय दम्पत्ति सरदारी लाल–मित्रो है कृष्णा सोबती ने मित्रो के चरित्र विश्लेषण पर ही विशेष ध्यान दिया है। उसके प्रेम का स्वरूप वासना का रूप धारण कर लेता है परन्तु यह प्रेम

रोमाटिक स्वरूप से भिन्न स्वरूप का है। वासना के इस रूप को इन पक्तियो मे आका जा सकता है–"सात नदियो की तारू, तवे सी काली मेरी मॉ और मैं गोरी चिट्टी उसकी कोख पडी। कहती है इलाके के बडभागी तहसीलदार की मुॅहादरा है मित्रो। अब तुम्ही बताओ, जिठानी तुम–जैसा सत–बल कहॉ से पाऊॅ–लाऊॅ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नही पहचानता बहुत हुआ हफ्ते–पखवारे और मेरी इस देह मे इतनी प्यास है, इतनी प्यास की मछली सी तडपती हूॅ।"[74] मित्रो अपने भरे पूरे परिवार मे अकेलापन महसूस करती है। वह अपने पति सरदारी लाल से सतुष्ट नही हैं। उस पर पौरुषहीनता का आरोप लगाकर स्वय दूसरे पुरुषो के प्रति आकर्षित है। वह नारी–जीवन की सार्थकता अपनी देह को लुटाने में समझती है और जीवन को भोगने मे मानती है। परिवार मे इस भूख को मिटाने के लिए साधन सीमित हैं। घर मे पुरुष शालीनता के कारण अपनी सीमाओं का उल्लधन नहीं करता और इससे मित्रो की भूख और बढ जाती है। उसके लिए नारी का सती होना उसके जीवन का आधार नही है, वह जीवन के लिए शारीरिक आधार को महत्व देती है "जब तक मित्रो के पास यह इलाही ताकत है, मित्रो (किसी की मार से) मरती नही।"[75]

मित्रो के चरित्र मे लेखिका ने नये समाज के नये प्रश्नो को उभारा है। मित्रो नामक पात्र भारतीय पारिवारिक सम्बन्धो के सभी स्वरूपो का उल्लघन करती नजर आती है। इससे स्पष्ट होता है कि क्या नारी "हिन्दू सस्कृति की शालीनता को बिल्कुल त्याग चुकी है क्या लज्जा उसके चरित्र का आभूषण केवल मात्र पुस्तकों की थाती बनकर रह गया है? क्या शील नारी के सौन्दर्य मे बाधक है? मित्रो इन प्रश्नो के प्रत्युत्तर मे अति निर्लज्ज, कामुक–चरित्र की स्त्री है। सरदारी लाल इस नारी को पाकर विक्षिप्त तथा असंतुष्ट रहता है। असमान भावनाओ के मध्य वह अपने को सबसे भाग्यहीन मानता है। सरदारी लाल कहता है–"यह कूडा मेरे भाग था? इससे तो कोई चूडी चमारन अच्छी थी।"[75] मित्रो मरजानी मे मित्रो एव सरदारी का पारिवारिक सम्बन्ध विघटन की चरम सीमा को पार कर रहे हैं। इस असफलता का कारण नारी सुलभ शालीनता का अभाव है अन्त मे कृष्णा सोबती ने प्राचीनता में नवीनता का आख्यान कर प्राचीन मूल्यो की ओर लौटने का सकेत देकर टूटते परिवार को एक सूत्र मे बॉधने का प्रयास किया है। मित्रो सरदारीलाल की ओर अपनी मॉ के चरित्र से भयभीत होकर अपने पति की ओर आकर्षित होती है। मित्रो कहती है–"सिर हथेली ओंठो से लगा झूट की थूकर बोली–कही मेरे साहिब जी को नजर न लग जाए इस मित्रो मरजानी की।"[77]

पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टिकोण से मॉ एव पुत्री के बदलते स्वरूप पर लेखिका ने एक नया सवाद स्थापित किया है। मित्रो की तरह उसकी मॉ वालो भी अपने पारिवारिक जीवन मे पति का सानिध्य नही प्राप्त कर सकी है फलस्वरूप उसके जीवन मे अनेक पुरुष आये हैं उनसे अपनी भूख मिटाते–मिटाते नीरस होकर बालो निकम्मी हो चुकी है। मित्रो को अपनी मॉ से जलन होती है जो नित नये रास–रग करती है। वह अपने यौवन को लुटाकर पुरुषो को आकृष्ट करना चाहती और मॉ बालो उसे एक से बॅधा देखकर जल उठती है। वह अपनी बेटी को अपने प्रेमी के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भेज देती है लेकिन बालो का इगो इसे सहन नहीं कर पाता है कि उसकी बेटी उसी के प्रेमी के साथ सम्बन्ध स्थापित करे। यह उसका अपमान है उसकी पराजय है. "मॉ को नाक–मुॅह चढा मित्रो छज्जे वाली पैडियो मे पाहुन को मिलने चली तो नीचे खडी बालो के दिल पर सुहागा चल गया। ऐसी हूक उठी, ऐसी टीस जगी की देह–की–देह भखने लगी अरी खप्पनी बालो! एक दिन जो डिप्टी सौ–सौ चाव तेरी शरणी आता था, आज वही इस लौंडिया से रगरेलियॉ मनाएगा। थू, री बालो, तेरी जिन्दगी पर!"[78] परिणामस्वरूप बालो मित्रो को 'ऐसा' करने से पहले ही बुला लेती है। मॉ की आखो मे वासना को सुलगता देख, मित्रो अपने को तथा अपनी मॉ की नियत को भॉप लेती है। उसके भीतर भी एक तडप जाग उठती है मित्रो कहती है–"तू सिद्ध भैरों की चेली, अब कभी खाली कडाही मे मेरी और मेरे खसम की मछली मलेगी? सो न होगा, बीबो कहे देती हूँ! फिर तीर की–सी छलॉग मार ओसारे से देहरी कुलाची और मॉ को ठेलते–ठेलते सरदारी लाल वाली बैठक की कुडी चढा ली।"[79] कृष्णा सोबती ने मॉ–बेटी के सवाद एव सम्बन्धो के विघटन को नये साहस और खुलेपन मे व्यक्त किया है जो काम सम्बन्धो को एक विशिष्ट आयाम देता है। मित्रो का व्यक्तित्व, नये सॉचे मे ढला हुआ है वह अपनी वासनाओ को बचाये रखने की कोशिश मे है जिससे उसका व्यक्तित्व बचता है। वह अपनी मॉ की विकृतियो की छाया बनकर अपनी कामकुण्ठाओ को खोना नही चाहती। उसकी एक मात्र शक्ति उसकी अपनी देह सम्पदा है।

'मित्रो मरजानी' मे एक विशिष्ट परिवार फूलवन्ती एव गुलजारी लाल का है। फूलवन्ती एक अहवादी नारी है। वह पति गुलजारी लाल से अनुरक्त होते हुए भी अपने सास–ससुर (धनवन्ती–गुरुदास) से सम्बन्ध अच्छे न बनाये रख सकी। हर समय फूलावती का मन कुण्ठित रहता है। वह बनावटी रोग का बहाना बनाये पति को क्षुब्ध रखती है, परिवार में थोडी सी कलह से अपने पति को माता–पिता के यहॉ भेजकर

भाइयो की मदद से अलग रहने का विचार बना लेती है। फलस्वरूप गुलजारी लाल घर जमाई हो जाते हैं। ससुराल प्रवास से गुलजारी लाल का पारिवारिक जीवन सम्बन्ध बिखर जाताहै वह कराह उठता है वह पत्नी फूलावन्ती का पिछलग्गू बन जाता है। फूला ही नही उसकी माता मायावन्ती भी उसपर शासन करती है। मॉ फूलावन्ती से पूछती है–"क्यों री अब आया कान्ह तेरे राह पर।"[80] कृष्णा सोबती ने इन दोनो दम्पत्तियो के माध्यम से नई उद्भावनाएँ स्थापित करने की कोशिश की है। फूलवन्ती में आज का नारी समाज उपस्थित हो गया है। वर्तमान मे नारी पति गृह से सन्तृष्ट नही–रहती अपने घर, अपने पति को ले जाकर सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। आज के जीवन मे पुत्र स्वय पत्नी का पक्षपात करके पत्नी के साथ रहने को चले जाते हैं। गुलजारी लाल स्वय अपनी मॉ से कहता है–"अम्मा, तुम्हारी बहू का गुजारा अब इस घर में नही।"[81] परिवार टूट जाता है गुलजारी ससुराल मे भी सुख से नहीं रह पाता है यही विडम्बना सभी जगह व्याप्त नजर आती है। डॉ0 रमेशचन्द्र लबानिया के अनुसार–"यह न तो रवीन्द्र की ओस जैसी नारी है, न शरत् या जैनेन्द्र की विद्रोहिणी, गुत्थी। इसे आदर्श का कोई मोह नही है, न समाज का भय, न ईश्वर का। इसके लिए किसी विश्लेषण कीआवश्यकता नही है। यह मात्र मास–सज्जा से बनी नारी है जिसमे स्नेह भी है, ममता भी, मॉ बनने की हौस भी और एक अविरल बहती वासना–सरिता भी।"[82] वर्तमान समाज की अति कामुकता मर्यादाहीनता मित्रो मे साकार हो गई है जो न तो प्रेम की बात सोचती है और न ही अपने व्यक्तित्व को विखरने देती है। उसका प्रेम वासना मे परिणत हो जाता है जो सभी हौसे समाने का बोध रखती है जो सम्बन्धो मे वर्जनाहीन समाज के भविष्य की कल्पना मे रत दृष्टिगत होती है।

टूटना

राजेन्द्र यादव की 'टूटना' कहानी एक अत्यन्त उलझे हुए व्यक्ति के तनाव, तल्खी और आक्रोश की अनुभूतियों को खूबी से अभिव्यक्ति करती है। दो वर्गों के सस्कारो के टकराव, उस टकराव से मिली कुण्ठाओ और उन कुण्ठाओ से जन्मे अन्तर्विरोध को 'टूटना' कहानी मे अत्यन्त सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। जीवन के पहले दौर मे नायक किशोर वर्गभेद के वाह्य और आन्तरिक वैषम्य के कारण हीनता की ग्रन्थि पाल लेता है, तो दूसरे दौर में धन और पोजीशन से प्राप्त प्रतिष्ठा द्वारा उस वैषम्य को समाप्त कर, जो आत्म विश्वास वह प्राप्त करना चाहता है, या कर लेता है, उससे वह दूसरे स्तर के मानसिक सघर्ष मे पड जाता है। न नॉर्मल जिन्दगी वह लीना के साथ रहने पर जी पाया था और न लीना से सम्बन्ध 'टूटने' के बाद। विवाह के बाद विदा

करते लीना के पिता दीक्षित की अपने प्रति उपेक्षा और हिकारत की दृष्टि का प्रभाव उसके दिमाग से कभी नहीं गया। और इसी उपेक्षा दृष्टि ने उसे अहवादी बना दिया है। जिससे किशोर की पत्नी लीना कसूर की बलि चढ जाती है। एक-एक प्रसग नया किशोर की बातचीत और व्यवहार आदि के आशय से परिचित होते जाना मार्मिक अनुभव से गुजरने के समान लगता है।

'टूटना' कहानी मे किशोर एव लीना के सम्बन्ध अपने ही अन्तर्द्वन्द्वों मे उलझते, लडते, जीतते-हारते और टूटते नजर आते हैं यह स्थिति इन पात्रो ने स्वय पैदा की है, कोई दूसरा इसके लिए जिम्मेदार नही है, फिर भी ये पात्र एक-दूसरे को उसका जिम्मेदार ठहराते हैं और मन-ही-मन एक-दूसरे को प्रतिद्वन्द्वी ठहराकर उससे लडते रहते हैं। प्रेम सम्बन्धो की यह लडाई लडने मे वे स्वय और एक दूसरे के टूटने का कारण बनते जाते हैं। मधुरेश के अनुसार-"एक अप्रत्यक्ष और अदृश्य रूप से लडी गई लडाई कितनी भयकर और जानलेवा हो सकती है, नसो को चटखाने और तोडने वाली, टूटना से स्पष्ट है। लडने से पैदा हुई थकान ही उसके बचाव का कारण बन सकती है। लेकिन तब तक बहुत कुछ नष्ट हो चुका होता है।"[83]

विवाह के बाद लीना के पिता की अपने प्रति उपेक्षा और हिकारत की दृष्टि का प्रभाव उसके दिमाग से कभी नहीं गया-"मुँह की ओर बढता सिगरेट वाला हाथ, और सॉवले होठो का उसे पकडने के लिए उदग्र हो आना-बाई-फोकल चश्मे से बाज जैसी तेज ऑखो का झाकना-सुप्रीम कॉन्फिडेन्स और हर चीज को आर-पार भेदकर उसको जाने बैठे होने का दम्भ-सब मिलाकर एक ऊँचाई पर खडे, हिकारत से नीचे देखते व्यक्ति की ललकारती भॅगिमा।"[84] किशोर के मस्तिष्क पर सदैव यह तस्वीर छायी रही, जिसने उसे लीना के साथ सहज होकर नही जीने दिया। लीना मे वह उसके बाप की निगाहो की प्रतिच्छाया देखता रहा।

किशोर और लीना का सघर्ष मात्र पति-पत्नी के व्यक्तिगत जीवन का नही है अपितु समाज के दो भिन्न परिवेशो का सघर्ष है, अभिजात्य वर्ग और निम्न वर्ग जीवन-मूल्यो का सघर्ष है और एक दिन मूल्यो का यह सघर्ष इतना बढ गया कि दोनो का साथ रहना भी असम्भव हो गया। किशोर को लीना के पिता का आभिजत्य हर समय आतकित करता रहता है। इसलिए वह लीना की नफासत, उसकी खास तरह की जिद्दी और दृढ मुद्रा तथा निर्णय-दृढता के सामने अपने को बहुत अधिक नर्वस और हीन महसूस करता है। पर अपनी आत्महीनता की कुण्ठा वह दूसरे रूप मे प्रकट करता है। उसे आभिजात्य समाज के तौर-तरीको से चिढ हो जाती है और वह उनकी उपेक्षा

कर आत्म–तुष्ट होता है–"वह लीना के साथ खाते समय, खाना खत्म करके छुरी–कॉटे को क्रास की स्थिति मे ही रखता ।"[85] जो बात लीना को नही पसन्द वही करता है–" उसका गट–गट पानी पीना, चप–चप खाना, और 'हरिओऽम' की लम्बी डकार के साथ तृप्ति का सन्तोष प्रकट करना–लीना को पसन्द नही है–यह जानते हुए भी वह उसे चिढाने के लिए यही करते हुए खाता।"[86] उसे लगता, इसमे लीना की व्यक्तिगत नापसन्दगी उतनी नहीं है, जितनी हिकारत की यह भावना कि "तुम्हे सभ्य समाज मे उठने–बैठने का मौका नही मिला, इसलिए शायद यह नहीं जानते कि यह अशिष्टता है, कोई चीज स्वादिष्ट लगती, तो जल्दी जल्दी सडाकेदार आवाज के साथ मुॅह भर लेता, और झूम–झूम कर गुनगुनाते हुए उसका स्वाद लेता और लीना की ऑखो मे पढता–"शायद पहली बार ही खा रहे हो न ?"[87] किशोर यह सब कल्पना मे सोचता रहता है जाने कैसे उसे विश्वास हो गया था कि अब लीना को उसके साथ आने का अफसोस होने लगा है, क्योकि इधर वह बहुत सुस्त और उदास रहने लगी है और अपने ही पाले भ्रम के कारण वह लीना और मेहता के सम्बन्धो की कल्पना कर लेता है। अभिप्राय यह कि अपनी हीनताऍ ही वह इन विभिन्न रूपो मे व्यक्त करता है। लीना से सम्बन्ध टूटने के बाद जब तात्कालिक आवेग समाप्त हो जाता है, तब प्रत्यावलोकन के क्षणो मे वह उनका सही विश्लेषण कर पाता है।

'टूटना' का किशोर एक विभिन्न प्रकार के तनाव मे ग्रस्त है, वह दो स्तरो पर जीता है। एक स्तर लीना के साथ उसकी सामान्य मध्यवर्गीय विवाहित जिदगी जीने मे लीना के आभिजात्य आग्रहो के कारण उसे जीना पडता है, इस स्तर पर इन दोनो के बीच जो 'टूटना' सम्भव हुआ है वह लीना के आभिजात्य आग्रहो के कारण टूटना नही हुआ जितना कि उसके पिता की आतकित कर देने वाली छाया के कारण, वह छाया लीना और किशोर के बीच इस सीमा तक हावी हो जाती है कि यह पहले लीना के सहज आभिजत्य आग्रहो को रूप देती है और फिर किशोर के भीतर एक नपुसक विद्रोह पैदा कर तनाव की ऐसी स्थिति ला पटकती है जहॉ दोनो एक दूसरे से अलग होना चाहते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि अब दोनो इतना टूट चुके हैं कि वैसा कदम उठाना सम्भव नही रहा। किशोर घृणा इसलिए करता है ताकि वह उस व्यक्ति को दिखा सके, जिसके कारण उसमे कुण्ठा पैदा हुई थी, आत्महीनता को उसने भोगा था। फलस्वरूप आत्महीनता वाले व्यक्ति से वह घृणा करने लगता है। ऐसे व्यक्ति को अपमानित करने मे उसे क्रूर सन्तोष मिलता है इस तरह वह उन तमाम वातो से घृणा

करने लगता है, जो अतीत के किशोर मे थी। और जब यही स्थिति लीना के साथ करता है तो सम्बन्धो मे दरार पैदा हो जाती है।

आत्महीनता और घृणा के आकर्षण मे लीन किशोर जिन्दगी के पहले दौर की अनुभूतियॉ उसे दूसरे दौर मे भी क्षुब्ध किये रहती हैं और उसे सहज नही होने देती। वह बात सामने करता है पर मन मे कुछ और ही विचार चलते रहते है। फोन पर गर्ग से बात करते समय, वह लीना के पत्र पर अपनी प्रतिक्रिया दे बैठता है, जयत से बात करते समय, वह लीना और मेहता के बातचीत और उठने–बैठने के प्रसग यादकर विचित्र विचारो से भर उठता है। गर्ग को मिसेज लाल चदानी के साथ घूमने के लिए गाडी देकर उसे विशेष तृप्ति होती है, रामन को देर तक अपने साथ काम मे उलझाये रखकर पति–पत्नी के बीच व्यवधान डालने मे उसे विशेष तृप्ति मिलती है। जो सुख उसने नहीं भोगा, वह सुख दूसरे भी न भोग सके, यह मनोविज्ञान उसकी इन तमाम अभिव्यक्तियो से प्रकट होता है। अपने और लीना के बीच उसने मेहता को जिन बातो के कारण व्यवधान के रूप मे पाया था, वैसा ही व्यवहार वह पति–पत्नियो के बीच मे स्वय बनना चाहता है।

कुण्ठाओ के कारण किशोर मे निर्णय लेने की क्षमता नही रही है। इसी कुण्ठा ने किशोर को पहले पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद करवाया, और उस सम्बन्ध के टूटने का मनोविज्ञान किशोर को धन और पोजीशन की ऊॅचाइयो पर ले जाकर भी भीतर से तोडता चला जाता। टूटता वह इस अपराध–बोध के कारण ळै क्योकि पति–पत्नी के सम्बन्ध उनके अपने तनावो के कारण नही टूटे, वरन् एक तीसरे व्यक्ति लीना का पिता दीक्षित और जिस दिन वह यह एहसास कर लेता है कि वास्तविक लडाई तो उसकी दीक्षित से थी, लीना से नही तो वह अपराध बोध से घुटने लगता है–"जिस दिन लीना नाम का परदा बीच से हटा या उसने जाना कि लीना सिर्फ मेज का तख्ता थी और वे दोनो उसपर अपनी–अपनी कोहनियॉ टिकाये शक्ति आजमा रहे थे उसी दिन महसूस किया कि असली लडाई दीक्षित साहब से है ।"[88] अपनी कुण्ठाओ से लडते हुए उसने बेकसूर लीना की बलि चढा दी। क्योंकि दीक्षित को हराने की प्रक्रिया मे किशोर यह समझता रहा कि उसने इस दीक्षित नाम के व्यक्ति को मिटा दिया, उसकी हत्या कर दी किन्तु उसे मारने से उसने अपनी ही हत्या कर ली, यह वह न जान सका। वह सदैव दीक्षित की हत्या का भ्रम पालता रहा, पर दीक्षित के व्यक्तित्व का अपने मे आरोपण कर, उसने अपने को मिटा दिया, अपनी ही आत्महत्या कर ली, यही हीनता ग्रन्थि किशोर के पारिवारिक जीवन मे विघटन के बीज बो गई। डॉ0 रामदरश मिश्र 'टूटना'

कहानी की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए लिखते हैं कि– "इसमे हेमिग्वे के उपन्यास "OLD MAN AND THE SEA" के बूढे द्वारा पजा लडाने वाली घटना से प्रतीक को गूँथा गया है। टूटना कहानी के नायक किशोर की वास्तविक लडाई उसकी प्रेमिका लीना से न होकर उसके पिता दीक्षित साहब से है।"[89]

आर्थिक दबाव और मूल्यो के पतन के कारण पारिवारिक विघटन

स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी मे बदलते हुए आर्थिक परिवेश का परिवारो के विखरने मे एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ है। आज जीवन क`मूल्य बदल गये हैं। अब अर्थ ही जीवन मूल्य बनकर रह गया है। व्यक्त्वि का मूल्याकन अर्थ से ही होता है। इस आर्थिक सकट ने परम्परागत पारिवारिक सम्बन्धो में परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है। पति–पत्नी के सम्बन्धो मे जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है उसका कारण अर्थ ही है। इस आर्थिक सकट ने पति के परम्परागत मूल्य 'स्वामित्व' को भी नष्ट कर दिया है। आज सभी सम्बन्धो के पीछे आर्थिक प्रभुत्व की भावना प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहती है। पति–पत्नी में से जो भी इस दृष्टि से प्रभावशाली होता है उसी के मूल्य को मान्यता प्राप्त होती है और परिवार मे उसी का प्रभाव रहता है। परिणाम स्वरूप एक ओर मूल्य आत्मनिष्ठ होते जाते हैं दूसरी और सम्बन्धो की निरपेक्षता भी बढती जाती है।

आर्थिक कठिनाइयॉ आजकल एक समस्या बनी मुँह बाये खडी है। नव दम्पत्ति के बहुत से स्वप्न इसी चट्टान पर टूटते हैं। आज के युग में स्त्री–पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध परिवार तथा समाज में उनकी आर्थिक स्थिति अर्थ पर ही निर्भर करते हैं। अगर पत्नी पति से छह गुना कमाती है तो उससे छह गुना बडी भी है। ऐसी स्थिति मे पति का अर्थ उसके लिए केवल इतना रह जाता है कि उसकी आड मे (पति का अर्थ कुछ भी नही) समाज को धोखा देकर अपनी पोजीशन के किसी दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करने मे कोई परहेज नही है।

आर्थिक दबावो से व्यक्तित्व के टूटने के कारण चिन्तन का सन्तुलन बिगडना स्वाभाविक है और परिणाम स्वरूप सर्जनात्मक पुरुष अपनी सन्तान की पिटायी करने मे भी नही हिचकता है। रामकुमार की कहानी 'सेलर' का नायक अपने पुत्र मुन्नू को अकारण इसलिए पीट देता है कि मुन्नू उसके सपने को साकार करने मे सक्षम नहीं है। परन्तु इस कुण्ठा मे उसकी आर्थिक समस्या सुरसा की भॉति मुँह बाये खडी रहती है।

सेलर

'सेलर' रामकुमार की बहुचर्चित कहानी है। कहानी का मुख्य पात्र 'वह' है जो अपनी ससुराल मे पुत्र मुन्नू के साथ रह रहा है। नायक की पत्नी मर गयी है। सौ रूपये की नौकरी करता हुआ आर्थिक स्थिति मे पिसता हुआ नायक जीवन व्यतीत कर रहा है। ससुराल मे सास–ससुर तथा अपने साले एव उनकी पत्नियो के तानो के बीच 'पेइग गेस्ट' की हैसियत से रह रहा है। ससुराल वाले उसे एक कमरा दे रखे हैं और उन लोगो की इच्छा है कि वह कमरा किराये पर उठा दिया जाये। और मेहमान को अदर ही सबके साथ रहने पर विचार विमर्श करते हैं। परन्तु इन सब परिस्थितियो मे नायक (वह) अपने पुत्र को 'सेलर' बनाना चाहता है परन्तु मुन्नू उसकी अपेक्षाओ में खरा नही उतरता नजर आता है फलस्वरूप वह मुन्नू को पीट देता है। कहानी नायक के अतीत मे खोजाने वाले विचारो के साथ समाप्त हो जाती है जिसमे भविष्य के प्रति भय सा दिखता प्रतीत होता है।

'सेलर' कहानी पारिवारिक विघटन की त्रासदी को आर्थिक आधार पर रेखाकित करती है इसमे कथानायक 'वह' विवेचनात्मक शैली मे अपनी दास्ता बया करता है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार–''कहानी मे शून्यता रिक्तता, उदासीनता व्याप्त है। खोया–खोया इन्सान इसका कथ्य है।''[90] आज जब भौतिकता अपनी चरम सीमा पर है तब भी बाप–बेटा का भविष्य बनाने की चेष्टा मे रहता है इसे समय की विडम्बना ही कहा जायेगा नायक 'वह' सब कुछ चाहते हुए भी अपनी ससुराल को नहीं छोड पा रहा है मानव सम्बन्धो की विकृतियॉ इतनी तिक्त हो जायेगी यह कल्पना भी नही की जा कि एक दामाद को उसके अपने ही सास–ससुर पैसे लेकर खाना देते हैं–''लगभग एक ही मास तो हुआ, ठीक से उसे याद नहीं आया, जब ससुर ने अपने कमरे मे बुलाकर छोटी सी भूमिका के बाद कहा था कि अपने और अपने पुत्र के खर्चे के जो सौ रूपये वह हर महीने देता है, वे इस बढती हुई महगाई में पर्याप्त नहीं हैं। अपने कथन को सत्य साबित करने के लिए उन्होने आटा, दाल घी, चावल आदि के दाम बतलाये थे। फिर बिजली, पानी, महरी और उसका कमरा उन्होने यह भी कहा था कि उसका पुत्र बडा होता जा रहा है, जिससे उसकी खुराक भी बढती जाती है।''[91] पारिवारिक सम्बन्धो का यह विघटन इतना नीचे चला जायेगा। मुन्नू के पिता को इसका एहसास ही नही हो सका क्योकि उसकी सास उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाए हुए है शायद यही झूठी सात्वना उसे सन्तोषप्रद महसूस होती है–''हमारे लिए डूब मरने का दिन है कि जमाई अपने खाने–पीने का खर्च खुद देता है और बहुओ को

तुम्हारी दो रोटियॉ सेकनी भी अखरती हैं। और दबे स्वर मे उन्होने यह सुझाव दिया कि वह अपना अन्य ठिकाना देखे, यही बेहतर होगा।"[92] मूल्यो के प्रति सास तत्पर तो दिखती है परन्तु टूटते सम्बन्धो को बचाने के लिए स्वय को कष्ट मे नहीं डालना चाहती है यही आधुनिकता भारतीय सस्कृति को खतरे मे डाल रही है।

सम्बन्धो की त्रासदी का चित्रात्मक रूप मे रामकुमार ने वर्णन किया है क्योकि नायक वह की पत्नी जीवित नही है और ससुराल मे उसका रहना सबको अखरता है–"उसके ससुर का पिचका हुआ, बिना दॉतो का चेहरा उसके सामने आ गया। वे फिर तकाजा करेंगे और उसे याद दिलायेंगे। उसके बडे साले की पत्नी प्राय कर्कश स्वर मे कहती सुनायी देती कि उससे इतनी रोटियॉ सेकी नहीं जाती। और जब उसकी सास उससे धीमे स्वर मे कहती कि नीचे जमाई सुन रहा है, तो उसकी आवाज और भी तेज हो जाती, 'मुझे किसी का डर नहीं है। सच्ची बाते कहने से हिचकूँ ऐसी औरत मैं नही हूँ।"[93] सम्बन्धो के टूटने की त्रासदी झेलता नायक इतना दृढ नजर आता है कि उसको किसी की बातें बुरी लगने पर भी बुरी नही मानता क्योकि सोचना उसकी नियति बन चुकी है एक दिन नायक ने "मुन्नू को देखा, तो सूखी टहनियो–जैसे उसके हाथ–पॉव देखकर उसका बडा सा सिर बहुत बेडौल जान पडा था और यह भी उसने ससुर या शायद बडे साले को कहते सुना कि उसकी कोठरी के आसानी से चालीस रूपये किराये के आ सकते हैं।"[94] एक तरफ ससुराल वालो का यह कहना कि मुन्नू की खुराक बढ रही है दूसरी तरफ कोठरी को किराये पर उठाये जाने की बात एवं तीसरे उस के सरहजो के द्वारा उसका कथित ब्याह हो जाना ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्हे नायक अपने विरुद्ध एक सुनियोजित षडयन्त्र सा देखता है। यही सोच उसे घर मे नही रुकने देती और नौकरी से आते समय वह गार्डेन मे घूमने चला जाता है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार–"कहानी मे मानवीय अतर्वेदना का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। प्रस्तुत कहानी की रचना चित्रात्मक धरातल पर हुई है।"[95]

नायक 'वह' की इच्छा है कि उसका पुत्र बडा होने पर अर्थात मैट्रिक की पढाई पूरी करने पर जहाज पर चला जाये। सहसा एक दिन उसने पुत्र मुन्नू से पूछा–"तुम पढ–लिखकर कुछ तो बनोगे न? ऐसे ही तो नहीं रहोगे? कोई डाक्टर बनता है, कोई वकील, कोई व्यापारी, कोई सेलर।"[96] सेलर बनाने की यह ख्वाहिश अपनी विवशताओ के सामने पूरी नजर होती नही आती है क्योकि केवल खाना खाकर और कुछ सोचकर ही सपने पूरे नही हो सकते हैं उसके लिए कडी मेहनत एवम् पक्का इरादा होना अति आवश्यक है। मुन्नू का पिता मुन्नू के प्रति सहानुभूति रखते हुए उसे

मारने के लिए इसलिए मजबूर होता है क्योकि शायद जो सपना उसने पूरा नही किया है उसे उसका बेटा पूरा कर दे, परन्तु मुन्नू के रोने से सहसा उसे अतीत की ओर झॉकने मे मजबूर कर दिया–"मुन्नू की ऑखो में भी जैसे कुछ खो गया है, जैसा कि उस इतवार को शीशे मे अपनी ऑखो को देखकर उसने महसूस किया था। मुन्नू की खुली–खुली, शून्य सी ऑखे, जैसे कोई बन्द दरवाजा खुल गया है, जिस के बीच मे से दूर–दूर तक वह झाक सकता है। भीतर क्या है, इसे जानने के भय से उसने अपनी ऑखें बन्द कर ली।"[97] डॉ0 मिथिलेश रोहतगी के अनुसार–"रामकुमार के पात्रो के व्यक्तित्व की मूल कुण्ठा है अतीत से न मुक्त हो पाने की विवशता।"[98] मुन्नू के पिता की यह अतीत के प्रति अघोघोषित लडाई या द्वन्द्व उसे एक अजीब घुटन, त्रास एव विघटन की ओर खींच ले जाता है जिसके मूल में आर्थिक समस्या गहराई से पख कुतर रही है।

पीढ़ी संघर्ष के कारण पारिवारिक विघटन

स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय परिवारो में दो पीढियो (नई व पुरानी पीढी) मे सघर्ष दिखाई देता है। पुरानी पीढी के लोग जो पुरानी मान्यताओ और विचारो के समर्थक हैं और नई पीढी के लोग इन पुरानी मान्यताओ को तोडना चाहते हैं, बदलना चाहते हैं। अत इन दो पीढियो मे सघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। स्वतन्त्रता के बाद नवयुवक वर्ग की मानसिकता मे भी एक व्यापक परिवर्तन दिखाई दिया है। आज का नवयुवक स्वतन्त्रता पूर्व के नवयुवक की भॉति अमहत्वाकाक्षी अथवा सामाजिक स्थितियों के प्रति तटस्थ नही है वरन् उसमें स्वतन्त्र देश के एक नागरिक की सम्पूर्ण महत्वाकॉक्षाएँ तथा हर नई स्थिति से जुडने की आकॉक्षाए विद्यमान है। पुरानी पीढी नयी पीढी पर अपना अधिकार जमाये रखना चाहती है। वह इस नयी पीढी को भी अपने ही आदर्शों पर चलते रहना देखना चाहती है। एक ही परिवार के दो पुश्तो मे मानसिक सघर्ष की तीव्रता दिन–ब–दिन अधिक तीव्र होती जा रही है। और यही तीव्रता मानसिक सामजस्य न बिठा पाने से सम्बन्धो मे दरार पैदा करती है। और वर्तमान जीवन की त्रासदी भी रेखाकित करती है।

ज्ञानरजन की कहानी पिता मे नायक के पिता एक चट्टान की तरह दृढ हैं समय रूपी पहिया आगे बढता जारहा है परन्तु 'पिता' है कि टस से मस नही होते–'उसे' महसूस होता है कि पिता एक बुलद भीमकाय दरवाजे की तरह खडे हैं जिससे टकरा–टकरा हम सब निहायत पिद्दी और दयनीय होते जा रहे हैं, कहानी

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नैतिक पारिवर्तन की माग को रेखाकित करती है साथ ही उस जडता को भी समाप्त करना चाहती है जो परिवर्तन की प्रक्रिया मे अवरोधक बनती है।

'एक नाव के यात्री' में कथाकार शानी ने पीढी सघर्ष के फैसले को पाश्चात्य सभ्यता के ढॉचे मे ढालकर रेखाकित किया है। हर माता–पिता की एक तमन्ना होती है कि उनके बेटे पढकर उनके सस्कारो एवम् पारिवारिक कार्यों मे हिस्सा बटायेगे तथा सम्बन्धो की मर्यादा का उल्लघन नहीं करेगे। मॉ–बाप को ठेस जब पहुँचती है तब उनके बेटे उन्हे उचित सम्मान न देकर अपनी होने वाली पत्नी और पत्नी के परिवार के सदस्यो को देता है।

पीढियो का यह यह बढता सघर्ष तथा नूतन एवम् पुरातन के सघर्ष मे नूतन पीढी अपने मॉ बाप को ट्रान्जिस्टर की तरह बिगडा हुआ समझकर उन्हे कोई महत्व नहीं देते हैं जो यान्त्रिक युग की प्रयोग करो और फेकने के सिद्धान्त पर चलना चाहते हैं। जिसमे केवल वे और उनके बच्चे ही परिवार रूपी सस्था (एकल परिवार) मे रहना चाहते हैं।

पिता

'पिता' कहानी मे ज्ञानरजन ने पिता–पुत्र सघर्ष को दो पीढियो के मूल्य विघटन के रूप मे चित्रित किया है बदलते जीवन–सन्दर्भ मूल्य और स्थितियो के बीच परम्परा और प्रगति के सघर्ष को रूपायित करती यह कहानी वास्तव मे एक रेखा चित्राकन है। पिता रामायण और गीता के सास्कृतिक परिवेश मे हैं। नयी पीढी का अहकार उन्हे एकदम सहन नही है। पिता पखे के नीचे नही सोते हैं। पसीने और उमस मे बाहर उन्हे आराम है। गुसलखाने मे शाबर लगा है पर वे लॅगोट बॉधे, तेल चुपडे ऑगन मे बाल्टी का पानी रखकर नहाते हैं। उनके गॅवारपन को लेकर शीतयुद्ध चलता है। काफी तनावपूर्ण स्थिति रहती है। पुरानेपन की कठोरता से लडकों का मन कटु हो जाता है। उनमे नागरिक सुख–सुविधाओं का अहकार है। पिता की तरह यही अह उनके नये बेटो की पीढी को है। इसलिए पुत्र उन पर चिल्लाकर कहते हैं कि पिता तुम हमारा निषेध करते हो क्योकि तुम ढोगी वज्र एव अहकारी हो। अन्त मे पिता के जगते रहने पर से पुत्र को नीद नही आती है।

कहानी मे दो पीढियो के सघर्ष का चित्रण है। मॉ–बाप, भाई–बहिन आज सभी एक दूसरे से अलग होते जा रहे हैं। इस सत्य को ज्ञानरजन ने बडे ही यथार्थ एव कलात्मक ढग से प्रस्तुत कहानी मे चित्रित किया है। पिता कहानी में पिता का व्यक्तित्व

चट्टान की तरह दृढ है। वक्त आगे निकलता चला जा रहा है, स्थितियॉ, बदलती चली जा रही हैं, किन्तु पिता हैं कि टस से मस नही होते। पीढियो का यह फैसला इतना विचित्र सा प्रतीत होता है कि उसे लगता है कि "पिता एक बुलद भीमकाय दरवाजे की तरह खडे हैं, जिससे टकरा–टकराकर हम सब निहायत पिद्दी और दयनीय होते जा रहे हैं। कहानी वैज्ञनिक दृष्टि के अनुरूप नैतिक पारिवारिक परिवर्तन की माग को रेखाकित करती है तथा उस जडता को तोडना चाहती है जो परिवर्तन की प्रक्रिया मे अवरोध बनती है। "यह जडता कहीं रूढि और अधविश्वास की तथा कहीं अकारण पुराने से चिपके रहने और नये को न स्वीकारने के अह की जडता है।"[99]

भारतीय जीवन मे पीढियो का अन्तराल कितना भयानक है। तनाव और विसगतियो तथा समझौते के बीच समता या समझौते का छोर ढूॅढ पाना असम्भव लगता है। ऐसा लगता है कि दोनो के बीच विभाजक रेखा पत्थर की लकीर हो गयी है पुरानी पीढी व्यवस्थापक पीढी है और नयी पीढी विद्रोही पीढी है। पिता–पुत्र सघर्ष की थीम पर लिखी गयी इस कहानी मे पिता मात्र व्यवस्थापक के प्रतीक हो गये हैं।'पिता' शीर्षक कहानी मे इस प्रतीकात्मक धारणा को ज्ञानरजन ने फार्मूले के रूप मे नही, सहज सामान्य स्थितियो के रूप मे चित्राकित किया है इसलिए पिता रामायण और गीता के सास्कृतिक परिवेश मे हैं। नयी पीढी का अहकार उन्हे एकदम सहन नही है–"सब लोग, पिता से अदर पखे के नीचे सोने के लिए कहा करते हैं पर वह जरा भी नही सुनते।"[100] "चौक से आते वक्त चार आने की जगह तीन आने और तीन आने मे तैयार होने पर, दो आने मे चलने वाले रिक्शे के लिए पिता घण्टे–घण्टे खडे रहेगे।"[101] "आज तक किसी ने पिता को वाश–बेसिन मे मुॅह–हाथ धोते हुये नहीं देखा। बाहर जाकर बगिया वाले नल पर ही कुल्ला–दातून करते हैं। पिता को अर्से से हम सब आगन मे धोती को लॅगोट की तरह बॉधकर तेल चुपडे बदन पर बाल्टी–बाल्टी पानी डालते देखते आ रहे हैं। खुले मे स्नान करेगे, जनेऊ से छाती और पीठ का मैल काटेगे"। "बाजार से लाई बिस्किटे, महॅगे फल पिता कुछ भी नही लेते। कभी लेते भी हैं तो बहुत नाक–भौं सिकोडकर, उसके बेस्वाद होने की बात पर शुरू मे ही जोर दे देते हुए" "उल्टा सीधा, पता नही कहॉ किस दर्जी से कुरता–कमीज सिलवा लेते हैं। टेढी जेब, सदरी के बटन ऊपर–नीचे लगा, सभा–सोसायटी मे चले जायेगे।"[102]

पिता के इस गॅवारपन को लेकर शीतयुद्ध चलता रहता है। काफी तनावपूर्ण स्थिति रहती है। पुरानेपन की कठोरता से लडको का मन भिच जाता है।

उनमे नागरिक सुख–सुविधाओ का अहकार है। यही अह आज की पूरी पीढी का है जो पुत्रो मे है। वास्तव मे वे पिता को सह नही पाते हैं तभी तो वह चिल्ला कर कहना चाहता है–"पिता, तुम हमारा निषेध करते हो। तुम ढोंगी हो, अहकारी हो वज्र अहकारी।"[103] पिता के जागते रहने के एहसास मात्र से कथावाचक को नीद नही आती है। पिता की इस अस्वीकृति मे परम्पराओ के प्रति गम्भीर अस्वीकृति है। विद्रोह धर्मी नयी पीढी के तेवर मे आक्रोश और विक्षोभ की सर्जना एक खास अदाज में की गयी है और यह अदाज नगरबोध का अदाज है। सस्कारो के अन्तराल को यद्यपि दर्शन नहीं बनाया जा सकता तथापि नगर जीवन के सुविधाजीवी भोक्ताओ मे यह सत्य बनता जा रहा है। नगर के उच्च वर्ग में ही नहीं, मध्यवर्ग की रुचि मे उसके सस्कार और सपनो मे नगर बोध का यह दर्पस्फीत अह सुरक्षित है। ग्राम–जीवन का सास्कृतिक छोर जब छूट जाता है तो नगरबोध की उस नयी सभ्यता का उदय होता है जो अति आत्म केन्द्रित होती है। तन्त्र यन्त्र और आजीविका के दबावो से जैसे–जैसे यह सकेन्द्रन सघन होता जाता है, बाहर भीतर की टकराहट बढती जाती हैं। भारत वर्ष–कृषि–सस्कृति के अभावो और सस्कारो से न मुक्त है और न हो सकता है यही कारण है कि टकराहटो और सक्रमणो का एक सिलसिला भयानक रूप मे चल रहा है। जिसके कारण परिवारो मे निरन्तर विघटन हो रहे हैं।

एक नाव के यात्री

'एक नाव के यात्री' ज्ञानरजन द्वारा लिखित कहानी आधुनिक जीवन मूल्यो की ओर एक प्रश्न चिन्ह खडा करती है। घटना क्रम पिछले सात वर्षों का है जब रज्जन अपनी नव वधू के साथ इजीनियरिंग के एक डिप्लोमा हेतु इग्लैण्ड गया हुआ था और इस बीच उसने वही रहकर स्थायी रूप से घर बसाने का निश्चय किया। इधर भारत मे उसके माता–पिता तथा एक भाई और दो बहने रहती हैं। कहानी का प्रारम्भ वहॉ से शुरू होता है जब कीर्ति का भाई रज्जन इग्लैण्ड से वापस अपने देश आ रहा है और उसको लेने के लिए उसकी बहन कीर्ति स्टेशन पर गयी हुई है। यह सिलसिला पूरे के पूरे बारह दिन चलता है क्योकि रज्जन अपनी पत्नी रत्ना के साथ उसी के घर बम्बई चला जाता है और उसने अपने घर सूचना भी नहीं दी है। घर मे रिटायर्ड बूढा अन्धा पिता इसी आशा मे जीता रहता है कि पुत्र वापस विदेश मे जाते समय उसको साथ लेकर उसकी ऑखे बनवा देगा। परन्तु आधुनिक पीढी के रज्जन को यह सब पसन्द नहीं आता है। वह अपनी प्रतिक्रिया को बहन कीर्ति से यह कहकर समाप्त कर देता है कि मदर–फादर को कम से कम उसकी पत्नी रत्ना से प्रेमपूर्वक व्यवहार तो

करना ही चाहिए था। हमसे ठीक से न बोलते, दूसरे घर की लडकी है उसे मदर–फादर का व्यवहार अवश्य बुरा लगा है। नयी पीढी के रज्जन अपने माता–पिता को उपहारो द्वारा खुश करना चाहता है परन्तु पुरानी पीढी के लोग (माता–पिता) चाहते हैं कि उनकी सतान उनके पास बैठे और दु ख दर्द की बाते कहे सुने इसी सवेदना के साथ कहानी समाप्त हो जाती है।

'एक नाव के यात्री' मे परिवार के परम्परागत स्वरूप को तोडने वाला प्रमुख कारण पाश्चात्य सस्कृति का भारतीय सस्कृति पर हावी हो जाना है जो पारिवारिक विघटन को जन्म देती है। स्वातन्त्रयोत्तर भारत एक नवीन परिवर्तित रूप मे हमारे सामने आता है, जहॉ एक ओर परम्परा से चले आ रहे सयुक्त परिवारो का विघटन हो रहा था और दूसरी ओर सामाजिक पारिवारिक सम्बन्धो मे परम्परा बद्ध रूप मे परिवर्तन आ रहा था। परम्परा से विच्छिन्न होकर तथा सभी प्राचीन मानव सम्बन्धो के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्तित्व अधिकाधिक आत्म केन्द्रित होता जा रहा है। यहॉ तक कि पिता–पुत्र, मॉ–बेटी या भाई–बहन जैसे निकटतम सम्बन्धों मे भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है, जो एक–दूसरे के पास रहते हुए भी एक दूसरे को बहुत दूर कर देता है। भारत से सात वर्ष पहले जब रज्जन इजीनियरिंग के एक डिप्लोमा के लिए इग्लैंण्ड गया तो उसने कभी यह स्वप्न मे भी नही सोचा था कि वह इतने दिन वहॉ रुक जायेगा। पत्नी को उसने इसलिए साथ मे ले लिया कि विदेश मे उसे अकेलापन न महसूस हो परन्तु अधिक समय की इग्लैण्ड की आवोहवा ने रज्जन को एव पत्नी रत्ना को काफी बदल दिया है और उसने इतने दिनो से कोई घर के प्रति विशेष उत्सुकता नही दिखाई। रज्जन के शुरू–शुरू के पत्रो से ऐसा आभास मिलता है कि उसे वापस लौटने की उत्सुकता है परन्तु भारत मे अधिक अच्छी नौकरी न मिलने के डर से रज्जन डरता है परिवार मे बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहे है–"शोभा के बाद वाला भाई जाता रहा था। कीर्ति से बडी बहन नलिनी ब्याह होकर बनारस चली गयी थी, पापा सरकारी नौकरी से रिटायर होकर घर बैठ गये थे, और इनमे सबसे बडा हादसा यह हुआ कि पापा की ऑखे अकस्मात जाती रही।"[104] रज्जन को प्रारम्भ मे घर की स्थिति के प्रति सोचकर काफी कष्ट एव स्नेह उभर आता है और अपने को अभागा महसूस करता है उसने लिखा– "नराधम हूँ यह मेरे पूर्व जन्म के पापो का फल है कि इतना सब होने के बाद भी मैं आपसे हजारो मील दूर पडा हूँ लेकिन पापा, आप चिन्ता न करे–मैं आजकल मे यहॉ आई स्पेशलिस्ट से कन्सल्ट कर रहा हूँ और मुझे विश्वास है कि जिस दिन आपको यहॉ ले आऊँगा, सब ठीक हो जायेगा।"[105] विदेश से आया

रज्जन बिना किसी सूचना के अपनी पत्नी रत्ना के घर चला जाता है। कीर्ति एव पापा सहित सम्पूर्ण परिवार परेशान है–"पिछले बारह दिनो से इस समय सारा घर कण्ठो मे प्राण लिये बैठा रहता था। पहले दो दिन स्वय पापा स्टेशन तक चले गये थे, बम्बई से आने वाली कई गाडियॉ उन्होने देखी थी। वह तो बाद मे पता चला था कि रज्जन यहॉ आने के बदले सीधे दिल्ली चला गया था रतना के घर और कई बार बदले हुये तथा स्वय निर्धारित कार्यक्रम के बावजूद आज तेरहवें दिन भी रज्जन का पता नही।"[106] पुत्र की परिवार के प्रति वितृष्णा एव दूसरों के प्रति लगाव बहन कीर्ति सहित पापा को खल जाता है और परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से कटे–कटे से रहते हैं यह रज्जन एव रत्ना भी महसूस करते हैं–"ये मदर–फादर को क्या हो गया है? हम लोग इतने–इतने वर्षों के बाद आये, लेकिन लगा जैसे किसी को खुशी ही नही हुई। सारा वक्त पाप उखडी बाते करते रहे और मॉ का मुँह सूजा रहा। मैं तो खैर घर का हूँ, शिकायत करके भी कहॉ जाऊँगा। रत्ना के दिल को इससे बडा धक्का लगा है। कह रही थी इतनी भावना से लाये हुए प्रेजेण्ट्स किसी ने एप्रिशियेट तक नहीं किये। पापा ने तो कोट को छूकर भी नहीं देखा।"[107] सम्बन्धो के बीच दरार आने का प्रमुख कारण एक दूसरे के प्रति आदान–प्रदान किये गये वादो का पूरा न होना है, रज्जन पूर्ण स्वछन्दता के पक्ष मे है और पापा को इग्लैण्ड ले जाने मे उसे शर्म एव शक महसूस होती है, सयुक्त परिवार एकल परिवार मे इसलिए परिवर्तित हो रहे हैं क्योंकि अर्थ की समस्या के साथ–साथ भौतिक वातावरण की दौड मे भी पिछडने का डर व्यक्ति को रहता है।

विश्व वाड्मय मे यह सर्वविदित है कि सन्तान के प्रति सभी माताओ पिताओ का एक विशेष लगाव होता है जो सम्बन्धो को स्थायित्व प्रदान करता है क्योकि रक्त के सम्बन्धो मे एक विशेष प्रकार की खुशबू होती है कितना भी न चाहते हुए भी व्यक्ति उसके प्रति आकर्षित होता है। रज्जन के पिता एव बहिन कीर्ति इसी कारण रज्जन एव रत्ना के प्रति आकर्षित एव बॅधी हुई है परन्तु जब उसे यह महसूस होता है कि उसका भाई जानबूझकर उसके मम्मी पापाका अपमान कर रहा है तो वह टूट जाती है और अपने को भावनाओ के प्रति भाई से अलगकर लेती है परन्तु पाप अपने खूनी रिश्ते को भूल नही पाते। कीर्ति ने जब कमरे मे झाक कर देखा तो वह ठिठक सी गयी–"पापा ने वही कोट पहन रखा था, जिसे रज्जन के रहते उन्होने छुआ भी नही था। सामने कार्डिगन पहने मॉ खडी थी, और उन्हे कन्धो से पकडे, कार्डिगन के एक–एक हिस्से को ॲगुलियो से टटोलते हुए पापा पूछ रहे थे, "इसका रग कैसा है,

नीला।"[108] यह है आज की पीढी का दुख दर्द जो व्यक्ति को सम्बन्धो के प्रति इतना निरीह एव अकेला बनाये हुए है।

अस्तित्व रक्षा और उत्कट जिजीविषा के कारण पारिवारिक विघटन

आज का व्यक्ति अपने अस्तित्व के प्रति बडा ही चिन्तित है, जिदगी मे वह चारो ओर से सकट ग्रस्त है फिर भी वह जीने का मोह नही त्याग सका है। वह जिन्दगी की अनेक विसगतियो को भोगता हुआ जीवन के बहुस्तरीय सत्रास का अनुभव कर रहा है। वह दिशाहीन व्यक्तित्वहीन एव मानसिक दृष्टि से भी हीन है। वह जीवन के अभावात्मक स्वरूप को झेलता है। फिर भी जीना चाहता है, जीता चला जाता है, उसकी जिजीविषा का आखिर रहस्य क्या है जो इतने सारे अभावपूर्ण जीवन तथ्यो के बीच से गुजरता हुआ वह हर घडी हर समय मृत्यु से झगडता है। जिन्दा चिपका रहना चाहता है। ऐसे समय मे किसी प्रकार की विकलागता उसके जीने की आकांक्षा को कुचल नही सकती। वस्तु सत्य से परे एक आन्तरिक सूक्ष्म अनुभूति के सहारे वह जिन्दगी के डरावने मार्ग का अतिक्रमण करता है। इस प्रक्रिया से शायद यही एक मात्र तथ्य स्पष्ट होता है कि मनुष्य कटा हुआ होकर भी कटा हुआ नही है। वह अपने अस्तित्व का जिममेदार नही होगा, लेकिन अस्तित्व मे होने के बाद उसे भोगता ही है और निरतर अन्तर्बाह्य द्वन्द्वो का सामना करता हुआ आगे बढता है, अपने या किसी और के बनाये हुए जालो में फसता है, फिर उन्हे तोडता है, फिर फॅसता है।[1] यही उनकी नियति है। इसी मे उसका चेतनत्व समाया हुआ है।

धर्मवीर भारती की कहानी 'गुल की बन्नो' मे इस स्थिति का चित्रण यथार्थ रूप मे देखने को मिलता है। कहानी की नायिका गुलकी है जो अपनी जिन्दगी मे हर तरफ से परेशान है पर फिर भी वह जीना चाहती है जिस पति ने गुलकी पर इतने जुल्म ढाये हैं अन्त मे वह उसी के साथ चली जाती है। नायक चदन की यह विवशता है कि वह जीने के लिए बाध्य है और इस जीने की उत्कट लालसा मे वह सर्वत्र निस्सारता का अनुभव करता है और इस स्थिति मे रहते हुए व्यक्ति के व्यवहार मे इतनी जडता और यान्त्रिकता आ जाती है कि वह सवेदन शून्य हो जाता है। कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाए' कहानी मे इसका स्पस्ट रेखाकन किया गया है।

गुलकी बन्नो

'गुलकी बन्नो' धर्मवीर भारती द्वारा लिखित एक परम्परागत भारतीय नारी की कहानी है उसका परिवेश भी जाना पहचाना है किन्तु लेखक इस जाने–पहचाने ससार को ही एक विशेष ढग से रचकर विशिष्ट बना देता है। गुलकी पति एव समाज दोनो से उपेक्षित है। पति से उसका नारीत्व उपेक्षित है एवम् अन्य पडोसियों से उसका व्यक्तित्व। घेघा बुआ और ड्राइवरनी अपने अतीत शोषण और भावी शोषण के कारण ही गुलकी को सहानुभूति देती हैं। उपेक्षित भिखारी बच्चे उससे कुछ पाने की आशा में पास आते–जाते हैं। उन्हे जब कुछ नही प्राप्त होता है तो उसकी वे भयानक उपेक्षा करने लगते हैं। गुलकी दु खी रहती है क्योकि उसके पति ने दूसरी शादी कर ली है और उसे वापस अपने गॉव भेज दिया है। गुलकी की सवेदना सरल नहीं है उसके भीतर से कभी–कभी उभरने वाली ऊर्जा उसकी वेदना को सक्रान्त बना देती है। सहज रूप मे दिखने वाली सारी स्थितियॉ और मन स्थितियॉ उस समय बडी जटिल हो जाती हैं जब गुलकी का पति उसे लेने आता है। गुलकी पति का नववधू की भॉति स्वागत करती है दूसरे घटनाक्रम मे ड्राईवर एव ड्राइवरनी लालच देकर गुलकी का घर उसके पति से अपने नाम करा लेते हैं। इस कहानी के दूसरी कहानी एक विद्रोही नारी की भी चलती रहती है जो पति को देवता न मानकर सहयोगी मानती है और उसके साथ वही व्यवहार करना पसन्द करती है जैसा कि दूसरे पक्ष के द्वारा किया जाता है। कहानी का अत गुलकी के समानान्तर एक विदाई के साथ समाप्त होता है और उसके सम्मान मे मुहल्ले के लोग एवम् उपेक्षित बच्चे आगे आकर गा उठते हैं। 'बन्नो डाले दुपटुटे का पल्ला, मुहल्ले से चली गई राम', इसी के साथ मानवीय ममता एक बिन्दु पर रुक जाती है किन्तु पशु उससे भी आगे बढ जाता है इसलिए इक्के के साथ केवल झबरी कुतिया कुछ दूर जाकर रुक जाती है और लौट आती है।

पत्नी–पति के टूटते सम्बन्धो और नारी के पुन उन सम्बन्धो को बनाने की ललक को 'गुलकी बन्नो' कहानी मे देखा जा सकता है गुलकी पुरानी मान्यताओ की शिकार है, वह उनसे उबर नहीं पाती है। पति का दोष होते हुए भी वह अपने को दोषी स्वीकार करती है। वह पति से पुन सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। गुलकी का पति उसे लेने आया है वह भी इस शर्त पर कि वह उसकी दूसरी पत्नी की टहल करेगी–"इसे ले तो जा रहा हूँ, पर कहे देता हूँ, कि आप भी समझा दे उसे–कि रहना हो तो दासी बनकर रहे। न दूध की न पूत की। हमारे कौन काम की, पर हॉ औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू–बुहारू करे तो दो रोटी खाय पडी रहे। पर

कभी उससे जबान लडाई तो खैर नही। हमारा हाथ बडा जालिम है। एक बार कूबड निकला, तो अगली बार प्रान ही निकलेगा।"[109] भारतीय परम्परा मे पति परमेश्वर वाली छवि लिए हुए गुलकी का पति ऐसा रोब झाडता है कि जैसे यह उसकी विरासत का अभिन्न अग हो, गुलकी भी इसी पुरानी सस्कारो की छवि लिए जिये जा रही है क्योकि पति ही एक ऐसा पतवार है जिसे थामे वह साहिल तक पहुचेगी वह इसे बिना किसी झिझक के स्वीकार भी करती है–"कुछ भी होय, है तो अपना आदमी। हारे–गाढे कोई और काम आवेगा? औरत को दबाकर ही रखना चाहिए।. पति से हमने अपराध किया तो भगवान ने बच्चा छिना लिया, अब भगवान हमे क्षमा कर देगें।. 'क्षमा करेगे तो दूसरी सन्तान देगे? खोट तो हमी मे है। फिर सनतान होगी तो सौत का राज नहीं चलेगा।"[110] गुलकी की यह सती–सावित्री वाली स्थिति भारतीय परिवारो के पुराने सस्कारो को मार्मिक स्तर तक पहुँचाती है क्योकि गुलकी का पारिवारिक सघर्ष ही ऐसा है कि उसे आश्रय देने वाला भी कोई नहीं है उसकी यह नियति अपने परिवेश से भी तो विरासत मे मिली हुई है क्योकि घेघा बुआ और निरमल की मॉ भी उसे यही शिक्षा देती हैं तभी तो निरमल की मॉ कहती हैं– "अरे बिटिया। पर गुजर तो अपने आदमी के साथ करेगी न। जब उसकी पत्नी आयी है तो गुलकी को जाना चाहिए और मरद तो मरद। एक रखैल छोड दुइ–दुइ रखैल रख ले तो औरत उसे छोड देगी? राम। राम। अरे, बेटा। बुआ बोली, 'भगवान रहे न । तोन मथुरा पुरी मे कुब्जा दासी के लात मारिन तो आकर कूबर सीधा हुइ गवा। पती तो भगवान है बिटिया। ओको जाइ देव।"[111]

गुलकी बन्नो मे जहॉ एक ओर गुलकी पुराने सस्कारो को स्वीकार कर उसमे चिपकी रहती है और इसे ही अपनी नियति मान बैठती है परन्तु गुलकी की एक सहेली सत्ती साबुनवाली है यह आधुनिक नारी है अपने अनुसार जीती एव खाती पीती है और पति को परमेश्वर न मानकर पैर की जूती मानती है। सत्ती को गुस्सा आता है कि गुलकी का पति उसे सेवा सुश्रुषा के लिए ही क्यों विदा कराने आया है–"सत्ती गरज रही थी–"बुलाया है तो बुलाने दो। क्यो जाय गुलकी? अब बडा ख्याल आया है। इसलिए कि उसकी रखैल को बच्चा हुआ है तो जाके गुलकी झाडू–बुहारू करे, खाना बनावै, बच्चा खिलावै और वह मरद का बच्चा गुलकी की ऑख के आगे रखैल के साथ गुलछर्रे उडावै।"[112] सत्ती का यह आक्रोश आज के बदलते परिवेश एवम् पारिवारिक जीवन के परिवर्तन की ओर सकेत दे रहा है कि अब वह सब नारी के साथ नही चल सकता है जो पहले से चला आ रहा है अब उसे पत्नी के साथ–साथ कदम बढाकर चलना होगा, क्योकि वह बराबर का 'पार्टनर' है इसलिए सत्ती गुलकी को कहती है कि

उसे अपने पति के साथ वही बर्ताव करना चाहिए जो उसने गुलकी के साथ किया है–"सत्ती दो–एक क्षण उसकी ओर एकटक देखती रही और फिर गरजकर बोली, 'यही कसाई है। गुलकी आगे बढकर मार दो चपोटा इसके मुँह पर। खबरदार, जो कोई बोला। बुआ चट से देहरी के अदर हो गयी, निरमल की मॉ की जैसे घिग्घी बॅध गयी और वह आदमी हडबडाकर पीछे हटने लगा।"[113] बदलते पारिवारिक सन्दर्भों का यह रूप है कि नारी ने अब अपने बारे मे सोचना ही नही कार्यरूप मे परिणित करने का वीणा भी उठा लिया है। गुलकी को समाज की पहचान यथार्थ में हो गयी है और वह अपनी चाची निरमल की मॉ तथा घेघा बुआ के कृत्यो को भलीभॉति जानती है साथ ही वह यह भी जानती है कि जब तक उसके पैर हाथ चलेंगे तभी तक उसका कल्याण है नही तो साथ देने वाला भी इस जहान मे कोई नही है इसलिए सत्ती का प्रतिरोध होने पर भी गुलकी अपने आदमी के प्रति सहानुभूति रखती है–"हाय, हमे काहे को छोड दियौ। तुम्हारे सिवा हमरा लोक–परलोक और कौन है। अरे हमरे मरे पर कौन चुल्लू भर पानी चढाई।"[114] ऐसा नही कि गुलकी मे पति के प्रति स्नेह नहीं है, कितना भी उसने सताया, पर यहॉ आने पर उसमें एक अजीब सकोच एव उत्साह उसके प्रति हो गया है–"लज्जा भरी जो मुस्कान किसी भी तरुणी के चेहरे पर मनमोहक लाली बनकर फैल जाती, वह उसके झुर्रियोदार, बेडौल, नीरस चेहरे पर विचित्र रूप से वीभत्स लगने लगी। उसके काले पपडीदार होठ सिकुड गये, ऑखो के कोने मिचमिचा उठे और अत्यन्त कुरुचिपूर्ण ढग से उसने पल्ले से सिर ढॉक लिया और पीठ सीधी करके जैसे कूबड छिपाने का प्रयास करने लगी। मेवा पास ही बैठ गया। कुबडी ने पहले इधर–उधर देखा, फिर फुस–फुसाकर मेवा से कहा, क्यो रे, जीजाजी कैसे लगे तुझे।"[115] गुलकी का यह उत्साह एवम् सम्बन्धो की पुनर्प्राप्ति कितनी ताजी एवम् शालीन है कि उसे अपने ऊपर किये गये सभी जुल्म फीके नजर आते हैं शायद इसका यह कारण है कि यहॉ भी गुलकी को अपने पति से अधिक प्रताडना महसूस होती है। पति के घर जाते समय गुलकी अपनी पूर्वस्मृतियो मे खो जाती है–"गुलकी जो अभी तक पत्थर सी चुप थी, सहसा फूट पडी। उसे पहलीबार लगा जैसे वह मायके से जा रही है–मायके से अपनी मॉ को छोडकर छोटे भाई–बहनो को छोडकर और वह अपने कर्कश फूटे हुए गले से विचित्र स्वर मे रो पडी। हाय रे मेरे भइया। अब हम जा रहे हैं। अब किससे लडोगे मुन्ना भइया? अरे मेरे वीरन, अब किससे लडोगे।"[116]

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि "यहॉ आधुनिकता पर प्राचीनता हावी है धर्मवीर भारती पुराने सस्कारो को जीवत रखना चाहते हैं यह उनकी नारी विषयक

अवधारणा भी हो सकती है, परन्तु यहाँ पति–पत्नी के टूटते हुए सम्बन्ध और नारी की पुन उन सम्बन्धों को बनाने की ललक का चित्रण है। सम्बन्धो की पुनर्स्थापना की ललक है। किन्तु सम्बन्धो का चित्रण नहीं। पुनर्स्थापना की ललक भी बौद्धिक स्तर की न होकर भावुकता के स्तर की है।"[117]

खोयी हुई दिशाएँ

'खोयी हुई दिशाएँ' मे कमलेश्वर ने अपनी पहचान खोते हुए व्यक्ति का समग्र मूल्याकन किया है। लेखक की हैसियत से नायक चदर तीन साल पहले इलाहाबाद से दिल्ली आया है। इस बात का कोई इशारा नहीं है कि नौकरी से कितनी सुरक्षा या अपनी योग्यता को लेकर नायक चन्दर को कोई आश्वासन मिलता है या नही। शहर मे भटकते हुए वह शहर के बे–चेहरा होने या जान–पहचान के न होने से दुखी है। वह पुराने परिचितो मे तलाश खोजता है परन्तु उन लोगो के अजनबीपन के व्यवहार से खिन्न हो जाता है। चदर को अपनी क्षमता और अस्मिता का वह एहसास नही है जिसके द्वारा मानवीय सम्बन्धो मे पहलकदमी करने मे मदद मिलती है। वह आश्वासन के लिए दूसरो पर निर्भर है, अपने भीतर झॉकने से डरता है इसके लिए वह स्वय को दोषी भी समझता है। कहानी का अन्त चन्दर के घर मे पत्नी के चिर–परिचित दायरे मे सिमट कर रह जाने मे समाप्त होता है क्योकि वह पत्नी के साथ होने पर भी खुद को वहॉ नहीं पाता है और पूछता है कि तुम (पत्नी से) मुझे पहचानती हो, क्या निर्मला (पत्नी) तुम मुझे पहचानती हो।

कहानी 'खोयी हुई दिशाएँ' मे पारिवारिक जीवन के विलुप्त होते हुए सम्बन्धो की ओर लेखक सकेत करता है। महानगरीय जीवन का अकेलापन है। यान्त्रिक दिनचर्या, खालीपन, बेगानगी और अजनबीपन इस कहानी मे सवेदना के रेशो सहित मुखरित हो उठे हैं। कहानी के नवयुवक चदर के माध्यम से स्थिति के उस यथार्थ का विश्लेषण किया गया है जहॉ वर्तमान शिक्षा पद्धति निस्सार है और प्रेम विवशता सब बेगाने हैं। अपनी पहचान खत्म होने के खतरे को नायक चन्दर महसूस करता है। शहर मे भटकते हुए वह शहर के बे–चेहरा होने या जान–पहचान के न होने से दुखी है–

"आस–पास से सैकडो लोग गुजरते हैं, पर कोई उसे नही पहचानता। हर आदमी या औरत लापरवाही से दूसरो को नकारता या झूठे दर्प मे डूबा हुआ गुजर जाता है।"[118] ये वे लोग हैं जो मिथ्या दभ के मारे हैं, असुरक्षा के कारणो के विश्लेषण की इनमे कही कोई कोशिश नही है। यह व्यक्ति अपने ऊपर तरस खाने मे ही डूबा हुआ है। विश्लेषण के अभाव मे वह उस स्थान की यादो की डोर पकड लेता है जहॉ मन मे

यह सब नही आता था। और तब उसे अपना शहर याद आता है जहॉ से·तीन साल पहले चला आया था। गगा के सुनसान किनारे पर भी अगर कोई अनजान मिल जाता तो उसकी नजरो मे पहचान की एक झलक तैर जाती थी। सम्बन्धो के विलुप्त या विघटन को यहॉ नहीं उठाया गया है कि उस शहर मे हर अनजान आदमी क्या ऐसी ही पहचान करेगा? हो सकता है कि उसके अपने शहर मे बहुत–से दरबाजे बन्द रहे हो, पर चूँकि बहुत से दरवाजे खुले थे, इसलिए बद दरवाजो की तरफ ध्यान नहीं जाता था। बहरहाल दिल्ली मे उसे लगता है कि मानवीय सम्बन्धो के बीच बहुत–सी दीवारे हैं–''तमाम सडके हैं जिन पर वह जा सकता है, लेकिन वे सडके कही नही पहुँचाती। उन सडको के किनारे घर हैं, बस्तियॉ हैं–पर किसी भी घर में वह नही जा सकता। उन घरो के बाहर फाटक हैं जिन पर कुत्तों से सावधान रहने की चेतावनी है, फूल तोडने की मनाही है और घण्टी बजाकर इन्तजार करने की मजबूरी है।''[119] चन्दर नयी दिशाएँ खोजने और नये मित्र बनाने की सम्भावनाओ पर कोई भी विचार नही करता। जिस दिन का वर्णन कहानी मे है उस दिन वह कई बार एकाकीपन और अलगाव को तोडने का प्रयत्न करता है। मगर इसके लिए सान्त्वना वह मुख्यत· उन्ही लोगो से प्राप्त करना चाहता है जो उसकी जान पहचान के हैं। वह एक परिचित स्कूटर वाले के स्कूटर मे बैठता है, मगर वह है कि पहचान का कोई चिन्ह नहीं दिखलाता, उलटे यात्रा के अन्त मे ज्यादा किराया मॉगने लगता है।

आज का आदमी हर तरह से अपने को अपरिचित महसूस कर रहा है किसी का अनादर, अपमान उसे कम कष्ट दे सकता है। उसके कष्ट का सबसे बडा बिन्दु है अपरिचय–जो उसे अपने परिचितो के बीच मिल रहा है तभी तो 'खोई हुई दिशाएँ' का प्रधान विक्षिप्त सा हो जाता है, जब उसकी पूर्व परिचिता उससे यह पूछती है कि आप चाय मे कितनी चीनी पसन्द करते हैं–एक या डेढ चम्मच। यही आज के आदमी की सवेदना का बिन्दु है जहॉ पर वह स्वय को परम्परागत आदर्शों से एकदम कटा हुआ और अलग पाता है। चन्दर अपनी पुरानी परिचिता मित्र इन्द्रा के पास जाता है जो अब विवाहित है, पर वहॉ भी उसे बेगानापन महसूस होता है ''नौकरानी आकर चाय रख गयी। इन्द्रा ने प्याले सीधे करके चाय बनायी तो वह उसकी बॉहो, चेहरे और माथे को देखता रहा सब कुछ वही था, वैसा ही था चिर–परिचित। तभी इन्द्रा ने पूँछा, ''चीनी कितनी दूँ? और एक झटके से सब कुछ बिखर गया, उसका गला सूखने–सा लगा और शरीर फिर थकान से भारी हो गया। माथे पर पसीना आ गया। फिर भी उसने पहचान का रिश्ता जोडने की एक नाकाम कोशिश की और बोला, ''दो

चम्मच'। और उसे लगा कि अभी इन्द्रा को सब कुछ याद आ जायेगा और वह कहेगी कि दो चम्मच चीनी से अब गला खराब नही होता।"[120] पहचान खोने का एक और मौका टी–हाऊस मे भी आता है जहॉ एक अजनबी पूछता है–"आप आप तो शायद कामर्स मिनिस्ट्री से हैं? मुझे याद पडता है कि चन्दर कहता है, 'नही मैं कामर्स मिनिस्ट्री मे कभी नही था।"[121] यह आदमी सम्बन्ध बढाने की कोशिश नही करता। "ऑलराइट, पार्टनर, फिर कभी मुलाकात होगी।"[122] महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि चन्दर खुद भी इस मौके को पकडकर बातचीत आगे– चलाने या सम्बन्ध बढाने की कोई पहल नहीं करता। हॉ, दोष अवश्य दूसरे व्यक्ति को देता है।

चन्दर को अपनी क्षमता और अस्मिता का वह एहसास नहीं है जिसके द्वारा मानवीय सम्बन्धो की पहल कदमी मे मदद मिलती है। वह आश्वासन के लिए दूसरो पर निर्भर है, अपने भीतर झॉकने से डरता है। एक अरसा हो गया, एक जमाना गुजर गया, वह खुद अपने से नही मिल पाया। लेकिन इसके लिए दोषी वह अपनी व्यस्त दिनचर्या को ठहराता है– "यह भी नहीं पूछा कि आखिर तेरा हाल–चाल क्या है और तुझे क्या चाहिए? हल्की सी मुस्कराहट उसके होठो पर आयी और उसने हर शुक्रवार के आगे नोट किया–खुद से मिलना है –शाम सात बजे से नौ बजे तक और आज भी तो शुक्रवार ही है। यह मुलाकात आज ही होनी चाहिए। घडी पर नजर जाती है, सात बजा है पर मन का चोर हावी हो जाता है। क्यो न टी–हाऊस मे एक प्याला चाय पी ली जाये? न जाने क्यो मन अपने से मिलने मे घबराता है। रह–रहकर कतराता है।"[123] लगता है कि चन्दर की मूलभूत समस्या आन्तरिक शक्ति की अनुपस्थिति और कही बाहर से ही सहारा लेने की स्थिति है। दोष अपने–आप मे शहर का नही है। हॉ, इसमे रहते हुए वह उन सब सुरक्षाओ से वचित हो गया है जो उसे अपने शहर में अनायास मिला करती थी, क्योकि वहॉ कोई उसे पहचानता था।

कहानी के अन्त मे चन्दर घर और पत्नी के चिर परिचित दायरे में सिमट आया है। पत्नी के साथ सम्बन्ध स्थापित करनेमे उसे क्षणिक पलायन सुख मिलता है–"वह उस परिचित गन्ध, परिचित सासो और पहचाने स्पर्शों मे डूबता जाता है" उतरता हुआ ज्वार उसे फिर अकेला छोडे जा रहा है अनजान तटो पर छोडी हुई सीपी की तरह।"[124] पत्नी सो जाती है तो वह एक बार फिर एकाकीपन और निरर्थकता के एहसास से त्रस्त होने लगता है। पत्नी को जगाकर झकझोरते हुए वह पूछता है–"मुझे पहचानती हो? मुझे पहचानती हो, निर्मला।"[125] डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार–"एक कस्बे का आदमी बडे शहर मे आकर किस तरह भटकन, सूनेपन को

महसूस करता है उसके लिए स्थिति और दृष्टि दोनो किस तरह बदल जाती हैं यह कमलेश्वर की कहानी का मूल स्वर है।"[126]

चन्दर की अलगाव प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। वह वास्तव मे शहर लोग और स्वय अपने प्रति अपनेपन के अभाव से पीडित है, लेकिन अभी उसके पास उस पुराने स्थान की सम्बन्धो की गहरी स्मृतियॉ हैं जहॉ वह अपनापन महसूस किया करता था। अब भी उसे मानवीय सम्बन्धों की गहरी जरूरत है और आशा करता है कि अपने को सभाल ले जायेगा। इस प्रकार यह कहानी सीमित सामाजिकता को वृहत्तर सामाजिकता से जोडती है। चन्दर का दर्द कोई सामान्य दर्द न होकर, व्यवस्था जन्य परिस्थितियो से उत्पन्न आर्थिक और सास्कृतिक दबावो का चेतना जन्य दर्द है जिनकी दिशाएँ खो चुकी हैं।"[127]

सन्दर्भ

1 कहानी नई कहानी, पृ0 36

2 हिन्दी कहानी मे जीवन मूल्य, पृ0 197

3 आधुनिकता और समकालीन रचना सदर्भ, पृ0 102

4 कहानी—नयी कहानी, पृष्ठ 44

5 कहानी आज की कहानी, पृ0 36

6 परिन्दे, पृ0 165

7 परिन्दे, पृ0 191

8 परिन्दे, पृ0 191

9 डॉ0 नामवर सिह—कहानी—नयी कहानी, पृ0 95

10 कहानी नयी कहानी, पृ0 49—50

11 दोपहर का भोजन, पृ0 116

12 हिन्दी कहानी का विकास, पृ0 168

13 दोपहर का भोजन, पृ0 113—14

14 दोपहर का भोजन, पृ0 120—21

15 नयी कहानी की भूमिका, पृ0 158

16 वापसी, पृ0 200

17 वापसी, पृ0 203

18 वापसी, पृ0 198

19 हिन्दी चर्चित कहानियाँ पुनर्मूल्याकन, पृ0 143

20 वापसी, पृ0 201

21 वापसी, पृ0 203

22 वापसी, पृ0 202–03

23 वापसी, पृ0 201

24 वापसी, पृ0 201

25 वापसी, पृ0 195

26 वापसी, पृ0 204

27 आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य मे समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ0 360

28 कहानी नयी कहानी, पृ0 204–05

29 हिन्दी कहानी पहचान और परख, पृ0 230

30 शेष होते हुए, पृ0 65

31 शेष होते हुए, पृ0 65

32 शेष होते हुए, पृ0 65

33 शेष होते हुए, पृ0 66

34 शेष होते हुए, पृ0 67

35 शेष होते हुए, पृ0 71

36 शेष होते हुए, पृ0 75

37 शेष होते हुए, पृ0 75

38 शेष होते हुए, पृ0 68

39 शेष होते हुए, पृ0 75

40 शेष होते हुए, पृ0 76

41 हिन्दी कहानी, पृ0 258

42 सम्बन्ध, पृ0 142

43 सम्बन्ध, पृ0 144

44 सम्बन्ध, पृ0 142

45 सम्बन्ध, पृ0 142–143

46 सम्बन्ध, पृ0 145

47 सम्बन्ध, पृ0 144

48 सम्बन्ध, पृ0 143

49 हिन्दी कहानी का विकास, पृ0 178

50 हिन्दी कहानी अपनी जबानी, पृ0 132–33

51 मछलियाँ, पृ0 105

52 हिन्दी कहानी अलगाव दर्शन, पृ0 82–83

53 हिन्दी कहानी पहचान और परख, पृ0 115

54 नई कहानी–नये प्रश्न–सन्त बख्श सिह, पृ0 115

55 हिन्दी कहानी का मूल्याकन, पृ0 90

56 नन्हो, पृ0 352

57 हिन्दी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ0 224

58 नन्हो, पृ0 353

59 नन्हो, पृ0 355

60 नन्हों, पृ0 356

61 हिन्दी कहानी का विकास, पृ0 103

62 नन्हो, पृ0 351

63 नन्हो, पृ0 356

64 नन्हो, पृ0 356

65 हिन्दी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–मिथलेश रोहतगी, पृ0 184

66 यही सच है, पृ0 243

67 हिन्दी कहानी अपनी जबानी – डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0 145

68 यही सच है, पृ0 248

69 हिन्दी कहानी एक नयी दृष्टि – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, पृ0 145

70 नई कहानी का विकास–मधुरेश, पृ0 111

71 मित्रो मरजानी, पृ0 10

72 मित्रो मरजानी, पृ0 19

73 हिन्दी कहानी का विकास – मधुरेश पृ0, 113

74 मित्रो मरजानी, पृ0 19

75 मित्रो मरजानी, पृ0 18

76 मित्रो मरजानी, पृ0 12

77 मित्रो मरजानी, पृ0 95

78 मित्रो मर जानी, पृ0 92

79 मित्रो मरजानी, पृ0 94

80 मित्रो मरजानी, पृ0 57

81 मित्रो मरजानी, पृ0 56

82 हिन्दी कहानी मे जीवन, मूल्य पृ0 244

83 हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, पृ0 87

84 टूटना, पृ0 308

85 टूटना, पृ0 311

86 टूटना, पृ0 311

87 टूटना, पृ0 311

88 टूटना, पृ0 320

89 हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा, पृ0 258

90 हिन्दी कहानी अपनी जबानी, पृ0 146

91 सेलर, पृ0 326

92 सेलर, पृ0 329

93 सेलर, पृ0 326

94 सेलर, पृ0 331

95 हिन्दी कहानी अपनी जबानी, पृ0 114

96 सेलर, पृ0 333

97 सेलर, पृ0 334

98 हिन्दी की नयी कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ0 223

99 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी–'ज्ञानरजन की कहानियॉ' (लेखक), सत्य प्रकाश मिश्र (सं) 'कहानीकार ज्ञानरजन', पृ0 114

100 पिता, पृ0 15

101 पिता, पृ0 16

102 पिता, पृष्ठ 16, 17

103 पिता, पृष्ठ 19

104 एक नाव के यात्री, पृ0 338

105 एक नाव के यात्री, पृ0 338

106 एक नाव के यात्री, पृ0 339

107 एक नाव के यात्री, पृ0 325

108 एक नॉव के यात्री, पृ0 346

109 गुलकी बन्नो, पृ0 162

110 गुल की बन्नो, पृ0 162

111 गुल की बन्नो, पृ0 159

112 गुलकी बन्नो, पृ0 159

113 गुलकी बन्नो, पृ0 160

114 गुलकी बन्नो, पृ0 161

115 गुलकी बन्नो, पृ0 161

116 गुल की बन्नो, पृ0 163

117 हिन्दी कहानी मे जीवन मूल्य–डॉ0 रमेशचन्द्र लबानिया, पृ0 237

118 खोयी हुई दिशाएँ, पृ0 139

119 खोई हुई दिशाएँ ,पृ0 139–40

120 खोयी हुई दिशाएँ, पृ0 147

121 खोयी हुई दिशाएँ, पृ0 144

122 खोयी हुई दिशाएँ, पृ0 144

123 खोयी हुई दिशाएँ, पृ0 142

124 खोयी हुई दिशाएँ, पृ0 149

125 खोयी हुई दिशाएँ, पृ0 150

126 हिन्दी कहानी अपनी जबानी–डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0 110

127 कमलेश्वर तीन दशको के बीच एक वैचारिक यात्रा (लेखक), मधुकर सिह (स0) 1977 दिल्ली शब्दकार, पृ0 61

तृतीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास के चरित्र में पारिवारिक विघटन का बीज

परीक्षा गुरू, सेवासदन, निर्मला, भूले बिसरे चित्र, झूठा सच, मेरी तेरी उसकी बात, कंकाल, सन्यासी, सफेद मेमने, गबन, त्यागपत्र, शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप, गुनाहों का देवता, दिव्या

तृतीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास के चरित्र में पारिवारिक विघटन का बीज

उपन्यास अपने जन्म से ही भारत मे तथा विश्व साहित्य मे विघटनकारी तत्वो के रूप मे जाना जाता है। प्रेमचन्द्र पूर्व, प्रेमचन्द युग तथा प्रेमचन्दोत्तर काल मे स्त्री–पुरूष के सम्बन्धो मे तीव्रगति से बढता हुआ आक्रोश एवम घुटनमयी मन स्थिति की छाप आभाषित हो रही है। इसका मूल कारण है– "सयुक्त परिवार का विघटन और विश्रृखल परिवारो का उत्थान, जिसमे पति पत्नी के जीवन मूल्यो मे नवीन परिवर्तन सम्भव हो सका है।"[1] सापेक्ष दृष्टि से अवलोकन किया जाये तो स्पष्ट होता है आज पति–पत्नी के नैतिक मूल्यो मे अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है और आज के स्त्री एवम पुरूष सम्बन्धो की रूढिवादिता त्यागकर नवीन परिवेश मे स्वतंत्र व्यक्तित्व की साधना मे व्यस्त दृष्टिगत होते हैं। दोनो ही अपने–अपने अधिकारो के प्रति अत्यन्त सचेत व सजग हो चुके है। आधुनिक युग मे पति–पत्नी के सम्बन्धो मे वह कडाई न रही जो प्राचीनकाल मे थी। आज न पत्नी के लिए पति देवता है और न पति के पत्नी देवी।

उपन्यास के चरित्र मे पारिवारिक विघटन की दृष्टि से अवलोकन करने पर इसके पॉच रूपो का यहॉ जिक्र करना महत्वपूर्ण है क्योकि 'परीक्षागुरू' से लेकर वर्तमान समय के उपन्यासो म पारिवारिक विघटन के बीज बिन्दु पर्याप्त रूप मे दृष्टिगत होते है। पारिवारिक विघटन के कतिपय रूप इस प्रकार है।

1 यर्थायवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन।

2 मार्क्सवादी यथार्थवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन।

3 व्यक्तिवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन।

4 व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन।

5 ऐतिहासिक यथार्थवादी स्प्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन।

यथार्थवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन

साहित्य में यथार्थवाद का स्वरूप निरूपण प्राय दो प्रकार से किया जाता है प्रथमता तो किसी यथार्थवादी सर्जक की विशिष्ट प्रवृत्तियो का विवेचन किया जाता है और फिर उन्ही के आधार पर यथार्थवाद का स्वरूप निर्धारण और द्वितीयत यथार्थवाद का सैद्धातिक उल्लेख कर साहित्यकार मे उसके समायोजन

को देखा जाता है। क्योकि – "यथार्थवादी साहित्कार वह है जो (1) सुन्दर और समुचित विषयो को सायास निरस्तकर भद्दी और असगत वस्तुओ का चित्रण करता है (2) जो वर्ग के स्थान पर व्यक्ति का वर्णन करता है और (3) जो वास्तव को तद्रूप ही प्रतिरूपित करता है।"[2] तथा "साहित्य मे यथार्थवाद वह प्रवृत्ति है जिसका लक्ष्य जीवन और प्रकृति का निष्ठामय सर्वांग पुनर्प्रस्तुतीकरण है। यह प्रवृत्ति सुन्दरता के लिए तथ्यो के आदर्श चित्रण को, अभिव्यक्ति के शैलीकरण को तथा आध्यात्मिक और आधिभौतिक विषय–वस्तु के चित्रण को निरस्त करती है।"[3] अथवा "यथार्थवाद वह साहित्यिक विचार–सरणि है जो वस्तु के चयन एव सृजन के माध्यम से पाठक के वास्तविक बोध को बढाती है।"[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि यथार्थवादी साहित्यकार अपने उपन्यास मे जीवन की वास्तविकता को अपने सृजन मे सर्वोपरि महत्व देता है औरइस हेतु वह 'सुन्दर' सुसगत और आदर्श की परवाह नही करता, वह अपने वास्तविकता बोध को सम्पन्न करे– फिर भले ही वह कलात्मक न हो। यथार्थवादी उपन्यासकार समाज के वास्तविक प्रश्नो समस्याओ और चिताओ को उद्घाटित करने हेतु उन समस्त सामजिक विकृतियो, कुरूपताओ और विद्रूपो को अपने लेखन की विषय वस्तु बनाता है, जिन्हे अन्य सर्जक सुन्दर सुष्ठु आदर्श और कलात्मक न होने से त्याग देते है।

पारिवारिक विघटन की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास की नैतिकता और आदर्श के प्रति उपेक्षा और तथ्याश्रित सत्य के प्रति मोह की भावना वस्तुत प्रेमचद के समय से पूर्व भी आरम्भ हो चुकी थी और इसमे स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति प्रेमचद युग मे साफतौर से देखी जा सकती है और 1947 ई0 के बाद यह बद्धमूल हो गयी। "राकेश पूर्व युग के यथार्थवादी उपन्यास लेखको ने इसे दो रूपो मे प्रयुक्त किया। प्रथमत तो वे उपन्यासकार थे जो जीवन और उसकी समस्याओ को बिना किसी राजनीतिक मतवाद का आश्रय लिए हुए यथातथ्य रूप मे प्रस्तुत करते थे और दूसरे वे लेखक थे जो समाज के यथार्थ को मार्क्सवाद के दृष्टिकोण से चित्रितकर साम्यवाद के प्रचार करने और वर्ग–सघर्ष को उभारने और अतत सर्वहारा क्रान्ति के द्वारा समाज–व्यवस्था को बदलने मे विश्वास रखते थे। ऐसे औपन्यासिको के समक्ष उपन्यास रचना (अथवा साहित्य) एक साधन मात्र के रूप मे थी। वे कृति और उसके सृजन से साम्यवाद अथवा वैचारिक सर्वहारा सामाजिक क्राति के साध्य को प्राप्त करना चाहते थे।"[5] यही प्रथम प्रकार के उपन्यासकार ही जीवन जगत का यथा तथ्य अकन कर सम्बन्धो की अभिव्यक्ति मे

हिचकते नही है। 'परीक्षागुरू' सेवा सदन 'निर्मला' एव 'भूलेबिसरे चित्र' यथार्थवादी पारिवारिक विघटन के उपन्यास है।

परीक्षागुरू

लाला श्रीनिवास दास ने 'परीक्षगुरू' के माध्यम से समकालीन यथार्थ को तत्कालीन परिवेश मे चित्रित किया है यह पहला सामाजिक उपन्यास है, इस उपन्यास के परिवेश मे कुछ विदेशी व्यापारी, स्वदेशी व्यापारी, भिन्न–भिन्न देशो के लोग तथा इन सबके आपसी सम्बन्ध और रग–ढग, कचहरी, हवालात, रईसी दरबार इनसे सम्बन्धित घटनाए और प्रसग आये है नैतिकतामूलक उपदेशवादिता उपन्यास की औपन्यासिक सरचना मे उभरती है। इक्तालीस अध्यायो के शीर्षक से उसके आरम्भ मे दिये गये दोहो या कविताओ से हर प्रसग के साथ सवाद के माध्यम से आने वाले देश–विदेश की कहानियो और घटनाओ के उदाहरणो से और सदपात्रो द्वारा जगह–जगह की गयी सामाजिक आलोचनाओ से परीक्षागुरू भरा पडा है।

लाला मदन मोहन एक पुराने रईस आदमी है औरउनके सहयोगी उन्हे उल्टी सीधी सलाह देकर उनका सम्पूर्ण धन उल्टे सीधे कार्यों मे लगवाकर खर्च करवा देते है, परन्तु इन सबके बीच उनका एक सच्चा हितैषी मित्र ब्रजकिशोर आधुनिक चेतना सम्पन्न पात्र है उसके पास विवेक दृष्टि है। लाला मदन मोहन के अनाप–शनाप खर्चों के कारण वे दिवालिया हो जाते है और उनकी मददके लिए उनका कोई भी मित्र उनके पास नही भटकता है अन्त मे उनकी पत्नी तथा मित्र ब्रजकिशोर की मदद से उनका सकट हल होता है। 'परीक्षागुरू उस समय का उपन्यास है जब खडी बोली का गद्य साहित्यिक रूप लेने का प्रयत्न कर रहा था। इसलिए इसकी भाषा का स्वरूप बहुत कुछ अनगढ है। इसमे सवेदनाओ और प्रसगो से उत्पन्न होने वाले विविध कोण और रगनही है, एक सपाट एक रसता है। इसमे आये शब्द आज की दृष्टि से अशुद्ध कहे जा सकते है किन्तु ये उस समय की दृष्टि से शुद्ध कहे जायेगे। आज भी इन शब्दो का उच्चारण उसी रूप मे होता है। जिस रूप मे ये शब्द लिखे गये है।

परीक्षागुरू हिन्दी का पहला महत्वपूर्ण उपन्यास माना गया है। सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से इसमे पारिवारिक विघटन के बीज बिन्दु दिखते है। उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध भारतेन्दु युग मे हिन्दी के प्रथम उपन्यास परीक्षागुरू (1882) का प्रकाशन होता है। भारतेन्दु से प्रेमचद तक, प्रेमचद से जैनेन्द्र तक और जैनेन्द्र से आज तक आधुनिक हिन्दी उपन्यास के तीन विकास क्रम स्पष्ट

लक्षित है। भारतेन्दु से प्रेमचद तक का प्रारम्भिक काल केवल इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकता है कि उसमे आधुनिक हिन्दी उपन्यास का जन्म और शैशवोचित विकास हुआ। प्रेमचद से जैनेन्द्र तक का द्वितीयकाल ही वस्तुत वह उल्लेख्य समयावधि है जिसमे आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्यिक और कलात्मक दृष्टि से परिनिष्ठता को प्राप्त हुआ। तृतीय कालक्रम– जैनेन्द्र से आज तक हिन्दी के आधुनिक औपन्यासिक कृतित्व का ऐसा युग है। जिसमें वह प्रौढता एव प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद उन नूतन क्षितिजो के अन्वेषण मे सलग्न है जो उसे विश्व उपन्यास साहित्य मे सादर प्रतिष्ठित करेगे। भारतेन्दु से स्वतन्त्रता–प्राप्ति तक हिन्दी उपन्यास अपने आरम्भिक राष्ट्र–राज्य जाति, धर्म गौरव के अनुवादो–छायानुवादो, प्रसाद–प्रेमचद–युगीन इतिवृत्तात्मकता, सोद्देश्यता तथा यथार्थवादिता और जैनेन्द्र–अज्ञेय युगीन दार्शनिकता, मनोवैज्ञानिक वायवीयता के विविध स्तरो को पारकर चुका था। हिन्दी उपन्यास के ये विविध स्तर उसके रचना–जगत की प्रगति के परिचायक थे और साथ ही आने वाले रचनाकारो के लिए एक समृद्ध परम्परा निधि थी।

डॉ0 रामदरश मिश्र के अनुसार– ''इसमे हमारे समाज को बरबाद करने वाले अनेक दोषो– जुआ, शराब, , नृत्य, झूठा प्रदर्शन, चाटुकारिता, प्रेम आदि का पर्दाफाश करते हुए सच्ची राह पर चलने की शिक्षा दी गयी है। परिवेश–चित्रण के क्रम मे लेखक ने देशी विदेशी पात्रो की जागरूकता का अंतर भी स्पष्ट किया है। उसने प0 पुरूषोत्तम दास की मूर्खता के माध्यम से पुराने पाडित्य का मजाक भी उडाया है।''[6] वही दूसरी ओर परीक्षागुरू के बारे मे डॉ0 गोपालराय का दृष्टिकोण इस प्रकार है– ''इस कथा के अधिकाश पात्र जीते जागते मनुष्य न होकर किसी नकिसी 'गुण' या 'दोष' के प्रतीक है। लाला मदनमोहन अपव्यय के उनके सभासद 'खुशामद' के लाला ब्रजकिशोर सदुपदेश और सच्ची मित्रता के तथा मदनमोहन की पत्नी पतिवृत्य का उदाहरण है। इन प्रतीको से वार्तालाप तथा कार्य कराकर लेखक ने पाठको को यह उपदेश दिया है कि खुशामद पसद, अपव्ययी, दभी, झूठा, आत्मसम्मान चाहने वाला तथा कामचोर व्यक्ति कभी भी सुखी नही हो सकता।''[7] पारिवारिक विघटन एवम सम्बन्धो मे आये परिवर्तन इन्ही पाच बिन्दुओ को लेकर परीक्षा गुरू मे सभी पात्रो को परेशान करते रहते है। लाला मदनमोहन एक बिगडा हुआ रईस है। समय–समय पर बिना अपनी आमदनी का हिसाब किताब रखे आधुनिक महगी वस्तुओ को खरीदता रहता है औरअपनी वास्तविकता से अनजान होकर गर्व का अनुभव करता है तभी तो मदनमोहन का मित्र ब्रजकिशोर उससे प्रश्न रूप मे एक सवाल पूछता है– ''आपके

पिता का परलोक हुआ जबसे आपकी पूंजी मे क्या घटा बढी हुई? कितनी रकम पैदा हुई ? कितनी अहद (बर्बाद) हुई कितनी गलत हुई, कितनी खर्च हुई इन बातो का किसी ने विचार किया है? आमदनी से अधिक खर्च करने का क्या परिणाम है? कौन सा खर्च वाजबी है, कौन गैर वाजबी, मामूली खर्चे के बराबर बधी आमदनी कैसे हो सत्ती है? इन बातो पर कोई दृष्टि पहुँचाता है? मामूली आमदनी पर किसी की निगाह है? आमदनी देखकर मामूली खर्चे के वास्ते हरेक सीगे का अदाजा पहले से कभी किया गया है, गैर मामूली खर्चों के वास्ते मामूली तौर पर सीगेवार कुछ रकम हरसाल अलग रक्खी जाती है? बिना जाने नुक्सान, खर्च और आमदनी कम होने के लिए कुछ रकम हर साल बचाकर अलग रक्खी जाती है। पैदावार बढाने के लिए वर्तमानसमय के अनुसार अपने बराबर वालो की कारवाई देशदेशान्तर का बृतान्त और होनहार बातो पर निगाह पहुँचाकर अपने रोजगार धधे की बातो मे कुछ उन्नति की जाती है। व्यापार के तत्वक्या है, थोडे खर्च, थोडी महनत और थोडे समय मे चीज तैयार होनेसे कितना फायदा होता है इन बातो पर किसी ने मन लगाया है? उगाही मै कितने रूपे लेने है।, पटने की क्या सूरत है, देनदारो की कैसी दशा है मियादके कितने दिन बाकी है इनबातो पर कोई ध्यान देता है? नौकर कितने है तनख्वाह क्या पाते है, काम क्या करते है उनकी लियाकत कैसी है, कारवाई कैसी है, उन्की सेवा का आप पर क्या हक है उन्के रखने न रखने मे आपका क्या नफा नुक्सान है इन बातो को कभी आपने मन लगाकर सोचा है''[8] ब्रजकिशोर के इस कथन मे लालामदन मोहन की जिन्दगी के बारे मे कितना जीवत यथार्थ का पुट है यदि ऐसे व्यक्ति का परिवार चल रहा है तो इसमे ईश्वर की कृपा मुख्य होगी।

लालामदन मोहन के चाटुकार उसे हमेशा उल्टी सीधी सलाह देते रहते है और मुँहदेखी बाते करते रहते है एव मदनमोहन की विलासवृत्ति को जगाते रहते हैं। समय–समय पर ब्रजकिशोर मदन मोहन का उद्बोधन करने का प्रयत्न करता है परउसकी चल नही पाती। इस पर प्रो0 शशिभूषण सिहल की टिप्पडी है कि – ''मदन मोहन और ब्रजकिशोर उपन्यास मे क्रमश पाश्चात्य कृत्रिम प्रभाव से बिगडे और जागरूक युवको का प्रतिनिधित्व करते है, उनका चरित्र परस्पर तुलनीय है। कथा–धारा के मूल मे प्रवाहित ये परस्पर विरोधी चारित्रिक तत्व उसे गतिशील बनाते है।''[9] अपने चाटुकारसभासदो से घिरे लाला मदन ने मानो इन सब के समक्ष अपनी निजता खो दी है, लेखक पाचो दरबारियो का चित्र खीचता हुआ लिखता है– ''मुशी चुन्नीलाल ब्रजकिशोर के यहाँ दस रूपे महीने का नौकर था इस्का मन लिखने पढने मे कम लगता था, पर इसने

बडी–बडी पुस्तको मे से कुछ,कुछ बाते ऐसी याद कर रक्खी थी कि नये आदमी के सामने झड बाध देताथा स्वार्थपरता के सिवाय परोपकार की रुचि नाम को न थी। पर जबानी जमा खर्च करने और कागज के घोडे दौडाने में यह बडा धुरधर था। जोड तोड की बातों मे यह इयागो (शेक्सपियर कृत आथेलो नामक नाटक का खलनायक) का अवतार था।"[10] "मास्टर शिभूदयाल प्रथम लाला मदनमोहन को अग्रेजी पढाने के लिये नोकर रक्खा गया था"[11] पढाना भूलकर दोनो मे दोस्ती हो गयी और शिभूदयाल उनके दरबारी हो गये। पडित पुरषोत्तमदास के मन मे डाह बडी प्रबल है– "लोगो को धनवान, प्रतापवान, विद्वान, बुद्धिमान, सुन्दर, तरूण, सुखी और कृतिकार्य देखकर इन्हे बडा खेद होता था"[12] अपने दुखिया चित्त को धैर्य देने के लिए अच्छे–अच्छे मनुष्यो के छोटे–छोटे दोष ढूढा करते हैं, किसी के यश मे कोई कलक लग जाने पर ये बडे प्रसन्न होते है। "हकीम अहमद हुसैन बडा कम हिम्मत मनुष्य था इस्को चुन्नीलाल और शिभूदयाल से कुछ प्रीति न थी परन्तु उनको कर्ता समझकर अपने नुक्सान के डर से यह सदा उनकी खुशामद किया करता था। उन्ही को अपना सहायक बना रक्खा था।"[13] बाबू बैजनाथ ईस्ट इन्डियन रेलवे कम्पनी मै नौकर था और अग्रेजी अच्छी पढा है। हाथी के दात खाने के और दिखाने के और। लोभ मे मदन मोहन का दरबारी बन गया है। ऐसे मित्रो के साथ रहकर मदन मोहन को ठकुरसुहाती सुनने और फिजूल खर्च करने की लत पड गई है, वह पत्नी और सच्चे मित्र ब्रजकिशोर की एक नही सुनता और ऋण मे डूबकरदिवालिया हो जाता है औरसम्बन्धो की वफादारी निभाने वाले उसके सभासद उसको छोडकर चले जाते है अन्त मे पत्नी एवम ब्रजकिशोर ही उसे जेल से निकालकर एक नया जीवन एवम सगठित परिवार चलाने की सलाह देता है।

'परीक्षागुरू' एक शिक्षाप्रद उपन्यास है। इसमे यह दिखाया गयाहै कि एक धनी व्यक्ति किस प्रकार अपने चापलूस मित्रो के फेर मे पडकर ऋणी होकर दुख पाता है तथा अन्त मे एक ईमानदार मित्र की सहायता से उसका कल्याण होता है। परिवारिक सम्बन्धो के विघटन की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण आयाम उपस्थित करता है एवम इसमे उपदेशात्मक आख्यानो के माध्यम से नायक को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य मे रखकर श्री निवास दास ने एक नया प्रयोग कियाहै साथ ही ऐसी अनेक घटनाओ एव पात्रो का सृजन किया है जो वर्तमान समय की दस्तक का आवाहन करती है– "मिस्टर ब्राइट की दूकान मे लाला मदन मोहन का अपने खुशामदी दोस्तो के साथ सौदा खरीदना।"[14] "ब्राइट की ठगचाल"[15] चुन्नीलाल, शिम्भूदयाल पुरूषोत्तम दास आदि द्वारा लाला मदन मोहन की

खुशामद। "मदन मोहन का अपने खुशामदी मित्रो द्वारा कूटा जाना।"[16] "मदन मोहन की विलास प्रियता तथा फिजूल खर्ची।"[17] "बिना कुछ किये लाला मदन मोहन की यशप्राप्ति की अभिलाषा"[18] हरकिशोर द्वारा लोगो मे मदनमोहन की साख कम करने का प्रयत्न, लाला मदन मोहन पर तकाजा होना, दिवाला पिटने पर मदन मोहन के मित्रो का छोडकर भाग जाना, नौकरो की लूटखसोट आदि घटनाएँ वास्तविक ससार की सामान्य घटनाएँ है। जो वर्तमान काल मे परिवारो मे विघटन के बिन्दुओ को पैदा करती हैं।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि केन्द्रीय विचार, उसके दृष्तान्तीकरण तथा चित्रित जीवन मे वैशिष्ट्य के अभाव के कारण 'परीक्षागुरू' उपदेशाख्यान की कोटि मे आता है, पर पात्रो और उनके कार्यों की यथार्थता, वस्तुशिल्प की नवीनता और भाषा सम्बन्धी यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण आधुनिक उपयास के अधिक निकट है।

सेवासदन

सयुक्त परिवार के आदर्श के समर्थक होकर भी प्रेमचद्र ने उसके व्यावहारिक स्वरूप, सयुक्त परिवार मे पलने वाली छोटी–छोटी ईर्ष्याओ, पारिवारिक मान–मर्यादा के झूठे–खोखले प्रतिमानो, प्रतिबन्धो मे जकडे दाम्पत्य जीवन के असन्तोष, विधवाओ की दयनीय स्थिति, विमाता के तिरस्कार पूर्ण निर्दयी व्यवहार का चित्रण करने मे कोई कोताही नही की है। 'सेवा सदन' के सुमन की असतुष्ट जीवन से बनने तक की यात्रा हो या 'निर्मला' के अनमेल विवाह और दहेज प्रथा की दुखात कहानी हो चाहे झूठे प्रतिमानो के कारण 'गबन' की विवशता हो– प्रेमचद सब कही सयुक्त परिवार के वर्तमान वषम्य को अपनी पैनी लेखनी से उधाडकर रखदेते है। इस सबके पीछे प्रेमचद का उद्देश्य सयुक्त परिवार को आघात पहुचाना या उसकी उपयोगिता कम करना नही है। वस्तुत पारिवारिक तनावो के चित्रण के माध्यम से वे परिवार को छिन्न–भिन्न करने वाली स्थितियो की ओर सकेत करते है और उनका परिमार्जन करा चाहते है।

प्रेमचद द्वारा लिखित 'सेवासदन' (1918) मे सुमन का पिता दारोगा कृष्ण चद एक ईमानदार आदमी है। सुमन की शादी के लिए पैसे न जुटा सकने के कारण वे घूस लेते है औरपकडे जाने पर जेल की सजा हो जाती है। दहेज के अभाव मे सुमन एक दरिद्र अपात्र गजाधर से व्याह दी जाती है। अपात्र पति की ताडना, सशय के दश और सुमन की मानसिक प्रतिक्रियाओं ने उसे बनने को मजबूर किया। पति गजाधर द्वारा निकाल दिये जाने पर सुमन को एक वेश्या

भोली के यहॉ शरण मिलती है। क्योकि उसे समाज सुधारक पद्मसिह ने आश्रय नही दिया। कथानक की त्रासदी वहॉ और गम्भीर हो जाती है, जब सुमन की बहन शान्ता का विवाह पद्मसिह के भतीजे सदन सिह से नही हो पाता है। सदनका पिता दरवाजे से बारात इसलिए वापस ले जाता है कि शान्ता की बहन एक है। सुमन और शान्ता को जब नारी सुधार गृह मे भी शरण नही मिलती है तब वह वहॉ से जाने का असफल प्रयास करती है बीच मे उन्हे सदन जो दोनो बहनो से अभीषित प्रेम करता है और अपने द्वारा कमाये गये पैसो से उनकी देखरेख करने का वायदा करता है। कथानक के अन्त मे सदन तथा शान्ता अपने माता–पिता द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और सुमन ने एक सुधार आश्रम स्थापित कर छोटे–छोटे बच्चो को नि शुल्क शिक्षा एव रोजगार देना आरम्भ कर दिया है।

'सेवासदन' मे प्रेमचद जी ने दहेज–प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या चित्रित की है। आर्थिक विषमता समाज का सबसे बडा अभिशाप है। वह अन्य समस्या–सूत्रो को बुनती हुई दीखती है। तथापि अतरग रूप में यह विघटन समाज की विभिन्न असगतियो, अशक्तियो और जीवन मूल्यो के पतन के कारण होताहै। जीवन के भ्रमजालो की परिधि मे विघटन का एक सैलाब उमड आया है, जिसमे सेवासदन की जीवनगत सवेदनाओ और जीवनगत नियति के सदर्भ आन्दोलित प्रतीत होते है जो विविध पार्श्वों मे मानवीय सवेदनाओ के पहलुओ को व्यक्त करते है। "राशि वर्ण ठीक हो जाने पर जब लेन–देन की बाते होने लगती, तब कृष्ण चद्र की ऑखो के सामने अधेरा छा जाता था। कोई चारहजार सुनाता, कोई पॉच हजारऔर कोई इससे भी आगे बढ जाता। बेचारे निराश होकर लौट आते।"[19] दहेज देने के लिए कृष्ण चद्र रिश्वतलेते है– "देख लिया, ससार मे सन्मार्ग पर चलने का यह फल होता है। यदि आज मैने लोगो को लूटकर अपना घर भर लिया होता, तो लोग मुझसे सम्बन्ध करना अपना सौभाग्य समझते, नही तो कोई सीधे मुॅह बात नही करता है।"[20] रिश्वत लेते हुए कृष्ण चद्र पकडे जाते है। और सजा के तौर पर जेल जाना पडता है। बेटी के दहेज ने एक परिवार की बलि चढा दी।

अनमेल विवाह की जडे मूलतया अर्थ से जुडी होती है क्योकि सेवासदन मे दोनो परिवारो मे विभाजन इसी अर्थ ने कराया। चूॅकि सुमन के पिता कृष्ण चद जेल मे थे। मामा उमानाथ ने किसी तरह से बर खोजकर सुमन के हाथ पीले कर देने चाहे और सोलह वर्षीया सुमन का विवाह तीस वर्ष से भी अधिक आयु वाले दुहाजू गजाधर प्रसाद के साथ कर दिया जाता है।– इस विवाह

से सुमन खुश न थी, परिणाम स्वरूप आपसी तनाव ने सुमन को गजाधर से अलग कर दिया। अनमेल विवाह की दूसरी शिकार सेवासदन की भोली नामक वेश्या है वह मॉ–बाप के पारम्परिक पारिवारिक सम्बन्धो के प्रति विद्रोह कर स्वच्छद जीवन का वरण करती है। भोली वेश्या सुमन से कहती है– "हम कोई भेड बकरी तो है नही कि मॉ–बाप जिसके गले मढ दे, बस उसी की हो रहे मेरे बाप ने भी मुझे बूढे मियॉ के गले बॉध दिया था। उसके यहॉ दौलत थी और सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी। मैने किसी तरह छ महीने तो काटे, आखिर निकल खडी हुई"[21] डॉ0 रक्षापुरी के शब्दों मे– "सेवासदन की सुमन गृहिणी के गुरूदायित्व को निभा नही पाती, क्योकि विवाह से पूर्व उसे दाम्पत्य जीवन के लिए शिक्षित नही किया गया।"[22] अभिभावको ने यदि सुमन को कुशल गृहणी के लक्षण बताये होते तो शायद सुमन गजाधर के साथ बेहतर ताल मेल भिडा सकती थी। प्रेमचद लिखते है– "हम अपने गार्हस्थ जीवन की ओर से कितने बेसुध है, उसके लिएकिसी तैयारी, किसी शिक्षाकी जरूरत नही समझते, गुडिया खेलने वाली बालिका, सहेलियो के साथ विहार करने वाली युवती, गृहणी बनाने के योग्य समझी जाती है। अल्हण बछडे के कन्धे पर भारी जुॅआ रख दिया जाता है ऐसी दशामे यदि हमारा गृहस्थ जीवन आनन्दमय न हो तो कोई आश्चर्य नही।"[23]

वैचारिक तालमेल के अभाव मे गजाधर एव सुमन का विखराव होता है। सेवासदनमे गजाधर प्रसाद कृपण प्रवृत्ति का व्यक्ति है और सुमन खर्चीली प्रवृत्ति की स्त्री है। इसलिए दोनो विपरीत दिशाओ मे चलते है सुमन जिह्वा रस भोगने के लिए गजाधर प्रसाद से कपट तक करती है परिणाम स्वरूप गजाधर प्रसाद की सारी कमाई खाने पीने मे उड जाती है– "उसका सचयशील ह्रदय इस खा पी बराबर दशा से बहुत दु खी रहता था। उस पर सुमन उसके सामने फूटे कर्म का रोना रोकर उसे और भी हताश करदेती थी। उसे स्पष्ट दिखाई देता था कि सुमन का ह्रदय मेरी ओर से शिथिल होता जाता है।. अतएव वह अपने प्रेम और परिश्रम से फल न पाकर उसे अपने शासनाधिकार से प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। इस प्रकार रस्सी मे दोनो ओर से तनाव होने लगा।"[24]

सेवासदन मे पारिवारिक विघटन सुमन के पति गजाधर प्रसाद के द्वारा सुमनको घर से बाहर निकालने पर चरम रूप ग्रहण कर लेता है। पति–पत्नी मे सामजस्य उसी स्थान ही पर हो सकता है जब वे एक दूसरे की रूचियो का ख्याल रखे। परन्तु सुमन ने गजाधर की स्थितियो को गहराई से नही पहचाना। सुमन पति के नौकरी पर चले जाने पर दिन भर घर में नही रहती थी साथ ही

वेश्या के यहाँ जाकर बातचीत करती थी, यह बात उसके पति गजाधर को उचित नही लगती थी। फलस्वरूप उसे शक होने लगा। "यह झोपडी तेरे रहने योग्य नही है। तेरे हौसले बढ रहे है। अब तेरा गुजर यहाँ न होगा।"[25] सुमन वह नारी नही जो अपने को दबित शोषित महसूस करे, वह महसूस करती है कि "पुरूष स्वामी उसी स्त्री की इज्जत करते है जो किसी एक की दासी नही है जो इस हद तक अपनी स्वामिनी है कि अपना तन बेच सकती है। जिस समाज की स्त्रियो मे वेश्याये ही स्वाधीन न हो और पुरूष उन्ही को सम्मानित करे, ऐसे समाज के भविष्य की कल्पना की जा सकी है।"[26] सुमन की पुरूष मानसिकता की इस सोच ने उसे वेश्या बनने पर मजबूर कर दिया। और वह स्वच्छन्दता तथा वर्जनाहीन जीवन जीने लगी।

सुमन की कथा के साथ एक सहायक कथा चलती है। शर्मा परिवार की, चुनार के मदन सिह शर्मा के छोटे भाई प० पद्म सिह शर्मा काशी मे वकील है। मदन सिह का लडका सदन भी काशी आता है। यहाँ उनका परिचय 'सुमनबाई' से होता है। सदन का विवाह शाता से तय होता है। शाता सुमन की छोटी बहन है, यह बात की शाता सुमन वेश्या की छोटी बहन है बारात बिना विवाह किये ही वापस लौट जाती है। सामाजिक भय तथा मर्यादावादी दृष्टिकोण की स्थिति ने सुमन एव शान्ता की जिन्दगी तबाह कर दी, समाज के ठेकेदार पद्मसिह ने सामाजिक बदनामी के कारण सुमन को पनाह न दी क्योकि इससे उनकी बदनामी हो रही है वकील पद्मसिह का नौकर सुमन को साहब का फर्मान सुनाता है– "ताकती क्या हो, वकील साहब का हुक्म है कि आज ही यहाँ से चली जाओ। सारे देश भरमे बदनाम कर दिया, तुमको लाज नही है, उनको तो नाम की लाज है।"[27] डॉ० राम विलास शर्मा इस पर टिप्पडी करते हुए कहते है कि "सुमन प० पद्मसिह के यहाँ आश्रय पाना चाहती है पर समाज के भय से वह उसे नही रखते।"[28] इस मर्यादा ने सुमन को वेश्या तो बनाया ही उसकी बहन शान्ता भी विवाह से वचित कर दी गयी। वह इसलिए कि ये समाज के मगरमच्छ उसे वेश्या की बहन मानते है जो दिन मे तो इसका विरोध करते है, परन्तु रात मे वेश्याओ के तलुये सहलाते है। लेकिन समाज की मर्यादा के रखवालो ने दोनो बहनो को विधवाश्रम मे भी न रहने दिया। "भूतपूर्व वेश्या (सुमन) के सम्पर्क से विधवाओ के सतीत्व के लिए भय उत्पन्न हो गया। दोनो बहनो को आश्रम छोडना पडा।"[29]

डॉ० रामविलास शर्मा अपने कथन को स्पष्ट करते हुए लिखते हैंकि "समाज ऊपर से वेश्या को जितना पतित बताता है, भीतर से उससे उतना ही प्रेम करता है, घर की स्त्री को जितना पुस्तको मे आदर देता है, वस्तु जगत मे उतना

ही घृणा करता है।"[30] सदन के पिता का शान्ता से शादी न करनेका फैसला नारी विषयकधारणा पुरूष मानसिकता की सामती प्रवृत्ति की ओर सकेत करता है जो पुरूष परम्परा की सतत धारा की ओर भी इशारा करता है।

सेवासदन पारिवारिक विघटन की दृष्टि से नारी समस्या का उपन्यास है एक ऐसी नारी जो समाज की सम्पत्ति व्यवस्था के रक्षको द्वारा अलग थलग कर दी जाती है। प्रेमचद ने इस प्रथम मौलिक उपन्यास के माध्यम से नारी के प्रति पुरूष की सामती मानसिकता पर एक प्रश्न चिन्ह लगाया है इसमे प्रेमचद विघटन का कोई उत्तम निष्कर्ष नही दे पाये हैं और एक स्त्री इतना अत्याचार एव कठिनाइयो का अत तक निर्णायक मुकाबला करती है परन्तु उसका निदान नही ढूँढ पाती। हॉ सामाजिक सम्बन्धो की अवहेलना करने क लिए उसे (सुमन) इतना कठोर दड दिया जाता है, कि दूसरा व्यक्ति कभी इन नियमो को तोडने की अवहेलना न कर सके।

निर्मला

'निर्मला' उपन्यास मे प्रेमचद ने दहेज की समस्या को मार्मिक रूप मे अभिव्यक्त किया है। पिता उदयभानुलाल की मृत्यु हो जाने पर माता कल्याणी को अपनी पुत्री निर्मला का विवाह मनोनीत वर के वजह बूढे विधुर वकील तोताराम से करना पडता है। तोताराम की पहली पत्नी से तीन पुत्र है– मसाराम, जियाराम, सियाराम। परन्तु इस पर भी उनका भोगी मन चैन नही पाता। वे नवयुवती निर्मला को व्याह कर घर ले आते है। दोनो की आयु, स्वास्थ्य और स्वभाव मे असह्य विषमता है। इससे निर्मला की मनस्थिति बहुत ही विचित्र हो गयी है। पति की शकालु प्रवृत्ति एव रूक्मिणी ननद के ताने एवम तीनो पुत्रो का असह्य निधन निर्मला को तोडकर रख देता है। वही दूसरी तरफ पति तोताराम का निर्मला और उसकी बच्ची को भाग्य भरोसे छोडकर चले जाना निर्मला को नितात अकेला कर देता है।

तोताराम की इस अनुपस्थिति मे ही निर्मला के जीवन मे एक और परीक्षा की घडी आती है, उसकी सहेली सुधा के पति और स्वय निर्मला के मगेतर डॉ0 भुवन द्वारा फैलाये गये प्रेम–जाल के रूप मे। सुधा निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह अपने देवर से करा देती है औरगुप्त रूप से अपनी सहेली की गरीब मॉ की भी सहायता करती है। परन्तु उसी सुधा का पति डॉ0 भुवन मोहन एक दिन निर्मला को अकेले मे पाकर आत्म सयम खो बैठताहै।जब सुधा को

इसका पता लगता है, तो वह अपने पति की ऐसी लानत–मलानत करती है किडॉ भुवन मोहन आत्मघात कर लेताहै।

निर्मला के जीवन की वेदना तो उसके अतिम समय मे एकाएक मुखर हो उठती है। शरीर और मन से बुरी तरह टूटी हुई निर्मला की मृत्यु सन्निकट है वह अपनी पुत्री को ननद रूक्मिणी को सौप रही है, जिसने निर्मला को सदैव कष्ट दिया। अत समय मे रूक्मिणी से उसका सिर्फ यही निवेदन है कि लडकी का विवाह अच्छे कुल से कियाजाय नहीं क्वारी या विष देकर मार दीजिएगा। उपन्यास के अन्त मे निर्मला की मृत्यु हो जाती है और मुहल्ले के लोग सोच रहे हैं कि इसका अतिम सस्कार कैसे होगा, इसी समय एक बूढा पथिक बकुचा लटकाये आकर खडा हो जाता है और यह है मुशी तोताराम।

निर्मला उपन्यास एक अनमेल विवाह की कथा कहता है पारिवारिक विघटन के बिन्दु मुख्य रूप से आर्थिक समस्या तथा दाम्पत्य जीवन की कटुता पर केन्द्रित है वैसे, घटना क्रम की दृष्टि से देखा जाय तो यह एक नारी समस्या केप्रश्नो को उठाता है। समस्या दहेज की कुप्रथा से जन्म लेती है। दोनो की आयु, स्वास्थ्य और स्वभाव मे असह्य विषमता है। इससे निर्मला कीमन स्थिति बहुत ही विचित्र हो गयी है– "बाका सवार बूढे लद्दू टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यो न चलना पडे। निर्मला की दशा उसी बाके सवार की सी थी। वह उस पर सवार होकर उडना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युत गति का आनद उठाना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाते और मनौतिया खडी करने से क्या आशा होती।"[31] फिर भी निर्मला जैसे–तैसे अपने मन को समझाकर तोताराम की दिवगत पत्नी के बच्चो मे अपनेआपको व्यस्त रखने लगती है। लेकिन निर्मला तोताराम के लिए तो सिर्फ भोग की सामग्री है। उसके लिए उनमे लालसा है। वे उसे रिझाने, बहलाने मनाने का प्रपच करते रहते है। परन्तु दाम्पत्य जीवन का जो आधार है, वह सहज विश्वास वे निर्मला को नही दे पाते। वय की विषमता से पनपी हीन–भावना और पुरूष की अधिकार भावना वाली पारस्परिक दृष्टि से ग्रस्त तोताराम न तो नवयुवती पत्नी की उमगो, आकाक्षाओ को समझ पाते है, और न ही वे प्रेम द्वारा उसका हृदय जीतने का प्रयत्न करते है।

डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दो मे– "सभी कुटुम्बो मे दूसरे विवाह का ऐसा शुभ परिणाम नही होता। कभी–कभी नव विवाहहित की अतृप्त कामवासना परिवार के लिए भयकर द्वन्द्व का कारण होती है। पति के प्रति क्रोध यदि सौतेले लडके पर निकाला गया तो भली–भला पर यदि वह बना रहा औरसौतेले लडके पर क्रोध के स्थान मे प्रेम हो गया तो समाज की मर्यादा और

प्रकृति की प्रेरणा का सघर्ष या तो विमाता यालडका या पति, एक न एक या सभी के लिए घातक सिद्ध होता है।"[32] मुशी तोताराम निर्मला और अपने पुत्र मसाराम को लेकर सदेहो का एक ऐसा ताना–बाना बुन डालते है कि उनका सारा पारिवारिक जीवन उत्तरोत्तर कुठित तथा निश्चेतन होकर अत मे पूरी तरह से विखर जाता है। तोताराम की मनोवृत्ति इतनी कुत्सित और दूषित है कि वे अपने रोगग्रस्त पुत्र मसाराम को छात्रावास से घर तक नही लाते, क्योकि "घर ले चलने से उन्हे बाधाये ही बाधाए दिखाई देती थी, सबसे बडा भय यह था कि वहॉ निर्मला इसके पास हरदम बैठी रहेगी, और मै मना न कर सकूगा– यह उनके लिए असह्य था।"[33] और इसलिए वह उसको अस्पताल ले जाते है। अत मे मसाराम की दारूण मृत्यु हो जाती है और निर्मला इस आघात से छटपटाकर रह जाती है।

लेकिन अनमेल विवाहजन्य तनावो और दबावो से ग्रस्त परिवार की दुखद कहानी यही समाप्त नही होती। तोताराम का दूसरा पुत्र जियाराम घर के बोझिल वातावरण के फलस्वरूप कुसगति मे पड जाता है,और एक दिन अपनी विमाता निर्मला के आभूषण तक चुराकर ले जाता है। बाद मे जब चोरी का भेद खुलता है, तो जियाराम पाश्चातापवश आत्म घात कर लेता है। दो भाइयो की अकाल मृत्यु के बाद सबसे छोटा भाई सियाराम के लिए जीवन मे आकर्षण जैसी क्या बात रहती? वह एक साधू के चक्कर मे पडकर विरक्त होकर घर से निकल जाता है तोताराम के पुत्रो को बारी–बारी से कथा–मच से हटाकर प्रेमचद ने युवा विमाता के आने के बाद वृद्ध भोगी पिता और प्रथम पत्नी द्वारा छोडी गयी सतान के बीच निरन्तर शिथिल और क्रमिक रूप से छिन्न–भिन्न होते रागात्मक सम्बन्धो को पूरी तरह से उभार कर रख दिया है। सियाराम के चले जाने के बाद तो जैसे तोताराम की आखे खुल जाती है। एक के बाद दूसरे आघात से दु खी तोताराम निर्मला और बच्ची को भाग्य भरोसे छोडकर पुत्र की तलाशमे निकल पडता हैं।

तोताराम की इस अनुपस्थिति मे ही निर्मला के जीवन मे एक और परीक्षा की घडी आती है,। सुधा के पतिऔर स्वय निर्मला के भूतपूर्व मगेतर डॉ0 भुवन मोहन द्वारा फैलाये गये प्रेम–जाल के रूप मे। जिसमे समय के प्रभाव ने निर्मला को एक बार फिर अपनी सहेली को विधवा की स्थिति मे ला दिया।

एक साथ दो परिवारो के दु खद अत की इस कथा मे प्रेमचद ने ननद–भाभी के तनावपूर्ण सम्बन्धो का भी चित्रण किया है। ननद रूक्मिणी को निर्मला फूटी आखे भी नही सुहाती। वह अक्सर निर्मला के लिए कष्ट और वेदना के नये–नये अवसर तलाशती रहती है। यू भी "रूक्मिणी देवी का स्वभाव सारे

ससार से निराला था, यह पता लगाना कठिन था कि वह किस बात से खुशहोती थी और किस बात से नाराज। एक बार जिस बात से खुश हो जाती थी, दूसरी बार उसी से जल जाती थी। अगर निर्मला अपने कमरे मे बैठी रहती तो कहती कि न जाने कहा की मनहूसिन है, अगर वह कोठे पर चढ जाती या महरियो से बाते करती तो छाती पीटने लगती– न लाज है न शरम, निगोडी ने हया भून खायी। अब क्या कुछ दिनो मे बाजारमे नाचेगी।"[34]

निर्मला के जीवन की वेदना उसके अतिम समय मे एकाएक मुखर हो उठती है। शरीर और मनसे बुरी तरह टूटी हुई निर्मला की मृत्यु सन्निकट है, वह अपनी निराधार पुत्री को उसी ननद रूक्मिणी को सौंप रही है, जिसने निर्मला को सदैव कष्ट दिया अत समय मे रूक्मिणी से उसका सिर्फ यही निवेदन है– "बच्ची को आपकी गोद मे छोडे जाती हूँ अगर जीती जागती रहे तो किसी अच्छे कुल मे विवाह कर दीजिएगा। चाहे क्वारी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कृपात्र के गले न मढिएगा, इतनी ही आपसे मेरी विनय है।"[35] जहॉ तक पति तोताराम के प्रति निर्मला की भावना का प्रश्न है, वह अपनी वेदना को व्यक्त करते हुए इतना ही कह पाती है– "स्वामी जी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिनमैने कभी मन मे भी उनकी उपेक्षा नही की। जो होना था, वह हो चुका था। अधर्म करके अपना परलोक क्यो बिगाडती। पूर्वजन्म मे न जाने कौन–से पाप किये थे जिसकायह प्रायश्चित करना पडा। इस जन्म मे काटे बोती, तो कौन गति होती।"[36]

निर्मला की मृत्यु हो गयी। मुहल्ले के लोग जमा हो गये। लाश बाहर निकाली गयी। कौन दाह करेगा, यह प्रश्न उठा लोग इसी चिता मे थे कि "सहसा एक बूढा पथिक बकुचा लटकाये आकर खडा हो गया। यह मुशी तोताराम थे।"[37] पुत्र पत्नी से वचित तोताराम की यह वापसी अपनी ही वृत्तियो से हारे हुए व्यक्ति का आत्म–पश्चाताप भी है औरअपनी उपेक्षित पत्नी निर्मला के अपने अन्तिम दायित्व की सामाजिक स्वीकृति भी।

प्रकृति के साथ यह अत्याचार निर्मला की जान लेकर ही रहता है। पुरूष की मानसिक वासना की तृप्ति के लिए समाज अनुमति देता है, शरीर मे अन्य रोगो की भाति दिमाग मे वासना का रोग भी पलता रहता है यह रोग उसके लिए ही नही आस–पास वालो के लिए भी घातक हो जाता है वह अपने आपको नष्ट कर परिवार के अन्य व्यक्तियो के नाश का कारण बनता है। इस तरह भीतर से समाज जर्जर और खोखला हो जाता है, परन्तु बाहर से उसकी मर्यादा बनी रहती है। मध्यवर्ग की समाज व्यवस्था और उसके आचार–विचार इस सीमा को

पहुँच गये है। क्या निर्मला जैसे समाज मे रही वह यह समाज नही है? या यह इसके मॉडल जैसा।

भूले बिसरे चित्र

'भूले बिसरे चित्र' (1959) भगवती चरण वर्मा की परम्परा का महाकाव्यात्मक उपन्यास है। उपन्यास एक ही परिवार की चार पीढियो मे आये सामाजिक परिवर्तन को रेखाकित करता है। उनके प्रतिनिधि है क्रमश मुशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गगाप्रसाद और नवल चारो पीढियो का साक्षी है ज्वाला प्रसाद। पिता शिवलाल की पीढी उसके पुत्र गगाप्रसाद की है, जो उसी का विकसित रूप है। ज्वाला प्रसाद तहसीलदार थे, तो गगाप्रसाद डिप्टी कलेक्टर । पीढियो का सबसे अधिक अतर चौथी पीढी नवल मे दिखती है जिसे ज्वाला प्रसाद केवल निहारता रह जाता है, समझ नही पाता। 1880 से 1930 तक फैली आधी शती के सामाजिक परिवर्तन को समेटने वाला यह उपन्यास पारिवारिक परिवर्तनो का एक अनूठा साहित्यिक दास्तावेज है।

पुरानी पीढी के प्रतिनिधि मुशी शिवलाल फतेहपुर की अदालत मे अर्जीनवीस थे। मुशी शिवलाल विधुर थे एव पुत्र ज्वालाप्रसाद की शादी जमुना से करवाकर उसे नायब तहसीलादार बनवाने मे सफल हो जाते है कहारिन छिनकी की सहायता से मुशी शिवलाल पुत्र के साथ बहू को अफसर बेटे के साथ बाहर भेज देते है। यही से सयुक्त परिवार के टूटने का बीच वपन होता है। ज्वाला प्रसाद का प्रेम घाटमपुर के लम्बरदार लाला प्रभुदयाल की पत्नी जैदेयी से हो जाता है। क्योकि लम्बरदार के बरजोर सिह मारकर स्वय आत्महत्या कर लेता है। ज्वालाप्रसाद सकट मे घिर जाता है। इसलिए मुशी शिवलाल पुत्र की देखरेख के लिए उसके साथ आ जाता है। इधर चाचा राधेलाल अपने पुत्रो सहित ज्वाला प्रसाद के यहॉ आ जाते है क्योकि राधेलाल एव उनके पुत्र जालसाज है। इसलिए ज्वालाप्रसाद उन्हे समझाता है परन्तु झूठे मुकदमे मे ज्वालाप्रसाद के गवाही न देने के कारण मुशी शिवलाल अपने सिर पर सुराही मारकर आत्महत्या कर लेते हैं। सोराव प्रवास मे रोधेलाल का पूरा परिवार ज्वाला प्रसाद की कृपा मे रहता है। परन्तु चचेरे भाइयो की झूठ जालसाजी से खिन्न होकर ज्वाला उन्हे अपनेसे अलग कर लेता है। अब नाभिक परिवार ज्वाला प्रसाद उनकी पत्नी यमुना और गगा प्रसाद का बचता है।

गगा प्रसाद की शिक्षा जैदेई करती है और गगाप्रसाद सीधे बरेली का डिप्टी कलेक्टर बन जाताहै अपने पिता से एक कदम आगे। डिप्टी कलेक्टर

की हैसियत से गगा प्रसाद ने कई राजनीतिक आन्दोलनो को दबाया है। यही विशेषता उसको कानपुर मे प्वाइट मजिस्ट्रेट बनाकर छेडती है। जैदेयी का पुत्र लक्ष्मीचद कानपुर मे व्यापार करता है और उसे एक कार भेट करता है। गगाप्रसाद का विवाह रूक्मिणी से तथा उससे एक पुत्र नवल तथा पुत्री विद्या पैदा होती है। पिता गगा प्रसाद की टी0 वी0 से मृत्यु हो जाती है और पुत्र नवल आई0 सी0 एस0 न बनकर एल0 एल0 बी0 करने का विचार करता है औरअगले घटनाक्रम मे वह काग्रेस मे शामिल हो जाता है। बहिन विद्या का रिश्ता भी तलाक मे परिणित हो जाता है। राजनीति मे आने पर नवल की शादी राय बहादुर कामतानाथ की पुत्री उषा से नही हो पाती है। विद्या नेअपने ममेरे भाई ज्ञानप्रकाश की प्रेरणा से नौकरी करना स्वीकार कर लिया है क्योकि उसके पति सिद्धेश्वरी ने दूसरा विवाह कर लिया है, इस दु ख से विद्या की दादी यमुना की मृत्यु हो जाती है। नवल अब पूरी तरह से कागेस के कार्यक्रमो मे सक्रिय भाग लेने लगा है। नमक सत्याग्रह मे नवल गिरफ्तार हो जाता है। रह जाते है दर्शक बने हुए ज्वाला प्रसाद और भीखू, जो चार पीढियो के लगातार पर्यवेक्षक रहे है।

मुशी शिवलाल ने अपनी पत्नी के मरने के बाद दूसरा विवाह नही किया था, यद्यपि उसके नाते रिश्तेदारो ने जोर बहुत दियाथा। उन्होने यही कहा था, "लडका है, बहू है छोटा भाई है और उसका खानदान। इतना सब होते हुए शादी की क्या जरूरत? अब तो अपना बुढापा है और रामजी का नाम। छह महीने पहले ज्वाला प्रसाद का गौना हुआ था और उसकी पत्नी घर आ गई थी। लेकिन घर मे राधेलाल की पत्नी का शासन था। जमुना केवल बहू थी। जमुना की अवस्था उस समय सोलह साल की थी।"[38] जमुना थी भी भोली–भाली चचिया सास के शासन मे उसका कोई सहारा था, तो छिनकी कहारिन। तीस वर्ष की छिनकी कहारिन, साठ वर्ष के घसीटे की दूसरी पत्नी, मुशी शिवलाल की चहेती थी। जमुना के प्रति उसके मन मे सहज कोमलता है, वह मुशी शिवलाल से कहती भी है "देखो, छोटी मालकिन बहू के साथ बडी जादती करती हैं। विचारी ज्वाला की बहू कच्ची उमर की, तौन दिन–रात उससे काम लेती हैं। हम पूछित हनकि तुम छोट मालकिन का मना काहे नाही करत हौ।' जवाब मे संयुक्त परिवार के मुखिया मुशी शिवलाल का कहना है – "राधे की बहू कोई परायी थोडे ही है, घर की मालकिन है, जैसा ठीक समझती है वैसा करती है।"[39] कुशाग्र अदालती बुद्धि और दरबारी हाजिब जवाबी से अपनी रोजी कमाने वाले मुंशी शिवलाल अपने पुत्र ज्वालाप्रसाद को एक अग्रेज कलेक्टर की अचानक मेहरबानी के फलस्वरूप नायब

तहसीलदार बना हुआ देखकर फूले नही समाते। इसी हठात 'वरदान' से मुशी शिवलाल के कुटुम्ब का भाग्योदय होता है।

ज्वालाप्रसाद अपनी पत्नी यमुना के साथ नौकरी पर चला जाता है और साथ मे छिनकी का लडका भीखू। मुशीलाल को अस्वस्थता एवम छिनकी के पति घसीटे की मृत्यु से शिवलाल–छिनकी को लेकर ज्वाला प्रसाद के पास चले जाते है। ज्वाला प्रसाद और शिव लाल के जाने से राधेलाल बहुत दु खी है। राधेलाल को यह "भासित हो गया कि जीवन–क्रम मे कुछ परिवर्तन आने वाले है। उन्हे अपने लडको की कुबुद्धि और अकर्मण्यता पर क्रोध आ रहा था, पर उससे भी अधिक जलन हो रही थी उन्हे ज्वाला प्रसाद और उसकी पत्नी के भाग्यसे।"[40]

"सयुक्त परिवार की एक यह विशेषता होती है कि इसमे से यदि एक भी व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से अन्य लोगो से ऊपर उठ जाता है तो सारा परिवार उसी से चिपट जाता है।"[41] यही ज्वाला प्रसाद के साथ होता है। ज्वाला प्रसाद के तहसीलदार बनते ही उनके चाचा का पूरा परिवार भी उनके पास रहने के लिए आ जाता है। बहाना यह है कि वे सब बीमार शिवलाल की तीमारदारी करने आये है। राधेलाल की पत्नी तो कहती भी है– "दादाजी, तुम्हारी बीमारी की वजह से हम लोगो ने सोचा कि जब तक तुम्हार तबियत ठीक न हुई जाय, तब तक हम लोग तुम्हारी सेवा बर्दास्त करी। रामू और श्यामू फतहपुर मा रहिहैं ही, उनकी बहुए घर–गिरस्ती देखिहैं। किशनू इहै है। ईफतहपुर से बिसनू का साथ ले के अइहै। आखिर बिसनू हू का तो कौनो काम से लगावा चाही, तौन ई कामकाज का प्रबन्ध ज्वाला कर सकत है"[42] स्वाभाविक रूप से राधेलाल और उसके परिवार के इस निर्णय से यमुना का माथा ठनकता है। वह अपने पति से कहती भी है, लेकिन ज्वालाप्रसाद भी तो आखिर सयुक्त परिवार के सस्कारो से बधा हुआ है उसका कहना है कि – "तो फिर इसमे कौन सी ऐसी बेजा बात है। यहा रहकर दोनो लडके ढग से लग जायेगे और बप्पा का मन भी बहल जायेगा।"[43] ज्वाला प्रसाद के पास आकर उसके चाचा और चचेरे भाई सब कुछ करने की छूट पा लेते है। झूठ, जालसाजी तक मे वे लोग नही हिचकिचाते। बल्कि इसमे वे ज्वाला प्रसाद को भी शामिल करना चाहते हैं। लेकिन ज्वाला प्रसाद दृढ है। ले–देकर मामला सयुक्त परिवार की प्रतिष्ठा का बन जाता है। मुंशी शिवलाल भी राधेलाल की तरफदारी करते हुए ज्वालाप्रसाद से फतहपुर के मुकदमे मे झूठी गवाही देने को कहते है और ज्वालाप्रसाद के इनकार करने पर मुशी शिवलाल अपने सिर पर सुराही दे मारते है।सुराही का यह बार मुशी के लिए प्राणघातक सिद्ध होता है।

शिवलाल की मृत्यु से सयुक्त परिवार भी अन्तिम सासे गिनने लगा है। परिवार के नये मुखिया राधेलाल है। शिवलाल के श्राद्ध के बहाने उनका पूरा परिवार फतेहपुर से ज्वालाप्रसाद के पास सोराव आ जाता है। अब राधेलाल का पूरा परिवार ज्वालाप्रसाद पर आश्रित है। आश्रित ही नही, वे लोग ज्वाला की कमाई मे से ज्यादा से ज्यादा हडपने पर उतारू है। पिता की मृत्यु के बाद ज्वालाप्रसाद भी अब पहले जैसा नही रह गया है, अब उसे चाचा एव अपने चारो ओर का वातावरण अजनबी लगने लगा था।

ज्वालाप्रसाद के "चाचा मुशी राधेलाल का पूरा परिवार वहाँ मौजूद था। तहसीलदार का वह हवेली नुमा मकान उन्हे छोटा और तग दिख रहा था अपने ही घर मे मानो उनका अस्तित्व लुप्त हो गया था।"[44] इतने पर भी चैन कहाँ? चाचा और उनके बेटे, ज्वालाप्रसाद पर अपना आर्थिक बोझ बढाते ही जाते है। ज्वालाप्रसाद अपने चाचा और चचेरे भाइयो की झूठ जालसाली से परेशान होकर कह देते है, . "मुश्तका खानदान आप समझ लीजिए टूट चुका है।"[45] और इसी को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए ज्वाला प्रसाद चाचा के परिवार को वापिस फतहपुर चले जाने को कहते है। अपना मतव्य स्पष्ट करते हुए ज्वाला प्रसाद कहते हैं– "मैने जो कुछ आप लोगो से कहा है, वह आप लोगो के हित मे कहाहै, लडको से कहिए कि ईमानदार बने और मेहनत करे। इनकी ईमानदारी और मेहनत मे मै इन्हे हर तरह की मदद करने को तैयार हूँ। मेरे साथ रहकर ये सब लोग आवारा, कामचोर, बेइमान और लुटेरे बन रहे है। आखिर इनकी जिन्दगी सुधारना आपका कर्तव्य है।"[46] इसके बाद वही सब कुछ होता है जो टूटते हुए सयुक्त परिवारकी विशेषता है। राधेलाल और उनकी पत्नी, ज्वाला प्रसाद के सारे उपकारो कोभूलकर उनको जी भर गालियाँ देते हैं, अपने बडे भाई शिवलाल की आत्मा को पुकारते है और विरासत मे पाया सयुक्त परिवार ज्वालाप्रसाद के समय मे समाप्त हो जाता है।

डॉ0 रामदरश मिश्र के अनुसार– "सयुक्त परिवार बहुत जोर से अपने बचाव का प्रयास करता है किन्तु ऐतिहासिक परिणति को झेल नही पाता, टूट ही जाता है। ज्वाला प्रसाद सिद्धान्तत सयुक्त परिवार के विरोधी नही हैं, वे एक भले आदमी की तरह सब कुछ झेलते रहते है किन्तु चाचा के परिवार की चालाकियाँ उससे उत्पन्न असुविधाए और उस परिवार के सदस्यो का निकम्मापन जब सीमापार कर जाते है, तब ज्वाला प्रसाद सहज भाव से नाराज हो कर उन्हे अपने पास से हटा देते है, इसके भी मूल मे चाचा–परिवार के लिए ज्वाला प्रसाद का हित चिन्तन ही काम करता है। किन्तु धीरे–धीरे परिवारो का अलगाव मध्यवर्ग

की प्रवृत्ति बन जाता है। परिस्थितियॉ ऐसी आती है कि अब बाप बेटे भी अलग–अलग रहने लगते है।''[47]

चाचा राधेलाल का परिवारफतहपुर चले जाने पर नाभिक परिवार मे ज्वालाप्रसाद, उनकी पत्नी यमुना और पुत्र गगा प्रसाद ही शेष रहे। गगा प्रसाद की शिक्षा का प्रबन्ध जैदेई करती है। विधवा जैदेही इलाहाबाद मे अकेली रहती है। जैदेई और ज्वालाप्रसाद का नाता यू तो देवर भौजी का था, लेकिन दोनो के बीच आत्मीयता इन सम्बन्धो की सीमा–रेखा को कभी भी लाघ चुकी थी। प्रभूदयाल की मृत्यु के बाद तो जैदेई का अधिकाश कामकाज ज्वालाप्रसाद की सलाह से होता रहा है। यमुना भी जैदेही से अपने पति के सम्बन्धो की बात जानती है, पर उसे कोई शिकायत नही है। सम्भवत उस युग मे पत्नी इस सबको स्वीकार करके ही चलती थी। वह इसके लिये कोई न कोई तर्क भी खोज लेती थी। यमुना ने भी तर्क खोज लिया है– ''औरत सदा सहारा ढूढती है। लबरदार के चले जाने के बाद लबरदारिन ने तुम्हारा सहारा चाहा। लेकिन तुम कही भाग न खडे हो, उसे सहारा देना बद न कर दो, इसलिए लबरदारिन ने तुम्हारे सहारे का मोल चुकाया, धन से, मन से, तन से।''[48]

जैदेई की देखरेख मे पढकर गगाप्रसाद बरेली का डिप्टी कलेक्टर बन गया है– अपने पिता से एक कदम आगे। डिप्टी कलेक्टर की हैसियत से गगाप्रसाद ने राजनीतिक आन्दोलनो को दबाया है जैदेई का पुत्र लक्ष्मीचन्द्र गगाप्रसाद से सम्बन्धो के प्रति कटा–कटा सा रहता है एवम लेन–देन के चक्कर मे वह अपनी मा को गाली तक दे देता है– अपनी व्यथा को जैदेई गगाप्रसाद से व्यक्त न कर ज्वाला प्रसाद से व्यक्त करती है– ''कोई अतर नही है बाप–बेटे मे। सोचा था कि मेरी कोख से जनमा है लेकिन इससे कोई फर्क नही पडा। कितना सहा है इस जिदगी मे देवरजी। भगवान ने मुझे सहने को जो पैदा कियाथा। पति दिया– बेईमान और निर्मम। कोख से पैदा किया बेटा– बेईमान और निर्मम।''[49] मृत्युशैया पर पडी जैदेई के साथ लक्ष्मीचद के उस दुर्व्यवहार के माध्यम से उपन्यासकार ने मॉ–बेटे के सम्बन्ध मे भी 'अर्थ' की निहित सत्ता को रेखाकित किया है।

गगा प्रसाद नये जमाने का युवक है वह सुन्दरता पर रीझना जानता है और रीझकर फिसल भी सकता है। जौनपुर की एक वेश्या मलका से उसके सम्बन्ध है। यह बात गगाप्रसाद की पत्नी रूक्मिणी भी जानती है। लेकिन न तो गगाप्रसाद, ज्वालाप्रसाद है और न ही रूक्मिणी यमुना है। मलका के साथ गगा के सम्बन्धो मे जैदेई के प्रति ज्वालाप्रसाद जैसी भावात्मकता नही है। जैदेई ने

ज्वालाप्रसाद को अपना सब कुछ देकर भी उससे विवाह की अपेक्षा कभी नही की थी। ज्वाला प्रसाद ने भी जैदेई के साथ अपने सबध के दायित्व को अत तक निभाया था। लेकिन जैदेई गृहस्थिन थी, मलका वेश्या है पर वेश्या वह भी हमेशा हमेशा के लिए नही बनी रहना चाहती। वह विवाह बधन मे बधना चाहती है और गगा प्रसाद के अनजाने मे ही सत्यप्रकाश के साथ विवाह करके अपना सहारा ढूढ लेती है और वह अब काग्रेस की स्वय सेविका है।''यमुना और रूक्मिणी के सम्बन्धो एव समय मे कितना अतर है। यमुना सब कुछ जानती थी, फिर भी जैदेई उसकी सखी थी। लेकिन मलका के साथ गगाप्रसाद के संबध की बात जानकर रूक्मिणी के मुँह की हसी तो गायब हो ही गयी है।''[50] रूक्मिणी मन ही मन दु खी रहने लगती है लेकिन प्रत्यक्ष कुछ कह नही पाती। स्पष्ट ही यमुना से रूक्मिणी तक आते–आते पर स्त्री के साथ सम्बन्ध की बात पत्नी के अधिकार और आत्म सम्मान के लिए चुनौती बनने लगी थी। लेकिन इस चुनौती को स्वीकारने की शक्ति अभी भी उसमे नही थी। पति की उन्मुक्त स्वतत्रता की पुरानी धारणा पर प्रश्न चिन्ह अवश्य लगा था, लेकिन इसके तार्किक उत्तर की तलाश अभी दूर थी।

इस बीच अवश्य विवाहेत्तर सम्बन्धो के प्रति पुरूषो की धारणाओ मे भी परिवर्तन आया था। गगा प्रसाद के मन मे न मलका के प्रति कोई भावात्मक लगाव है और न सतो के प्रति। गगा प्रसाद जौहरी राधाकिशन की पत्नी सतो को अपनी वासना का शिकार बनाता है, भोग–विलास के लिए उसका मन तडपता है। लेकिन एक बार सतो मर्यादा तोडती है तो उसे कही अत नही मिलता वह अग्रेज अधिकारी मेजर वाट्स की रगरेलियो मे साझीदार बनकर अपने पति को राजबहादुर का खिताब दिलाती है और इसके माध्यम से उभर आता है अग्रेजो की कृपा के लिए लालायित उच्च मध्यवर्ग की विलासिता, ऐश्वर्य प्रियता का एक ऐसा नग्न रूप, जहाँ परिवार, पति–पत्नी सम्बन्ध भी व्यवसाय का एक अग बनकर रह जाते हैं। सतो, राधाकिशन और राधाकिशन की भाभी कैलासो के प्रसग के माध्यम से भगवती चरणवर्मा ने सयुक्त परिवार के आतरिक कलह की एक झलक दी है। कैलाशो के राधाकिशन से शारीरिक सबंध अवश्य है, लेकिन जब सपत्ति के हिसाब–किताब का सवाल उठता है, तो वह अपने पति श्री किशन का ही पक्ष लेती है। पक्ष ही नही लेती, बल्कि देवर के साथ अपने सम्बन्धो का हवाला भी दे बैठती है– ''बडे आये बटवारे की बात चलाने वाले। जब महीनो मेरे कमरे मे पडे रहते थे, तब बटवारा नही हुआ था, और जब आज राजबहादुर बन गये, दस लाख

रूपया पैदा कर लिया, तब बटवारा हो गया। ऐसे सस्ते नही छूटोगे लाला, एक–एक पैसे का हिसाब देना होगा।"[51]

'भूले बिसरे चित्र' की चौथी पीढी है गगा प्रसाद के पुत्र नवल की। नवल और उसकी बहन विद्या दोनो पढ रहे है। अफसरशाह गगाप्रसाद की साध है कि नवल विदेश जाकर आई0 सी0 एस0 की पढाई करे। लेकिन नवल के जाने से पहले ही गगाप्रसाद 'गैलेपिग, टी0 वी0'का शिकार हो जाता है। गगा प्रसाद के सामने विद्या के विवाह की समस्या है– यद्यपि उसने विद्या का सम्बन्ध आई0 सी0 एस0 सिद्धेश्वरी से तय कर दिया है– उन्हे नवल को आगे पढाने की चिता है, और छोटे बच्चो के भविष्य की चिन्ता है। डॉ0 की सलाह से नवल, गगाप्रसाद को भुवाली ले जाने को तैयार है। रायबहादुर कामतानाथ जिनकी लडकी उषा से नवल का विवाह सम्बन्ध करीब–करीब तय हो चुका है–नवल को भुवाली न जाने की सलाह देते है। रायबहादुर चाहते है कि नवल उसके साथ स्विटजरलैण्ड चले और वही से पढाई के लिए लदन चला जाये लेकिन नवल अपने बीमार पिता को अकेले नही छोड सकता, वह कहता भी है, "जिस पिता ने मुझे जन्म दिया है, उनसे अलग करने का आपका प्रयत्न प्रशसनीय नही है। जहॉ तक भविष्य का प्रश्न है, मै बिना आई0 सी0 एस0 बने भी जिदा रह सकता हूॅ।"[52] नवल का यह गभीर और ओजस्वी रूप बीमार गगाप्रसाद के मन मे एक नया उत्साह भर देता है। अपने पिता के लिए इतना आदर, बहन–भाइयो कीचिता सचमुच ही प्रशसनीय है। नवल के इस रूप पर गगा प्रसाद को गर्व है– "जब मैने तुम्हारा वह रूप देखा, तो न जाने मेरा भय कहा भाग गया। आज मैने देखा कि तुम स्वाभिमानी हो समर्थ हो, तुम सुविधाओ को ठुकरा सकते हो, तुम मुसीबतो का पहाड सिर पर उठा सकते हो।"[53]

गगाप्रसाद की मृत्यु एव नवल का विदेश गमन मे अवरोध तथा विद्या की शादी ने पारिवारिक विघटन को एक नया आयाम दिया। विद्या सिद्धेश्वरी के साथ व्याह दी जाती है, दोनो मे वैचारिक सामजस्य नही बैठ पाता है। सिद्धेश्वरी नवल को अपनी बहन को फौरन आकर लिवा ले जाने का तार दे देता है। नवल इसलिए उन्नाव जा रहा है। दादी यमुना रोकर कहती है– "किन कसाइयो के यहॉ तुम लोगो ने भेज दिया। मॉ रूक्मिणी सारी स्थिति भाप चुकी है– "सबके सब जमराज बनकर मेरी लडकी को पेर रहे है।" ज्वाला प्रसाद का यही पारपरिक परामर्श है, 'देखो विद्या को समझा बूझा देना। लडकी तेज मिजाज की है, लेकिन ससुराल मे तो दबकर रहना ही होगा। ससुर की यह बात रूक्मिणी को चुभ गयी है उसकी निगाह मे विद्या का कोई दोष नही है, वही सबके सब उसकी जान लेने

पर तुले हुए है।"[54] रूक्मिणी का कहना है कि नवल विद्या को अपने साथ लिवा लाये। जब नवल ज्ञान प्रकाश (ज्वाला प्रसाद के ममेरे भाई) के साथ उन्नाव पहुँचा तो वहाँ उसकाअजीब ढग से स्वागत हुआ। विद्या के ससुर विदेश्वरी प्रसाद ने छूटते ही कहा– "अपनी इस डाइन बहन को ले जाइए, हम लोगो की जान बख्शिए।"[55]

विद्या को घर से अलग कर विदेश्वरी और सिद्धेश्वरी पारिवारिक सम्बन्धो से जान बचाना चाहते है विद्या को बिदा करते समय विदेश्वरीप्रसाद धमकी भरे लहजे मे कहते है – "अब इस घर मे पैर न रख पाओगी, इतना समझ लो, और विद्या का भी दो टूक उत्तर है– 'तुम लोगो का घर नरक है।"[56] विद्या–विदेश्वरी का यह सवाद पति–पत्नी के सम्बन्धो की टूटती हुई मर्यादाओ को प्रतिबिम्बित करता है। विद्या ससुराल छोड कर वापस अपने घर चली आयी है। ज्ञान प्रकाश की प्रेरणा से विद्या ने नौकरी करना प्रारभ कर दिया है। ज्ञान प्रकाश विद्या को अब ससुराल के बधन से मुक्त मानते है। सिद्धेश्वरी के दूसरे विवाह की सूचना से विद्या को तो जैसे 'मुक्ति' मिल गयी है, पर यमुना इसे सहन नही कर पाती और इसी दु ख मे यमुना की मृत्यु हो जाती है। आई0 सी0 एस0 न बनने के कारण नवल और उषा का सबध भी टूट जाता है। नवल अब पूरी तरह से काग्रेस के कार्यक्रम मे सक्रिय भाग लेने लगा है। नमक सत्याग्रह मे नवल गिरफ्तार हो जाता है। रह जाते है दर्शक बने हुए ज्वाला प्रसाद और भीखू, जो चार पीढियो के लगातार पर्यवेक्षक रहे है।

इस विवेचन के अन्त मे डॉ0 सुरेश सिन्हा का यह निष्कर्ष तर्क सम्मत है कि "भूले–बिसरे चित्र मे सामती परम्पराओ से सम्बन्धित एक परिवार की चार पीढियो के माध्यम से सामती व्यवस्था की विश्रृखलता, शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय, फिर उसकी ध्वसोन्मुखता और युग की परिवर्तनशीलता का नवोन्मेष की भावना के परिप्रेक्ष्य मे यथार्थवादी चित्रण किया गया है।"[57]

मार्क्सवादी यथार्थवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन

मार्क्स के दर्शन और साम्यवादी विचारो को केन्द्र मे रख कर उपन्यास–रचना करने वालो मे यशपाल प्रमुख है। यो राहुल साकृत्यायन, रागेय राघव और राजेन्द्र यादव की रचनाओ मे भी मार्क्सवाद के विचार–सूत्र उपलब्ध है लेकिन उनका रचना–लक्ष्य मार्क्सवाद या साम्यवाद नही। यहाँ मत्वाद आनुषगिक है, जबकि वहाँ कला। साहित्य मे ये सर्जक प्रगतिवादी कहलाते है इनकी दृष्टि

मार्क्सवादी होती है और इनकी रचना की वस्तु सामाजिक यथार्थ जीवन तथा विषय समाजवादी सिद्धान्तो की स्थापना।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे परिवार के मूल्यो एव सम्बन्धो मे तथा राष्ट्रीय परिस्थितियो मे परिवर्तन हुआ है। इसलिए अन्य नवीन पाश्चात्य विचारधाराओ के प्रति लेखको के आकर्षण ने मार्क्सवादी दर्शन को यत्किचित पीछे धकेल दिया है यही कारण है कि हिन्दी मे अब साहित्यिको मे मार्क्सवाद के प्रति उस उत्साह के दर्शन भी विरल हो गये जो स्वतन्त्रता–पूर्व काल मे होते थे। फिर भी यशपाल जैसे वयोवृद्ध उपन्यास लेखको की रचना–दृष्टि मे कोई अतर नही आया। आपके यदि स्वातन्त्रयोत्तर युग के उपन्यासो 'झूठा सच' और 'मेरी तेरी उसकी बात' का अध्ययन किया जाये तो सहज ही इसमे मार्क्सवादी यथार्थ का रूप परिवारो के टूटने मे सहायक होता दृष्टिगोचर नजर आयेगा।

'झूठा सच' मे तारा, कनक, शीलो, पुरी, गिल, सूद, सोमराज, चड्ढा और असद जैसे पात्र मार्क्सवादी सिद्धान्तो पर वाद–विवाद या उनका प्रचार न करते हुए भी सम्पूर्ण वास्तविकता मे साथ ही परिस्थितियो को समाजवादी दृष्टि से देखते है। और यह पाते है कि मात्र सिद्धान्तो की चर्चा करने वाला मध्यम वर्गीय व्यक्ति समाजवादी नही अपितु बुर्जुआ होता है।

इसी तरह यशपाल के उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' मे मार्क्सवादी यथार्थवाद के कारण परिवार टूटते नजर आते है साथ ही उपन्यास मे एक साथ राजनीति तथा सस्कृति से सम्बन्धित प्रश्न उठाये गये है। कथा प्रथम विश्व युद्ध के अन्त से भारत की स्वाधीनता तक के राजनीतिक दॉव पेचो के मध्य डॉ0 अमर उषा तथा राजा गैती नामक दो दम्पत्तियो के विचारो, विश्वासो एवम सास्कृतिक आस्थाओ के बीच दौडती नजर आती है। जिसमे मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण पारिवारिक विघटन घटित होता है।

झूठा सच

झूठा सच (1958) दो भागो मे लिखित एक महाकाय उपन्यास है इसमे भारत के विभाजन की पूर्व पीठिका, विभाजन की विभीषिका और उसके उत्तर प्रभाव का विशद और जीवन्त चित्र उभारा गया है। पूरे उपन्यास को यथार्थ की सुविधा के लिए दो भागो मे बॉट सकते है (यो ये दोनो यथार्थ एक–दूसरे से जुडे हुए है, इन्हे अलग करना सश्लिष्ट रचना को तोडना है) एक तो उसका परिस्थितगत यथार्थ है दूसरा उसका परिस्थितिजन्य आतरिक सत्य। परिस्थितिगत यथार्थ मे आता है देश के बटवारे के पूर्व की, बॅटवारे के समय की तथा उसके

बाद की घटनाओ और परिस्थितियो का चित्रण, दूसरे मे आता है उन परिस्थितियो और घटनाओ के परिप्रेक्ष्य मे उभरते हुए विचार, सवेग व्यक्तित्व और समाज के नये सम्बन्ध टूटते हुए पुराने मूल्य उगते हुए नये विश्वास अर्थात बनता–बिगडता हुआ एक नया जन मानस।

'झूठा सच' का कथावृत्त मुख्य रूप से पुरी परिवार का कथावृत्त है। कहानी शुरू होती है भोला पाधे की गली से। जहॉ विभाजन के पूर्व मास्टर रामलुभाया अपनी पत्नी और बच्चो के साथ रहते है– बडा लडका जयदेव पुरी एम0 ए0 का विद्यार्थी है। राजनीति मे सक्रिय भाग लेने के कारण उसे दो साल की सजा हो जाती है। लडकी तारा बी0 ए0 मे पढती है उसकी शादी सोमराज साहनी, बौद्धिक क्षमता से हीन व्यक्ति के साथ कर दी गयी है। जेल से आने पर जयदेव शादी के पक्ष मे नही हैं परन्तु नौकरी छूट जाने के दबाव मे वह माता–पिता पर दबाव नही डाल पाता है। तारा एक समाज सुधारक असद से प्रेम करती है। तो दूसरी ओर जयदेव पुरी पडित गिरधारी लाल की पुत्री से प्रेमकर शादी कर लेता है। कनक की बहन शान्ता और बहनोई महेन्द्र नैयर इस प्रेम विवाह मे पुरी की मदद करते है।

तारा–सोमराज का वैवाहिक जीवन शादी की प्रथम रात से ही टूट जाता है क्योकि सोमराज ने तारा को प्रथम रात्रि मे ही पीटना शुरू कर दिया है सयोग से उसी रात लाहौर मे हिन्दू–मुस्लिम दगे हो जाते है जिसमे तारा भाग खडी होती है। सोमराज का घर दगे के दौरान जला दिया जाता है । तारा बटवारे के समय अमृतसर हिन्दुओ के कैम्प पहुॅचती है। दगो के दौरान कनक भी बहन काता के साथ नैनीताल चली आयी है। जयदेव पुरी को कनक वही बुला लेती है। देश के विभाजन से पुरी अपने माता–पिता को लेने लाहौर चला जाता है। प्रथम भाग की कथा यही समाप्त हो जाती है।

द्वितीय भाग मे विभाजन के बाद की विभीषिका का चित्रण है। पुरी जालधर तक पहुॅचने मे सफल हो जाता है परन्तु लाहौर नही पहुॅच पाता है। माता–पिता का भी पता नही मिल पाता है। जालधर मे विषम परिस्थितियो मे उसकी मुलाकात काग्रेसी नेता सूद से होती है। जिसकी सहायता से पुरी ने प्रेस लगा लिया है। एक घटनाक्रम मे पुरी अपनी पूर्वपरिचिता शिष्या उर्मिला के साथ रहने लगता है और अपने माता–पिता का पता मिलने पर उनसे सम्पर्क नही करता है दूसरी ओर कनक बहनोई की मदद से जालधर पहुॅचती है। उर्मिला को देख कर कनक नाराज होती है। अवसर की नजाकत देखते हुए सूद उर्मिला को नर्स की ट्रेनिग हेतु भेज देते है। कनक पुरी का सम्बन्ध मधुर हो जाता है।

इस बीच पुरी बहन तारा के प्रति अवसरवादी हो गया है क्योकि तारा इस समय अडर सेक्रेटरी के पद पर है और पुरी की दोस्ती सोमराज से हो गयी है। सभी की दृष्टि मे तारा मृत समझी जाती है पुरी मिलने की कोशिश नही करता है। पुरी परिवार के प्रति भी गम्भीर नही है। कनक से एक लडकी पैदा होती है। और कनक से पुरी का तलाक तथा तारा का डॉ0 प्राणनाथ से पुनर्विवाह और बाद मे कनक का भी गिल के साथ रहने का निर्णय के साथ झूठा सच की कथा समाप्त होती है।

झूठा सच पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसके साथ ही इसमे शोषण, अन्याय एव सामती व्यवस्था के हथकण्डे चित्रित करने एव राजनैतिक नेताओ के स्वार्थ को चित्रित करने, समाज मे प्रगतिशील तथा समानता आर्थिक शोषण की समाप्ति एव उत्पादन पर सामानाधिकार, वर्ग वैषम्य का समूल नाश तथा विकास करने का सबको समान अवसर, विवाह सम्बन्धी स्वतन्त्रता एव उस सामाजिक क्राति का प्रसार जिससे वर्तमान की रूढियॉ विच्छिन्न हो सके तथा प्रगतिशील मानवता का प्रसार हो सके– इस उपन्यास का मूल स्वरूप है।

इस उपन्यास का सामाजिक महत्व यह है कि वह वर्तमान समाज मे नारी की पराधीनता, उसकी घुटन और अपमान, व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह उसके क्रय–विक्रय की जघन्यता को स्पष्ट करता है। इन प्राचीन सामन्ती बन्धनो से मुक्ति पाना कठिन है, नारी किस वीरता से उनके प्रति विद्रोह करती है, स्वय उसके सस्कार किस तरह से उसकी मुक्ति मे बाधक होते है– इन सबका मार्मिक चित्रण उपन्यास मे हुआ है– झूठा सच उपन्यास मे यशपाल किसी न किसी रूप मे विवाह और विवाह के माध्यम से परिवार को स्वीकृति दे देते है। वे इसे नर–नारी सम्बन्धो की एक अनिवार्य घटना भी स्वीकार करने को तैयार है। शर्त यही है कि विवाह स्त्री के आत्म–समर्पण या दमन पर आधारित न होकर दोनो की पारस्परिक सहमति से हो।

"प्रश्न हो सकता है, नारी को स्वावलम्बी बनाने के लिए पुरूष से विवाह ही नही करना चाहिए, तो नारी को पुरूष के व्यवहार का विरोध करने की सिरदर्दी लेने की क्या जरूरत है? यह विचित्र सस्कार है कि नर–नारी के सम्बन्ध या विवाह का अर्थ अवश्यभावी रूप से पुरूष द्वारा दमन और नारी की दीनता ही समझा जाये। क्या नर–नारी का सम्बन्ध या विवाह समता और आत्म–निर्णय के

आधार और परिस्थितियो मे नही हो सकता? मेरे विचार मे ऐसा हो सकना चाहिए, कनक और तारा का आचरण ऐसे आचरण का उदाहरण माना जा सकता है आप नारी द्वारा स्वीकार करने या प्राप्त करने को आत्म–समर्पण का नाम क्यो देना चाहते हैं यह पुरूष के परम्परागत स्वामित्व के अहकार की ध्वनि ही तो नही? वर्तमान युग के प्रबुद्ध नर–नारियो के विवाहो के लिए आत्म समर्पण शब्द की अपेक्षा सहमति और पारस्परिक स्वीकृति शब्द ही अधिक उपयुक्त माने जाने चाहिए।''[58] यशपाल अनमेल विवाह को जीवन का सबसे बडा अभिशाप मानकर अभिभावको द्वारा आयोजित विवाह के प्रश्न पर भी विचार करते है। तारा सोमराज विवाह अनमेल विवाह है। तारा के पिता उसका विवाह उससे कम शिक्षित युवक सोमाराज से कर देते है। पुरी भी आर्थिक टूटन के कारण इस अत्याचार को मौन रूप से सह लेता है। तारा खून का घूट पीकर रह जाती है। अपने मुसलमान प्रेमी को प्राप्त न कर पाने के कारण वह भीतर ही भीतर तडप उठती है। इसका मूल कारण है विवाह के बाद सुहागरात को अशिक्षित सोमराज का दुर्व्यवहार जो तारा को पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन मे अन्त तक सताता रहा– ''सोमराज ने कहा, बहुत शर्म आ रही है। यहॉ शरम आ रही है। साडी पहन कर, उधाडे सिर, मालरोड और अनार कली मे जुलूसो मे घूमते शरम नही आती थी? सोमराज बडे अफसरी ढग से जवाब तलब कर रहा था। तारा का सास रूका। तारा मौन निश्चल रही। तू यहॉ शादी नही करना चाहती थी न? किससे है तेरी अश्नाई? सोमराज ने दात पीसकर पूछा 'कितने घाटो का पानी पिया है। कितनो के साथ सोई है।' तारा ने फुंकारा – 'चुप' –सोमराज का अपने क्रोध पर लगाया हुआ बाध टूट गया उसने तारा को चोटी से पकडकर पलग के नीचे डाल दिया और दो लात मारकर दात पीसते हुए गाली दी। भूखे मास्टर की औलाद।''[59] पत्नी के उज्जवल चरित्र पर सन्देह, लाछन, अवमानना और अन्त मे मारपीट ही वे तत्व है जो सुखद स्त्री–पुरूष सम्बन्धो के शत्रु है। तारा पर यथेष्ट प्रतिक्रिया हुई और वह अपने अधिकार पर चोट खाते ही विद्रोही नारी का प्रतीक बन गई। यह ठीक है कि उसने जोश मे आकर गृहत्याग किया तो कुछ मुसलमान गुण्डो द्वारा पकडी गई, उसके साथ भीषण बलात्कार किया गया। परन्तु इन घटनाओ के प्रति उसे कोई दुख नही है जितना कि सोमराज के सताने का। यशपाल ने तारा के रूप मे एक ऐसी नारी पात्र का सृजन किया है जिसका व्यक्तित्व सबल है। वह परिस्थितियो से ऊपर उठकर केन्द्रीय सरकार मे एक बहुत बडी अधिकारी बन जाती है। अपने पति सोमराज के क्षमा मागने पर भी वह उतनी ही कठोर रहती है जितनी इलाचद जोशी के 'सन्यासी' की शान्ति जो अन्त तक

नायक नन्दकिशोर को क्षमा नही करती। यह सच है कि तारा सोमराज दाम्पत्य विघटन अभिभावको द्वारा बिना विचारे आयोजित सम्बन्धो की विफलता का प्रतीक है।

झूठा सच के दूसरे विचारणीय पति पत्नी पुरी कनक हैं, जो विवाह पूर्व प्रेम के परिणाम को नये रूप मे प्रस्तुत करते है। दोनो का आरम्भिक वैवाहिक जीवन सुखद, सन्तुष्ट और सन्तुलन का एक आदर्श स्थापित करता है। दोनो का प्रेम, नैनीताल की झील पर बितायी सध्याये, रायल होटल के कमरे का एकात पुरी के हृदय मे प्रेम की भावना या पुकार मात्र न रहकर कनक को पत्नी रूप मे देखने के लिए व्याकुल कर देता है और जब दोनो विवाह सूत्र मे बध जाते हैं तब तुष्टि के उन्माद मे खो जाते है किन्तु थोडे समय पश्चात यह नशा छूमतर हो जाता है। दोनो मे सन्देह बढने लगता है और दाम्पत्य की दीवारमे दरार आने लगती है। जब एक दिन पुरी के बारे मे कनक ने पूर्वावलोकन किया तो "उसेएक बात खल जाती थी। वह थी कभी–कभी पुरी का अकारण चिडचिडाहो उठना, विशेषकर तृप्ति से शान्ति की मुग्धावस्था मे। कनक को ऐसा अनुभव पहली बार विवाह के तीन सप्ताह बाद ही हो गया था। माधुर्य की मुग्ध मूढता मे ऐसा अपमान और कटुता कनक के हृदय को आर–पार बेध देती थी।"[60] यहॉ दाम्पत्य सम्बन्धो की मधुरिमा नष्ट होती नजर आती है और एक दिन जब कनक पुरी की बहन तारा से मिलकर लौटी तथा पुरी से बोली– "तारा का दिल तुमसे बडा है। तथा पुरी क्रोध मे फुकार उठा और बोला– 'देख रहा हूँ तुम्हारा दिल भी बहुत बडा हो रहा है, बडे दिल वाली से मिलकर आई हो। इतने बडे से निबाह सकने की विशालता मुझमे नही है। अपने लिए भी बडी जगह ढूँढ लो।"[61] यह उदाहरण यह सिद्ध करता है कि स्त्री–पुरूष सम्बन्धो की सफलता का मूलमत्र समायोजन है। विवाह चाहे अभिभावको द्वारा आयोजित हो अथवा स्वय प्रेरित प्रेम का परिणाम हो यदि विवाहोपरान्त पति–पत्नी शान्त, ईर्ष्यालु तथा चिडचिडे प्रवृत्ति के होगे तो पत्नी के कोमल हृदय पर चोट पडेगी तथा वह चाहने पर भी दाम्पत्य की कटुता एव विखरन को नही रोक पायेगी।

डॉ0 रामदरश मिश्र के अनुसार यशपाल ने झूठा सच मे– "नारी–पुरूष के सम्बन्धो की अनेकता और उनकी सगति विसगति को गहराई से पहचाना है जहॉ तारा और कनक जैसी स्वाभिमानी स्त्रियॉ पतियो को छोडकर दूसरा व्याह कर लेती है वहॉ बन्ती अपने पति से व्यक्त होकर उसकी दहलीज पर सिर पटक–पटककर रोती है और मर जाती है।"[62]

पारस्परिक सौजन्य एव मर्यादा का अभाव ही झूठा सच के दम्पतियो के विघटन का मूल कारण है। इधर तारा ने सोमराज को छोडा, उधर कनक पुरी से नाता तोडने को विवश हुई। कनक, तारा से कहती है– "मुझे उनकी कोई बात अनुकूल नही लगती। विवाह के छह मास बाद से ही कटुता आरम्भ हो गई थी। पॉच वर्ष निभाया, अब नही सह सकती। निन्दा होगी हो मै क्या करू।"[63] स्पष्ट है कि विवाह पूर्व–प्रेम मे प्रथम आकर्षण भी कभी–कभी कितना भ्रामक सिद्ध हो सकता है। पुरी मे पति के अधिकार की भावना तथा पुरूषोचित क्रोध, आवेश, शका, ईर्ष्या तथा गालियो की बौछार, मर्यादा का पूर्ण उल्लघन ही कनक को विवाह–विच्छेद के लिए विवश करता है।

नारी की पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रतीक है तारा और कनक। पुरी की बहन तारा के स्वतन्त्र, स्वाभिमानी पुरूष–निरपेक्ष जीवन से प्रेरणा लेकर कनक भी पुरी से तलाक लेने का निर्णय लेती है। वह तलाक जिसके सम्बन्ध मे भारत मे विद्वानो के अलग–मत रहे है, पर तलाक की नौबत आने पर आधुनिक विद्वान इसे जीवन की आवश्यकता मानने लगे है।

आचार्य रजनीश के अनुसार– "तलाक अगर सीधा सामने खडा हो तो दस प्रतिशत मौके आप छोड देगे, कलह एक दम कम हो जायेगा, क्योकि कलह बेमानी है, कलह सिर्फ इसलिये है कि दोनो व्यक्ति अलग नही होते, आप से कह दूँ जाइए, बात खत्म हो गई। इसमे झगडा क्या है? मगर जाने को कह नहीं सका और आप जा नही सकते, मैं भी जा नही सकता, बैठना यही है तो कलह जारी रहेगी। तलाक इतना सरल होना चाहिए जैसे एक मित्र से मित्रता टूट जाती है, इससे ज्यादा उसका कोई अर्थ नही है।"[64]

तलाक के सन्दर्भ मे सुधा अरोडा अपना वक्तव्य देती है–"तलाक आसान इसी अर्थ मे होना चाहिए कि रिश्ते जब दोनो ओर से अर्थ खो दे तो उन्हे ढोते चले जाने से कोई तुक नही है।[65] सुधा अरोडा जी के इस मत की पुष्टि (पोषिका) कनक अपने विवाह विच्छेद के लिए पहल करने मे करती है। वह स्वय पुरी से तलाक की माग कर कहती है– "कनक बोली– सम्भव नही है। 'सम्भव क्यो नही है?' नही है, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हे जिस बात से विरक्ति थी, पुरी ने कातर स्वर मे कहा, वह नही होगी। मै पति के अधिकार का तकाजा या उस तरह के सम्बन्ध की इच्छा कभी नही करूँगा। तुम अपने घर मे रहो।' 'जब सम्बन्ध नही तो मतलब क्या ?, 'फिर गरमाहट स्वतत्रता चाहिए? दूसरा विवाह।

'जो इच्छा होगी।'

'किससे विवाह होगा?'

'आपको मतलब नही।'

'मुझे मतलब है । तुम मेरी पत्नी हो।'

'आपकी पत्नी नही हूँ। आपने स्वय पति का अधिकार छोड दिया है।'

'डाइवोर्स नही दूँगा। सम्बन्ध का बन्धन तोडकर उच्श्रृखल कभी नही होने दूगा'

'वैर पूरा करने के लिए, मेरी जिन्दगी बर्बाद करने के लिए सम्बन्ध रखोगे?'

'मैने कभी किसी के साथ धोखा और क्रूरता नही की।'

'आपने जो किया है, उर्मिला के साथ, अपने माता–पिता के साथ, तारा के साथ किसी के साथ छल क्रूरता नही थी ''[66] अन्तत कनक भी तारा की तरह पुरूष अत्याचार के प्रति विद्रोह कर स्वय अपना मार्ग चुनती है। पुरी के परिवार की घुटन से मुक्त होकर कनक मार्क्सवादी गिल के साथ रहने का निर्णय लेती है। तारा का पुनर्विवाह पूर्व परिचित डॉ0 प्राणनाथ से होना पारम्परिक पारिवारिक सस्कारो के परिवर्तन के प्रतीक है जो बदलते पारिवारिक सम्बन्धो को एक नई दशा एवम दिशा प्रदान प्रदान करते है। डॉ0 सुरेश सिन्हा के अनुसार– ''कनक और तारा जो उपन्यास की प्रधान नारी पात्र है। दोनो मे पर्याप्त अशो तक नवीन चेतना भी है। वे पुरूष की दासी बनकर अपना व्यक्तित्व विश्रृखलित नही होने देना चाहती, इसलिए वे शीघ्र ही अपना विकास कर नवीन नारी चेतना का सशक्त प्रतीक बन जाती है। पुरूष के अन्याय को दोनो ही नही स्वीकारती और दोनो ही अपनी चेतना से गतिशील होती हैं। पुरूष पर आश्रित रहकर झुकना नही जानती। तारा का दृष्टिकोण भी आधुनिक है, पर विवशता मे आर्थिक अभावो के कारण न चाहते हुए भी लम्पट, दुराचारी और आवारा युवक सोमराज से उसका विवाह हो जाता है। यशपाल तारा की दुर्गति के माध्यम से यह रेखाकित करना चाहते है कि नारी इसी प्रकार शोषित होती रहेगी, जब तक कि दृष्टि की सकीर्णता एव गन्दी मनोवृत्ति का नाश नही हो जाता और नारियो को हम भोग्य के स्थान पर मानवीय ढग से नही देखेगे।''[67]

मेरी तेरी उसकी बात

यशपाल द्वारा लिखित 'मेरी तेरी उसकी बात' (1973) बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे सास्कृतिक विकास की सूचक कृति है। इसमे मुख्य कथा दो विभिन्न जातियो तथा धर्मों मे वैचारिक एव सास्कृतिक एकता स्थापित करने को लेकरहै। इसके समानान्तर इसमे राजनीति तथा सस्कृति से सम्बन्धित प्रश्न उठाये गये है। कथा प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त से भारत की स्वाधीनता तक के राजनीतिक दॉव पेचो के मध्य डॉ0 अमर–उषा तथा रजा–गैती नामक दो दम्पत्तियो के विचारो विश्वासो एव सास्कृतिक आस्थाओ के बीच दौडती नजर आती है।

नायिका उषा पण्डित का जन्म एक ईसाई मास्टर धर्मानद पण्डित के घर हुआ है। जिनका मूल उद्देश्य हिन्दू सम्प्रदाओ के सिद्धान्तो, विश्वासो और असगतियो को दूर करना था। निर्मल नामक अफसर व्यक्ति के साथ जब उषा की सगाई होने वाली होती है। तब उषा का ऐक्सीडेट हो जाता है उसकी टाग टूट जाती है जिससे निर्मल रिश्ता को नकार देता है। उधर हास्पिटल मे डॉ0 अमर सेठ की सेवा पाकर उषा उसके प्रति आकर्षित होकर समाज की परम्पराओ तथा घरवालो की इच्छाओ के विरूद्ध उससे प्रेम विवाह कर लेती है। डॉ0 अमर सेठ ने भी अपने घरवालो के खिलाफ होकर विवाह किया था फलत वह बहिष्कृत हो जाती है और अगले घटनाक्रम मे उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है।

उषा विधवा होने पर अपने प्रेमी रूद्र से सिविल विवाह करने का निश्चय करती है किंतु अपने पुत्र के प्रति होने वाली चिता तथा परिवार की मर्यादा को बचाने के लिए (जबकि शादी के कार्ड छप गये थे) इस विवाह से मुँह मोड लेती है। उषा वैधव्य की स्थिति मे मात्र अपने परिवार तथा पुत्र की हो जाना चाहती है। उसमे, सेवा त्याग तथा निस्वार्थ जीवन जीने की लालसा जाग जाती है।

उषा–अमर–रूद्र की कथा के समानान्तर 'मेरी तेरी उसकी बात' मे रजा–गेती की कथा चलती है। रजा का अनमेल विवाह हुआ है। अपनी पत्नी गेती को वह पर्दा प्रथा से हटाकर 'माडर्न सोसाइटी' मे ले जाना चाहता है। अशिक्षित, मूढ गेती इसे पसन्द नही करती है और दोनो का जीवन अविश्वास और अटकलो मे गुजरता है। रजा उसे जीवन साथी समझता है, गेती अपने को शासित सेविका मानती है। दोनो की यही वैचारिक विषमता सुखद दाम्पत्य की असफलता का करण तो है ही। साथ ही गेती की कामुकता, असतुलित यौन भावना, आर्थिक परवशता आदि भी दोनो को पीडित रखते है।

पारिवारिक सन्दर्भों की दृष्टि से इसमे मूल समस्या अन्तर्जातीय विवाह की है जिसके कारण सामाजिक तथा सास्कृतिक मूल्यो के सघर्ष मे अनेक दम्पत्ति तथा व्यक्ति घुटन की अनुभूति करते है। जब अमर उषा के विवाह के सम्बन्ध मे उषा के पिता और हरि भैया मे चर्चा चली तब पण्डित ने चिन्ता व्यक्त की कि सामाजिक परिस्थितियो के विचार भिन्न सम्प्रदाय के लडके–लडकियो मे विवाह सम्बन्ध का औचित्य क्या रहेगा, इधर डॉ0 अमर सेठ के पिता ने तो इस विवाह के कारण अपने एक मात्र पुत्र के प्रति सामाजिक बहिष्कार की कसम खाली। यह ठीक है कि पितृमोह ने आगे चलकर उन्हे कुछ अवश्य बना दिया, किन्तु सामाजिक एव साम्प्रदायिक प्रश्नावली तो खडी हो ही गई। 'झूठा–सच' के कनक–पुरी दम्पत्ति की भाति इस उपन्यास के उषा अमर दम्पत्ति भी पहले प्रेम के ज्वारभाटे मे स्नान कर फिर विघटन के कगार परपहुँच जाते है, अन्तर यही है कि जहॉ झूठा–सच मे कनक पुरी मे विवाह विच्छेद हो जाता है वहा इस उपन्यास मे सेठ अमर की अकाल मृत्यु इसे वज्रघाती पारिवारिक विघटन का उदाहरण बना देती है।

प्रस्तुत उपन्यास मे उषा अमर मे नई पीढी के नये मूल्यो की चर्चा भी हुई है। नई पीढी के परिवारो मे पति पत्नी दोनो ही समान अधिकारो की बात करते है, दोनो ही एक दूसरे से स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व की चाह ना करते हुए अपने पथ पर चलना चाहते है। इसके अभाव मे तनाव आ जाना स्वाभाविक ही है।

विवाह असफल होते हैं इसके लिए स्त्री–पुरूष दोनो समान रूप से दोषी हैं। विवाह के ध्येय को समझने मे भूल करना, बहुत अधिक आशा करना, अर्थप्रधान दृष्टिकोण रखना, सहानुभूति और सहयोग की भावना न रखना आदि बाते ही वैवाहिक जीवन को असफल बना देती है।पूर्ण शिक्षित, सस्कृतिक चेतना से अभिभूत उषा एक स्वाभिमानी पात्र है। अपने पति द्वारा अन्य व्यक्ति के सामने अपमानित किये जाने पर विरोध स्वरूप वह कहती है– "आपने दूसरो के सामने डाट कर हमारा अपमान क्यो किया? आपकी वाइफ की इनसल्ट आपकी इसल्ट नही? हमारी गलती समझे तो अकेले मे जो चाहे कहते, डाट लेते।"[68]

कभी सुलह, कभी नाराजगी, यह तो पति–पत्नी मे चलता ही है किन्तु दोनो के बीच एक तीसरे व्यक्ति का प्रवेश सदेह नाग के दश का कार्य करता है। उषा अमर के मध्य नरेन्द्र का आगमन दोनो के सुखद दाम्पत्य मे विष घोल देता है। सन्देह, आरोप, ईष्या और आवेश अमर की जान ले लेते है। आवेश मे होश खो एक दिन अमर उषा को कहता है– "तुमने मुझे इतना अपदार्थ,

नपुसक समझ लिया कि मुझे अपने प्रेमी से अभिसार के लिए पर्दा बनकर साथ चलने के लिए धमका रही हो। एक बार तुम्हे उसकी सगति मे छोड आया, तुमने मुझे ककोल्ड (कुलटा का मूर्ख या अपदार्थ पति) समझ लिया (जैसे चाहोगी) मुझे नचाती रहोगी।"[69] आगे की कथा पति पत्नी के एक दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप कर एक दूसरे से मुक्त हो जाने के लिए सघर्ष की कहानी पर आधारित है। दोनो के मुक्त होने के पूर्व एक प्रसग दृष्टव्य है—

"उषा 'मै कह चुकी'

अमर 'तुम्हे दोनो मे से एक को चुनना होगा'

उषा मौन

पति ने उत्तर के लिए तकाजा किया।

उषा नजर खिडकी से बाहर किये स्तब्ध। पति के तीसरे तकाजे पर उषा का मौन टूटा, स्वर क्षीण परन्तु, अब फिर चुनना है तो इट इज नोट यू"[70] भारतीय सास्कृतिक परिवेश मे पल्वित अमर और पश्चिमी सस्कृति से प्रभावित उषा का यह वार्तालाप भारतीय पारिवारिक जीवन मूल्यो मे आस्था रखने वाले पाठक के लिए भी मोह भग की स्थिति लाने के लिए पर्याप्त है। यहॉ यह भी पता चलता है कि विभिन्न सम्प्रदायो की अपनी–अपनी सस्कृति होती है और उनका अपना रहन–सहन, उनकी अपनी समस्याये, रूचि एव सास्कृतिक स्वर होता है। एक हिन्दू अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित जैसी नारी की अपेक्षा उषा पण्डित जैसी जागरूक विदुषी इसाई पत्नी से विवाह करना अमर की भूल है।

परिवार सम्बन्धी दृष्टिकोण मे सदैव क्रान्ति तथा प्रगतिशीलता की चर्चा करने वाले यशपाल ने 'मेरी तेरी उसकी बात' मे उषा के अन्तिम निर्णय मे परिवर्तन प्रस्तुत कर एक नया प्रश्न चिन्ह खडा कर दिया है। सदैव व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का राग अलापने वाली उषा विधवा होने के पश्चात रूद्र पाठक से विवाह (सिविल) का निश्चय करती है किन्तु ठीक अन्त मे मैरिज के कार्ड छपने के पश्चात इस विवाह से मुॅह मोड लेती है तथा रूद्र से कहती है।"डियर मुझे छमा कर दो, सब तरह तुम्हारी हूँ और रहूँगी परन्तु बेटे के मन से कुण्ठा के सस्कारमिटाये बिना तुम्हारी पत्नी होने का सतोष और गर्व न पा सकूँगी।"[71] उषा की यह पक्ति उसके मानस के भीतर भारतीय सस्कृति की अमिटछाप की परिचायक है। उषा वैधत्व की स्थिति मे मात्र अपने परिवार तथा पुत्र की हो जाना चाहती है। उसमे सेवा त्याग तथा निस्वार्थ जीवन जीने की लालशा जाग जाती

है। यहाँ यशपाल ने वर्गीय सस्कृति से उठकर मानव कल्याण मे आस्था रखने वाली सस्कृति का सफल चित्रण किया है।

'मेरी तेरी उसकी बात' मे एक ऐसे पति–पत्नी की भी कहानी है जिन्हे प्रतिगामी दम्पत्ति कह सकते है। रजा गेती पति–पत्नी मे रूढिवादी, प्राचीन सास्कृतिक मूल्यो की उपासिका अशिक्षित गेती तथा नवशिक्षित डॉ0 रजा के अनमेल विवाह की कथा गठित हुई है। गेती पर्दा प्रिय है।,रजा उसे मार्डन सोसाइटी मे घुमाने को बेचैन रहता है।, फिर भला दोनो मे कैसे पटती। अशिक्षित, मूढ गेती एक दिन रजा से कहती है– "हाय अब्बा ने हमे किस कुएँ मे डाल दिया तुम्हे गली कोठो की खाक फांकनी थी तो हमारी जिन्दगी क्यो बरबाद की।"[72] गेती–रजा का पारिवारिक जीवन करूण एव कटुता पूर्ण है। अध विश्वासो की विभीषिका ने दोनो के जीवन मे आग लगा दी है।

इस उपन्यास के माध्यम से कथाकार पति–पत्नी सम्बन्धो के मध्य आये नैतिक–अनैतिक, श्लील–अश्लील, प्रसगो की जो चर्चा कर गया है, वह वर्तमान सास्कृतिक द्वैध की यथार्थ स्थिति की परिचायक है। काम और सेक्स के प्रति स्त्रियो एव पुरूषो का कम्पित हो जाना हमारी अर्द्ध चेतन मनस्थिति का परिचायक है। इसी कारण अमर का बलिदान हुआ, और उषा पडित उपन्यास के अन्त तक कोई निर्णय न ले पाई।

परिवार मे स्त्री–पुरूष 'सेक्स' को हब्बा न बनाकर बाइलोजिकल यथार्थ के परिप्रेक्ष्य मे देखे तभी आपसी समझदारी एव भविष्य मे इन्सानी रिश्ते बने रहने की सम्भावना उपजती रहेगी, नही तो परिवारो का टूटना–बिखरना सतत जारी रहेगा इसका स्वरूप उषा–अमर जैसा भी हो सकता है या फिर गेती–रजा जैसा भी हो सकता है।

व्यक्तिवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन

पारिवारिक विघटन मे यथार्थवादी उपन्यासो एवम मार्क्सवादी उपन्यासो के कारण सम्बन्धो मे ठकराव तो पैदा होता ही है इसके साथ ही उन उपन्यासो का भी नाम लिया जा सकता है जो व्यक्तिसत्ता को सर्वोपरि मानकर व्यक्ति के अन्तर्वाहरूप का चित्रण होने के कारण यदि एक ओर मनोविश्लेषण प्रमुख था तो दूसरी ओर यौन भाव। नन्द दुलारे वाजपेई ने उन उपन्यासो को व्यक्तिवादी उपन्यास माना है जिनमे "व्यक्तिगत जीवन–घटना, व्यक्ति–चरित्र, व्यक्तिगत जीवन–दर्शन, व्यक्तिगत मनोविज्ञान या व्यक्तिगत जीवन–समस्या का निरूपण या निर्देश सर्वोपरि रहता है।"[73]

पारिवारिक विघटन की दृष्टि से हिन्दी उपयास साहित्य मे व्यक्तिगत महत्ता का यह स्वर यो तो प्रसाद के 'ककाल' और उससे भी पहले ब्रजनन्दन सहाय के 'सौदर्योपासक' मे सुनाई दिया था। किन्तु स्वातन्त्रयोत्तर काल मे यह व्यक्तिवादिता एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप मे युगीन उपन्यास–साहित्य का प्रमुख रचनाधार बन गयी।

व्यक्तिवादी साहित्यकार व्यक्ति के बाह्य वातावरण की अपेक्षा उसके अन्तर्लोक को अधिक महत्व देता है और उस अन्तर्लोक को उद्घटित करने हेतु वह मनोविश्लेषण की प्रक्रिया अपनाता है। विघटन की इस अन्तर प्रक्रिया मे कथाकार प्रमुख पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको के विचारो का सहारा लेता है। इस शास्त्र के प्रमुख आचार्यो – फ्रायड, एडलर और युग के अनुसार मनुष्य यौनेच्छाओ , हीन भावनाओ और जीवनेच्छाओ का पुंज है। उसका समस्त बाह्य जीवन और ससार उसके मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन और अवचेतन और जिन मे अवचेतन सर्वाधिक महत्वपूर्ण और नियत्रक है। के अनुसार बनता बिगडता तथा सचालित होता है। उस अवचेतन का अकन करते हुए मनोविज्ञान के सिद्धान्तो के अलावा मनोविश्लेषण की पद्धति को भी अपनाना पडता है वही उसकी यौनेच्छाओ, हीनता की भावनाओ और ज़ीवनेच्छाओ के अनुरूप ही सम्पूर्ण जीवन की गति स्थिति को समझना होता है।

व्यक्तिवादी कथाकारो मे जैनेन्द्र प्रसाद, इलाचद जोशी, अज्ञेय, डॉ0 देवराज तथ मणि मधुकर प्रमुख हैं । व्यक्तिवादी चेतना के अनुसार देख जा सकता है कि इस धारा के"औपन्यासिको ने व्यक्ति को न केवल समाज से बल्कि उससे ऊपर भी स्वीकार किया है अपितु उसे समाज से अधिक वास्तविक, स्वतन्त्र निर्णायक और उत्तरदायी तथा अतिम लक्ष्य के रूप में माना है।"[73] जय शकर प्रसाद ने ककाल मे व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उभारा है।

व्यक्तिवादी उपन्यासकार इलाचद जोशी भी है लेकिन उनके व्यक्तिवाद मे समाज का भी समावेश है। उनका व्यक्ति और उनकी समस्याए समाज और उसके विविध चक्रो के बीज मूल प्रतीक और सिद्धान्त आधारित हैं। इसलिए जोशी जी व्यक्ति के अतरग और बहिरग के लिए तथा दोनो के समन्वय मे व्यक्ति की पूर्णता स्वीकार करते है। 'सन्यासी' मे इस अह भाव को देखा जा सकता है।

मणिमधुकर का 'सफेद मेमने' भी शुद्ध वैयक्तिक उपन्यास है जिसमे सभी पात्र रेत की उष्णता मे मन के द्वैध मे टूटते विखरते रहते है।

कंकाल

जयशकर प्रसाद द्वारा लिखित उपन्यास ककाल (1929) की मुख्य कथा किशोरी श्री चन्द्र के दाम्पत्य जीवन की है पर इसके समानान्तर कई कथाये चलती रहती है। किशोरी और देव निरजन बचपन के मित्र है। किशोरी की शादी हो गयी है परन्तु बच्चे नही पैदा हुए है इसी मन्नत के लिए वह देवनिरजन के पास पुत्र की याचना हेतु पति श्री चद्र के साथ जाती है। वे दोनो एक दूसरे को पहचान लेते हैं और सयम के खोने से दोनो के अवैध सम्बन्ध स्थापित हो जाते है किशोरी– देव निरजन के अवैध सम्बन्धो के परिणाम स्वरूप विजय का जन्म होता है। दूसरी ओर भारत सघ के सस्थापक मगल देव पहले तारा से प्रेम करता है। फिर विवाह का प्रलोभन देकर उसे गर्भवती बनाकर विवाह से कुछ ही मिनट पहले उसे विधि के भरोसे छोड कर उससे दूर चला जाता है और गाला से विवाह कर लेता है क्योंकि मगल उसे दुश्चरित्र मॉ की सतान समझता है जबकि मगल खुद अवैध सतान है।

लतिका बाथम भी आपस मे प्रेम विवाह करते है, परन्तु बाथम का चरित्र अच्छा न होने के कारण लतिका से अनबन रहती है। दूसरी ओर चाची की लडकी घण्टी का चरित्र उच्श्रृखल होने के साथ–साथ जारज सतान भी है। किशोरी श्रीचद्र का तथाकथित पुत्र विजय के दुश्चरित्र होने के साथ–साथ घण्टी के साथ अवैध सम्बन्ध भी रखता है। और वह अपनी मॉ को छोडकर चला जाता है किशोरी का जीवन एक सतप्त मॉ का जीवन रह जाता है। वह पति से विलग एक महाधिपति की रखैल बन कर आन्तरिक दुख मे दुखित जीवन व्यतीत करती है परन्तु अन्त मे किशोरी तथा श्री चद का समझौता हो जाता है, परन्तु पुत्र विजय तथा यमुना (तारा) का पवित्र जीवन टूट जाता है और उनका ककालिक रूप समाज के सामने उपस्थित होता है।

'ककाल' का विशेष महत्व उसकी साहित्यिक उपलब्धि मे नही, वरन एक नयी शुरूआत मे है। ककाल (प्रसाद) और उनके काल की कृतियो के बीच यथार्थ का एक नया आयाम लेकर उभरता है। यह शुद्ध यथार्थवादी कृति है, इसमे आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे बिना किसी महत्ता या आदर्श के आरोपण के समाज की विषमता को विभाजित एव विघटित करने वाले तत्वो को तटस्थ भाव से चित्रित किया गया है। यह सत्य है कि प्रसाद युगीन समाज सास्कृतिक दृष्टि से इतना

पतित था कि वहॉ सामाजिकता और आर्थिक समस्याए गौण हो गयी थी। परिवारो के विघटन एव पतन मे प्रसाद जी का विश्वास था कि धर्म हमारे समाज को पतित होने से बचा नही सका है और न ही उसने अपने भीतर पैदा होने वाली नित नूतन विसगतियो से वर्णसकरी समाज की रचना की है और समाज के विभाजन मे बहुत कुछ धार्मिक अन्ध विश्वासो एव इनके अत्याचारो का प्रभाव रहा है। धर्म के इसी मिथ्या बोध तथा आतक ने समाज को बाध्य किया है कि वह भटकी, अपनी बहू–बेटियो को स्वीकार करने से इनकार करे, अविवाहित या विधवा स्त्रियो को मॉ बनाकर परित्यक्त कर दे।

'ककाल' का कथानक पूरे धार्मिक वातावरण के सडाध तथा लिजलिजापन इससे जुडे मध्यवर्ग के स्वार्थ एव परिवारो के टूटने–बिखरने की दास्तान कहता है। ककाल को विघटित जीवन का ही ककाल कह सकते है, क्योकि इसमे सुगठित समाज तथा सुश्रृखलित परिवार मे सुखद दाम्पत्य के दर्शन नही होते। मुख्य कथा किशारी श्री चन्द्र के दाम्पत्यजीवन की दरार की है। प्रत्येक पात्र किसी न किसी स्थान पर किसी न किसी रूप मे स्त्री–पुरूष के सम्पर्क मे आता है।

देव निरजन धार्मिक हिपोक्रेट का प्रतिरूप है। उसका जीवन आरम्भ मे धार्मिक निष्ठा और तपस्या से आरम्भ होता है, किन्तु किशोरी को देखते ही उसके मन मे पाप उत्पन्न हो जाता है जिसे वह प्रेम का प्रतीक मानकर अपनी दार्शनिकता का मुलम्मा चढाते हुए कहता है– "हॉ किशोरी मै वही रजन हूँ तुमको पाने के लिए ही जैसे आज तक तपस्या करता रहा, यह सचित तप तुम्हारे चरणो मे निछावर है। सन्तान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की मुझमे जो शक्ति है वह सब तुम्हारी है।"[75] यह जानते हुए भी कि किशोरी किसी की पत्नी है और सामाजिक सम्बन्धो मे बधी हुई नारी है, देव निरजन उसे पथ भ्रष्ट होने की प्रेरणा भी देता है और उसके पारिवारिक विघटन का कारण भी बनता है। जिस प्रकार मगलदेव–तारा अनैतिक सम्बन्धो के कारण वर्णसकरी सतान मोहन का जन्म हुआ, ठीक उसी प्रकार देवनिरजन–किशोरी के पाप सम्बन्धो का परिणाम है विजय। मगलदेव स्वय भी सरला नाम की महिला की अवैध सतान है। इस पर टिप्पडी करते हुए डॉ0 रामदरश मिश्र लिखते है– "इन अनेक पात्रो के प्रणय–सूत्र आपस मे अत्यन्त उलझे हुए है। लोकोपवाद से डरे हुए ये पात्र दुर्बल है इसलिए ये अपने प्रेम सम्बन्धो मे भी बहुत अस्पष्ट है। प्रणय सूत्र कई–कई गाठे मारता चलता रहता है और यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि किसका प्रेम किससे है और कब बदल जायेगा।"[76]

चूँकि ककाल मे किशोरी श्री चद के पारिवारिक जीवन के विघटन की मूलकथा है अत उपन्यास के प्रारम्भ मे इन दोनो के सम्बन्धो की झलक मिलती है। तत्पश्चात देव निरजन के कारण श्री चद्र किशोरी दाम्पत्य के विघटन और उसके पश्चात पुनर्गठन ने ककाल मे जान डाल दी है। आरम्भ मे किशोरी श्री चद्र के वार्तालाप मे शाश्वत प्रेम एव सुखी दाम्पत्य जीवन के दर्शन होते है। किशोरी श्री चद्र पर पूर्ण अधिकार भावना से कहती है– "मै पहले ही कहती थी कि तुम कुछ न कर सकोगे न तो स्वय कहा और ना मुझे स्वय प्रार्थना करने दी।" विरक्त होकर श्री चन्द्र ने कहा– "तो तुमको किसने रोका था। तुम्ही ने क्यो न सन्तान के लिए प्रार्थना की । कुछ बाधा तो दी न थी।"[77]

तत्पश्चात देवनिरजन के विचलित होने पर तथा किशोरी को अपना पूर्व परिचय देने पर वे उसे पथभ्रष्ट होने पर विवश करने के पश्चात उपन्यास मे नया मोड उपस्थित होता है। किशोरी सन्तान के लाभ मे अन्धी थी। वह दुखी होकर भी तथा पति परायण होते हुए भी देवरजन को समर्पित हो जाती है तथा उपन्यास में परिवारिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है– किशोरी की मन स्थिति से स्पष्ट है– "अतीत की स्मृति, वर्तमान की कामनाएँ, किशोरी को भुलावा देने लगी। माथे से पसीना बहने लगा। दुर्बल ह्रदया किशोरी को चक्कर आने लगा। उसने ब्रह्मचारी के चौडे वक्ष पर अपना सिर टेक दिया।"[78]

किशोरी– देव निरजन के अवैध सम्बन्धो के परिणाम स्वरूप विजय का जन्म होता है, परन्तु विजय के दु चरित्र होने पर तथा उसके गृह त्याग के पश्चात किशोरी का जीवन एक सतप्त माँ का जीवन रह जाता है। इस बात को स्वय देव निरजन स्वीकार करता है कि वह उनके दाम्पत्य विघटन का कारण है। अपने पत्र मे एक स्थान पर देव निरजन लिखता है– "रूचि मानव प्रकृति, इतनी विचित्र है कि वैसा युग्म विरला होता है, मेरा विश्वास है कि वह कदापि सफल न होगा। स्वतन्त्र चुनाव, स्वयबरा, यह सब सहायता नही दे सकते। इसका उपाय एकमात्र समझौता है। वही ब्याह है। तुम लोग उसे विफल बना ही रहे थे कि मै बीच मे कूद पडा।"[79] जहाँ देव निरजन के कारण किशोरी श्रीचन्द्र के पारिवारिक जीवन मे विघटन होता है, उसी प्रकार 'चन्दा' नामक धनी व्यापारी विधवा के कारण श्रीचन्द्र किशोरी का पुनर्मिलन होता है। उपन्यास की यह घटना सिद्ध करती है कि दाम्पत्य–प्रेम एक शाश्वत धारा है। किसी विशेष परिस्थितिवश यदि इसमे विक्षेप आ भी जाता है तो समय एव परिस्थिति के परिवर्तन द्वारा वह पुन अनुकूल परिस्थिति पाकर प्रवाहित होने लगती है। श्री चन्द्र किशोरी वार्तालाप से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है–

"तो हम लोग क्या इतनी दूर है कि मिलना असम्भव है?"

'असम्भव तो नही है, नही तो मै आता कैसे?'

'अब स्त्री सुलभ ईर्ष्या किशोरी के हृदय मे लगी। उसने कहा– आये होगे किसी को घुमाने–फिराने–सुख बहार लेने।'

किशोरी के इस कथन मे व्यग्य से अधिक उलाहना था। न जाने क्यो श्री चद्र को इस व्यग्य से सतोष हुआ, जैसे ईप्सित वस्तु मिल गई हो, वह हसकर बोला–"इतना तो तुम भी स्वीकार करोगी, कि यह कोई अपराध नही है। 'किशोरी ने देखा, समझौता हो सकता है, अधिक कहा–सुनी करके इसे गुरूतर नही बना देना चाहिए। उसने दीनता से कहा– तो अपराध क्षमा नही हो सकता।"[80]

इस प्रकार ककाल मे किशोरी– श्रीचद्र के पारिवारिक सम्बन्धो मे प्रेम की अजस्र धारा परिस्थिति की अनुकूलता पाकर पुन· प्रवाहित होने लगती है और वे साथ–साथ जीवन यापन करने लगते है। उनके परिवार का पुनर्गठन होता है। निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि विवाह एक सामाजिक सस्कार है। इसके द्वारा दम्पत्ति धर्म की वेदी पर एक दूसरे का वरण करते है। अत पति–पत्नी का प्रेम भी शुद्ध सात्विक निरन्तर प्रवाहित रहने वाली वह मदाकिनी है जिसमे युगल दम्पत्ति सारे जीवन स्नान करके सुगठित समाज का निर्माण करते है। इसके अभाव मे मानव जीवन बिखर एव टूट जाता है जैसे विजय अथवा यमुना का पवित्र जीवन टूट जाता है तथा उनके दाम्पत्य जीवन का कंकालिक स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

डॉ0 सुरेश सिन्हा के शब्दो मे– "ककाल मे मूल रूप से स्त्री पुरुषो के सम्बन्धो पर व्यक्तिवादी दृष्टि कोण से विचार किया गया है उसके अधिकाश पात्र जारज सतान है।"[81] डॉ0 सुषमाधवन के शब्दो मे– "उपन्यास मे सभी पात्र जारज हैं, जो समाज की दृष्टि से पतित है और व्यक्ति की दृष्टि से उच्श्रृखल।"[82] ककाल मे जयशकर प्रसाद ने भारतीय समाज तथा हिन्दू एव ईसाई धर्म का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इस कृति के द्वारा वे सिद्ध करते है कि हिन्दू धर्म मे आ गई दुर्बलताओ ने हमारे समाज को भीतर से खोखला कर दिया है तथा नर–नारी सम्बन्धो मे विसगतियॉ भरकर वर्णसकरीय समाज की संरचना की है। धार्मिक विश्वासो के मिथ्याबोध और अन्य विश्वासो मे बधकर ही श्रीचद किशोरी मे विघटन उत्पन्न होने लगता है,।

सन्यासी

'सन्यासी' इलाचन्द्र जोशी की अन्यतम कृति है। नन्द किशोर दमि कामवासना का शिकार तथा अहवादी व्यक्ति है प्रारम्भ मे वह शान्ति नामक युवती से प्रेम करता है। दोनो पति–पत्नी का व्यवहार कर इलाहाबाद मे किराये का कमरा लेकर जीवन–यापन करते हैं। नन्द प्रसन्न है कि उसे नारी मिल गयी, जबकि शान्ति चिन्तित है क्योकि स्वय स्वीकार्य दाम्पत्य जीवनकी आशकाएँ उसके मन–मस्तिस्क को आलोडित करती है। बलदेव के आगमन से कथा मे मोड आता है। शकाशील नन्द बलदेव से शान्ति का अनैतिक सम्बन्ध जोडता है तथा उद्विग्न रहता है, तत्पश्चात शान्ति नन्दकिशोर के बडे भाई के आग्रह पर नया निश्चय करती है। शान्ति का त्यागमय, तेजस्वी स्वरूप भी अभिमानी नन्द को नही बॉध पाता। वह नन्द के साथ आदर्श पत्नी बनकर जीवन यापन करना चाहती है, परन्तु उसका उच्च पवित्र सम्बन्ध नन्द की शकाशील प्रवृत्ति का दमन नही करता वरन उसकी अधिकार भावना की वृद्धि करता है और यही अधिकार भावना शान्ति को घर छोडने पर विवश कर देती है।

नन्दकिशोर का दूसरा विवाह बधन प्रो0 मिश्र की लडकी जयन्ती से स्थापित होता है, नन्द किशोर की अहंवादी, स्वार्थी तथा शकालु प्रवृत्ति बनी रहती है। नन्द यहाँ भी जयन्ती का सम्बन्ध कैलाश से जोडकर उसे त्रस्त करने लगता है। जयन्ती शान्ति के सदृश सहिष्णु स्त्री नही थी। वह नन्दकिशोर के साथ सुखी दाम्पत्य जीवन जीने का पुर्ण प्रयत्न करती है। परन्तु असफल रहती है वह नन्दकिशोर के चरित्र का विश्लेषण करते हुए कहती भी है कि उसने (नन्दकिशोर से वैवाहिक जीवन) सुख और शान्ति के लिए विवाह नही किया है वरन सामाजिक अधिकार और उसे कलुषित करने के लिए किया है। और वही दर्द जयन्ती को जलकर आत्मघात करने के लिए विवश करता है। वही शान्ति क्रान्त होकर एक नया मार्ग खोज लेती है। नन्दकिशोर के कुछ समय पश्चात मिलने पर भी वह नन्द को पुन स्वीकार नही करती, नन्दकिशोर निराश व हताश होकर सन्यासी बन जाता है।

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी साहित्य के प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होने प्रेमचन्दोत्तर काल मे स्त्री–पुरूष के सम्बन्ध मे क्रान्तिकारी परिवर्तन दर्शाये है। सन्यासी उपन्यास मे प्रेमविवाह और दाम्पत्य सम्बन्धो पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है। सन्यासी आत्म विश्लेषण से परिपूर्ण एक मनोवैज्ञानिक एव क्रान्तिकारी उपन्यास है, परन्तु व्यक्ति समाज से दूर अपनी सत्ता नही रख सकता। समाज के फलक

पर ही घटनाओ के जाल द्वारा पात्रो का चरित्र उद्घाटन होता है। शान्ति विवाहित न होते हुए भी परम्परागत दाम्पत्य भावना से ओत प्रोत है। वह नन्द के साथ आदर्श पत्नी बनकर जीवन यापन करना चाहती है परन्तु उसकाउच्च पवित्र सम्बन्ध नन्दकिशोर की शकाशील प्रवृत्ति का दमन नही करता, वरन उसकी अधिकार भावना की वृद्धि करता है। अपनी इसी मानसिक स्थिति को नन्द किशोर इन शब्दो मे व्यक्त करता है– "मैं अपनेअज्ञान मे यह महसूस कर रहा था कि मैं जिस तरह का निकम्मा असासारिक और अनावश्यक आदमी हूँ, अग्रेजी मे जिसे कहते हैं– Heeless उस तरह के आदमी से कभी किसी भी प्रकार के बधन से बधे रहना (चाहे वह बन्धन कैसा भी पवित्र और स्वर्गीय क्यो न हो) सम्भव हो ही नहीं सकता।"[83]

तत्पाश्चात नन्द किशोर का जयन्ती से विवाह बधन उसके दाम्पत्य जीवन का द्वितीय स्वरूप है। जयन्ती नन्द किशोर के चरित्र का विश्लेषण करके असफल पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन का परिचय देते हुए स्पष्ट शब्दो मे कहती है– "आपने वैवाहिक सुख और शान्ति के इरादे से मुझसे विवाह कभी नहीं किया, बल्कि अपने सामाजिक अधिकार के पूरे प्रयोग से मुझे कलुषित और दलित करके एक हिसात्मक सुख प्राप्त करने का उद्देश्य आपका प्रारम्भ से ही रहा है। विवाह के पूर्व से ही आपके मन मे, जान मे या अनजान मे मेरे चरित्र के प्रति सन्देह और साथ ही एक अस्वाभाविक ईर्ष्या का भाव घर किये था।"[84]

जयन्ती के शब्दो ने नन्द किशोर के मनस्तर की आन्तरिक ग्रन्थि खोल दी है। जिसके कारण वह दो नारियो से पत्नी के स्नेह सम्बन्ध स्थापित करता है और दोनो के साथ सुखी दाम्पत्य जीवनयापन करने में असमर्थ रहता है। जयन्ती नन्द द्वारा तिरस्कृत होकर आत्महत्या कर लेती है। शान्ति क्रान्त होकर नवीन मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। नन्द किशोर के कुछ समय पश्चात मिलने पर भी वह नन्द को पुन स्वीकार नही करती, नन्द किशोर निराश व हताश होकर सन्यासी बन जाता है। इस प्रकार 'सन्यासी' शुद्ध दाम्पत्य परक उपन्यास न होकर दाम्पत्य सम्बन्धी जीवन के बदलते स्वरूपो का परिचय देने वाला तथा पारिवारिक विघटन की सघर्षमयी स्थिति का परिचायक अन्यतम उपन्यास है।'

नन्द किशोर का अह इतना भारी पडता है कि उसे किसी भी स्त्री के प्रति पूर्ण लगाव नही महसूस होता, और उनमे विकृतियो का ताना बाना बुनता रहता है, साथ अपनी प्रथम प्रेमिका शान्ति से होने वाली सन्तान को भी नही प्राप्त कर पाता है। पारिवारिक विघटन का दश नयी पीढी को भी भोगना पडता है। डॉ0 रामदरश मिश्र के अनुसार– "सन्यासी का नन्द किशोर एक प्रचण्ड अहकारी

व्यक्ति है जो अपने अहकार की तृप्ति के लिए कई स्त्रियो का जीवन नष्ट करता है, न उन्हे शान्ति दे पाता है और न खुद पाता है। अन्त मे वह अपने को एक सामाजिक अर्थ से जोडना चाहता है अर्थात सन्यासी होकर नेता बन जाता है और जेल चला जाता है।''[85]

सफेद मेमने

मणिमधुकर के उपन्यास 'सफेद मेमने' (1971 ई0) राजस्थान के नेगिया गॉव की कहानी है। नेगिया की बस्ती मनुष्य के निर्जीव होते जाते अस्तित्व और मनहूसियत के एहसास से अन्तर्बद्ध हो गई है। नायक पोस्ट मास्टर पुसत्वहीन है और इसे छिपाने के लिए वह हिरनो, तो कभी गिलहरियो के बीच घूमा करता है अपने दाम्पत्य जीवन के तनाव और कडवाहट को लिंकन की महानता से जोडकर अपने चोट खाये अह व पौरूषहीनता को सहलाता रहता है। पत्नी बन्ना सर्द हो चुकी है और सन्दो मे यौन भावना का हिस्र वेग है। बन्ना की लाचारी यह है कि रामऔतार से प्रेम के साथ उतना ही उसकी मौत से प्रेम करती है। डॉक्टर जिसे गॉव के लोग 'जिनावर स्याब' कहते है वह एक साथ कई लोगो से जुडने की कोशिश करता है। अपने एकात की कुठा को समाप्त करने के लिए वह जानवरो से सम्भोग करता है। वही दूसरी ओर जाटो का खून सदो की रगो मे दौड रहा है। वह सुरजा से अमानुषिक व्यवहार करता है और जस्सू को सुरजा से शादी न करवाकर पुलिस को दे देता है। रक्खे का पुत्र सदो रामऔतार की पत्नी बन्ना को लेकर भाग जाता है। उधर जस्सू गॉव की जतरी से अपने तनाव को दूर करना चाहता है और इसमे असफल होता है, जंतरी की मार उसे बेहोश कर देती है। रामऔतार सुबह जगने पर अपनी पत्नी बन्ना की तलाश मे निकलता है इसी के साथ उपन्यास की कथा समाप्त होती है।

'सफेद मेमने' मे पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन का दमघोटू अभिव्यक्ति रेत के टीलो के रूप मे नेगिया गॉव मे हुआ है।डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के शब्दो मे– ''इसमे कुछ पात्र या मेमने जो सफेद है, नगर बोध को लिये हुए है राजस्थान के एक छोटे से गॉव नेगिया मे रहते है। जिसका खालीपन पराया सा लगता है। आधुनिकता का बोध नगर बोध्र से जुडा हुआ है लेकिन यह कही भी उजागर हो सकता है– पहाड पर, रेगिस्तान मे, टापू मे या गज।''[86] सफेद मेमने का परिवेश अन्य उपन्यासो से हटकर है। यह महानगर न होकर रेगिस्तान है। इसमे नगरो की भीड के बजाय रेगिस्तान का एकान्त है सभी परिवारो के लोग सम्बन्धो की तलाश मे अकेलेपन, अजनबीपन और बेगानेपन के बोध से घिरे हुए

है। डॉ0 नरेन्द्र मोहन के कथनानुसार – "रेगिस्तान का अन्तहीन रेतीला फैलाव यहाँ पात्रो की भीतरी पर्तो से लिपटा हुआ है। नेगिया की बस्ती मनुष्य के निर्जीव होते जाते अस्तित्व और मनहूसियत के एहसास से अन्तर्बद्ध हो गई है।"[87] इस रेगिस्तान के उजाड एकान्त मे अकेलेपन, मामूलीपन अजनबीपन और फालतूपन के बीच सभी पात्र अधिक गहराई से खोये हुए है।

'सफेद मेमने' से परम्परागत भारतीय पारिवारिक सम्बन्धो का गतिरोध टूटा है तथा हिन्दी उपन्यास को नया मुहावरा मिला है। हिन्दी उपन्यास आदर्शवादी रूमानियत की भूमि लॉघकर किस प्रकार यथार्थ के धरातल पर अपने को प्रतिष्ठित करने का उपक्रम कर रहा है, यह 'सफेद मेमने' इसका सशक्त प्रमाण है। अकेलेपन, अजनबीपन, विसगति बोध व व्यग्य आक्रोश का मिला जुला स्वर उपन्यास की सरचनात्मक बुनावट से पूरे आवेग के साथ उठता है। परिवेश और वातावरणगत नीरसता के माध्यम से मणिमधुकर पात्रो के अकेलेपन और अजनबीपन को गहराते है।

डॉ0 गिरिजाराय के शब्दो मे – "इस उपन्यास का एक पहलू यौन सबधो का है।"[88] पारिवारिक सम्बन्धो मे विघटन का एक प्रमुख बिन्दु यौन सम्बन्धो मे असन्तुलन भी होता है। चूँकि बन्ना सर्द हो चुकी है इसलिये"वह रामऔतार की जिन्दगी से जितना प्यार करती है, उतना ही उसकी मौत से। दोनो के बीच फर्क करना या विभाजन रेखा खीच देना उसके बस की बात नही है। वह पति को भारी महत्व देती है और अपने मुहासो को भी। दर्द की जो कडवाहट या मिठास पति के साथ जुडी हुई है, मुहासो तक आते–आते वह अधिक तीव्र हो जाती हे इलाज बन्ना के पास नही है। एक ऐसी स्थिति सामने आकर टिक गयी है कि निदान की जागरूकता खत्म हो चुकी है। पति और मुहासो की बीच दूरी है, पर असन्तोष नही। मवाद है, पर वितृष्णा नही। खालीपन है, पर सशय नही। दाम्पत्य जब अपनी हदे पहचान लेता है तो अश्वस्त हो जाता है। अश्वस्त और सुखी सुख फिर चाहे रेत हो या पानी, कोई अन्तर नही आता।"[89] यह उसकी जटिल और उत्तेजक मनस्थिति को प्रकट करने के साथ उसकी विवशता और लाचारी को पूरी निरीहता मे उभारता है। यौन तथा दाम्पत्य सम्बन्धो की जटिलता को उपन्यासकार आधुनिक जीवन की विडम्बना के फलक पर रचता है इस प्रकार 'सफेद मेमने' मे पारिवारिक विघटन आधुनिक बोध से जुड जाता है।डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार – "रामऔतार पोस्टमास्टर, जानवरो का डॉक्टर, बन्ना जस्सू आदि मे आधुनिकता का बोध कभी बेगानेपन मे उजागर होता है तो कभी जिन्दगी और मौत के चिन्तन मे तो कभी व्यर्थता के बोध मे।"[90]

पोस्टमास्टर रामऔतार की पौरूष हीनता उसे भीतर से खाली और खोखला करती जा रही है– "जस्सू चुप रहा इतना तो वह सोचता था कभी–कभार, कि पोस्ट मास्टर को कोई धारदार चीज काटे जा रही है और यहॉ मन नही लगता। लेकिन वह चीज क्या है, जस्सू पडताल नहीं कर पाया था।"[91] रामऔतार अपनी पौरूषहीनता को भुलाने के लिए कभी हिरनो तो कभी गिलहरियो के बीच घूमा करता है। अपने दाम्पत्य जीवन के तनाव और कडवाहट को लिकन की महानता से जोडकर अपने चोट खाये अह व पौरूष को सहलाता है। डॉक्टरजिसे गॉव के लोग 'जिनावर स्साब' कहते थे, मैदान के मुरझाये विस्तार को इस झलक के साथ देखता है कि वह अभी इसके साथ जुड जायेगा। किन्तु वह जानता है कि कटे हुए अग को जोडना बहुत कठिन काम है। सिर झुकाये भेडे यातना की हरधार से बेखबर और अनभिज्ञ चली जा रही है।। डॉक्टर अनुभव करता है कि हर आदमी भगोडा है और जीवन की तल्ख सच्चाइयो से मुँह छिपा रहा है। बन्ना को देखकर सोचता है कि वह मुक्त नदी है जो रेगिस्तान मे आकर भी सूखी नही है। बन्ना के उद्दाम यौवन की उष्मा और ऊर्जा को अपने भीतर समेटकर वह अपने जीवन को एक नया अर्थ देना चाहता है। डॉक्टर इस मनहूसियत और भीतर के बजरपन को तोडने के लिए भैस की थूही थपथपाते हुए अपने रगो के तनाव को ढीला करना चाहता है। पर यह भी नही हो पाता। भीमा उसे कोठरी के द्वार पर मुँह बिराता भर्त्सना करता मिल जाता है।

डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार "जाटणी सुरजा एक मेमने की तरह है जिसे महज सभोग के लिए छीला जाता है। सुरजा, जस्सू के भीतर आते ही अपना लहँगा ऊपर उठाकर मुँह फेर कर बोलती है– "चढ जाओ"। इस अनुभूति की कडवाहट से अजनबीपन उभरकर उसे दबोचता है जो बदलते परिवेश मे स्त्री–पुरूष के बीच एक नया सम्बन्ध स्थापित करता है। सदो की रगो मे जाटो का खून दौड रहा है और वह अपने को राजपूत समझता है और सुरजा पर अपने दोस्तो से अमानुषिक व्यवहार कराता है। इस क्रूर और अमानुषिक सामंती मानसिकता को सदो–सुरजा प्रकरण के माध्यम से लेखक ने बडे कारूणिक ढग से उभारा है। पुरूष समाज की इस पाशविकता के नीचे तडपती सुरजा के लिए जीवन अर्थहीन और विघटित हो जाता है। "सुरजा को पीढी–दर–पीढी अमरबेल की भाति फलने–फूलने वाले इस झगडे से कोई लगाव नही था। वह देखती थी कि गाबासी का कोई तगडा जवान भी हाथ पडने पर बराऊ की किसी राजपूतणी को पकड लाता था और बदला लेने के लिए उसकी 'दुरदसा' करके छोडता था तब तमाम जाट गरब में ऐठते हुए डोलते थे। कल्पनाओ के जोर पर वे बराऊ की

सभी 'चम्पा कलियो' से अपने जिस्मानी रिश्ते जोडने लगते थे। दोनो ढाडियो की बहादुरी औरतो के बूते पर जगमग थी। पुलिस वाले विचौलिए बनकर छापामारते थे, इस रूप मे कि दुश्मनी उत्तरोत्तर बढे और खून खराबा हो जिससे उनकी हैसियत बनी रहे। माल– भत्ते मे हिस्सेदारी चलती रहे। कभी–इधर से, कभी उधर से। उन्हे क्या परहेज हो सकता था।''[92] इस झगडे मे केवल स्त्री की दुर्दशा होती थी और दूसरो की इज्जत बनती थी। सदो का मानवीय मूल्यो से अजनबीपन उसके क्रूर व्यवहार से प्रकट होता है। पुलिस की भूमिका केवल तमाशाई की है। पुलिस की अमानवीयता और बर्बरता कितने परिवारो का विघटन कर देती है यह 'सफेद मेमने' मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सदो की इच्छा पूर्ति मे तिलतिल जलती सुरजा के भीतर के तमाम अधेरे को जस्सू पी जाना चाहता है। समय की क्रूर नियति यह सब नहीं होने देती है। सुरजा थानेदार की भेट चढ जाती है और जस्सू निस्सहाय भाव से ताकता रह जाता हैं। जस्सू की यह विवशता आज के मानवीय सम्बन्धो के विघटन होने की नियति की विवशता से जुड जाती है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार– ''इस उपन्यास मे बन्ना की दृष्टि मे आधुनिकता झलकती है।''[93] रेगिस्तानी निचाट मे हमेशा प्रसनन रहने वाली बन्ना स्वयं के लिए अपरिचित और अजनबी होनी जा रही है। मृत्यु का भय उसका पीछा कर रहा है। वह अपने अधूरेपन के बोझ के नीचे पिस रही है। बन्ना की सहजता से रामऔतार अपने पुसत्वहीनता के एहसास को गलाना चाहता है और बन्ना मान चुकी है कि हर औरत किसी न किसी स्तर पर वेश्या बनने के लिए विवश है। अजनबीपन की रेत से मुक्त होने की कोशिश में, रामऔतार के पौरूष को आहत करता हुआ सदो का अश उसके पेट मे पलने लगता है।

डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ के शब्दो मे– ''दो बूढे पात्र, जस्सू और रक्खे अकेलेपन तथा अजनबीपन की भयानकता को भोगते है और शहरी जीवन की ललक लिए रहते है।''[94] सुरजा को लेकर जस्सू चिडचिडा हो जाता है। भीतर ही भीतर कोई चीज उसके अस्तित्व को काटती रहती है रक्खे को इस सत्य का भान होता है कि रेत के ढूहो मे रहने वाले सभी लोगो का जीवन बॉस की फटी खपच्चियो की तरह है।

बन्ना के आगे अकेलापन और अजनबीपन पट्टान की भॉति अडा है इसे तोडने के लिए बन्ना सन्दो के साथ भाग जाती है। हताश रामऔतार फीकेपन से कहता है– ''मै, मै नही बदला। उसकी आवाज मे फीकापन उतर आया, रेत आदमी को बदलती नही है, वही निर्जीव बना देती है।''[95] जस्सू जतरी के माध्यम से अपने तनाव को व्यर्थ करना चाहता है पर असफल होता है। जन्तरी की मार

से बिलबिलाकर बेहोश हो जाता है। जस्सू की विवशता आज की मानवीय नियति की विवशता से जुड जाती है। पारिवारिक विघटन की इस विवशता और असमर्थता की गिरफ्त मे सारे पात्र है। डॉक्टर को दुनिया रेत के थक्को से लिथडी हुई दिखती है जिसमे सास लेना मुश्किल है। 'सफेद मेमने' मे मणि मधुकर ने पारिवारिक विघटन को, मानवीय नियति की विवशता एव रेत की प्रतीकात्मकता की गहराई से आका है उपन्यास इस प्रकार आधुनिक बोध की गवाही देने लगता है। मणिमधुकर के सफेद मेमने की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए डॉ0 गिरिजाराय लिखती हैं कि– "मणिमधुकर के उपन्यास सफेद मेमने (1971 ई0) मे धूल के टीलो, आधी और दमघोटूँ एकाकीपन से जकडे राजस्थान के नेगिया नामक गॉव की कहानी है। इस गॉव का रेगिस्तान अपनी प्रतीकात्मकता मे अभिशप्त मानवीय नियति से जुड जाता है।"[96] इन रेत के टीलो मे सभी पात्र एक दूसरे से कटे एव बेगाने से मनहूसियत की जिन्दगी जी रहे हैं।

व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन

व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक वह पद्धति है जिसमे मस्तिष्क के तीसरे भाग अवचेतन पर विशेष बल दिया जाता है और उसी के अनुरूप मनुष्य के व्यक्तित्व की चित्र रचना की जाती है यही कारण है उसमे वह काल्पनिक आदर्शमय महात्म्य और औदात्य नही रहता जो मध्ययुगीन चरित्रो मे रहता था, बल्कि मनोविश्लेषण के आधार पर अकित चरित्र तो ऐसे ग्रन्थिमय व्यक्तित्व होते है जो अपनी अवचेतनीय कुठाओ तथा विसगतियो के कारण आत्म रतिलीन क्षुब्ध असामाजिक, अराजक, काम पीडित, अनैतिक, अमानवीय, परपीडक तथा घोर अहमन्य होते है वे स्वस्थ सहज प्रवहमान सामाजिक जीवन न जीते हुए निजी परिवेश के क्षणो पर विश्वास करते है ऐसे चरित्र अपनी चेतना के क्षण–क्षण परिवर्तनशील प्रवाह के अनुरूप सचालित होने के कारण व्यवस्था– विरोधी होते है।

प्रेमचद का 'गबन' उपन्यास व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक विघटन का उपन्यास कहा जा सकता है। क्योकि "रमानाथ जैसे सामान्य पात्र को लाकर अन्तर्द्वन्द्व का जो मार्मिक अंकन प्रेमचद 'गबन' मे कर सके है वह उनके अन्य उपन्यासो मे उपलब्ध नही होता। अन्तर्द्वन्द्व सामान्य पात्र मे ही अधिक होता है जो सकल्प विकल्प के घात–प्रतिघात मे रास्ता नही पाता"[97] रमानाथ मध्यवर्गीय युवक की समस्त सामाजिक स्थितियो का प्रतिनिधि होने के नाते सकल्प विकल्प का पुज

बन जात है और उसका चरित्र कमजोर होने के साथ मनोवैज्ञानिक रूप से सजीव हो उठता है।

सुगठित एव सगठित शुरूआत करने वाले इस प्रकार के उपन्यासकारो मे जैनेन्द्र सर्वप्रथम आते है। इनकी यह प्रमुखता इसलिए है कि प्रेमचद के समाजवादी, सोद्देश्य, यथार्थ उपन्यास रचना युग के उपरात जैनेन्द्र ने ही सर्वप्रथम व्यक्ति के मन का विश्लेषण करते हुए उपन्यासो की रचना की। व्यक्तिपरक मनोविज्ञान का सही अर्थों मे रचनात्मक प्रयोग जैनेन्द्र से ही आरभ होता है। जैनेन्द्र के उपन्यास सच्चे अर्थ मे मनोवैज्ञानिक कहे जा सकते हैं। 'त्यागपत्र' मे विशेषत मृणाल का चरित्राध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उसमे सासारिक वस्तुजात मे सम्पूर्णता की प्रतीति का गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त सहज रूप मे दिखता है। जिस तरह से गेस्टाल्टवादी स्थिर रेखाओ के बीच, विशिष्ट परिस्थितियो के अदर गतिमान चित्रो को देख लेता है, उसी तरह मृणाल हर जगह सब कुछ देख लेती है। कारण कि वह विशिष्ट मन स्थिति में है।

इसी क्रम मे एक अन्य अपेक्षाकृत अधिक प्रमुख और सर्वाधिक आधुनिक व्यक्तिवादी उपन्यासकार है– सच्चिदानद हीरानद वात्स्यायन 'अज्ञेय' । अज्ञेय के उपन्यासो ने हिदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास साहित्य को स्तर की प्रौढता प्रदान की है। शब्दान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने ही अपने उपन्यासो के माध्यम से कथा को मनोविश्लेषण से सयोजित कर गहराई और मनोविज्ञान को कथा का आधार देकर जीवतता प्रदान की है। अज्ञेय मूलत फ्रायड से प्रभावित है यो तो यह डारविन एवम एडलर से भी प्रभावित दिखते है परन्तु परोक्षत। अज्ञेय की कथाकृतीयो मे मनोविज्ञान के चरित्र के व्यक्तित्व, जीवन की ऊष्मा, सवेदना की मधुर तरलता तथा परिवेश के आयामो से इस प्रकार घुला–मिला है कि वह न तो कही रचना के कथा तत्व को खडित करता है और न पाठक के आस्वाद को विघटित।

शेखर– एक जीवनी मे शेखर का विखरन एव 'शशि का टूटना' में फ्रायड का दर्शन ही काम करता है। डॉ0 देवराज उपाध्याय की शोध है कि "शेखर एक जीवनी के प्रथम भाग मे शेखर के शैशव का अंकन फ्रायड की अनुवर्तिनी मन चिकित्सा (Melamıa kleın)द्वारा किये गये Frıtz नामक तीन वर्षीय बालक के मनोअध्ययन पर आधारित है।"[98] शेखर के विद्रोह मे फ्रायड के Pleasure Prınceple आनन्द कामना और Realıty Prıncıple यथार्थ बोध भाव को प्रकट करते है जिसमे उसके अस्तित्व, ईश्वर, जन्म, यौन, माता–पिता तथा समाज सम्बन्धी कौतूहल एव जिज्ञासाए आती है। शेखर को अपने पिता के रूक्ष स्वभाव के

बावजूद उनके प्रति आशक्ति तथा शान्ति स्वभाव होने पर भी मा से विरक्ति उसकी चेतना की यूडिपस कॉम्पलेक्स पितृरति ग्रन्थि तथा मातृरति ग्रन्थि को ही प्रमाणित करती है।

'नदी के द्वीप' जो अज्ञेय की दूसरी रचना है मे फ्रायडीय मनोविज्ञान का पर्याप्त प्रभाव है इसमे 'पारिवारिक सम्बन्धो के विखरन एवम विघटन का प्रमुख स्वरूप फ्रायड की यौन–भावना ही केन्द्रीय चेतना बिन्दु है जिससे उपन्यास के पाय सभी पात्र परिचालित है।

धर्मवीर भारती के 'गुनाहो का देवता' भी शुद्ध व्यक्तिपरक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है क्योकि इसमे सभी पात्र फ्रायड के यौन–भाव से ग्रस्त प्रतीत होते हैं। वैयक्तिक धरातल पर उपन्यास के सभी पात्रो मे मानसिक द्वन्द्व विद्यमान है। चन्द्र कपूर, कैलाश, सुधा, विनती, प्रमिला और गैसू सभी शिक्षित मध्यवर्ग के पात्र है जिनके माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग के प्रेम विवाह तथा 'सेक्स' समस्या का वर्णन किया है। इन सभी पात्रो की समस्या यौन कुण्ठा है जो एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित कर स्वतन्त्र वैयक्तिक जीवन जीना चाहते है, परन्तु इस जीने में वे सम्बन्धो की वर्जनाओ को एक तरफ उठाकर रख देते हैं और सन्तुष्टी की चरमावस्था मे तृप्ति की आकाक्षा लिए एक अनाम दौड लगाते रहते हैं।

गबन

मुशी प्रेमचन्द्र द्वारा लिखित 'गबन' एक मध्यवर्गीय परिवार का कथानक है जो झूठे प्रतिष्ठा के प्रतिमानो और नारी आभूषण के कारण विघटन के कगार पर पहुँच जाता है।नायक रमानाथ के लिए विवाह आत्माओ का मिलन नही है। वह पत्नी को जीवन सग्राम मे सगिनी के रूप मे भी नही ले पाता। इसलिए उसके आगे भी वह किसी न किसी प्रकार से अपनी झूठी शान बनाये रखना चाहता है। उधर नायिका जालपा का बचपन अपने परिवार मे आभूषणो की बाते सुनते–सुनते बीता है। रमानाथ के पिता दयानाथ ने विवाह मे जो गहने चढाये है, वे उधार के है। दयानाथ जब आभूषणो की रकम नही चुका पाते तो रमानाथ से आभूषण वापस कर देने की सलाह लेते है। पिता दयानाथ की इच्छा है कि बहू को वास्तविक स्थिति बतलाकर आभूषण रमानाथ माग ले परन्तु रमानाथ पहले ही अनेक झूठ जालपा से बोल चुका है। इधर पिता के दबाव और उधर पत्नी के आगे झूठी शान के बीच फसा रमानाथ अत मे जालपा से जेवर मॉगने के बजाय उनको चुराकर अपने पिता को दे देता है।

जेवरो की चोरी से जालपा प्रसन्न नही रहती। रमानाथ जालपा को प्रसन्न रखने के लिए अभी भी उससे अपनी वास्तविक स्थिति छुपाता है। नौकरी लगने पर तीस रूपये की जगह चालीस रूपये बताता है कर्ज लेकर जालपा के आभूषण बनवाता है, आर्थिक कमी के कारण सरकारी पैसे का गबन करके भाग खडा होता है। जालपा अपना पति धर्म निभाकर आभूषण बेचकर गबन का पैसा भरती है। रमानाथ जो कि सरकारी मुखबर बन गया है। जालपा उसे ढूढकर उसमे नैतिक बल भर कर वापस अपने परिवार मे लाने पर सफल हो जाती है।

जालपा की सखी रतन इन्द्रभूषण वकील की पत्नी है। वकील साहब की मृत्यु के बाद उनके बडे भाई का लडका मणिराम वारिस बन जाता है और रतन के पास कुछ नही रह पाता। रतन कहती भी है कि बहनो सम्मिलित परिवार में विवाह मत करो जब तक तुम्हारा अपना घर न हो। रतन का यह कथन सयुक्त परिवार मे विधवा की दयनीय स्थिति को बेलाग शब्दो मे स्पष्ट कर देता है।

'गबन' की कथा का बीज गहनो की सार्थकता और आभूषण प्रिय होने की हानि है। इसे गहने की ट्रेजडी भी कहा जा सकता है। कतिपय कथाकारो ने इस तथ्य पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये है। डॉ० रामदरश मिश्र भी जालपा के बचपन के गहनों की आशक्ति को स्वीकार करते है परन्तु बाद की स्थितियो के लिए सहानुभूति दर्शाते है– "जालपा तभी तक हार के लिए जिद करती है जब तक जानती है कि उसका पति पैसे वाला है। जब उसे वास्तविकता का बोध होता है तो वह सारे गहने बेचकर पति की इज्जत बचाती है।"[99] डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में– "जब उसकी मॉ उसे अपना चन्द्रहार भेजती है, तो यह सोचकर कि उन्होने बडे सकट मे भेजा होगा, वह उसे वापस कर देती है। जालपा यहॉ यह जता देती है कि उसके गहनो के प्रेम की सीमा है और वह किसी भी कीमत पर गहने लेने को तैयार न हो पायेगी। उसका यही आत्म सम्मान उसका सबसे बडा रक्षक साबित होता है, जबकि रमानाथ मे इसी का अभाव उसके दुख और कठिनाइयो का सबसे बडा कारण बन जाता है।"[100] वस्तुत यह केवल आभूषण प्रेम से उठने वाली समस्या नही है। परिवार ऐसा वृत्त है, जिसमे अन्य सम्बन्धो की तुलना मे पति–पत्नी का सम्बन्ध अधिक अन्तरग,अनौपचारिक और महत्वपूर्ण है। पति–पत्नी के सहयोग पर ही परिवार आधारित है। एक–दूसरे से छिपाव–दराव पारिवारिक जीवन को विषाक्त ही करताहै। यहा रमानाथ और उसके पिता दयानाथ के दृष्टिकोण का अतर भी उल्लेखनीय है। दयानाथ बहू से परदा रखने की जरूरत नही समझते और "परदा रह ही कै दिन सकता है? आज नही

तो कल उसे सारा हाल मालूम हो जायेगा।"[101] और यह सही है कि यदि जालपा को रमानाथ वास्तविक स्थिति समझा देता, तो वह आभूषण लेना पसन्द ही नही करती। वह भी रमानाथ के इस तरह छुपाने से क्षुब्ध होकर कहती है– "यह मुझसे इतना परदा क्यो करते है? क्यो मुझसे बढ चढकर बाते करते थे। क्या मै इतना भी नही जानती कि ससार में अमीर–गरीब दोनो ही होते हैं? क्या सभी स्त्रिया गहनो से लदी रहती है? गहने न पहनना क्या कोई पाप है? जब और जरूरी कामो से रूपये बढ जाते है तब गहने भी बन जाते है। पेट और तन काटकर, चोरी या बेईमानी करके तो गहने नही पहने जाते? क्या उन्होने मुझे ऐसी गयी–गुजरी समझ लिया।"[102] रमानाथ के सरकारी मुखबिर बन जाने पर जालपा ही उसमे नैतिक बल भरने मे सफल होती है। जालपा वापस परिवार को सम्भालने मे सफल होती है। जालपा के इस नये रूप को उभार कर प्रेमचद ने परिवार मे नारी की मुख्य भूमिका को रेखांकित किया है।

सेवासदन से गबन तक की यात्रा मे प्रेमचंद को संयुक्त परिवार के कतिपय दोष दिखाई देने लगे थे। जालपा की सखी रतन इन्द्र भूषण वकील की पत्नी है। वकील साहब की मृत्यु के बाद उनके बडे भाई का लडका मणिराम वारिस बन जाता है और रतन के पास कुछ नही रह पाता। रतन का कहना है– "अगर मेरी जबान मे इतनी ताकत होती कि सारे देश मे उसकी आवाज पहुचती तो मै सब स्त्रियो से कहती, बहनो, किसी सम्मिलित परिवार मे विवाह मत करना और अगर करना, तो जब तक अपना घर अलग न बना लो, चैन की नीद मत सोना। यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर मे तुम्हारा मान के साथ पालन होगा। अगर तुम्हारे पुरूष ने कोई लडका नही छोडा, तो तुम अकेली रहो, चाहे परिवार मे, एक ही बात है। तुम अपमान और मजूरी से नही बच सकती। अगर तुम्हारे पुरूष ने कुछ जोडा है तो अकेली रहकर भोग सकती हो, परिवार मे रहकर तुम्हे उससे हाथ धोना पडेगा। परिवार तुम्हारे लिए फूलो की सेज नही, काटो की शैय्या है। तुम्हारी पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हे निगल जाने वाला जतु है।"[103] रतन का यह कथन संयुक्त परिवार मे विधवा की दयनीय स्थिति को बेलाग शब्दो मे स्पष्ट कर देता है। फिर भी लोग परिवार रूपी सस्था से लगाव रखते हैं शायद यह प्रेमचद की अपनी व्यक्तिगत पीडा भी हो सकती है।

परिवार के इस बिखराव एव विघटन मे प्रेमचद कितनी भी समस्याओ को नजर अन्दाज करते चलते हैं और अन्त मे पति–पत्नी के असन्तोष या भीतरी व्यभिचार को भी दबाते चलते हैं इसका मुख्य कारण परिवार का अस्तित्व है, और यही अस्तित्व उसे समाज मे महत्वपूर्ण स्थान दिलाता है। डॉ0 रामविलास शर्मा के

अनुसार– "पुराने आदर्शवाद का प्रेमचद पर इतना प्रभाव था कि विवाह–बधन तोडने की अनुमति वह न दे सकते थे। उनकी रचनाओ मे दाम्पत्य–जीवन के घोर असन्तोष के चित्रण मिलते है, परन्तु उन्हे सुलझाने के लिए उन्होने त्याग, धैर्य और समाई का ही उपदेश दिया है। इसका कारण यह है कि उनका सुधारवाद परिवार को अपना केन्द्र बनाए है, बिना परिवार के समाज की शायद वह कल्पना भी नही कर सकते थे।"[104] गबन मे पुरानी परम्पराओ एव झूठे प्रतिष्ठा के प्रतिमानों पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है।

त्यागपत्र

जैनेन्द्र का अत्यधिक प्रशसित उपन्यास 'त्यागपत्र' (1937) कथा नायिका मृणाल के विवाह पूर्व, विवाह पश्चात और विवाहेत्तर जीवनकी धुरी पर घूमता है। मृणाल आत्मपीडन को झेलने वाली नायिका है। वह एक सभ्रान्त परिवारकी लडकी है। पिता–माता बचपन मे ही मर चुके हैं, बडा भाई अभिभावक है उसे परिवार से प्यार मिलता है, वह तितली की तरह उडती फिरती है, नटखट है, स्कूल मे ऊधम मचाती है किन्तु शीला के भाई (मृणाल की सहेली) के साथ उसके प्रेम सम्बन्ध ने उसकी हसी छीन ली। भाभी नें उसे बेंत से पीटा। तब से मृणाल हसी नही। कुछ दिन बाद मृणाल की शादी एक अधेड से कर दी जाती है। अधेड व्यक्ति ने शीला के भाई के साथ उसके प्रेम सम्बन्ध की चर्चा मृणाल के मुह से सुनकर उसे घर से निकाल दिया। पति–गृह से निकलने के बादमृणाल को आश्रय देता है एक कोयले वाला। यह जानते हुए भी कि एक सीमा के बाद कोयले वाला भी धोखा देगा, मृणाल उसे समर्पण कर देती है।

अब तक मृणाल का भतीजा प्रमोद तरूण हो चला है। इटर पास करके वह थर्ड–ईयर मे आ गया है। उसने बुआ मृणाल को ढूॅढ निकाला है। तब बुआ कोयले वाले के साथ रह रही थी। वस्तुत कोयले वाले के साथ बुआ को देखकर प्रमोद का आभिजात्य आहत हुआ है और अभिजात्य से ही मृणाल को चिढ है। वह प्रमोद की सहायता जरूर लेना चाहती है, पर उसके आभिजात्य को हराकर।

पूरे बीस वर्षों तक मृणाल अपनी पूरी क्षमता से जीवन–सघर्ष से जूझती रहती है। इस बीच प्रमोद का विवाह हो जाता है और वह जज बन जाता है। वर्षों बाद जब मृणाल की गर्हित स्थान मे मृत्यु होती है तो जैसे एक सघर्ष कथा समाप्त हो जाती है। प्रमोद को तो बुआ (मृणाल) की मृत्यु का समाचार पूरी

तरह झकझोर डालता है। वह जजी से त्याग पत्र देकर ससार से विरक्त हो जाता है।

मृणाल को भाई और भाभी का पूरा प्यार मिलता है। मृणाल का भतीजा जज दयाल एक जगह कहता है– "पिताजी उनको वडा स्नेह करते थे। उनकी सभी इच्छाये वह पूरी करते पिता का स्नेह बिगाड न दे, इस बात का मेरी माता को खास ख्याल रहता था। वह अपने अनुशासन मे सावधान थी। मेरी बुआ को प्रेम करती थी, यह तो किसी हालत मे नही कहा जा सकता। पर आर्य गृहणी का जो उनके मन मे आदर्श था, मेरी बुआ को वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थी"[105] और इसलिए शीला के भाई से प्रेम करने के कारण मृणाल को भाभी का दण्ड मिलता है।मृणाल के विवाह पूर्व जीवन मे अनुराग का केन्द्र बनता है उसका भतीजा प्रमोद जो बडा होकर जज बनता है। लेकिन यह बुआ भतीजे का सीधा सरल सम्बन्ध नही है। अपने अतर मे असफल प्रेमिका मृणाल प्रमोद के ऊपर किसी न किसी रूप मे शीला के भाई को आरोपित करती है वह तो प्रमोद की बुआ भी नही बनना चाहती, कहती है– "मै नही बुआ होना चाहती। बुआ! छी! देख, चिडिया कितनी ऊची उड जाती है। मै चिडिया होना चाहती हूँ। मैने कहा–चिडिया? बोली– हा चिडिया। उसके छोटे–छोटे पख होते हैं। पख खोल वह आसमान मे जिधर चाहे उड जाती है। क्यो रे कैसी मौज हैं! नन्ही–सी–चिडिया, नन्ही सी पूछ। मैं चिडिया बनना चाहती हूँ।"[106] और उसरात मृणाल प्रमोद को बहुत देर तक चिपकाये रही।

वडी होने पर मृणाल का बेमेल पति से विवाह हो जाता है, उसे इस पर कोई एतराज नही है। प्रेमी को वह सदा के लिए भूल गयी है। लेकिन एक भूल उससे और हुई है कि उसने अपनी विगत की कथा पति को भी सुना दी। पति उसको घर से निकाल देते है। मृणाल ऐसी स्थिति मे स्वय भी पति के पास नही रहना चाहती। उसका कहना है– "मै स्त्री धर्म को पति धर्म ही मानती हूँ। उसको स्वतन्त्र धर्म मै नही मानती। क्यो पतिब्रता को यह चाहिए कि पति उसे नही चाहता, तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे? मुझे नही देखना चाहते, यह जानकर मैने उनकी आखो के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया।"[107] पति गृह से निकलने के बाद मृणाल को आश्रय देता है एक कोयलेवाला। प्रमोद ने बुआ को ढूढ निकाला है। तब बुआ कोयले वाले के साथ रह रही थी। प्रमोद को लगा कि बुआ की ऑखे हठात ऊपर उठती नही है। वह बुआ के लिए कुछ करना चाहता है– "उसका निज बुआ को इस सारी परिस्थिति से मुक्त करा देना चाहता है, परन्तु तभी उसके मन पर जमी समाज की परत का दबाव बढता है और वह

मात्र बुआ के कमरे मे झाड़ू लगाकर अपना कर्तव्य पूरा कर लेना चाहता है।"[108] वस्तुत कोयले वाले के साथ बुआ को देखकर प्रमोद का आभिजात्य आहत हुआ है। और आभिजात्य से ही तो मृणाल को चिड है। वह प्रमोद की सहायता जरूर लेना चाहती है पर उसके आभिजात्य को हराकर वह कहती है– "प्रमोद, सहायता की मै भूखी नही हूँ क्या? तुझसे ही वह सहायता न लूगी? लेकिन सहायता का हाथ देकर क्या मुझे यहाँ से उठाकर ऊँचे वर्ग मे जा बिठाने की इच्छा है? तो भाई, मुझे माफ कर दो। वैसी मेरी अभिलाषा नही है। सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का होता रहे कि कोई मुझे कुचले, तो भी मैं कुचली न जाऊ और इतनी जीवित रहूँ कि उसके पाप के बोझ को भी ले लूँ और सबके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँ। प्रतिष्ठा मुझे क्यो चाहिए, मुझे तो जो मिलता है उसी के भीतर सात्वना पाने की शक्ति चाहिए।"[109]

यह शक्ति मृणाल मे है। पति को छोडने के बाद मृणाल जिस कोयले वाले के साथ रहती है, वह भी अपने पीछे परिवार को छोडकर आया है। गर्भवती मृणाल इस कोयले वाले को वापस उसके परिवार मे पहुँचाने पर उतारू है। उसका कहना है, "मैं उसे उसके परिवार मे लौटाकर ही मानूगी। अब समय आया है कि उसे इस बात की अक्ल आ जाए, अब उसका मोह टूट गया है।"[110] डॉ0 गिरिजाराय की टिप्पडी है कि "मृणाल अपने सत्य के प्रति लगाव के कारण स्वय से, समाज से और इस दुनिया से अजनबी हो जाती है।"[111] पूरे बीस वर्षो तक मृणाल अपनी पूरी क्षमता से जीवन सघर्ष से जूझती रहती है इस बीच प्रमोद का विवाह हो जाता है और वह जज बन जाताहै। वर्षो बाद जब वह मृणाल की मृत्यु होती है तो जैसे एक सघर्ष – कथा समाप्त हो जाती है। प्रमोद को तो बुआ की मृत्यु का समाचार पूरी तरह झकझोर डालता है। वह जजी से त्यागपत्र देकर ससार से विरक्त हो जाता है।

त्यागपत्र की मृणाल वस्तुत एक प्रतीक है नारी के सामाजिक उत्पीडन और उसकी आतरिक सहनशक्ति का। मृणाल का अहम समाज की परिपाटियो को अस्वीकार कर उन्हे नयी परिभाषा देता है और इस क्राति का मूल्य निज के बलिदान से चुकाता है। मृणाल सहज समाज की उच्छिष्ट बन गयी है। मृणाल की कथा के माध्यम से जैनेन्द्र ने अवश्य ही (स्त्री पुरूष के सम्बन्धो को) 'त्यागपत्र' के पारिवारिक जीवन सन्दर्भो को प्रभावित किया है। सम्पूर्ण पारिवारिक जीवन के वृत्त को जैसे जैनेन्द्र कही छूते नही है। उनकी दृष्टि सिर्फ दाम्पत्य सम्बन्धो पर केन्द्रित रहती है, वह भी इन सम्बन्धो से जुडी रसमयता, सहजता और कृत्रिमता के सधान के लिए। उपन्यासकार की दृष्टि सीमा ने भारतीय

पारिवारिक जीवन की विविधता, व्यापकता और सार्थकता के अनेक पक्षो को जैसे अनचीन्हा छोड दिया है। जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' को पढकर ऐसा प्रतीत ही नही होता कि भारत आज भी सयुक्त परिवारो के बदलते स्वरूपो का देश है। जैनेन्द्र के इस सीमित परिप्रेक्ष्य ने उनके पात्रो के व्यक्तित्व को भी सीमित कर दिया। वे भाई बहिन पिता–पुत्र–पुत्री कभी नही होते। उनके बीच एक ही सम्बन्ध है, प्रेम के त्रिकोण का, जिसे जैनेन्द्र कोणों और भुजाओ मे थोडा –बहुत परिवर्तन कर बार बार दोहराते जाते है।

मृणाल हिन्दी उपन्यास की सर्वाधिक चर्चित पात्र है मृणाल के चारित्रिक उदात्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 गिरिजाराय लिखती हैं– "इस उपन्यास मे दो भिन्न दुनियाओ का सजीव चित्रण है। प्रमोद के ससार के सारे आदर्श, मूल्य, प्रतिमान स्थिर है जबकि मृणाल बधी–बधायी लीको पर नही चलती। परम्परा और सडी गली रूढियो के विरूद्ध विद्रोह करके मृणाल अपने ढग से जीवन जीने का प्रयास करती है और इसी प्रयास मे टूट जाती है। किन्तु वह हार नही मानती।"[112] मृणाल के चरित्र के बारे मे कतिपय आलोचको का दृष्टिकोण इस प्रकार है– नन्ददुलारे वाजपेई के अनुसार– "पूरे उपन्यास मे मृणाल का चरित्र अपने असाधारण सकटो के कारण पाठक की दृष्टि को आकर्षित करता है मृणाल के चरित्र मे उस प्रकार का हल्कापन कही नही है, जिस प्रकारका हल्कापन जैनेन्द्र के अन्य कतिपय नारी पात्रो मे मिलता है। जैनेन्द्र के अन्य नारी पात्रो मे पति की उपेक्षा करके पर–पुरूष के प्रति जो एक प्रच्छन्न आकर्षण मिलता है, वह भी इस उपन्यास की नायिका मृणाल मे व्यक्त नही है जैनेन्द्र ने बडे कौशल के साथ उसे एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे पुरूष के साथ सम्बन्धित किया है। पर यहा वेदना के आधिक्य के कारण पाठक की सवेदना मृणाल को ही मिलती है।"[113] डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार– "मृणाल मे असाधारणता है। जीवन मे सदा नकार पाते रहकर भी उसका मन अतिशय सवेदनशील हो गया है।"[114] पदम लाल पुन्नालाल बख्शी के शब्दो मे– "जैनेन्द्र की मृणाल सहेली बन गई, क्योकि उन्होने उसके अन्तर्जगत के भाव–सौन्दर्य को परिस्फुट नही किया है। प्रेम की वह गरिमा थी, जिससे उसने कलक, निदा और दुख तीनो को चुप चाप सह लिया।"[115] डॉ0 शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार– "अपने चारो ओर के पाप पकिल वातावरण से असम्पृक्त अपनी हीनतम स्थिति मे भी महामान्वित हो उठी है।"[116] डॉ0 अतुलवीर अरोरा की दृष्टि मे– "यह उपन्यास अपनी प्रभावान्विति मे एक नारी की पीडा–गाथा बन सका है।"[117]

शेखर . एक जीवनी

अज्ञेय का – शेखर एक जीवनी प्राण दण्ड के कारण उद्भूत घनीभूत वेदना की केवल एक ही रात मे देखे हुए विजन (टष्ष्ठ) को शब्द बद्ध करने का उपन्यासात्मक प्रयास हे। इसमे प्रथम भाग की कथावस्तु को 'प्रवेश' के अतिरिक्त चार खण्डो मे विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड : ऊषा और ईश्वर द्वितीय खड बीज और अकुर, तृतीय खण्ड प्रकृति और पुरूष और चतुर्थ खण्ड : पुरूष और प्रकृति। शेखर एक जीवनी के दूसरे भाग की कथावस्तु भी चार खण्डो मे विभक्त है– 'प्रथम खण्ड पुरूष और परिस्थिति, द्वितीय खण्ड बन्धन और जिज्ञासा, तृतीय खड शशि और शेखर और चतुर्थ खण्ड · धागे, रस्सियॉ गुझर।

'शेखर एक जीवनी' एक ऐसे व्यक्ति की जीवनी है जो अपनी अनुभूतियो के प्रति बेहद ईमानदार है। व्यक्ति के रूप मे शेखर बचपन से ही जो अनुभव करता है जो जिज्ञासाऍ उसके मन मे पैदा होती हैं। उनके प्रति वह ईमानदार है। वह समाज मे रहता हुआ भी उससे परे है। हर क्षण वह मानसिक चिन्तन मे व्यस्त रहता है। शेखर के बचपन की एक घटना ने उसके मन मस्तिष्क को विकृत कर दिया है। माता–पिता के साधारण वार्तालाप के कारण उसके मन व मस्तिष्क मे घृणा की ग्रन्थि बैठ जाती है।वह उसके सारे कार्य व्यापार को प्रेरित करती दृष्टिगत होती है। एक दिन उसके पिता उसके बडे भाई के घर से चले जाने पर वही से उसके मिलने की सूचना देते है। प्रसगवश उसकी माता शेखर पर भी विश्वास न करने की बात कहती है। उसीदिन से शेखर मन से विक्षिप्त, कर्म से असाधारण बन जाता है। प्रारम्भ से ही विद्रोही स्वर अख्तियार कर लेता है डाक्टर को बुलाने जाना परन्तु खेल मे लगकर पिता से पिटना, भाइयों के साथ तैरते हुए डूबना। एव पिटना असहयोग आन्दोलन मे कपडो को जलाना बहिन की शादी से चितित होना, गीत गोबिन्द सुनाने पर पिटना आदि घटनाओ ने प्रौढ बना दिया।

शेखर के जीवन मे तीन लडकियॉ मुख्य रूप से आती है शारदा, शशि व शान्ति। द्वितीय भाग में शेखर के व्यक्तित्व मे सहजता शशि की आत्मीयता और स्नेह के कारण आयी यूँ तो शशि विद्यावती मौसी की लडकी होने के नाते शेखर की बहन है, पर वह बहन से भी कुछ है। शेखर पढाई भी पूरी नही कर पायाथा कि उसे काग्रेस के स्वय सेवक के रूप मे जेल जाना पडा। शेखर के जेल मे रहते हुए ही शशि का विवाह रामेश्वर से हो गया। लेकिन शशि का वैवाहिक जीवन सफल नही रहा। शशि अत्यधिक भाव प्रवण युवती थी, जबकि

रामेश्वर यथार्थ मे जीने वाला युवक शशि शेखर से अपनी पीडा जेल मे रहते हुए पत्र द्वारा अवगत कराती है। शेखर जेल से आकर शशि से मिलता है शशि से मिलना रामेश्वर को पसद नही है। एक दिन अत्यधिक दु ख मे शेखर के यहॉ शशि रूक जाती है। परिणाम स्वरूप रामेश्वर उसे घर से निकाल देता है। शशि मॉ विद्यावती के साथ नही जाना चाहती फलस्वरूप मौसी (शेखर की) शशि को शेखर के यहॉ छोडकर चली जाती है। अन्त मे शशि से शेखर को गम्भीर और सयत स्नेह होता है, उसी दीर्घ सूत्री स्नेह में सम्बन्धो के अंकुर दृष्टिगत होते है। प्रत्येक एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह व बलिदान की भावना रखते है। शशि को बचाने के लिए ही तो शेखर ने अपनी पुस्तक के सर्वाधिकार बेच दिए और वह क्रान्तिकारी दल का सदस्य बन गया। लेकिन शशि नही बची, अकेला रह गया है शेखर। आगे के लिए चलता हुआ, शशि की छाया को साथ लेकर। लेकिन अकेला शेखर भी कब तक चले? उसकी यात्रा का भी तो अत सन्निकट है। क्रान्तिकारी आन्दोलन मे भाग लेने के कारण वह अपनी फासी की सजा सुन चुका है उसे मृत्यु से साक्षत्कार की प्रतीक्षा है। प्रतीक्षा की इन घडियो के सूनेपन को उसने बस अतीत के स्मृति चिन्हो से भर लिया है।

अपने परिपक्व रचना–शिल्प, आधुनिक दृष्टि और सम्पन्न भाषा से अज्ञेय ने हिन्दी उपन्यास को उपलब्धि का एक नया धरातल दिया। औपन्यासिक अभिव्यक्ति के इस नये स्तर ने सहज मे ही पारिवारिक सम्बन्धो के चित्रण को भी प्रभावित किया। अज्ञेय के उपन्यासो मे परिवार का चित्रण उनके पूर्ववर्ती उपन्यासो की तरह स्थूल नही है। उसमे परिवार की सरचना के वर्णन का आग्रह नहीं है। अज्ञेय के पात्रो के लिए अपना पारिवारिक सन्दर्भ सामाजिक रिश्तो के स्थूल यथार्थ के रूप मे, अपितु आधुनिक कलाकार की चित्रात्मक प्रस्तुतियो की भाति ही सूक्ष्म अतर्छवियो के रूप मे चित्रित हुए है।

डॉ0 गिरिजाराय के शब्दो मे – "प्रयोगवाद के समानान्तर इस औपन्यासिक कृति मे अतिशय वैयक्तिकता का विस्फोट देखा जा सकता है। यह विद्रोह और विस्फोट सारी सामाजिक रूढियो, सडी गली परम्पराओ और उस सामाजिक दबाव के विरूद्ध है जो व्यक्ति की अस्मिता को सदियो से निरन्तर कुचलते और रौदते आ रहे है। व्यक्ति मन और समाज की टकराहट शेखर के विलम्ब व्यक्तित्व के कारण इसउपन्यास मे तीखे रूप मे उभरती है।"[118] वैयक्तिकता की ये अन्तर्छविया शेखर के शैशवाकाल की स्मृतियो, आवेश से आततायी बने पिता और आवेशहीन मा की निर्दयता मे उभरी है।

अज्ञेय के उपन्यासो मे परिवार गौण है और व्यक्ति प्रमुख। इसलिए उनमे नाभिक परिवार की आभास–रेखा मात्र है। समाज के जिस स्तर और वर्ग से अज्ञेय ने अपने पात्र लिये है, उनमे सयुक्त परिवार की परम्परा कभी की समाप्त हो गयी है। उनके लिए नाभिक परिवार अपवाद नही, नियम हैं वे नाभिक परिवार के विघटन को अपने दृष्टि केन्द्र मे नही रखते। उनकी दृष्टि व्यक्ति पर पारिवारिक वृत्त के घात प्रत्याघात और इनके फलस्वरूप सवेदनात्मक स्तर पर व्यक्ति की टूटन पर ही केन्द्रित रही है। व्यक्तित्व की टूटन की इस प्रक्रिया को समझने के क्रम मे उन्होने पारम्परिक नैतिकता को अस्वीकार किया। इतना ही नही, इस नैतिकता के आधारो को चुनौती भी दी। मौसेरी बहन शशि के साथ शेखर का सबन्ध, रेखा और भुवन के दैहिक सम्बन्ध, इस चुनौती की अभिव्यक्ति है। अज्ञेय के अनुसार– "स्वातन्त्रय की खोज, टूटती हुई नैतिक रूढियो के बीच नीति के मूलस्रोत की खोज है कह लीजिए कि समाज की खोखली सिद्ध हो जाने वाली मान्यताओ के बदले व्यक्ति की दृढतर मान्यताओ की प्रतिष्ठा करने की कोशिश है। मै मानता हूँ कि चरम आवश्यकता के चरम दबाव के निर्णय करने की चरम आवश्यकता के क्षण मे हर व्यक्ति अकेला होता है, और इस अकेलेपन मे वह क्या करता है इसी मे उसकी आत्मिक धातु की कसौटी है।"[119]

'शेखर एक जीवनी' (प्रथम भाग 1940, द्वितीय भाग 1944) अज्ञेय का प्रथम उपन्यास है। वस्तुतः गोदान के होरी के बाद यदि कोई पात्र अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व सहित आज भी जीवित है, तो वह शेखर ही है। "जिस प्रकार गोदान हिंदी उपन्यास का प्रथम नया मोड सिद्ध हुआ, 'शेखर एक जीवनी' उसका दूसरा मोड है, जिसमे आधुनिकता को स्वीकार किया गया है, उससे पलायन नही किया गया।"[120] इस उपन्यास को सर्वग्राही अह का करूण आलेख, मानने वाले डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार– "शेखर हिन्दी के उन गौरव ग्रन्थो मे से है जो प्रत्येक जागरूक आलोचक का आह्वान कर कहते है, आओ, हमारे सहारे अपनी शक्ति की परीक्षा करो।"[121]

बचपन से युवा होने तक शेखर की कथा उसके व्यक्तित्व और परिवार के अन्त-संघर्ष की कथा है। वस्तुत शेखर का विद्रोही व्यक्तित्व परम्पराबद्ध परिवार के साथ उसके प्रारम्भिक तनावो और टकरावो का ही प्रतिफल है। रूढियो के बधनो मे कसमसाता शेखर सदैव उनसे बचने का प्रयत्न करता है। बचपन की प्रत्येक घटना शेखर के व्यक्तित्व पर अपना प्रभाव छोडती है। घर मे पिता का रोबदाब, मॉ की आज्ञा, बडे–बहन भाइयो के साथ से शिशु शेखर के मानस मे

तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। पूरे परिवार मे शेखर के हृदय मे यदि किसी के लिए कोमल भाव है तो वह अपनी बडी बहन सरस्वती के लिए।

शेखर के प्रारम्भिक जीवन की घटनाए उसके शैशव के कथाचित्रो मे अकित हुई है। उपन्यास होते हुए भी 'शेखर एक जीवनी' के प्रथम भाग मे कथाक्रम की अपेक्षा इन्ही कथाचित्रो की बहुलता है। इन्ही के माध्यम से उभरी है शेखर के बचपन और उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओ की अतर्छवियां। उदाहरणार्थ– "डाक्टर को बुलाने जाने पर खेल मे लगकर भूल जाना और पिता से पिटना।"[122] "भाइयो के साथ तैरते हुए डूबना और निकालने के बाद पिता की डाट"[123] "असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर घर के विदेशी कपडे जलाने पर मार।"[124], "बहिन की शादी की प्रतिक्रिया"[125], "बडे भाई के भाग जाने पर मॉ द्वारा शेखर पर भी अविश्वास किया जाना।"[126], "गीत गोविन्द सुनाने पर पिता द्वारा पीटा जाना। "[127] कुछ ऐसी घटनाए है जो शेखर को समय से पहले प्रौढ बना देती हैं। इन्हीं घटनाओं की प्रतिक्रिया में शेखर के अतर मे अह का प्रस्फुटन होता है। अपनी पारिवारिक परिस्थितियो और अहं के अत सघर्ष से ही शेखर के व्यक्तित्व का विकास हुआ है।

शेखर के इस विकास मे सबसे प्रमुख कारण तो रहा माता–पिता के साथ उसका कुठित सम्बन्ध। शेखर के पिता घर को अनुशासन मे बाधे रखने वाले व्यक्ति है। अवसर आने पर वे क्रुद्ध भी होते है और जब बात हद से आगे बढती है, तो बालक को पीट भी देते हैं। लेकिन पिता के लिए शेखर के मन में एक अलग भाव है, जो मा के लिए नही है। डाटने–फटकारने के बाद पिता क्षमा की बजाय सुलह करना पसद करते है। पिता कभी क्षमा नहीं करते– क्षमा छोटे को किया जाता हैं। जिस प्रकार क्रोध मे वे छोटे को छोटा नही समझते उसी प्रकार क्रोध के उतरने पर भी।. कितनी स्वच्छ, एहसान के भाव से मुक्त कितनी विशाल सर्वव्यापी होती है उनकी उदारता। इसलिए शेखर पिटकर भी उन्हे पूजता है। मॉ जो पीटती नही, पर जो क्षमा देती है अनुग्रह की चक्की मे पीसकर।"[128] शेखर ने अनुभव किया– "पिता आवेश मे आततायी थे, मॉ आवेश की कमी के कारण निर्दय। पिता का क्रोध जब बरस जाता था, तब शेखर जानता था हम फिर सखा हैं, मॉ जब कुछ नही कहती थी, तब उसे लगता था कि वह मीठी आच पर पकाया जा रहा है।"[129] इसलिए शेखर अपने पिता का उपासक था। वस्तुत "मॉ का विश्वास न मिलना उसे सबसे पहले विद्रोह के लिए प्रेरित करता है। शेखर का आदि विद्रोही रूप मा को लेकर है।"[130]

शेखर के व्यक्तित्व मे सहजता आयी शशि की आत्मीयता और स्नेह के कारण। यू तो शशि विद्यावती मौसी की लडकी होने के नाते शेखर की बहन है, पर वह बहन से भी कुछ अधिक कुछ है। "कब से तुम्हे बहिन कहता आया हूँ, पर बहिन जितनी पास होती है उतनी पास तुम नही हो, इसलिए वह जितनी दूर होती है– उतनी दूर भी तुम नही हो।"[131]

शेखर पढाई पूरी भी नही कर पाया था कि उसे काग्रेस के स्वय सेवक के रूप मे जेल जाना पडा। शेखर के जेल मे रहते हुए ही शशि का विवाह रामेश्वर से हो गया। लेकिन शशि का वैवाहिक जीवन सफल नही रहा। शशि अत्यधिक भाव–प्रवण युवती थी जबकि रामेश्वर यथार्थ मे जीने वाला युवक। शशि ने शेखर को अपनी व्यथा जेल मे लिखे पत्र मे व्यक्त की थी– "कभी सोचती हूँ, क्या जीवन ऐसे ही बीतेगा? गाजर–मूली की तरह बढना और उखाड लिये जाना बस? यह वह जीवन नही है जिसकी मैंने कल्पना की थी, पर शायद सबका उदाहरण देखकर मै भी ऐसी बन जाऊ कि अपनी अवस्था का तिरस्कार न कर सकू, और शात संन्तुष्ट, निर्वेद होकर जीवन जी डालू।"[132]

जेल से निकलकर शेखर अपने आपको चारो ओर अपरिचिय की छाया मे घिरा पाता है। एक हल्की सी किरण है शशि की। लेकिन यही परिचय की किरण शशि शेखर के अलग–अलग परिवेश के लिए गलत सिद्ध हुई। शशि और शेखर कभी–कभी मिल लिया करते थे, लेकिन रामेश्वर को यह सब पसद नही और शशि को शेखर के यहॉ रात भर रह जाने पर रामेश्वर ने उसे घर से निकाल दिया। भ्रष्टा कहकर। शशि को घर से निकालते हुए रामेश्वर ने पति के अधिकारो का निर्मम उपयोग किया। शशि को पीटकर शशि को चोट गहरी लगी– शरीर से अधिक मन पर। पति गृह से शशि के निष्कासन के साथ, उपन्यासकार एक पारम्परिक परिवार को तोडता है। लेकिन उसके लिए परिवार के विघटन से अधिक महत्वपूर्ण है, एक व्यक्ति के रूप मे शशि का टूटना। यही अज्ञेय ने विद्यावती मौसी के साथ वार्तालाप के माध्यम से दाम्पत्य सम्बन्धो की पारपरिक धारणाओ का भी उल्लेख किया है। विद्यावती मौसी का कहना है– "मै तो इसी विश्वास मे पली हूँ कि स्त्री का पति ही सब कुछ है।स्त्री भी पति की कुछ है, मै जानती हूँ, पर जिस तरह अधिकार देना सीखा था। उसी तरह अधिकार लेना नही सीखा, और अब बूढी हो गयी, कुछ नया नही सीख सकती।"[133] विद्यावती मौसी का कहना यह नही है कि शशि पति गृह से निष्कासित होकर, फिर पति के पास लौटे "लौटना तो अब नही है पर पति को सर्वस्व मानने के लिए ससुराल लौटना ही एक मात्र उपाय है, यह तो मै नही समझती। जो रास्ता पति ही बन्द कर दे,

उसपर चले बिना भी धर्म निबाहा जा सकता है।"[134] विद्यावती मौसी को चिता तो इस बात की है कि "शशि कहती है अब वह मेरे साथ नही लौटेगी, और चाहे कही जाना हो।"[135] शशि का अपनी मॉ के साथ न जाना पुरानी परम्पराओ के प्रति विद्रोह है। शशि मॉ के साथ तो नही जाती, वह शेखर के साथ रहने लगती है। विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार– "सासारिक सम्बन्धो की सीमा मर्यादाओ मे घुटकर मरने की पीडा तो सभी सहते है किन्तु इन रूढियो से छूटकर अलग जा पडने पर स्वातन्त्र्य की खोज कितने लोग कर पाते है, यह विचारणीय है। शशि का जीवन जिस घुटन को सहकर शेखर की स्निग्ध–शीतल छाया मे आया, वह असाधारण घटना नहीं है। वह तो साधारण से साधारण घटना है, किन्तु इसके पीछे एक ही प्रेरणा है कि किस प्रकार बन्धनो से मुक्ति प्राप्त की जाये? स्वातन्त्रय की खोज मे शशि तो प्रवृत्ति है ही, किन्तु शेखर भी इस खोज मे सतत सलग्न रहा है।"[136] इसलिए तो शेखर और शशि का सम्बन्ध किसी पारम्परिक कोटि मे नही रखा जा सकता है। शशि ने कहा भी है– "शेखर, तुम मुझे बहिन, मॉ भाई बेटा कुछ मत समझो, क्योकि मै अब कुछ नही हूॅ। एक छाया हूॅ। और फिर किसी आतरिक तेज से भरकर और अमूर्त होकर मै– तुम्हारा अपना आप हूॅ जिसे तुम नाम नही दोगे।"[137]

लेकिन यह सखा–सखी सबन्ध भी तो शशि के विघटित दाम्पत्य के घाव को नही भर पाता। पति के हाथो पिटने से उसकी किडनी फट गयी है, और उसका कोई इलाज नही है। शशि को बचाने के लिए ही तो शेखर ने अपनी पुस्तक के सर्वाधिकार बेच दिये और वह क्रान्तिकारी दल का सदस्य बन गया। लेकिन, शशि नही बची, अकेला रह गया है शेखर। आगे के लिए चलता हुआ शशि की छाया को साथ लेकर। "छाया तुम्हे भूलने नही जाता तुम साथ चलो– पहले मौसी के पास फिर आगे, कर्म मे विश्वास नही है, शशि, कर्म मे तुम हो, चिरतन प्रेरणा–चिरतन क्योकि मुक्त और मोक्षदा।"[138] डॉ0 अतुलवीर अरोडा शेखर एक जीवनी मे पारिवारिक सम्बन्धो की निष्पत्ति पर लिखते है कि– "अगर शेखर के बनने मे शशि कही टूट गयी लगती है अथवा शेखर और शशि के सम्बन्धो मे कोई अजनबी दृष्टि उपलब्ध होती है तो यह मानवीय भ्रमजालो की मनोभूमि पर ही है। उसे सामाजिक एव नीतिमर्यादा के रूढि परिप्रेक्ष्यो मे सगत अथवा असगत ठहराना अपने आप मे तत्वहीन है।"[139]

नदी के द्वीप

अज्ञेय द्वारा लिखित 'नदी के द्वीप' मे मुख्य रूप से चार पात्र हैं भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्रमोहन। भुवन डाक्टर है, विज्ञान का प्रोफेसर। रेखा सुशिक्षित और पति द्वारा परित्यक्ता नारी है। गौरा, भुवन की विद्यार्थिनी, सगीत की छात्रा और अध्यापिका है। चन्द्रमोहन पढा लिखा पत्रकार है और अपनी पत्नी से असंतुष्ट होकर उसे साथ रखते हुए भी छोड चुका है। हेमेन्द्र रेखा का पति है जो रेखा को छोड चुका है। या यो कहिए कि जो रेखा को केवल भूख तृप्ति के लिए पाना चाहता था और पा नही सका क्योकि रेखा मे व्यक्तित्व है हेमेन्द्र एक व्यवसायी है। पक्का दुनियादार उसे सौन्दर्य बोध नैतिकता आदि मूल्यो से कुछ लेना देना नही । उसके पशु की भूख के लिए एक नारी चाहिए और वह रेखा को छोडकर एक पराई औरत को पकड लेता है। एक पात्र और है– रेखा का नया पति डाक्टर रमेशचद्र जो बहुत अच्छा डाक्टर और एक अच्छा व्यक्ति है। यह पात्र परोक्ष रूप से ही उपन्यास मे आया है।

इन्ही चार मुख्य और दो गौण पात्रो के बीच कथा की क्षीणधारा भटकती फिरती है। भुवन रेखा और गौरा दोनो के समीप है। ये तीनो पात्र आधुनिक हैं भुवन के सम्पर्क मे आकर रेखा मॉ बनने वाली है। परन्तु पति के डाइवर्स देने से वह क्षतविक्षत हो जाती है और अपना गर्भपात कर लेती हैं भुवन अवाक रह जाता है। दूसरी ओर अपने को भुवन से अलग करने (जबकि पूर्ण समर्पित है दिल से) के लिए एक डाक्टर से शादी कर लेती है और भुवन तथा गौरा का रास्ता साफ कर देती है।

इस उपन्यास मे सुगठित पारिवारिक जीवन का अभाव होने पर भी विवाह पूर्व रोमास मे ही लेखक ने आरोपित स्त्री पुरूष सम्बन्धो की स्थापना की है। इस नवीनता के कारण पूर्णरूप से नदी के द्वीप मे रोचकता आ गई है। भुवन–रेखा के सम्बन्धो मे कई स्थानो पर तथा भुवन गौरा के सम्बन्धो मे विवाह पूर्व रोमास के दर्शन होते है। इन्ही स्थानो पर प्रसगवश लेखक ने आरोपित पति–पत्नी सम्बन्धो की नई उद्‌भावना भी की है। विवाह पश्चात प्रेम को भी अज्ञेय ने विवाह पूर्व रोमास मे गूथ दिया है। भुवन–रेखा प्रेम पति–पत्नी प्रेम मे परिवर्तित होता दृष्टिगत होता है जबकि रेखा अपने विच्छिन्न दाम्पत्य का भार सजोये है। नैनीताल मे दोनो अत्यन्त निकट आ जाते हैं। और ये प्रेमी प्रेमिका न लगकर पति–पत्नी जैसे प्रतीत होते हैं– ''फिर एक साथ ही दोनो ने हाथ बढाकर एक–दूसरे को खीच लिया, प्रगाढ आलिगन मे ले लिया और चूम लिया– एक

सुलगता सम्मोहन, अस्तित्व निरपेक्ष तदाकार चुम्बन।"[140] यही नही, विवाह–पश्चात प्रेम को विवाह पूर्व रोमास मे गूथने के साथ–साथ अज्ञेय जी ने पति –पत्नी प्रेम के सूक्ष्म व गहन तत्वो की भी आरोपित स्त्री–पुरूष सम्बन्धो मे भी उद्भावना की है।

उपन्यास मे एक स्थान पर त्यागमुक्त समर्पण की भावना रेखा–भुवन के सम्बन्धो मे प्राप्त होती है। जो पति–पत्नी जीवन की आधार शिला है। रेखा भुवन से कहती है– "मैं कुछ मागूँगी नही। तुम्हारे जीवन की बाधा नही बनूँगी, सुन्दर से डरो मत, कभी मत डरना– न डर कर ही सुन्दर से सुन्दरता की ओर बढते है।"[141]

नदी के द्वीप मे दूसरा पारिवारिक सम्बन्ध गौरा–भुवन का हैं जो पहले प्रेमी–प्रेमिका एवम बाद मे पति–पत्नी के रूप मे रहने लगते है। भुवन रेखा के गर्भपात की घटना के बाद मानसिक रूप से टूट जाता है रेखा के प्रति उसके मन मे एक उपेक्षा की भावना घर कर लेती है। और वह गौरा के प्रति उन्मुख होता है। गौरा से अपने मन मे रेखा के प्रति स्नेह भाव को व्यक्त कर देता है। उस समय गौरा के कथन मे भुवन के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना व्यक्त होती है– "तो सुनिये शब्द अधूरे है क्योकि उच्चारण मागते है। मै कह नही सकती थी, पर लिख सकती थी किसी तरह कुछ भी करके अपने को उत्सर्ग करके आपके ये घाव भर सकती तो अपने को सफल मानती।" भुवन ने स्तब्ध भाव से कहा– "यह मत कहो गौरा मै और नहीं सुन सकता और अब आगे – हलका ही चलना चाहता हूँ।"[142]

भुवन–गौरा परिवार के अतिरिक्त चन्द्रमाधव– कौशल्या का परिवार है जो उपन्यास मे वर्तमान दाम्पत्य जीवन की विखरन का जीवन्त प्रतीक है। अज्ञेय ने चन्द्रमाधव कौशल्या के पारिवारिक विघटन का कारण चन्द्रमाधव की विकृत वासना वृत्ति को ठहराया है। मध्यमवर्गीय मानदण्डो से उसके पास सब कुछ था, पर दूसरे बच्चे के बाद वह गिरस्ती से टूट गया था। गिरस्ती से तबियत उचट गयी थी, और वह पत्नी और बच्चो को छोड आया था। उसे परिवार का एकरस जीवन, पत्नी का मूक समर्पण तुष्ट नही कर पाया। चन्द्रमाधव वस्तुत सनसनी खोजी है। उसे तीव्र बहता हुआ जीवन चाहिए, जो नही मिलता। उसे मिली है छोटी–छोटी अनुभूतियॉ चुटकिया और चिकोटिया। चन्द्रमाधव अपनी विकृतियो के कारण सुगठित परिवार को छिन्न भिन्न कर देता है। उसकी पत्नी कौशल्या अशिक्षित है जबकि वह शिक्षित है अत दोनो के मानसिक स्तर न मिलने पर जीवन भर सघर्ष चलता है। पति–पत्नी सम्बन्धो की पवित्रता मे उसकी पूर्ण

एक ढोंग बतलाता है। इसलिए वह अपने दाम्पत्य जीवन मे विघटन ले आता है और अपनी पत्नी से विलग होकर अमर्यादित, उच्श्रृंखल, उन्मुक्त, प्रेमरस का पान कर उच्श्रृखल नारी चित्रलेखा से विवाह कर लेता है। यहाँ प्राचीनता मे नवीनता का समावेश दृष्टिगत होता है। चन्द्रमाधव कौशल्या के विघटित सम्बन्धो का एक उदाहरण– "स्त्री साहस करके खाने को पूछती थी, तो वह अन्यमनस्क सा इनकार कर देता था। उसके स्वर मे जो प्राणहीन विनय होता था उसे लक्ष्य करके पत्नी मानो बुझ जाती थी और आग्रह नही करती थी, हॉ जब वह खाट पर लेट जाता, तब कभी वह जाकर उसके जूते मोजे खोल देती। कभी–कभी हिम्मत करके गले से टाई भी उतार लेती पाजामा उसके पास लाकर रख देती और धीरे से कहती, कपडे तो बदल लेते।"[143] कौशल्या एक पूर्ण समर्पिता भारतीय पत्नी की प्रतीक है जबकि चन्द्रमाधव पश्चिमी सस्कृति एव सभ्यता का पोषक व्यक्ति है जिसे न अपनी पत्नी से प्यार है न अपनी भारतीय सस्कृति से, जिसमे एक निष्ठ पत्नी व्रत धर्म का बडा महत्व है। डॉ0 सुरेश सिन्हा के अनुसार – "चन्द्रमाधव अपने परिवार से अलग रहता है, क्योकि उसे अपनी पत्नी का प्रेमिकाओ जैसा उष्णालिगन नही प्राप्त होता, केवल मर्यादित समर्पण ही मिलता है।"[144] सुगठित और पारिवारिक सम्बन्ध समाज की सही व सुदृढ नीव है। इसके अभाव मे सुगठित समाज की कल्पना दु स्वप्न मात्र है। सगठित परिवार का प्रभाव सन्तान पर अप्रत्यक्ष व परोक्ष दोनो ही रूपो मे पडता है। एक सुखी परिवार अपनी सन्तान को स्वस्थ वातावरण देकर स्वस्थ व उज्जवल बनाते है। इसके विपरीत विघटित परिवार के फलस्वरूप सतान असुरक्षा का भाव मन मे लिये हुए कलहपूर्ण वातावरण मे पलकर समाज के लिये अभिशाप बन जाते है। एक स्थान पर कौशल्या कहती है– "पहले तो एक बार उसने बेटी को भेजा, कि बाबू जी के जूते खोल दे, पर फिर उसकी समझ मे आ गया था, कि बच्चो को देखकर उसे और भी झल्लाहट होती है। जबसे वह शाम को जहॉ तक हो सके, बच्चो को उसकी नजर से दूर रखती थी।"[145] ऐसे धूमिल वातावरण मे जहॉ सन्तान पिता के स्नेह से वचित हो तो उस सन्तान का कल्याण असम्भव ही होता है। इस प्रकार विघटित पारिवारिक सम्बन्धो के कारण समाज की श्रृखला का तारतम्य टूटता दृष्टिगत होता है और सतान के विकृत व अपराधी बनने की पूरी सभावना रहती है।

'नदी के द्वीप' के अन्त मे अज्ञेय जी ने पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से भुवन रेखा के सम्बन्ध द्वारा एक नवीन प्रश्न उपस्थित किया है। रेखा एक अन्य पुरूष डॉ0 रमेश चन्द्र से शादी का निश्चय करके भी भुवन के प्रति पूर्ण समर्पित

है, पूर्ण आस्थावान है। डॉ0 रमेश से उसका विवाह एक सामाजिक बन्धन मात्र है, आत्मा का गठबधन 'भुवन' के साथ जो कभी हुआ था, वह आत्मा के सदृश ही चिरस्थायी है– "यह क्या है भुवन? वरसो मै श्रीमती हेमेन्द्र कहलाई, उसके क्या अर्थ है? कुछ अर्थ तो होगे, अपने से कहती हूँ पर क्या यह नही सोच पाती मैं इतना ही सोच पाती हूँ, कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है कि मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी ही हुई हूँ और किसी की कभी नही न कभी हो सकूँगी ये पार्थिवता के बंधन, ये आकार, ये सूने ककाल महाराज, मेरे त्रिभुवन के महाराज, किस सास मे तुम आये मेरे हृदय पुर मे और कैसे तुम चले गये, मेरा गर्व तोडकर, भूमि मे लुटा कर पर नही भुवन, तोडकर नही, तुम्ही मेरे गर्व हो, तुम्हारे ही स्पर्श से 'सकल मम देह–मन वीणा सम बाजे"[146] इससे स्पष्ट है कि परिस्थिति की विवशता के कारण नारी शरीर से अगर विवाह करके किसी अन्य की भी हो जाये तो भी मन आत्मा अपने पूर्व प्रेमी को समर्पित किये रह सकती है। शोध का विषय यह है कि पति पत्नी पर इसका क्या प्रभाव पडता है? अज्ञेय जी ने रेखा–रमेश के वैवाहिक सम्बन्धो द्वारा अच्छे भविष्य की शुभ कामना की है। उपन्यास के अन्त मे भुवन के यह पूछने पर कि रेखा कैसी गुजर हो रही है, रेखा डॉ0 रमेश की उदारता बताकर प्रशसा ही करती है। रेखा ने भुवन के प्रति पूर्ण समर्पिता होते हुए भी गौरा से उसके सम्बन्धो का ध्यान रखते हुए उसके सुखद दाम्पत्य एव उज्जवल भविष्य की कल्पना की है। साथ ही डॉ0 रमेश से विवाह के बन्धन मे बधकर सामाजिक प्रतिष्ठा को महत्व दिया है क्योकि पूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा तभी सम्भव है जब प्रेमी और प्रेमिका पति–पत्नी के सामाजिक बन्धन मे बधे हो क्योकि समाज मे प्रतिष्ठा इसी पवित्र बधन की वजह से मिलती है, हृदय की आत्मीयता कितनी भी हो एव रोमास की गहराई कितनी भी हो वह मान सामाजिक स्वीकृति के बिना नही मिल सकता।

रेखा का रमेश चंद्र से विवाह और गौरा से बधने की भुवन की आकुलता 'नदी के द्वीप' की ही नही, परिवार, बाह्य नर–नारी सम्बन्धों की भी सीमा है। पारिवारिक सदर्भों की दृष्टि से इसमे रेखा और चद्रमाधव के परिवारो के विखडन की भावात्मक निष्पत्तियो की इन दोनो व्यक्ति–चरित्रो के माध्यम से सवेदनशील प्रस्तुति हुई है। अज्ञेय के शब्दो मे– "रेखा 'नदी के द्वीप' का सबसे परिपक्व पात्र है वही अपनी भावनाओ के प्रति सबसे अधिक ईमानदार है और अपने प्रति सबसे निर्भय। एक दूसरी तरह की ईमानदारी चन्द्रमाधव मे भी है, लेकिन वह दस्यु की ईमानदारी है – जो नोच खचोट कर पा लेना चाहता है, किन्तु मूल्य चुकाने को तैयार नही है।"[147] अपने इस स्वभाव के अनुकूल

चन्द्रमाधव ने भी अपना मार्ग खोज लिया है। उसने अपनी पहली पत्नी को त्याग कर बम्बई जाकर फिल्म अभिनेत्री मिस चन्द्रलेखा से विवाह कर लिया है। इस प्रकार इसमे परिवार प्रमुख न होकर प्रेम सम्बन्धो की प्रमुखता है।

गुनाहों का देवता

'गुनाहो का देवता' (1946) धर्मवीर भारती द्वारा लिखा गया मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। सुधा और चन्द्रकपूर का प्रेम इस उपन्यास की मुख्य कथा है। सुधा के पिता इस विवाह को अस्वीकार देते है। सुधा का विवाह चन्द्रकपूर के मित्र कैलाश से हो जाता है। यही से चन्द्रकपूर के जीवन मे निराशा, घुटन जन्म ले लेती है और वह कुठित हो जाता है। सुधा कैलाश का दाम्पत्य जीवन भी सुखी नही रह पाता है। सुधा के सम्मुख सास्कृतिक मूल्य हावी रहते है। वह पतिव्रत धर्म निभाना चाहती है परन्तु चन्द्र के समक्ष वह डगमगाने लगती है यह स्थिति कैलाश महसूस करता है क्योकि सुधा से उसे शरीर के अलावा और कुछ प्राप्त नही हो सका है वहीं दूसरी ओर चन्द्र के व्यक्तित्व मे उथलापन आ गया है।

'गुनाहो का देवता' मे एक दूसरा परिवार पम्मी का है उसकी अपने पति से पटरी नही खाती है। वह कुआरे जीवन मे पति तथा विवाहित जीवन मे प्रेमी की भूखी रहती है। चन्द्रकपूर को स्वेच्छा से शरीर सौप देती है। चन्द्र भी अपने सरोकारो को भूलकर पम्मी का भोग करता है अन्त में सुधा का चन्द्र कपूर द्वारा प्रताडित करना साथ ही सुधा की मृत्यु एवं उसकी बहन विनती के साथ मौन विवाह की स्वीकृति से उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है।

'गुनाहो का देवता' मे पारिवारिक विघटन का धरातल विभिन्न कोणो मे दृष्टिगत होता है– इसकी अभिव्यक्ति द्वैध व्यक्तित्व से परिपूर्ण मनोविश्लेषण प्रधान अवतरणो से पूर्ण पात्रो मे मिलती हैं, कुण्ठा प्रधान पात्रों वाला यह उपन्यास मध्यवर्ग की सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक एव सास्कृतिक तथा नैतिक समस्याओ को भी लेकर सामने आया है।

वैयक्तिक धरातल पर उपन्यास के सभी पात्रो मे मानसिक द्वन्द्व विद्यमान है। चन्द्रकपूर, कैलाश, सुधा, विनती, प्रमिला और गैसू सभी शिक्षित मध्यवर्ग के पात्र है जिसके माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग के प्रेम, विवाह तथा सेक्स का वर्णन किया है। परन्तु इसके बाद भी प्रमुख समस्या पात्रो के द्वैध व्यक्तित्व की कुण्ठा तथा मनोद्वन्द्व की प्रवृत्ति है, जो सास्कृतिक परिवेश में उभरकर सामने आती है। जीवन का यथार्थ व्यक्ति को सभी नैतिक एव सास्कृतिक मूल्य नकारने

पर विवश कर देता है, जबकि उसकी बुद्धि एव तर्क उसे आदर्श के पथ पर टिके रहने देना चाहते है यही द्वन्द्व परिवारो के विघटन का बीज साबित होता है।

चन्द्र और सुधा का प्रेम इस उपन्यास की केन्द्रस्थ समस्या है। सुधा का विवाह चन्द्र के मित्र कैलाश से हो जाता है। इसके साथ ही चन्द्र के जीवन मे निराशा, घुटन जन्म ले लेती है तथा उसमे कुण्ठा बढने लगती है। सुधा कैलाश पति–पत्नी के रूप मे सुखी नही रह पाते हैं। सुधा के सम्मुख दाम्पत्य धर्म, नारीधर्म, सांस्कृतिक मूल्य का प्रश्न है। वह आदर्शमयी भारतीय ललना है जो एक पति व्रत धर्म निभाना चाहती है किन्तु चन्द्र के सम्मुख उसका पति–ब्रत डगमगाने लगता है, वह भारी मनोद्वन्द्व की अनुभूति करती है। उसकी इस मन स्थिति को उसका पति कैलाश भलीभाति जानता है और इसलिए वह चन्द्र से शिकायत रूप मे कहता है– "ये मेरे व्यक्तित्व को ग्रहण भी नही कर पाई। वैसे मेरी शारीरिक प्यास को चाहे इन्होंने समर्पण किया, वह भी एक वेमन से, उससे तन की प्यास भले बुझ जाती हो कपूर, लेकिन मन तो प्यासा ही रहता है ये मेरी जायज नाजायज हर इच्छा के सामने झुक जाती है, लेकिन इनके दिल मे मेरे लिए कोई जगह नही, वह जो एक पत्नी के मन मे होती है।"[148] कैलाश के ये शब्द सुधा के चरित्र, व्यक्तित्व और स्त्री–पुरूष सम्बन्धो के सास्कृतिक मूल्यो पर एक प्रश्न–चिन्ह लगाते है– आखिर पत्नी क्या है? विवाहेत्तर प्रेम क्यो? सुधा के द्वैध व्यक्तित्व की वैधानिकता कैसी? फिर दाम्पत्य के विघटन की भूमिका क्यों कर बची। मात्र सुधा की घुटन, अन्तर्द्वन्द्व, मौन पीडक बन सब सहन करने की क्षमता और अन्तत चन्द्र को सुखी देखने की लालसा मे आत्मोत्सर्ग– यह सब सास्कृतिक मूल्य हैं। भारतीय पारिवारिक जीवन मे पति–पत्नी की ओर से त्याग और बलिदान के फलस्वरूप ही सुधा के पिता डॉ0 शुक्ला अर्न्जातीय विवाह को स्वीकारते है।

'गुनाहो का देवता' मे दूसरा परिवार पम्मी और उसके पति का है। पम्मी की अपने पति से नही पटती और वह पति पत्नी की पवित्रता को भग कर वासना की अग्नि मे धधकने लगती है– जिससे पति–पत्नी मे अलगाव का बीज पैदा होता है। डॉ0 सुषमा धवन के अनुसार– "पम्मी एक विवाहित लडकी है जो अपने पति से अलग रहती है। उसका दृष्टि कोण अपना है। वह कुॅआरे जीवन मे पति और विवाहित जीवन मे प्रेमी की भूखी है।"[149] भला इस प्रकार के नारी पात्र दाम्पत्य–जीवन की पवित्रता के संरक्षक कैसे बन सकते है। ये तो भारतीय सास्कृतिक मूल्यो का अवमूल्यन करने वाले है। पति और पत्नी के मध्य जो नैतिक, सास्कृतिक, सामाजिक सामजस्य रहता है, उसे दूर कर चन्द्र को मुक्त रूप

से शरीर अर्पण करने वाली पम्मी नारी जाति के लिए एक कलक ही तो है जिसके कारण पति–पत्नी के सम्बन्धो की सास्कृतिक प्रतिभा अस्त व्यस्त हो गई है। मुख्य रूप से इन दोनो परिवारो के मध्य विषमता यह है कि सुधा का अनमेल विवाह हुआ है जो आन्तरिक मन से उसे स्वीकार नही है इसके साथ ही पम्मी असाधारण मनोविकार ग्रस्त है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि 'गुनाहो का देवता' उपन्यास मे पारिवारिक विघटन का स्वरूप सास्कृतिक मूल्यो को लेकर है। जहॉ पात्र अपने परम्परा एव सस्कृति की वर्जनाओ में रहते हुए मन ही मन घुटते विखरते रहते हैं।

ऐतिहासिक यथार्थ वादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन

ऐतिहासिक यथार्थवादी उपन्यासकारो ने विभिन्न व्यतीतकालो के आधार पर पृथक–पृथक कथाधारो को स्वीकार करते हुए उपन्यासो की रचना की है, लेकिन एक सत्य जो उभरकर आया है वह यह कि इतिहास का कोई भी काल अथवा व्यक्ति वर्ण्य विषय बनाया गया हो, जिसमे लेखक अपनी दृष्टि का आग्रह नही छोड सका है। "राहुल, यशपाल और रागेयराघव की ऐतिहासिक कृतियो मे भी यदि मार्क्सवादी विवेचन है तो हजारीप्रसाद जी और आनद प्रकाश जैन की दृष्टि आधुनिक है, जबकि अमृतलाल नागर ने अपने यथार्थवादी स्वरूप को ऐतिहासिक रचना मे भी नही त्यागा और चतुरसेन शास्त्री, वृन्दाबनलाल वर्मा सत्यकेतु विद्यालकार तथा इकबाल बहादुर देवसरे के ऐतिहासिक उपन्यास उनके रचयिताओ की रचनाए आदर्शवादी मानवतावादी दृष्टि को ही उजागर करती है।"[150]

दिव्या

इसी ऐतिहासिक यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में यशपाल के उपन्यास को 'दिव्या' को रेखाकित किया जा सकता है। पारिवारिक विघटन की त्रासदी झेलती दिव्या एक ऐसी नारी है जो सामती सस्कारो का अन्तिम समय तक दश झेलती रहती है इसके साथ ही यशपाल ने "समाज की मूल्यगत और सम्बन्धगत विसंगतियो का पर्दाफाश कर तथा व्यक्ति और समाज के बहुमुखी संघर्षो का चित्रण करअपने समाजवादी दृष्टि कोण का तो परिचय दिया ही है, साथ ही साथ मारिश जैसे पात्र की अवतारणा करके स्थान–स्थान पर उसके द्वारा भौतिक विचार व्यक्त कराकर तथा उसी मे सारे सघर्ष की समाहित करके उसे प्रत्यक्ष रूप भी

दिया है।''[151] इतिहास के इस यथार्थवादी जीवन दृष्टि, गतिशील व्यक्तियो तथा परिवेश सम्पृक्त यशपाल के विचारो, भावो, सम्बन्धो की पहचान तथा अजनबीपन के कारण 'दिव्या' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

'दिव्या' (ईसापूर्व दूसरी शती) बौद्धकालीन परिवेश मे लिखे गये उपन्यास मे यशपाल ने नारी और पुरूष के सम्बन्ध को एक प्रश्न के रूप मे उभारा है। 'दिव्या' महापडित धर्मस्थ देवशर्मा की प्रपौत्री है। दिव्या के माता–पिता की उसके बचपन मे ही मृत्यु हो गयी थी अत दिव्या का पालन पोषण 'धाता' ने किया। सागल के वार्षिक 'मधुपर्व उत्सव' में दिव्या को सरस्वती पुत्री और पृथुसेन को सर्वश्रेष्ठ खडगधारी की उपाधि प्राप्त होती है। पृथुसेन श्रेष्ठी प्रेस्थ का पुत्र है, प्रेस्थ दास वंश से सबधित है। अत सागल के आभिजात कुलो मे उसका सम्मान नही होता। अभिजात्य युवक पृथुसेन का भी अपमान कर बैठते हैं। पृथुसेन का दास वश मे जन्म लेना ही अपराध है, अन्यथा वह अभिजात्य युवको से कम नही। लेकिन दिव्या अभिजात कुल से सम्ब्द्ध पृथुसेन को प्रेमकर बैठती है। यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से दिव्या और पृथुसेन का प्रेम प्रसंग चलता है। दिव्या ने विवाह से पहले ही पृथुसेन को समर्पण कर दिया है और सागल पर घिर आये युद्ध मे पृथुसेन चला गया है। पृथुसेन के पीछे अपने शरीर मे पृथुसेन की उपस्थिति या यो कहा जाय कि विवाह से पहले ही गर्भ की स्थिति दिव्या को बडा दयनीय बना देती है।

पृथुसेन के युद्ध के मोरचे पर जाने के कारण वह सन्तोष धारण किये रहती है। घायल पृथुसेन लौटता है तो उसे यह भ्राति ग्रस लेती है कि दिव्या उसकी उपेक्षा कर रही है और वह सीरो से प्रेम करने लगता है। दिव्या असहाय नारी चिरन्तन काल की पीडित नारी चारो ओर से निराश होकर दासी को लेकर घर से निकल पडती है और फिर बेसहारा होकर यहाँ–वहाँ तिनके सी बहती फिरती है तथा सामाजिक सम्बन्धो और विसगतियो के अनेक तटो को छूती हुई उन्हे प्रकाशित करती रहती है। एक बूढी कुटनी की आत्मीयता उसे एक बालिका विक्रेता के हाथ बेच देती है। फिर वह मथुरा के एक ब्राह्मण के यहाँ बिकती है, जहाँ वह भयकर ताडनाओ से गुजरती है वहाँ से भागकर महास्थविर से भिक्षुणी बनने का निवेदन करती है और ठुकराई जाती है। आत्म हत्या करने का प्रयत्न करती है परन्तु शूरसेन प्रदेश की राजनर्तकी देवी रत्नप्रभा द्वारा बचा ली जाती है। रत्न प्रभा उसे अशुमाला नाम देती है और बडे प्यार से रखती है। अशुमाला के रूप मे दिव्या को बहुत ख्याति मिलती है। लेकिन वह सयम और उदासीनता को धारण किये केवल नर्तकी बनी रहती है। अन्त मे वह देवी मल्लिका से भेट होने पर मद्र लौटती है और मल्लिका उसे अपनी उत्तराधिकारिणी बनाने की

घोषणा करती है किन्तु ब्राह्मण वश विरोध करता है– 'मद्र मे द्विज कन्या वेश्या के आसन पर बैठकर उनके लिए भाग्य बनकर वर्णाश्रम को अपमानित नही कर सकती।' दिव्या एक बार फिर वहाँ से निकलती है। पृथूसेन सत्वहीन होकर भिक्षु हो जाता है तथा वह इस समय दिव्या को भिक्षुणी बनने का उपदेश देने आता है। रूद्रधीर उसे कुलबधू बनाना चाहता है। दिव्या दोनो को ठुकरा देती है और कलाकार मारिश को स्वीकार करती है जो किसी सासारिक या दैवी जीवन की उच्चता का प्रलोभन न देकर सहज जीवन जीने का पक्षपाती है।

सागल के वार्षिक 'मधु पर्व उत्सव' मे दिव्या को 'सरस्वती पुत्री' और पृथुसेन को 'सर्वश्रेष्ठ खडगधारी' की उपाधि प्राप्ति होती है। पृथुसेन श्रेष्ठी प्रेस्थ का पुत्र है, प्रेस्थ– दासवश से सम्बन्धित है। अत सागल के अभिजात कुलो मे उसका सम्मान नही होता। आभिजात्य युवक पृथुसेन का भी अपमान कर बैठते हैं। पृथुसेन का दास वश मे जन्म लेना ही अपराध है, अन्यथा वह आभिजात्य युवको से कम नही। इसलिए वह सोचता है– "जन्म का अपराध? यदि वह अपराध है तो उसका मार्जन किस प्रकार सभव है? शस्त्र की शक्ति, धन की शक्ति विद्या की शक्ति, कोई शक्ति जन्म को परिवर्तित नही कर सकती। कोई शक्ति जन्म के अपराध का मार्जन नही कर सकती। जन्म के अन्याय का प्रतिकार क्या मनुष्य दैव से ले।"[152] यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से दिव्या और पृथुसेन के प्रणय प्रसग के माध्यम से यशपाल ने वर्गहीनता को मान्यता दी है। साथ ही स्वच्छ प्रेम में नैतिकता का प्रश्न चिन्ह भी लगाया है। दिव्या ने विवाह से पहले ही पृथुसेन को समर्पण कर दिया है और सागल पर घिर आये युद्ध मे पृथुसेन चला गया है। पृथुसेन के पीछे "अपने शरीर मे पृथुसेन की उपस्थिति अनुभव कर गर्व और उल्लास से गदगद होकर दिव्या का हृदय उछलने लगता है। पूर्णता की सीमा पर पहुॅच कर वह उल्लास व्याकुलता मे परिवर्तित हो जाता है कि अब आर्य का तुरत लौट आना आवश्यक है। उनका अधिक विलम्ब से लौटना चिता का कारण हो जायेगा।"[153] विवाह से पहले ही गर्भ की स्थिति दिव्या को विनाश के कगार पर पहुॅचा देती है और वह अपने मूल परिवार से कट जाती है।

दूसरी ओर युद्ध मे विजय श्री प्राप्त करके लौटा हुआ घायल पृथुसेन दिव्या से नही मिल पाता, क्योकि पृथुसेन का पिता प्रेस्थ उसका विवाह गणपति मिथोद्रस की पुत्री सीरो से करना चाहता है प्रेस्थ कहता है "विवाह को जीवन मे सामर्थ्य और सफलता का साधन बनाओ। सामर्थ्य से ही मनुष्य भोग और कामना पूर्ण करने का अधिकारी होता है।"[154] दिव्या और पृथुसेन के विफल प्रणय और पृथुसेन के सीरो से विवाह के माध्यम से यशपाल ने पारिवारिक विघटन के लिए

भौतिक प्रलोभनो को उत्तरदायी ठहराया है। अपने पिता प्रेस्थ के आग्रह पर सीरो से विवाह करके पृथुसेन भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि विवाह और परिवार का आधार निश्छल प्रेम, प्रेमी–प्रेमिका का सहज उत्सर्ग न होकर 'सामर्थ्य और सफलता के लौकिक आकर्षण है।' दूसरे शब्दो मे परिवार न तो प्रवृत्ति जन्य है और न उसका भव्य प्रासाद स्नेह, समर्पण और आत्मीयता के उनमूल्यो पर टिका हुआ है। जिनकी यशगाथा विवाह और परिवार के समर्थक प्राय गाते रहते है। वस्तुत निश्चल प्रेम तो दिव्या को एक के बाद दूसरे ज्वलत प्रश्नो के बीच असहाय छोड देता है।

दिव्या परिवार मे आर्ये मोक्षा के पुत्र – जन्म पर उत्सव को देखकर सोचती है, आर्ये मोक्षा का गर्भ परिवार के लिए उल्लास का कारण है और मेरा गर्भ कलक का। क्योकि मेरे गर्भ का पिता नही है। "अपने गर्भ को मै उसके पिता के पास ले जाऊगी। क्या प्रेस्थ प्रासाद मे मेरा गर्भ इसी प्रकार विपत्ति और कलक का कारण होता ? मेरा स्थान वही है।"[155] यही सोचकर दिव्या प्रेस्थ के प्रासाद मे गयी भी है, पर वह प्रासाद के द्वार से ही लौटा दी गयी। ऐसी अवस्था मे दिव्या अपने परिवार मे लौटकर भी नही आना चाहती दिव्या का कहना है– "मेरे पति ने मेरी वचना की है। अब प्रपितामह और पति किसी के यहॉ मेरे लिए स्थान नही है। कह नही सकती कहा जाऊगी।"[156] दूसरे नगर मे पहुॅचकर दिव्या एक वृद्धा के चक्कर मे फसकर दास के व्यापारी प्रतूल के हाथों बेच दी गयी है । अभिजात कुल की लडकी कुचक्र मे फसकर दासी बन जाती है। एक दूसरे को बिकती हुई दिव्या अतत पुरोहित चक्रधर के यहॉ पहुची है। काम मिला है– नवजात शिशु को दूध पिलाने का क्योकि वह स्वय भी एक पुत्र की मा है। अपने पुत्र का अधिकार छिनते हुए देखकर दुखी दिव्या भागकर बौद्ध बिहार मे शरण लेने पहुची है। लेकिन शरण उसे वहॉ भी नही मिलती क्योकि वह बिकी हुई दासी है। स्थविर का कथन 'वेश्या' स्वतन्त्रनारी है देवी।"[157] यह कथन उसके मस्तिष्क मे घूमता रहता है और वह पुत्र सहित यमुना मे कूद जाती है।दैव नियति ने उसे रत्ना के द्वारा बचा लिया परन्तु इस हादसा मे उसका पुत्र मारा गया। सूर्यसेन की राजनर्तकी देवी रत्नप्रभा के यहॉ आकर दिव्या को नया नाम मिलता है– अशुमाला। सागल मे राजनर्तकी मल्लिका से सीखी हुई नृत्य कला यहॉ उसके काम आयी है, "लेकिन अशुमाला की मुस्कान और लास्य केवल कला का कर्तव्य मात्र था। समाज से पृथक होते ही वह निस्सग और तटस्थ हो जाती है जैसे जल से बाहर निकल आने पर हस शावक अपने पर झाडकर जल की बूद से रहित हो जाता है। उसका मन दारूण और वीभत्स स्मृतियो के दुर्मेद्य आवरण मे वेष्टित

था। उसके मन मे शाकुल का वियोग व्याप्त था।''[158] रत्न प्रभा के यहाँ आकर ही दिव्या का साक्षात्कार पूर्व परिचित मारिश से होता है। मारिश कलाकर है और हाथ ही नास्तिक भी। उसका नास्तिक होना सागल–वासियो की दृष्टि मे एक भारी अवगुण बन गया है। मारिश से महापडित धर्मस्थ के निधन का समाचार सुनकर दिव्या सोचती है– ''सम्पन्न परिवार, अनुरक्त पति, सुन्दर सतान? वह सब पाया और नही रहा और उस सबके परिणाम मे पाया दु ख।''[159] चूँकि दिव्या ने तन–मन से पृथुसेन को पति मान लिया है, अत विवाहपूर्व पति भावना ही उसे (दिव्या) हमेशा सालती रही है।

भाग्यचक्र से दिव्या पुन सागल लौटी है मल्लिका की उत्तराधिकारिणी के रूप मे। पर सागल का अभिजात समाज विप्रकन्या को वेश्या के स्थान पर नही बैठने देता, क्योकि वर्णाश्रम की व्यवस्था त्रिकाल सत्य है और ''मद्र मे द्विजकन्या वेश्या के आसन पर बैठकर जन के लिए भोग्य बनकर वर्णाश्रम को अपमानित नही कर सकती।''[160] दिव्या फिर एक बार निराश्रिता हो गई है। पर इस बार उसे आराम देने वालो की कमी नही। आचार्य रूद्रधीर दिव्या को पत्नी बनाने को उत्सुक है, पर दिव्या को यह स्वीकार नही । बौद्ध भिक्षु के रूप मे पृथुसेन भी प्रताडित नारी को तथागत की शरण मे ग्रहण करने के लिए आया है, परन्तु दिव्या का स्पष्ट मत है 'नारी का धर्म निर्माण नही सृष्टि' है। इसके पश्चात मारिश आता है दिव्या को अपनाने के लिए। मारिश कहता है कि वह कुछ और दे या न दे, पर ''सतति के रूप मे मानव की अमरता दे सकता है। और भूमि पर बैठी दिव्या अनेक क्षण विचार में ग्रीवा झुकाये रही। फिर उसने सहसा भित्ति का आश्रय छोड दोनो बाहु फैला दिये, उसका स्वर आर्द्र हो गया– आश्रय दो आर्य।''[161] मारिश के साथ दिव्या का जाना इस बात का प्रतीक है कि मानव की परम्परा और परिवार की अक्षुणता सतान प्राप्ति द्वारा सभव है।

सीरो–पृथुसेन के वैवाहिक जीवन के वर्णन के माध्यम से भी यशपाल ने सामाजिक सुविधाओ से परिपूर्ण और भौतिक आकर्षणो से बधे शक्ति सम्पन्न लोगो के परिवार मे पलने वाले खोखलेपन मूल्यहीनता और चरित्र शून्यता का चित्रण किया है। सीरो मद्र के परमभट्टारक गणपति की पौत्री गणपरिषद के सवाहक की पुत्रवधू और महापराक्रमी सेनापति की अर्धांगिनी थी। वह सबसे अधिक काम्य भोगो को भोगती और सागल के सबसे अधिक सुन्दर युवा पुरूषो से आदर की आशा करती। उसके रागरजित होठो को मदिरा मे ही घुलते देखा गया। ''स्पर्श सुख उसके लिए युवा पुरूषो की बलिष्ट भुजाओ और लोमपूर्ण कठोर वक्षस्थल के अतिरिक्त न था।''[162] इस पर टिप्पडी करते हुए डॉ0 रामदरश

मिश्र लिखते हैं– "सामती प्रथा मे विसगतियो की एक लम्बी परम्परा होती है। स्वय दास प्रेस्थ पैसे कमाकर कुलीनो की पॉति मे बैठना चाहते है और उन्ही की तरह आचरण करना चाहते है, वे अपने वर्ग से छूटकर उसी के मूल्यो, सम्बन्धो और हितो के शत्रु बन जाते है। गरीब अपने से कम गरीब का शोषण करता है। बडापन शौर्य और गुण पर आधारित नही होता, कुलीनता पर होता है। धर्म भी शक्तिशालियो की रक्षा की ढाल बन जाता है, अशक्तो को ठुकरा देता है।"[163]

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि दिव्या और सीरो नर–नारी सबन्धो के दो विपरीत ध्रुव है दिव्या एक खोज यात्रा है, अर्थ, भौतिक प्रलोभनो और जर्जर रूढियो के जालो से आवेष्टित नर–नारी सम्बन्धो को पारम्परिक सौहार्द, विश्वास और निश्चल प्रेम के धरातल पर प्रतिष्ठापित करने की दिशा मे। इस खोज–यात्रा मे दिव्या एक के बाद एक सम्बन्धो के मुखौटे उलटती जाती है। पुरूष नियन्त्रित समाज के पाखड, छल और प्रपच के। लेकिन सीरो ? वह है नर–नारी सम्बन्धो, परिवार का पारपरिक ध्रुव। उच्च वर्ग के परिवारो मे लोक–मर्यादा की आड मे चलता विश्वास, उच्छ्रृखलता और अमर्यादित आचरण। दिव्या और सीरो की सृष्टि करके यशपाल ने विवाह और पारिवारिक सम्बन्धो के प्रति अपनी शकाओ को ऐतिहासिक कल्पना के परिवेश मे उभारने का सफल प्रयास किया है। दिव्या का मूल्याकन करते हुए डॉ0 रामदरश मिश्र लिखते है कि "दिव्या इतिहास का विश्लेषण है इसलिए ईसापूर्व दूसरी शती की कथा आज भी हमसे कही न कही जुडती हुई अनुभव होती है। सामाजिक सम्बन्धो, परिस्थितियो, मूल्यो तथा व्यक्ति की नियति और जिजीविषा का जो स्वरूप इतिहास के इस अंचल मे उभरा है वह समय की लम्बी दूरिया पार करता हुआ हमे छू लेता है, हमारी निकट पहचान का मालूम पडता हैं। . . . उसका मूल उद्देश्य है सामाजिक सम्बन्धो, मूल्यो आदि की विसगतियो और व्यक्ति की यातना, सघर्ष तथा गति का जीवत रूप प्रस्तुत करना।"[164]

सन्दर्भ

1 हिन्दी उपन्यास साहित्य मे दाम्पत्य चित्रण– डॉ0 उर्मिला भटनागर पृ0 74

2 इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका वालुम 19, पृ0 10

3 एच0 लेविन– कम्प्रेटिव लिटरेचर, पृ0 284

4 लिटरेचर एण्ड रियेलिटी– हावर्ड फास्ट, पृ0 17

5 कथाकृती मोहन राकेश–ओम प्रभाकर, पृ0 5
6 हिन्दी उपन्यास · एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 25
7 हिन्दी कथासाहित्य और विकास परपाठको की रूचि का प्रभाव–डॉ0 गोपाल राय, पृ0 221
8 परीक्षा गुरू पृ0, 96–97
9 हिन्दी उपन्यास यात्रा गाथा, प्रो0 शशि भूषण सिन्हा, पृ0 51
10 परीक्षागुरू, पृ0 47
11 परीक्षागुरू, पृ0 48
12. परीक्षागुरू, पृ0 49
13 परीक्षागुरू, पृ0 49
14. परीक्षागुरू, पृ0 7
15. परीक्षागुरू, पृ010
16 परीक्षागुरू, पृ0 17–23
17 परीक्षागुरू, पृ0 42–46
18 परीक्षागुरू, पृ0 51–55
19 सेवासदन, पृ0 6
20 सेवासदन, पृ0 7
21. सेवासदन, पृ0 40
22 प्रेमचद के साहित्य मे व्यक्ति और समाज, रक्षा पुरी, पृ0 173
23 सेवासदन, पृ0 18
24 सेवासदन, पृ0 18
25 सेवासदन, पृ0 34
26 प्रेमचद औन उनका युग – डॉ रामविलास वर्मा, पृ0 35
27 सेवासदन, पृ0 38
28 प्रेमचद आलोचनात्मक परिचय–डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 123
29 प्रेमचद और उनका युग–डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 38
30 प्रेमचन्द आलोचनात्मक परिचय–डॉ0 राम विलास शर्मा, पृ0 123
31 निर्मला, पृ0 39
32 प्रेमचद आलोचनात्मक परिचय–डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 118
33 निर्मला, पृ0 89
34 निर्मला, पृ0 39
35 निर्मला, पृ0 187

36 निर्मला, पृ0 187

37 निर्मला, पृ0 188

38 भूले बिसरे चित्र, पृ0 16

39 भूले बिसरे चित्र, पृ0 16

40 भूले बिसरे चित्र, पृ0 74

41 उपन्यासकार भगवती चरण वर्मा–डॉ0 ब्रज नारायण सिह, पृ045

42 भूले बिसरे चित्र, पृ0 115

43 भूले बिसरे चित्र, पृ0 116

44 भूले बिसरे चित्र, पृ0 151

45 भूले बिसरे चित्र, पृ0 181

46 भूले बिसरे चित्र, पृ0 188

47 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 राम दरश मिश्र, पृ0 152

48 भूले बिसरे चित्र, पृ0 187

49 भूले बिसरे चित्र, पृ0 309

50 भूले बिसरे चित्र, पृ0 345

51 भूले बिसरे चित्र, पृ0 295

52 भूले बिसरे चित्र, पृ0 466

52 भूले बिसरे चित्र, पृ0 468

54 भूले बिसरे चित्र, पृ0 516

55. भूले बिसरे चित्र, पृ0 517

56. भूले बिसरे चित्र, पृ0 518

57 हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास–डॉ0 सुदेश सिन्हा, पृ0 398

58 डॉ0 रणवीर सग्रा से यशपाल की भेंटवार्ता धर्मयुग, 2 मई, 1965, पृ0 45

59 झूठा सच प्रथम भाग, पृ0 398–99

60 झूठा सच दूसरा भाग, पृ0 358

61 झूठा सच दूसरा भाग, पृ0 531

62 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र

63 झूठा सच दूसरा भाग, पृ0 570

64 धर्मयुग–3 मई 1970, पृ0 51

65 धर्मयुग 10 मई 1970, पृ0 30

66 झूठा सच दूसरा भाग, पृ0 683

67 हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 220

68 मेरी तेरी उसकी बात, पृ0 485

69 मेरी तेरी उसकी बात, पृ0 499

70 मेरी तेरी उसकी बात, पृ0 502

71 मेरी तेरी उसकी बात, पृ0 760

72 मेरी तेरी उसकी बात, पृ0 312

73 नया साहित्य नये प्रश्न–नन्द दुलारे वाजपेई, पृ0 84

74. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका तालुम 12, 1953, पृ0 256

75 ककाल, पृ0 17

76 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 67

77 ककाल, पृ0 12

78. ककाल, पृ0 21

79 ककाल, पृ0 267

80 ककाल, पृ0 159

81 हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास–डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 323

82 हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुषमा धवन, पृ0 92

83 सन्यासी, पृ0 355

84 सन्यासी, पृ0 423

85 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 105

86 हिन्दी उपन्यास एक नयी दृष्टि–डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, पृ0 101

87 आधुनिक हिन्दी उपन्यास–डॉ0 नरेन्द्र मोहन, पृ0 18

88 साहित्य का नया शास्त्र–डॉ0 गिरिजा राय, पृ0 275

89 सफेद मेमने, पृ0 82

90 हिन्दी उपन्यास. एक नयी दृष्टि–डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, पृ0 103

91. सफेद मेमने, पृ0 12

92 सफेद मेमने, पृ0 65

93 हिन्दी उपन्यास एक नयी दृष्टि–डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, पृ0

94 क्योकि समय एक शब्द है–डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ, पृ0 313

95 सफेद मेमने, पृ0 149

96 साहित्य का नया शास्त्र–डॉ0 गिरिजा राय, पृ0 274

97 हिन्दी उपन्यास · एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 52–53

98 आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान–डॉ0 देवराज उपाध्याय, पृ0 166–67

99 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 52

100 प्रेम चद और उनका युग–डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 64

101 गबन, पृ0 17
102 गबन, पृ0 141
103 गबन, पृ0 270
104 प्रेमचद आलोचनात्मक परिचय–डॉ0 राम विलास शर्मा, पृ0 124
105 त्यागपत्र, पृ0 10
106 त्यागपत्र, पृ0 13–14
107 त्यागपत्र, पृ0 54
108 त्यागपत्र, पृ0 61
109 त्यागपत्र, पृ0 63
110 त्यागपत्र, पृ0 58
111 साहित्य का नया शास्त्र–डॉ0 गिरिजा राय, पृ0 259
112 साहित्य का नया शास्त्र–डॉ0 गिरिजा राय, पृ0 257
113 नया साहित्य नये प्रश्न–नन्द दुलारे वाजपेई, पृ0 196
114. विचार और अनुभूति–डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 133
115 हिन्दी कथा–साहित्य–डॉ0 पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, पृ0 101
116 हिन्दी उपन्यास–डॉ0 शिव नारयण श्रीवास्तव, पृ0 215
117 आधुनिकता के सन्दर्भ मे आज का हिन्दी उपन्यास–डॉ0 अतुलबीर अरोरा, पृ0 87
118 साहित्य का नया शास्त्र–डॉ0 गिरिजा राय, पृ0 260
119 आत्मनेप, अज्ञेय, पृ0 67–68
120 देवेन्द्र इस्सर . कल्पना 223, दिसम्बर 1970, पृ0 34
121 डॉ0 नगेन्द्र सर्वग्राही अह का करूण आलेख– शेखर एक जीवनी, हिन्दी उपन्यास–सपादिका सुषमा प्रियदर्शनी, पृ0 228
122 शेखर एक जीवनी, . पृ0 38
123 शेखर एक जीवनी, पृ0 69
124 शेखर एक जीवनी, पृ0 104
125. शेखर एक जीवनी, पृ0 133
126 शेखर एक जीवनी, पृ0 167
127 शेखर एक जीवनी, पृ0 178–79
128 शेखर एक जीवनी, पृ0 102
129 शेखर एक जीवनी, पृ0 109
130 अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या–डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी पृ0 82
131 शेखर एक जीवनी, पृ0 161
132 शेखर एक जीवनी दूसरा भाग, पृ0 82
133 शेखर एक जीवनी दूसरा भाग, पृ0 183
134 शेखर एक जीवनी दूसरा भाग, पृ0 183–84
135 शेखर एक जीवनी दूसरा भाग, पृ0 184
136 चिंतन के क्षण–विजयेन्द्र स्नातक, पृ0 125
137 शेखर एक जीवनी दूसरा भाग, पृ0 163
138 शेखर एक जीवनी दूसरा भाग, पृ0 247
139 आधुनिकता के सन्दर्भ मे आज का हिन्दी उपन्यास–डॉ0 अतुल बीर अरोरा, पृ0 91
140 नदी के द्वीप, पृ0 132
141 नदी के द्वीप, पृ0 252

142 नदी के द्वीप, पृ0 299
143 नदी के द्वीप, पृ0 189
144 हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 307
145 नदी के द्वीप, पृ0 189
146 नदी के द्वीप, पृ0 314
147 अत्मनेपद, अज्ञेय, पृ0 83
148 गुनाहो का देवता, पृ0 330
149 हिन्दी उपन्यास–सुषमा धवन, पृ0 259
150 कथाकृती मोहन राकेश–ओम प्रभाकर, पृ0 18
151 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र पृ0203
152 दिव्या, पृ0 21
153 दिव्या, पृ0 75
154 दिव्या, पृ0 82
155 दिव्या, पृ0 91
156 दिव्या, पृ0 96
157 दिव्या, पृ0 119
158 दिव्या, पृ0 127
159 दिव्या, पृ0 136
160 दिव्या, पृ0 195
161 दिव्या, पृ0 201
162 दिव्या, पृ0 163
163 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्राडॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 203
164 हिन्दी उपनयास एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 200

चतुर्थ अध्याय

मोहन राकेश की कहानियों में पारिवारिक विघटन का अंकन

एक और जिन्दगी, अपरिचित, आर्द्रा, ग्लास टैंक, फौलाद का आकाश, गुंझल, पहचान, सुहागिनें, क्वार्टर, खाली, भूखे,हकहलाल, जानवर और जानवर, पांचवें माले का फ्लैट, मन्दी, उसकी रोटी, जख्म, मिसपाल, वारिस, जंगला, चांदनी और स्याह दाग, परमात्मा का कुत्ता, आखिरी सामान, एक ठहरा हुआ चाकू, मलवे का मालिक, कम्बल, क्लेम,

चतुर्थ अध्याय

मोहन राकेश की कहानियों में पारिवारिक विघटन का अंकन

मोहन राकेश का कथा–लेखन हिन्दी कहानी के उस नये दौर का सूचक है जहॉ कहानी के केन्द्र मे केवल व्यक्ति की प्रतिष्ठा ही नही, अपितु सामाजिक शक्तियो का समाहार भी किया गया है। यही कारण है कि इनकी कहानियो का धरातल न तो जैनेन्द्र अज्ञेय के समान नितांत व्यष्टि चितन से प्रेरित है और न ही यशपाल के समान समष्टि चिंतन से। राकेश के कथा–साहित्य का सबध समकालीन समय के जीवित यथार्थ से है लेखक के मन में बोध को लेकर कही भी किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नही है। उसके अधिकाश अनुभव–सदर्भ नितात वैयक्तिक होने के बावजूद युगीन सन्दर्भ पा लेने के बाद सामाजिक बनते गये है।

मोहन राकेश ने यह स्वय स्वीकार किया है कि "उनकी रचना–दृष्टि का सीधा सबध आस–पास जिये जा रहे जीवन के साथ तथा इस जीवन की विडम्बनाओ और विभ्रमो को झेलते हुए व्यक्ति के साथ है। उनका लेखक व्यक्ति को भी आस–पास के प्रभावो से अलग एक कटी हुई इकाई के रूप मे नही देखता, बल्कि सम्पूर्ण मानसिक सामाजिक–राजनीतिक परिवेश को उसका अभिभाज्य अग समझता है। व्यक्ति और उसके परिवेश के अदर से ही सवेदना और व्यग्य के सूत्र उठाकर वह उन्हे कथा खडों मे बुन देता है।"[1] मोहन राकेश की यह वैयक्तिक सोच उनके लेखन का केन्द्र–बिन्दु शुरू से लेकर अन्त तक रही है। लेखक के इस बुनियादी सरोकार के उत्स को उनके व्यक्तिगत जीवन के परिप्रेक्ष्य मे जाना व पहचाना जा सकता है। प्राय· उनके व्यक्तिगत अनुभव बने है। बचपन से ही उनकी ऑखे आस–पास की जिन्दगी के प्रति सतर्क थी अपने से बाहर घर को और घर से बाहर सामाजिक बंधनो को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखने लगी थी। अपने आस–पास का माहौल उन्हे कीचड भरा लगता। परिचय–क्षेत्र के बहुत से लोग, हर गुजरते दिन के साथ पहले से छोटे जान पडते थे। स्नेह, सहानुभूति, साहस और उत्साह की झिल्लियो के नीचे उसने चेहरे बहुत डरपोक, मजबूर और हतोत्साह दिखायी देते थे। यह सब देखकर उनके मन मे हलचल होती। इसलिए छोटी सी उम्र मे जीवन मे अस्थिरता व अतिवादिता का समावेश हुआ और मन आक्रोश से भर गया। बाद मे इसी यथार्थ की अभिव्यक्ति उन्होने अपने साहित्य मे की।

मोहन राकेश कहानी पर विचार प्रकट करते हुए लिखते है–"मेरे लिए अनुभूति का सीधा सबध मेरे यथार्थ से है और यथार्थ है मेरा समय और

परिवेश व्यष्टि से परिवार, परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से मानव समाज तक का पूरा परिवेश। मैं इनमे से किसी एक से कटकर शेष से जुडे नही रह सकता अपने आस–पास के सन्दर्भ से आख हटाकर दूर के सन्दर्भ मे जी नही सकता।"[2] उन्होने व्यक्ति को काल के परिप्रेक्ष्य मे रखकर चित्रित किया है। केवल देश की स्थिति मे व्यक्ति का चित्रण उनका अभीष्ट नही, क्योकि कहानी व्यक्ति की नही, उसके पूरे समय की है। कहानी का प्रत्यक्ष कैनवस बहुत छोटा और साधारण हो सकता है पर जिस परोक्ष की ओर उसका सकेत है वह छोटा और साधारण नही है। उन्होने हमेशा एक नयी दृष्टि और सही कथा पर जोर दिया। एक और जिंदगी (भूमिका) कहानी–सग्रह की भूमिका मे राकेश ने इसी सन्दर्भ का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि "बात नई जगह जाकर नयी तरह के व्यक्ति की कहानी लिखने की नही, उसी जगह रहकर, उसी इसान के उन्ही अंतर्द्वन्द्वो को जीवन के नये संदर्भ मे देखने की है।"[3] मोहन राकेश ने व्यक्ति और समाज का कभी कोई विभाजन नही किया और न ही यथार्थ से विमुख होकर ही कहीं व्यक्ति के स्वत्व की प्रतिष्ठा की है। वे यह मानते है कि "व्यक्ति का जीवन एक इकाई का जीवन नही होता, एक समाज और एक समय के जीवन की प्रतिध्वनि भी उसमे सुनी जा सकती है।"[4] मोहन राकेश के अनुसार "यथार्थ की प्रतिक्रिया ही वस्तुत अनुभूति को जन्म देती है, जबकि अनुभूति की व्यापकता और गहराई यथार्थ की व्यापक और गहरी पकड पर ही निर्भर करती है"।[5] कोई भी सचेत और सवेदनशील रचनाकार समय के आतंक से उदासीन या अलग नही रह सकता। जिन प्रभावो मे वह जीता है उनसे मुक्त रहकर सृजनशील हो पाना सभव ही नही है। लेखक का वास्तविक कमिटमेट किसी विशेष विचारधारा से न होकर अपने से, अपने समय से और समय के जीवन से होता है। यदि वह अपने अंदर से कमिटेड है तो वह अधे की तरह लकडी लेकर अधेरे मे अपने अकेले के लिए रास्ता नही टटोलता, अंधेरे और आतंक को पैदा करने वाली शक्तियों के साथ अपने समूचे अस्तित्व से लड जाना चाहता है और अकेला नही, अनेकानेक लडने वालो के साथ मिलकर। यह सामूहिक प्रयत्न ही उसके सघर्ष को सार्थकता देता है, वरना वह जिंदगी भर एक अपाहिज की तरह आवाज लगाये जाने और याचना करते रहने के लिए अभिशप्त है।

मोहन राकेश की यह विशेषता है कि उन्होने किसी टूटे विश्रृखलित, आरोपित, अविश्वसनीय सत्य की उपलब्धि मे अपनी गरिमा को कभी नही झुठलाया, वरन एक व्यापक सामाजिक सत्य एव यथार्थ के अन्वेषण मे अपनी शक्ति लगाई। वे स्वीकारते है कि "लेखक का अपना एक अलग अस्तित्व है। किन्तु वह अस्तित्व भी सामाजिक सदर्भ मे ही स्वरूप लेता है। क्योंकि इकाई के रूप मे अपने को जानना भी उसके 'पूरे' के अदर जीने का ही परिणाम है। चेतना के स्तर पर वह किसी भी तरह 'एक' या अकेला नही है। बोध मे वह प्रभावो को

समेटता है और प्रभावो की शुरूआत से ही उसमे एक होने की स्थिति समाप्त होती है।"[6] इसलिए कथ्य कैसा भी हो किसी एक अकेले व्यक्ति का न होकर, उसके परिवेश का होता है। यही कारण है कि राकेश हमेशा सामाजिक सदर्भों को मान्यता देते रहे। इनकी कहानी की मुख्य धारा मे नये सदर्भों की खोज सामाजिक चेतना से सचालित है और इसमे साकेतिकता का विकास समष्टि सत्य एव व्यापक परिवेश के धरातल पर हुआ है। उन्होने युगीन सामाजिक यथार्थ और वस्तु–सत्य तथा बदलते विश्वास को नयी दृष्टि दी, मनुष्य के पारिवारिक सम्बन्धों को उसके परिवेश मे देखने की यथार्थ–दृष्टि भी दी है।

मोहन राकेश के कथा–साहित्य मे पारिवारिक विघटन के नये–नये ऐसे कोण उभर कर आते हैं जो शिल्प के साथ गुंफित होकर सवेदना के स्तर पर कोई बहुत ही बेलाग बात कह देने की सामर्थ्य रखते है। उस बिन्दु से कहानी के ये कोण शुरू होते हैं जिस बिन्दु पर प्रेमचन्द्र अपनी कथा–यात्रा समाप्त कर चुके थे। 'कफन' और 'पूस की रात' तक आकर जो परम्परा अवरूद्ध हो गयी थी, उसी को गति देने का प्रयास मोहन राकेश ने अपने ढग से किया।

मोहन राकेश की काहानिया परिवर्तन की एक पूरी प्रक्रिया का साक्षात्कार कराती है। यह प्रक्रिया साहित्यिक मूल्यो की भी है और सामाजिक–साहित्यिक मर्यादा की भी। मोहन राकेश वे सृजनात्मक धरातल पर सक्रान्ति युग के समस्त दबावो को अपने पर झेला है और इस दबाव से जन्मे तनाव और सत्रास को भोगा है। विभाजन के साथ जिस 'क्राइसिस' का आरम्भ हुआ था वह उत्तरोत्तर बढता चला गया। सामाजिक एवं नैतिक मान्यताएँ टूटने लगी। जिदगी का सारा अदरूनी ढॉचा भुरभुरी मिट्टी की तरह झडने लगा। नयी जमीन पर नयी मान्यताएँ उभर रही थी, किन्तु पॉव अभी टिक नही पा रहे थे। अत लेखक ने इस नये पारिवारिक वातावरण मे एक विशेष प्रकार की घुटन और आत्मपीडन की स्थिति को अनुभव किया। युग की सच्चाइयो से जुडने की तीव्र लालसा और युग की आत्मा को प्रतिध्वनित करने की कामना ने उसके कहानीकार –व्यक्तित्व को एक विकासशील चरित्र प्रदान किया, जो सामाजिक–वैयक्तिक धरातल पर बदलते पारिवारिक जीवन के बदलते यथार्थ को आकता चलता है और साहित्यिक धरातल पर सैद्धान्तिक आग्रहो के स्थान पर अनुभव की सच्चाइयो को अपना सबल बनाता है। राकेश का कथा–साहित्य युग की समग्रता को अपने परिवेश मे समेटकर व्यक्ति और परिवेश के तथा व्यक्ति और समाज के अनेक स्तरीय सम्बन्धो को अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न करता है।

राकेश की मनोरचना मध्यवर्गीय चेतना से सम्बद्ध है। उनके जीवन मे आई स्थितियो–परिस्थितियो की टकराहट अनुभव और अनुभूतियॉ सबकी सब मध्यवर्गीय सस्कारो को निरूपित करती है। उनकी कहानियो मे अनुभव की निजता

है, किन्तु वह परिवेशबद्ध होकर निरतर सामाजिक भूमिका पर उतरती गई है। आधुनिक कहानीकारो मे राकेश ही एक ऐसे कहानीकार है, जिन्होने जीवन के वास्तव को अपने स्तर पर भोगकर कहानियो के शिल्प मे ढाल दिया है। जीवन का यथार्थ शरबत नही कुनेन की वह गोली है जिसे अनुभव की जुबान पर रखे तो वह तो कडवी हो ही जाती है, उसे अभिव्यक्ति देने वाली शैली भी उससे अप्रभावित नही रह सकती है। यथार्थ की यह कडवाहट कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप से राकेश की कहानियो मे मिल ही जाती है। कुछ आलोचको एवं समीक्षको की मान्यता है कि राकेश के लेखन मे वैयक्तिक अनुभव भले ही कितना गहरा हो, किन्तु वह व्यापक नही है। यह उनके प्रगतिशील चितन की महत्वपूर्ण सीमा है– यायावरी जीवन को जीकर भी उन्होंने एक 'ठहरा हुआ चाकू' जैसी एकाध कहानियो को छोडकर जीवन को व्यापक सदर्भों मे नही उठाया अपने मुताबिक कुछ नुक्ते उठाये है जो मनुष्योचित सामर्थ्य का प्रतिनिधित्व नही करते हैं। जीवन के व्यापक सदर्भों के अभाव की शिकायत राकेश की कहानियो के सन्दर्भ मे डॉ0 नामवर को भी रही है। इसी कारण उन्होने लिखा है कि "अपने आस–पास के वातावरण मे उडती हुई कहानियो को पकडकर निस्सन्देह मोहन राकेश ने उन्हे उतनी ही तेजी के साथ व्यक्त किया है। जो मन मे एक फ्लैश की तरह कौध जाती है। लगता है उन्होने अभी बिजली की कौंध ही पकडी है, बिजली कि वह शक्ति नही जिसका उपयोग हम अपनी सीमा मे उष्णता तथा आलोक के लिए कर सके जो कि मनुष्योचित सामर्थ्य का प्रतीक है।"[7] यह तो ठीक है कि राकेश की कहानियो मे उनके आस–पास का परिवेश प्रतिबिम्बित है, किन्तु यह मानना पडता है कि अनुभव का प्रत्येक क्षण जीवन मे हर बार कुछ नया जोड देता है तो जो कलाकार अपने परिवेश के हर परिवर्तित क्षण के मुहाने परसतर्क हो, उसके लेखन मे व्यापकता के अभाव की शिकायत हठधर्मिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है? यो भी बिजली की कौंध मे यदि परिवेश को तीव्रता से उजागर करने की क्षमता है तो फिर उसके अभाव की शिकायत उस कहानीकार की कहानियो मे कैसे की जा सकती है जो हर अनुभूति क्षण मे एक कहानी कसमसाती हुई देखता हो।

राकेश की कहानियो मे परिवर्तित परिस्थितियो, बदले हुए परिवेश मे सास लेते व्यक्ति के सम्बन्धो, एक विशेष व्यवस्था से बधे रहने की अनिवार्यता को ढोते जाने की विडम्बना और महानगरीय सत्रास की सशक्त अभिव्यक्त हुई है। उनकी कहानिया उनके कहानी लेखन के प्रारम्भिक वर्षो से लेखन के चरमोत्कर्ष तक के परिवेश को कलात्मक अन्विति के साथ काल सापेक्ष भी है। इस दृष्टि को मोहन राकेश ने स्वय स्वीकार किया है– "मेरे लिए नयी कहानी की दृष्टि अपने सदर्भों मे रहकर उनके अदर से अपने समय और परिवेश को आकने की दृष्टि है

जो हर बार नये प्रयोग मे यथार्थ को उसकी सजीवता मे व्यक्त करने की एक नयी कोशिश करती है।"[8]

राजेन्द्र यादव के अनुसार –"विभिन्न स्थितियो और विविध मनोविज्ञानो मे उतर सकने की (राकेश की) अतर्दृष्टि– ऑब्जेक्टिविटी या निर्वैयक्तिता– यथार्थ के तर्क सगत, सार्थक सदर्भों की पकड मदी का बूढा हो या 'मवाली' का बच्चा 'आखिरी सामान' की आधुनिक नारी की ट्रेजिडी हो या 'उसकी रोटी' की डायवर पत्नी की मजबूरी, 'गुनाह बेलज्जत' का नपुसक हो या 'परमात्मा का कुत्ता' का यमला (धाकड) जाट– कही भी राकेश की कलम डगमगाती नही है एक ओर उसने देश के विभाजन पर 'मलवे का मालिक' जैसी सशक्त कहानियां दी है तो दूसरी ओर घुटन और उमस के बीच 'नये बादलो' को रेखाकित करने की कोशिश की है। कभी वह पहाडी स्कूल मे अध्यापन करती 'सुहागिनो' की समानातर जिदगी के बीच रहता है तो कभी सजल मातृत्व की करूण और आर्द्र छाया के नीचे, कभी वह अपने भोले–भाले बच्चे की निष्कपट आंखो से कुहासे मे डूबी 'एक और जिदगी' को देखता है तो कभी मिसपाल के बहाने छूटे हुए को छोड नही पाता या शीशे को अमृत बानो (ग्लास–टैको?) मे लौट जाता है।"[9] मोहन राकेश के कहानी–साहित्य की विषय वस्तु सम्बन्धी विविधता के सन्दर्भ मे राजेन्द्र यादव के उपरोक्त कथन को उद्धत करने का एक मात्र आशय यही है कि माहन राकेश की कहानियो मे पारिवारिक विघटन का स्वरूप कैसा है एवम इसके प्रमुख कारण क्या है? इसमे इसकी पृष्ठभूमि को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी।

मोहन राकेश की कहानियों में पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन के कारण

राकेश की अधिकाश कहानियो मे मध्यवर्गीय चेतना है जिसका मूल केन्द्र व्यक्ति है, अत इनमे व्यष्टिचितन एव समष्टिचितन दोनो इस प्रकार विलय हो गये है कि एक को दूसरे से पृथक करना कठिन है। यही कारण है कि उनकी कहानियो मे व्यक्ति–सत्य और समाज–सत्य पर समान आग्रह है। "व्यक्ति चेतना और समाज चेतना के बीच किसी कृत्रिम द्वन्द्व का परिहार कर राकेश की कहानिया सवेदना और बोध के उस धरातल से शुरू होती है जिसे व्यक्ति और समाज की आगिक सापेक्षिता का धरातल कहा जा सकता है।"[10] इनमे लेखक व्यक्ति के माध्यम से निरन्तर कुलबुलाते और सघर्ष करते सामाजिक पार्श्व को उभारना चाहता है, क्योकि वह अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सचेत है।

औद्योगीकरण एव विज्ञान के विकास के बढते प्रभाव से महानगरीय या कस्बाई जीवन ही नही भारतीय सस्कृति की आत्मा गॉव भी इसकी चपेट मे

आ गये। आधुनिकता का प्रश्न पश्चिमी क्षेत्रो की सभ्यता एव सस्कृति के अति निकट है, फिर भी "राकेश की आधुनिकता भारतीय आधुनिकता के समानान्तर है।"[11] अत यहा पर मोहन राकेश की कहानियो मे पारिवारिक विघटन का स्वरूप आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य मे देखना ही उचित रहेगा, क्योकि उनकी आधुनिकता केन्द्रीय पात्रो मे है जो यथार्थ मे रहकर भी एक अन्वेषी–दृष्टि बोध रखते है। आज का मनुष्य अपने आस–पास पैदा हुए सवालो से टकराता है, टूटता है और निर्वासित हो रहा है। वह अपने जीवन मे वैज्ञानिक उपलब्धियो को जाने अनजाने स्वीकार कर रहा है और वैज्ञानिक विचारधारा ही आधुनिकता की धारणा बन गई है। अत आधुनिकता ने वार्तालाप के दायरे को नितात सीमित एव सकुचित कर दिया है। इसी कारण व्यक्ति अकेलेपन से निकलने और परिवेश से जुडने के लिए व्याकुल हो रहा है। इन्सान अपनी इच्छाओ के सहारे जीना चाहता है पर हालात (परिस्थिति) उसे वैसे जीने नही देती।

सम्बन्धों का विघटन और जुडे रहने की छटपटाहट के कारण पारिवारिक विघटन

आधुनिकीकरण तथा स्वतन्त्रता से भारतीय परिवेश और जनमानस मे एक उत्क्रान्ति आई है। आदर्श और मर्यादाओं के मलवे पर यथार्थ और नये मानव मूल्यो को स्थापित किया गया है। जीवन की सपाटता और सिधाई मे असगतिया, विषमताये और अनेक विडम्बनाओ ने अड्डा जमा लिया है। मनुष्य समाज से कटा है और अपने इस कटने–टूटने और बिखरने मे वह नितात अकेला छूटता गया है– "सहज मानवीय सम्बन्धो की गर्मी एक ठण्डी उदासीनता का रूप लेती जा रही है। आपाधापी की इस दुनिया मे एकाकीपन और परायापन आज के जीवनकी अनिवार्यता सी बन गई है। जीवन की यह अनिवार्यता वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन मे सर्वत्र व्याप्त है। क्योकि वैयक्तिक सम्बन्धो को धकियाकर नितान्त निर्वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित होते जा रहे है। स्थिति यह है कि स्त्री–पुरूष, पति–पत्नी, माता–पिता, भाई–बहन, प्रेमी–प्रेमिका आदि के सम्बन्ध महत्वहीन हो गये है। मनुष्य का सचेतन, सहज और रचनात्मक कार्य विच्छिन्न होता जा रहा है और वह अपनी निजता खोता जा रहा है। धीरे–धीरे सवेदन शून्यता (स्वपैथी) निसगता और जडता बढ गई है।"[12] गॉव के उजडने और नगरो के आबादहोने से व्यक्ति–व्यक्ति के सम्बन्ध बदले हैं। पहले का वह दाम्पत्य जीवन जो कभी विश्वास के पगो चलता और समर्पण के मैदान में खेलता था आज वही सदेह और अविश्वास की वैसाखियो के सहारे चल रहा है। जहॉ दिल के अतल मे कभी प्यार जगमगाता था, वही , अब अह के गुब्बारे मे भरी हुई नफरत की हवा डोलती है। परिणाम यह कि मानवीय सम्बन्ध मात्र औपचारिकता, विवशता, अभिशप्त जीवन और ऊब व अकेलेपन के पर्याय बनकर रह गये है।

मोहन राकेश ने स्वय ही कहा है– ''व्यक्ति और समाज को परम्परा विरोधी एक दूसरे से भिन्न और आपस मे कटी हुई इकाइयॉ न मानकर यहॉ उन्हें एक ऐसी अभिन्नता मे देखने का प्रयत्न है जहॉ व्यक्ति समाज की विडम्बनाओ का और समाज व्यक्ति की यन्त्रणाओ का आइना है।''[13] यो तो राकेश ने व्यक्ति क्रान्ति के सम्बन्धो को विशदता से अपनी कहानियो मे चित्रित किया है, किन्तु उनका ध्यान अधिकतर पति–पत्नी के सम्बन्धो तक ही केन्द्रित रहा है, आज स्त्री पुरूष के साथ रहना तो चाहती है लेकिन कौन सा–पारिवारिक , सामाजिक और सार्वजनिक स्तर पाकर, अभी तक निर्णय नही कर पाई है। पुरूष भी नारी की आवश्यकता तो अनुभव करता है, किन्तु कितनी और कैसी वह भी निश्चित नही कर पाया है। मोहन राकेश की अधिकाश कहानिया सम्बन्धो के विघटन और इससे जुडे रहने की समकालीन छटपटाहट को व्यक्त करती है, जो इस प्रकार हैं– एक और जिदगी, अपरिचित, आर्द्रा, ग्लास टैक, फौलाद का आकाश, गुझल, पहचान, सुहागिने, क्वार्टर आदि।

एक और जिन्दगी

'एक और जिन्दगी' दो व्यक्तियो के अह के परस्पर टकराव और टकराकर बिखर जाने की कहानी है। इसके पति और पत्नी, दोनो ही अपने–अपने अह और अधिकारो की रक्षा के लिए सतत जागरूक रहते है, इसी कारण उनमे टकराव होता है और दोनो हमेशा के लिए अलग हो जाते है। इसमे टूटते सम्बन्ध और फालतू होती जिन्दगी का यथार्थ वर्णन है। व्यवस्था के साथ सन्तुलन न कर सकने की प्रकाश की कमजोरी ही हर छोर से उसे तोडती है और दूसरे गलत कोने से उसे बांधती है जितनी तेजी से वीना और प्रकाश का परस्पर विरोध तलाक मे परिणत हो गया था, उतनी ही तेजी से उद्दाम रोग से ग्रस्त निर्मला से विवाह भी उसके लिए नरक बन गया। प्रकाश और बीना पति–पत्नी हैं उनका एक छोटा बेटा प्रकाश भी है। दोनो का प्रेम विवाह हुआ है। दोनो ही समान स्तर के है –सामाजिक और मानसिक, दोनो एक दूसरे को अच्छी तरह से समझने का प्रयत्न भी करते हैं और न ही समझ पाते है इसलिए छोटे–छोटे तनावो को लेकर टूटते रहते है और फिर टूटते ही चले जाते है उन्हे लगता है कि शायद शुरूआत ही गलत हो गई है, उनका पति–पत्नी बन जाना ही शायद गलत था। तभी बीना एक दिन प्रकाश से कह बैठती है– ''मैने तुमसे शादी करके एक अपराध किया है।''[14] दोनो अतृप्त और एक दूसरे से असन्तुष्ट रहने लगते हैं और तलाक ले लेते हैं। दूसरे निर्णय मे प्रकाश एक और जिन्दगी की तलाश मे एक हिस्टिरिक मित्र की बहन से शादी कर लेता है। परन्तु प्रकाश के लिए नये विवाह का यह सम्बन्ध और भी घातक और तोडने वाला सिद्ध होता है। निर्मला नाम की यह स्त्री हिस्टिरिक और हिपोक्रेटिक दोनो है। उसे हिस्टीरिया के दौरे तो पडते ही है,

साथ ही वह इस भ्रम मे भी ग्रसित रहती है कि उसमे देवी का अश है। कभी स्वय को रोगी समझती है दौरा पडने पर प्रकाश से कहती है– "तुम मुझे छुओ मत मुझमे देवी का अश है।"[15] प्रकाश इस सबको सहन नही कर पाता और उससे छुटकारा पाने की कोशिश करने लगता है। वह दोनो की तुलना कर (बीना–निर्मला) पुन छुटकारा पाने की कोशिश मे टूट जाता है।

पति–पत्नी का यह अहवादी दृष्टिकोण भारतीय सस्कारो को एक नई दिशा एव दशा प्रदान करता है, क्योकि प्रकाश और बीना का परस्पर प्रेम, विवाह और अन्त मे तलाक हमारे विवाह–सम्बन्धी परम्परागत विचारो और परम्पराओ का उल्लघन करते है और उल्लघन करके भी दोनो सुखी और सन्तुष्ट नही रह पाते। इसका कारण यह है कि पुराने मूल्य तो टूटते जा रहे है, परन्तु उनके स्थान पर, नवीन स्वस्थ मूल्यो की स्थापना नही हो पा रही है। सक्रान्ति–कालीनयुग मे प्राय ऐसी ही विषमताए जन्म लेती रहती हैं और धीरे–धीरे उनका निराकरण होता रहता है। डॉ0 नरेन्द्र मोहन के शब्दो में– "एक और जिन्दगी मे व्यक्ति की सक्रान्ति मन· स्थिति का चित्रण है। उसे लगता है जैसे वह जी न रहा है। क्या यही वह जन्दगी थी जिसे पाने के लिए उसने वर्षों तक अपने से सघर्ष किया था? यह चित्रण यहॉ, दाम्पत्य–सम्बन्धो की जटिल स्थितियो के विवरणो के सहारे है। ये विवरण फालतू नही हैं, बल्कि मन स्थिति को गहराते हैं।"[16]

मोहन राकेश ने व्यक्तिगत जीवन मे इस पीडाको महसूस किया था। उन्होने स्वीकार किया है कि "आस–पास खडी होती हुई ऊची–ऊची इमारतो के बीच हमारे अदर कुछ लगातार टूट रहा है। चाहते है उसे टूटने से बचा सके, मगर न जाने क्या मजबूरी है कि केवल गवाह की तरह खडे उस ढहने की प्रक्रिया को चुपचाप देख रहे है। तटस्थ और उदासीन भाव से कभी कन्धे हिला देते है बस। विश्वास किये है कि उस सम्बन्ध मे कुछ भी नही किया जा सकता। कम से कम अपना प्रयत्न उसमे निरर्थक है। अगर कुछ होगा, तो बाहर होगा। वरना जो ढह रहा है, उसे ढहना तो है ही।"[17] मूल्यो के इस ध्वश में व्यक्ति कर ही क्या सकता है उसे तो आने वाले समय का ही इन्तजार रहता है कि हो सकता है कि आगे कुछ अच्छा ही हो।

डॉ0 बच्चन सिह 'एक और जिन्दगी' की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए लिखते है कि "आज के ट्रेजिक तनाव को पूरी गहराई मे आंकती है, जहॉ मनुष्य न तो छूटी हुई जिन्दगी को छोड पाता है और न चुनी हुई जिदगी को अपना सकता है। दोनो ओर खीचा जाकर वह क्षत–विक्षत हो जाता है।"[18] लेकिन राकेश के लिए कहानी केवल स्थिति की पहचान मात्र नही, इसके आगे किन्ही भविष्यत सकेतो की तलाश भी है, इसलिए कहानी के अन्त मे प्रकाश का रात के अधेरे मे बारिस मे भीगते हुए एक (भीगे हुए) कुत्ते के साथ–साथ चलना

एक ऐसा सकेत है जो इस सारे तनाव को ढीला करता है, जिससे यह कहानी आज के पारिवारिक विघटन की जटिलताओ मे से गुजरते हुए व्यक्ति को बेहतर जिदगी की खोज मे आगे बढते रहने का व्यक्तिनिष्ठ सकेत भी देती है, एक खामोश और अतर्मुख सकेत।

अपरिचित

'अपरिचित' कहानी का कथा–नायक और महिला दोनो एक सीधी स्थिति मे एकाकी जीवन जीने को विवश हैं। अपरिचित 'का मै' अपनी पत्नी की महत्वाकाक्षाओ को पूरा न करने के कारण दोनो के परस्पर सम्बन्ध टूटते हैं। दोनो एक दूसरे की उपस्थिति मे अजनबी बन जाते है और कहानी की पत्नी और दिशी भी एक दूसरे मे न होने का बोध करते है। दोनो दम्पत्तियो के गलत चुनाव और रूचि वैभिन्य के कारण आई त्रासद स्थितियो का निश्चल अभिव्यंजन है। 'अपरिचित' मे अपरिचय मे परिचय की तलाश साफ झलकती है। सहयात्रिणी स्त्री अपने पूरे भोलेपन से दाम्पत्य सम्बन्धो के बीच आई कटुता, तिक्तता और रिक्तता का बोध कराती है। वह गलत निर्णय और रूचियो के अन्तराल के बोझ को ढो रही है। वह 'मिसफिट' है, किन्तु उसमे निर्ममता ज्यादा है तभी तो गहने बेचकर भी पति की कोई एक साथ अपने से पूरी होते देख सन्तोष करना चाहती है। यह एक ऐसी स्त्री है जो बहुत से परिचित लोगो के बीच अपने को अपरिचित, बेगाना और अनमेल अनुभव करती है, किन्तु यही स्त्री कथानायक से खुल कर बाते करती है। कारण दोनो के बीच एक सी रूचियो का आभास सा है। वह पहाडी लोगो के बीच बच्चो मे अपनापन खोजती है तो कथानायक भी आदिम सस्कार वाले व्यक्तियो के बीच अच्छा महसूस करता है।

कहानी मे कितनी भारी विडम्बना है कि जो नारी अपरिचित है वह स्वभावनुकूल होने पर परिचित लगने लगती है और परिचित है वह स्वभाव के विपरीत होने के कारण अपरिचित। परिणाम स्वरूप कहानी के दोनो ही पात्र एकाकी जीवन जीने को विवश है। विवाहित हो कर भी वे दोनो दाम्पत्य सुख न भोगकर वैवाहिक सस्था की मर्यादा को ही निभा रहे हैं। यात्रा साथ–साथ करते समय एवं समान रूचियो की पीठिका पाकर कुछ और खुलते हैं। यद्यपि यह खुलावट स्त्री की ओर से है। वह अपनी जैसी रूचि का सहयात्री पाकर भीतर कही दूषित है। अत कथानायक से पानी मगाती है। चलती गाडी पर जब कथानायक पानी का गिलास लेकर चढता है तो उसकी सॉस फूल जाती है। वह अपने आप को धिक्कारती है कि "क्यों भेजा पानी के लिए, कुछ हो जाता तो . आप न चढ पाते तो "[19] यहॉ जो सम्बन्ध विकसित हुए हैं वे अपरिचत में आकस्मिक रूप से उगे परिचय और कही भीतर ही द्रवित मनोभावो के सकेतक है। फिर स्त्री का कथानायक को बत्ती बुझाकर सुला देना और रजाई उडा देना

अपरिचय मे परिचय की तलाश को अन्तिम रूप दे देते है। दाम्पत्य जीवन की कटुता और नीरसता को यहाँ नया परिचय भुला देता है, किन्तु पारिस्थितिक विचित्रता दोनो को अलग कर देती है यही सम्बन्धो की जड है, यथार्थ धरातल है जो जिस रूप मे है का सही गवाह है। कथानायक भी दूषित है तभी तो उसके अचानक किसी स्टेशन पर उतर जाने से रिक्तता का अनुभव करता है। "इसी स्टेशन पर न उतरी हो यह सोच कर मैने खिडकी का शीशा उठा दिया और बाहर देखा।. विस्तर मे नीचे को सरकते हुए मैंने देखा की कम्बल के अलावा रजाई भी लिये हूँ जिसे अच्छी तरह कम्बल के साथ मिला दिया गया है। गर्मी की कई एक सिहरनें एक साथ शरीर मे भर गई।"[20]

असल मे यह कहानी बेमेल रूचियो के कारण जीवन मे आई रिक्तता, कटुता और बासीपन की अभिव्यक्ति है। रूचि वैभिन्य स्त्री–पुरूष को किस सीमा तक और किस तरह अलगाव के बिन्दुओ की ओर ले जाता है तथा उसमे नारी अपने को कितनी रिक्त, विवश और टूटा हुआ अनुभव करती है, पुरूष किस तरह किसी भी बहाने उससे अलग होकर नयी मूल्यवत्ता खोजता है व स्थिति की जटिलता किस तरह अपरिचय और अजनबीपन के बीच एक नये परिचय की अगरबत्ती जला कर बुझा देती है आदि सब कुछ इस कहानी का कथ्य है। एक ओर मानवीय सम्बन्धो की सूक्ष्मता पूरी जटिलता के साथ यहाँ है और दूसरी ओर मानवीय वृत्ति की सहज निश्चलता से प्रेरित अपरिचय में परिचय की तलाश। यह स्थिति उसे बदलते मूल्यों के साये में विकसित नये मानव सम्बन्धो की कहानी प्रमाणित करती है। इन्द्रनाथ मदान इसे विवेचित करते हुए लिखते है कि "राकेश की यह कहानी उन कहानियो मे से है जिसके मूल मे चेतना सामाजिक की अपेक्षा वैयक्तिक स्तर पर है।"[21]

आर्द्रा

'आर्द्रा' कहानी मे जीवन की व्यर्थता एवं सम्बन्धो का तनाव चित्रित है। इस कहानी में भाई–भाई के बीच का स्नेह सम्बन्ध का टूट कर तनाव मे परिवर्तित होना तथा उसके अन्तराल मे छटपटाती माँ का चित्रण किया गया है। बडा भाई छोटे भाई से अलग सुख–सुविधा सम्पन्न जीवन व्यतीत करता है तो छोटा भाई अभावो से ग्रस्त जीवन यापन करता है उन दोनो के बीच माँ की तनावपूर्ण जिन्दगी चलती है। एक तरफ माँ छोटे बेटे की अभावग्रस्त जिन्दगी से छटपटाती है, उसके लिए "वह सोचती है और करवटें बदलती है।"[22] और दूसरी तरफ बडे बेटे के पास जाकर अजनबी और मेहमान सा अनुभव करने लगती है। उसे "आज इस बात की उलझन हो रही थी कि उसका भजन मे मन क्यो नही लगता। अब जब की भजन के लिए पूरी सुविधा, पूरा समय, उसके पास था, तो आसन पर बैठने से ही वह क्यो जी चुराती थी।"[23] बहू कुसुम उससे इतनी

शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, "उससे वचन को लगता था की वह उस घर मे मेहमान है।"[24] वचन जब भी कोई काम या अन्य लोगो की व्यवस्था मे कुछ उपचार करती है तो उसका पुत्र लाली भी कहता है–"मॉ, तू काम करेगी, तो घर मे दो–दो नौकर किस लिए है।"[25] वह बहू बेटे और बच्चो के बीच अपने को एक फालतू सामान सा महसूस करती है। सवाद विहीन घर मे रह कर वह एक दो दिन मे ही ऊब जाती है। इस तरह पारिवारिक विघटन सम्बन्धो की निरर्थकता मे और अपने ही घर मे मेहमान होने की व्यथा मे अभिव्यक्ति है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि 'आर्द्रा' कहानी महानगरी परिवेश से जुडी है। नगर परिवेश मे व्यर्थ होते सम्बन्धो और तनाव की जिन्दगी का यथार्थ उदघाटन कहानी का लक्ष्य है। इस कहानी की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए डॉ0 सुषमा अग्रवाल लिखती हैं कि " आर्द्रा में दो अलग–अलग रह रहे पुत्रो के बीच ममतालु मॉ की पीडा प्रतिबिम्बित हुई है। मॉ दोनो के बीच विभाजित होकर जीती है। यही उसकी पीडा और दारूण यत्रणा का कारण है।"[26]

ग्लास टैंक

'ग्लास टैक' एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसका प्रत्येक सदस्य जीवन के प्रति अपनी मान्यताए रखता है। वह दूसरे के साथ सहमत न होते हुए भी उसकी भावना की कद्र करता चलता है। इसमे बडी सूक्ष्मता के साथ एक पारिवारिक ट्रेजेडी की अभिव्यक्ति मिली है। निरन्तर कृत्रिम होती जा रही जिन्दगी और उसमें समाती जाती ऊब व उदासी को निरूपित किया गया है। 'मछली' व ग्लास टैंक प्रतीकार्थ रखते हैं। ये प्रतीकार्थ पूरी तरह हृदयग्राह प्रतीत नही होते है। मछली का प्रतीक तो फिर भी सवेद्य प्रतीत होता है, किन्तु 'ग्लास टैक' का प्रतीक आरोपित होता है । उपेन्द्र नाथ अश्क के अनुसार "ग्लास टैंक का प्रतीक आरोपित लगता है। यदि 'ग्लास टैक' के बारे मे कही गयी सभी बाते कहानी से काट दी जाये यानी कहानी के पहले चार पृष्ठ और चौथे पृष्ठ की केवल अन्तिम चार पंक्तियों को छोडकर काट दिये जायें और कहानी दूसरे परिच्छेद से शुरू की जाये तो प्रभाव में कुछ भी फर्क नही पडेगा।"[27] मछलियॉ आत्मकेन्द्रित और अपने मे डूबी जिन्दगी की ऊब और नीरसता को व्यक्त करती है। कहानी की नीरू का सोचना भी इसी से सम्बद्ध है कि "बिल्लोरी पानी मे तैरती सुनहरी मछलियॉ अच्छी लगती थी, मगर हर बार देखकर मन में उदासी भर जाती थी। सोचती, कैसे रह पाती है ये? खुले पानी के लिए कभी इनका जी नही तरसता? कभी इन्हे महसूस नही होता कि ये सब एक–एक और अकेली हैं? एक–दूसरे से कुछ कहना चाहती हैं? या कभी शीशे से इसलिए टकराती है कि शीशा टूट जाये? शीशे के और आपस के बन्धन से ये मुक्त हो जाय।"[28]

नीरू और मम्मी के अतिरिक्त परिवार मे डैडी और बीरे का ही अधिक महत्व है, किन्तु इस परिवार पर हावी उदासी की परतो का निरतर घनीभूत होते जाना एक तीसरे व्यक्ति सुभाष के कारण है। नीरू और मम्मी दोनो उसकी ओर झुकी हुई है। मम्मी के झुकने मे सहानुभूति और करूणा का गहरा दर्द भरा भाव है, तो नीरू के झुकने मे दर्द भरे प्यार का। नीरू का मछलियो की 'इमोशनल लाइफ' के बारे मे जिज्ञासु होना भी उसकी भावात्मक मन स्थिति को ही रेखाकित करता है। 'ग्लास टैक' परिवेश की सीमितता और उसकी हदो को व्यक्त करता है। 'ग्लास टैंक' मे मछलियो का इधर से उधर घूमना और अपनी हदबदी पर शीशे से उनकी टकराहट मे उनकी मुक्ति का प्रयास झलकता है वैसे ही नीरू व मम्मी भी अपनी सीमाओ मे रहकर भी उनसे ही टकराती रहती है। बाहर आना वे भी चाहती हैं, किन्तु वे अपनी विवशता और उदासी पर दु खी तो हो सकती है, उसे काटकर मन मुताबिक जी नही सकती है। ममा की करूणापूर्ण प्रेमिल दृष्टि का आभाष इन पक्तियो मे है। "नाता रिश्ता नही है, फिर भी मै सोचती थी कि ....।"[29] वे सुभाष की चिट्ठी के लिए व्यग्र रहती थी– भीतर से छिली सी रहती थी। उसके आगमन पर उनका बराबर देखते जाना नीरू की दृष्टि मे ऐसा है। "मैं देख रही थी कि ममा एक टक उसे ताक रही है, जैसे ऑखो से ही उसके माथे के जख्म को सहला देना चाहती हो।"[30]

ममा अतीत की जिन्दगी के डॉक्टर शम्भूनाथ से तो नही जुड पायी किन्तु उसके बेटे सुभाष से अवश्य जुडी हुई है। "ममा सुभाष की बाते सुनते–सुनते काम करना भूल जाती थी।"[31] सुभाष को देखकर उसके पिता शम्भूनाथ की स्मृति एव अनिर्णय के दर्द को चुपचाप सह लेती है। लेकिन पति के डर से प्रेम को जबान पर आने नही देती। दूसरी तरफ नीरू के मन मे सुभाष के प्रति आकर्षण रहता है। सुभाष अपनी निरीहता और दीनता मे भी नीरू के लिए महत्वपूर्ण है। बचपन मे उसे 'ब्राउन कैट' ही कहता है, तो नीरू की प्रतिक्रिया है। "यह भी लगता है कि मै ऑखो से कह रही हू कि जिसे तुम सहला रहे हो, वह 'ब्राउन कैट' नही है। 'ब्राउन कैट' मै हूॅ। मै यहॉ से दूर अधेरे मे खडी हूॅ। चाह रही हूॅ कि कोई आकर मुझे देख ले और गोद में उठा ले।"[32] नीरू मानो अधेरे मे खडी होकर निश्चय नही कर पा रही है। उसका चुनाव अवसाद बनकर हृदय के अदर घुमड–घुमड कर रह जाता है। ममा भी सुभाष को देखकर अपने अतीत की पीडी से झुलस जाती है और उसी भावुकता मे नीरू से कहती है – "नीरू, और जैसी भी होना . अपनी ममा जैसी कभी न होना।"[33] यह सत्य है कि ममा सुखी है लेकिन मन का सुख नीरू के डैडी के साथ उसे कहॉ मिल सकता है? पर आज उसके लिए आत्मपीडा से प्राप्त होने वाला सुख ही शेष रह गया है। इस कहानी मे नीरू और ममा के अनिर्णय के दर्द के साथ पारिवारिक सम्बन्धो में विघटन के बीज छिपे हुए है। 'ग्लास टैंक की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए डॉ0 उर्मिला

मिश्र लिखती है कि "ग्लास टैक चुनाव के निर्णय और अनिर्णय के दर्द की कहानी है। इसलिए यह सुभाष के निर्णय से उत्पन्न घुटन और अकेलेपन के साथ नीरू और उसकी ममा के अनिर्णय से उत्पन्न अवसाद और घुटनपूर्ण जिन्दगी की कहानी है।"[34]

फौलाद का आकाश

'फौलाद का आकाश' कहानी पति–पत्नी एवं तीसरे व्यक्ति के सम्बन्ध को लेकर लिखी गयी है। दात्पत्य सम्बन्धो मे सावेगिक एकाकीपन तथा मनोवैज्ञानिक कारणो के सन्दर्भ मे जो विघटन होता है। वही 'फौलाद का आकाश' मे मोहन राकेश ने दिखलाने की कोशिश की है। रवि अपनी पत्नी मीरा के साथ दिन मे एक औपचारिक जिन्दगी जीता है क्योकि मीरा की भावुकता उसे पसन्द नही किन्तु रात मे मीरा से ही अपनी कामवासना तृप्त करता है। उनके परस्पर के व्यवहार मे एक उदासीनता रहती है। सम्बन्धो के अजनबीपन मे मीरा और रवि एक जीवन जी रहे है। रवि अब डिग्री कालेज मे साधारण लेक्चरर न होकर –स्टील प्लाट मे लेबर एडवाइजर है। मीरा को पूरा समय घर पर ही व्यतीत करना होता है। पूरी सुख सुविधाओ मे रहते हुए भी ये लोग अपने से तथा परिवेश से कटे–कटे से रहते है और अन्दर ही अन्दर एक अनाम लडाई लडते रहते है। "दस साल साथ रहकर मीरा जान चुकी थी कि इस तरह बात उसकी मर्जी पर नही छोडी जाती, सिर्फ आदेश को तकुल्लुफ का जामा पहना दिया जाता है।"[35] मीरा जब कोई काम करती रहती है। और बीच मे रवि को कोई वस्तु की आवश्यकता होती है तो वह प्रत्यक्ष रूप से मीरा से न कह कर नौकर शकर के रूप मे मीरा से ही कहता है कि देखो मीरा– "शकर से कहोगी चाय दे जाए"[36] मीरा को अभी तक ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग एक दूसरे को सही तरह से समझ नही सके हैं।

रवि एक व्यस्त अधिकारी है सुबह से शाम तक वह अपने कार्यालय मे व्यस्त रहता है लेकिन रात को उसको मीरा की आवश्यकता है। मीरा को अपनी बाहो के कसाव मे भीचने का प्रयत्न करते हुए वह उससे पूछने लगता है। "मेरे साथ, अपनी जिन्दगी तुम्हे बहुत रूखी लगती है न?"[37] कुछ बोलने से पहले वह उसके होठो को अपने होठो से भीच देता और मजिल दर मजिल शारीरिक निकटता की हदे पार होती जाती हैं। आखिर जब पसीना होकर वह उससे अलग होता तो भी मीरा को यही लगता है "जैसे अब भी लिखते –लिखते हाथ थक जाने से उसने कागज परे हटा दिये हो "[38] मीरा को अतरग से अतरग क्षणो में भी अपने को रवि से अलग, बिल्कुल अलग पाती है। कभी उसे लगता है कि ऐसा उम्र के बढते सालो की वजह से है पर इससे आगे के सालों की बात सोचकर मन मे और टीस जागती, कभी उसे लगता कि "सारा दोष रवि का है। कभी

लगता है कि दोषी रवि नही, वह स्वय है।"[39] मीरा मन ही मन रवि की बाते सोचकर उसके कई अर्थों मे उलझी रहती है और यह उलझना उसे रात दिन के फैसले मे इतनी दूर करता जाता है कि सम्बन्धो के विखराव की निर्णायक स्थिति मे पहुँच जाती है।

'फौलाद का आकाश' मे पति रवि, पत्नी मीरा और उसके पूर्व–प्रेमी राजकृष्ण का त्रिकोण तथा इसके अतर्गत नायिका मीरा की अपने पति के साथ रहते जीवन की एकरसता से ऊबकर अचानक राजकृष्ण का आकर तोडना जिस कलात्मक प्रभावशीलता के साथ मोहन राकेश ने अकित किया है। वह चरित्रो के अतस मे उनकी गहरी पैठ और मनोविकारो की सूक्ष्म पकड का ही प्रमाण है। राज कृष्ण मीरा का सहपाठी था और यूनीवर्सिटी की डिबेटो एव चाय की कैन्टीन तक इन लोगो के साथ रहा था, और दोस्ती मे जो अन्तरगता होनी चाहिए थी, वह सब यूनीवर्सिटी के समय मे इन दोनो मे विकसित हो गई थी, परन्तु आज की स्थिति भिन्न है। राजकृष्ण अब एक मन्त्री है। और एक मुलाकात मे राजकृष्ण मीरा का सम्बन्ध देह के स्तर पर ही समान रूप से महसूस होता है इसलिए मीरा अपने पति और मित्र दोनो के लिए 'रिलैक्स' होने का माध्यम होकर रह जाती है। "बौद्धिक भावना शून्य पुरूष को पति के रूप मे वरण कर भावुक नारी को लगता है। वह फौलाद के आकाश के नीचे रह रही है, जहॉ प्यार की गर्मी और वात्सल्य की आर्द्रता और सरसता की सम्भावना ही नही है (इसलिए वौद्धिक दृष्टि से अस्वीकार कर भी) प्रेमी की प्यार भरी बाहो की उष्णता का विरोध नही कर पाती।"[40]

कहानी में सम्बन्धो की व्यर्थता के अन्दर टूट रही मीरा की जिन्दगी निरर्थक दिखाई पडती है। रवि भी कही कभी किसी भी स्तर पर सम्बन्ध बनाने का बोध नहीं करता है। व्यस्त जिन्दगी ने सम्बन्धो का लोपकर, व्यक्ति को मात्र पुर्जा बना दिया है। मीरा भी पति और मित्र के लिए मात्र 'रिलैक्स' करने का पुर्जा बनकर रह गई है। कहानी मे सम्बन्धो के विघटन तथा इससे जुडे रहने की विवशता है।

गुंझल

गुझल कहानी मे पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन और इससे जुडे रहने की छटपटाहट व्यक्त हुई है। लेखक कहानी के अन्दर सम्बन्धो को नही उद्घाटित करता, फिर भी कारण स्पष्ट है। चन्दन और कुन्तल पति–पत्नी होकर भी आपसी तनाव के कारण एक दूसरे से दूर है। कुन्तल और चन्दन अपनी वृत्तिक आवश्यकताओ हेतु एक दूसरे से दूर रहते है अलग रहने की पीडा बडी दु खदायी होती है, दोनो लोगों मे सम्बन्धो को बनाये रखने के लिए कोई विशेष

उत्सुकता नही दिखाई देती है। सम्बन्धो मे इतना फैसला बढता जाता है कि दोनों एक ही बस मे एक सीट पर बैठकर यात्रा करते समय ह्रदय की दूरियो से काफी दूर हैं यहॉ तक कि अब उन्हे एक दूसरे के स्पर्श तक से भी घृणा हो गयी है– "ब्रेक लगी, तो एक बार पति–पत्नी के शरीर आपस मे छू गये कुन्तल ने अपनी बाहें सिकोड ली और पहले से थोडा सिमटकर बैठ गई।"[41] सम्बन्धो की चटखन की इससे बढकर और त्रासदी क्या हो सकती है, सहज रूप से अदाजा लगाया जा सकता है।

चदन बात–चीत के माध्यम से मामला सुलझाना चाहता है और कुन्तल से कुछ जानना चाहता है और कुन्तल अब और कुछ कहना नही चाहती है। "तुम अपने मन मे क्या चाहती हो, क्योकि तुम्हारे मन की बात का मुझे अभी तक पता नही चल सका।"[42] कुन्तल स्पष्ट करते हुए कहती है कि "हम अपने लिए न तो कुछ चाहते है, और न ही इस विषय मे हमे कोई बात करनी है।"[43] चन्दन सलाह के रूप मे एक प्रस्ताव कुन्तल के सामने रखता है कि कुन्तल के पिता के सामने यदि सभी बातें रखी जायें तो शायद मामला कुछ निपट सके, परन्तु कुन्तल इस विषय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कहती है कि "हमें किसी के सामने कोई बात नही करनी है । हम लोग बच्चे तो है नही जो किसी तीसरे आदमी के सामने बैठकर बात करेगे । और पिता जी के सामने तो हम कभी भी कोई बात नही करेगें।"[44] दोनो लोगो की इस हठधर्मिता की वजह से एक द्वन्द्व सा चलता रहता है। विशेषकर कुन्तल की यह हठधर्मीता चन्दन की बेकारी की ओर विशेष ध्यान आकर्षित करती है, इसके पीछे कुन्तल की विश्वविद्यालय के समय की महत्वाकाक्षाए मुख्य बाधा बनती है क्योकि उसकी महत्वाकाक्षाए चन्दन को पचा नही पाती हैं चन्दन यह बात नही सोच पाता है। वह सोचता है कि "क्या एक लडकी का सोचने का ढग और उसके अन्दर का हठ ही उसके जीवन की हर चीज को तोडने के लिए कुछ भी नही कर सकता था।"[45]

अपनी मानसिक सोच मे चन्दन विचारो के द्वन्द्व मे उलझ सा गया है और विचारो के इसी गुझल से निकलने की वह भरपूर कोशिश करता है उसे यह भली भांति मालूम है कि कुतल अब उससे सम्बन्ध बनाना नही चाहती है फिर भी चन्दन सम्बन्धो की तलाश मे कोशिश जारी रखता है अपनी यात्रा के पडाव मे चदन ने कुन्तल की हरकतो को झेलते हुए काफी कष्ट सहा, परन्तु जब कुन्तल उसके भूखे रहने के बावजूद खुद खाना खाकर आ जाती है तब उसका धैर्य जबाब दे देता है– "उसके मन की हलचल पहले से कही बढ गई थी और उसे महसूस हो रहा था जैसे वह उसी समय कुछ करना चाहता हो, उसकी उत्तेजना उसकी बाहो और पिडलियो मे सरसरा रही थी और मन हो रहा था कि और कुछ

नही तो वह बिस्तर को ही ठोकर लगाता कुछ दूर तक ले जाय।"[46] और यही वह क्षण था जब उसने सोच लिया था कि क्या और इस तरह से जीवन जीया जा सकता है। इसी समय चन्दन अपने को कुन्तल से अलग रहने का निर्णय कर लेता है।

मोहन राकेश इस बात को स्वीकार करते हुए लिखते है कि "यह अलगाव जहाँ एक लेखक के अपने स्वतत्र और निजी व्यक्तित्व को प्रभावित करता है, वहाँ वह उसके अन्दर उस अस्थिरता को भी जन्म देता है जो उसे अपने आस–पास के पूरे रचना परिवेश के प्रति तटस्थ और उदासीन नहीं रहने देती। इस तरह "अलग होने के साथ–साथ सहभागी (पार्टिसिपेट) होना भी उसके लिए अनिवार्य हो जाता है। "[47] चन्दन सब कुछ जानते हुए एक दूसरे से जुडना चाहता है जब कि कुन्तल नारी जन्य अह के कारण अलगाव की स्थिति मे जाने का निर्णय लेती है। डॉ0 उर्मिला मिश्र इस कहानी को सम्बन्धो के विघटन को इस रूप मे मूल्याकित करती हुई लिखती हैं कि "दोनो एक–एक दूसरे से न चाहकर भी कुछ चाहते है। दोनो एक दूसरे के साथ रहकर भी नही रहना चाहते और दोनो एक दूसरे से मुक्त होना चाहकर भी नही मुक्त हो पाते हैं। दोनो के बीच एक अबूझ पहेली है जिसको सुलझा नही पाने के कारण दोनो टूट–टूट कर बिखर रहे है। दोनो की खामोशी एक दूसरे की जिन्दगी को बोझिल और असह्य बनाये हुए है। घिसटती–छटपटाती जिन्दगी कुन्तल तथा चन्दन को अपने से काट कर रख देती है चन्दन बेकारी और अभावो की मिली–जुली अनुभूति के कारण घुट रहा है। "[48] लेखक दोनो की तनावपूर्ण एव अवसाद ग्रस्त जिन्दगी के सम्बन्ध मे कुछ भी अभिव्यक्त करने में संकोच करता है फिर भी कहानी में दोनो के सम्बन्ध अन्त:सघर्ष से मुखर है। 'गुंझल' के अदर 'निर्णय' का प्रश्न अनवरत पति–पत्नी के अन्दर चलता है जिसका उत्तर चाहकर भी पात्र नही दे पाते।

पहचान

व्यक्ति समूह यह भीड मे अपना परिचय खोता जा रहा है यहाँ तक कि व्यक्ति परविार के बीच 'पहचान' की तलाश मे खोया हुआ है। 'पहचान' कहानी मे शिवजीत अपनी पहचान की तलाश मे खाली, अजनबी और परिचित लोगों के बीच भी मेहमान सा अनुभव करता है सम्बन्धो के एक–एक रेशे टूटे हुए है। पर सम्बन्धो की तलाश और नई जिन्दगी की शुरूआत मे बच्चा अकेला और फालतू हो जाता है। मिसेज महेन्द्र सचदेव स्वतन्त्र और मनचाही जिन्दगी जीने के लिए मिसेज सचदेव से मिसेज अवरोल बन जाती है। वह पूर्व पति (महेन्द्र सचदेव) की हर वस्तु से नफरत करती है। उसकी धारणा पति–पत्नी के रिश्ते के विपरीत है। वह अपने ढग से जीने के लिए मन चाहे साथी का चुनाव करती है पर दोनो सम्बन्धो के बीच मिसेज सचदेव का बच्चा शिवजीत अपने बारे मे मम्मी से सुनता

है कि – "मै उस आदमी को इसे किसी भी हालत मे नही ले जाने दूँगी। कानून–आनून मै कुछ भी नही जानती। ग्यारह साल मैने इसे पाला है ।"[49]

माता–पिता का अप्रतिबद्धतापूर्ण जीवन शिवजीत के अह को आहत करता है। पिता महेन्द्र सचदेव से मॉ के सम्बन्ध टूट जाने पर अब उसकी 'रोलकाल' मे (मॉ के अबरोल अकल के साथ रहने लगने के कारण) शिवजीत सचदेव की जगह शिवजीत अबरोल बोला जाता है। ऐसी स्थिति मे उसे उसकी ग्रन्थि कुठित कर देती है और "उस वक्त उसे कुछ ऐसे लगा था जैसे भरी क्लास मे उसकी नेकर उतार कर उसे नगा कर दिया गया हो।"[50] ऐसी स्थिति मे शिवजीत को अपना पितृत्व अनिर्णीत लगता है। पापा उसे ले जाना चाहते है उसे यह भी पता नही है कि स्कूल मे उसका 'सरनेम' बदल दिया गया है। वह सोचता है कि वह असल मे क्या है सचदेव या अबरोल? या इनमे से दोनो नही? कौन पापा है महेन्द्र सचदेव या डॉ0 हरदेव अबरोल । शिवाजी का यह अन्तर्द्वन्द्व उसे मन ही मन तोडता रहता है क्योकि क्लास मे जब दबे स्वर मे उसे सुनने को मिलता है कि लोग आपस मे उसी के बारे मे ही काना फूँसी कर रहे है तो अदर ही अदर विद्रोह पर उतारू होकर स्कूल से भाग आता है और अपने नये घर (अवरोज अकल) के सदस्यो के साथ एक मेहमान की तरह अजनबीपन महसूस करता है मा कहती है– "तू उनके बच्चो के साथ घुलता मिलता क्यो नही? वे तुझे इतना प्यार करते है .। सुखदेव अबरोल उससे तीन साल बडा है. जब भी उसे अकेला पाता है। उसे घूरकर देखता है। बाकी तीनो नीना, मीना और बसन्त उससे अलग–थलग बडे भाई से खुसर–पुसर बाते करते है। साथ खेलने के लिए बुलाते है जैसे किसी मेहमान को साथ खाना खाने के लिए कह रहे हो। वह चाहे भी तो उनके साथ नही घुल–मिल सकता और वह चाहता भी नही।"[51] ग्यारह वर्ष का शिवजीत अपने माता–पिता की मनोवैज्ञानिक समस्याओ के बीच कितना अलग एवम् कुठित हो गया है कि वह अभी से अपने माता–पिता के मूल परिवार से विघटित हो गया है, और उसे नये परिवेश मे तालमेल बैठाने की जद्दोजहद करनी पड रही है। साथ ही वह भवष्यि के बारे मे सोचकर भी परेशानी महसूस करता रहता है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है, 'पहचान' कहानी मे मोहन राकेश ने बालक शिवजीत के माध्यम से पति–पत्नी के आपसी तनाव और अलगाव के उपरान्त पत्नी द्वारा किये गये दूसरे विवाह के परिणाम स्वरूप शिवजीत के नाम से आये परिवर्तन के बहाने सन्तान की अपनी वास्तविक पहचान का प्रश्न उठाया है।"[52] शिवजीत अबरोल को समाज की वास्तविकता स्वीकार कर उसके अनुसार चलना पडेगा क्योकि भौतिकता की दौड मे व्यक्ति बहुत आगे बढना चाह रहा है

और वह सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है जो उसके दिमागी जेहन मे भरा हुआ है। उसका अवचेतन मन समाज की परवाह नही करता तथा वह केवल व्यक्तिगत स्वार्थ मे इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने परिवार के अस्तित्व को भूल सा जाता है औरऐसे शिवजीतो को केवल सोचने और जीने के लिए छोड जाता है इस वास्तविकता और विभाजन की त्रासदी मे वह केवल सहानुभूति ही जता सकता है कर कुछ नही सकता? डॉ0 उर्मिला मिश्र के शब्दो में– "शिवजीत के मन मे जो पहचान और परिचय अपनी मॉ और अबरोल अकन की थी अब एक साथ और एक घर मे रहकर भी वह अपरिचय के धुन्ध मे अपने अदर शून्य अनुभव करता है क्लास मे उसे सूनसान और अकेला लगने लगता है, घर मे मॉ अवरोल लगने लगती है और वह अवरोल अकल तथा उनके बच्चो के बीच स्वय को मेहमान सा अनुभव करता है। इस तरह आधुनिकता टूटते सम्बन्धो के तनाव मे अभिव्यक्त होती है।"[53]

सुहागिनें

'सुहागिने' कहानी सम्बन्धो के विघटन और जुडे रहने की छटपटाहट की समस्या को लेकर लिखी गयी है। कहानी के अन्दर सभी सम्बन्ध छिन्न–भिन्न हो गये है पर कही न कही से अवचेतन रूप से सम्बन्धो का बोध बना रहता है। कहानी मे सम्बन्धो की तलाश जारी नही है। मनोरमा सुशील (पति) से कुछ कहना चाहती है और वह अपने खालीपन का बोध उसे कराना चाहती है लेकिन वह चाह कर भी कुछ कह नही पाती। अत कहानी मे अनिर्णय की स्थिति में आधुनिक बोध होता है।

'सुहागिने' की दोनो नायिकाएँ मनोरमा और काशी आत्मनिर्भर है। मनोरमा सचदेव गर्ल्ज हाई स्कूल की हेड मिस्ट्रेस होते हुए भी भीतर से बहुत अकेली है वह अपने पति सुशील से अलग रहकर नौकरी करती है पति बाहर नौकरी पर है और शायद उसे पत्नी की इतनी जरूरत नही जितनी उसके पैसे की। यही हालत उसकी नौकरानी काशी की है "सुशील नही चाहता था कि वह नौकरी छोडकर घर–गृहस्थी के लायक ही हो रहे। साल–छ महीने में सुशील को अपनी बहन उम्मी का ब्याह करना था। उसके दो भाई कालेज मे पढ रहे थे। उन दिनो उनके लिए एक–एक पैसे की अपनी कीमत थी। कम से कम चार–पॉच साल एहतियात से चलना चाहता था।"[54] विवाहिता नारी यदि नौकरी करती है तो ससुराल वाले और पति समझते है कि उसे नौकरी की इजाजत देकर बहुत बडा अहसान किया है अत उसकी आय पर पहला अधिकार उनका है।

मनोरमा इस पारिवारिक दायित्व को निभाने के लिए सुशील से अलग रहने के लिए निर्णय कर लेती है। मनोरमा को प्रारम्भ मे इस निर्णय से काफी

कष्ट हुआ, परन्तु शीघ्र ही उसे एकसास हो गया कि हमारा और सुशील का रिश्ता केवल पैसो पर टिका है वह सोचती है भला ऐसा कौन सा पति होगा जो अपनी पत्नी को इतने–इतने दिनो तक अकेला छोड देगा। मनोरमा सुशील को पत्र भी नही लिखती है– "क्योकि कई दिनों से वह सोच रही थी कि सुशील को दूसरी चिट्ठी लिखे, मगर स्वाभिमान उसे रोकता था । क्या सुशील को इतनी फुर्सत भी नही थी कि उसे कुछ पंक्तियॉ ही लिख दे।"[55] मनोरमा को सुशील से कितना कुछ कहना है और कितना कुछ स्वय से शिकायत है परन्तु मन ही मन के अन्तर्द्वन्द्व तथा स्वाभिमान को दबाये वह जी रही है।

पति द्वारा शोषित मनोरमा अपने से अधिक सौभाग्यशाली उस काशी को समझती है जो पति की मार खाकर भी परदेश से आने वाले पति के लिए श्रृगार करती है और दुबारा गर्भवती बनती है। मातृत्व सुख से वंचित हो मनोरमा काशी के बच्चो को स्नेह देती है और पति को आर्थिक सहायता देते हुए अपना रस सुखाती है। मनोरमा के यहॉ नौकरानी काशी अपने तीन बच्चो सहित रूखी सूखी खाकर जी रही है परन्तु काशी की लडकी कुन्ती को देखकर मनोरमा के मन मे एक ललक सी उत्पन्न होती है। इस ललक को सुशील पूरा नही होने देता है – "वह नही चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर मे आने दे, उससे एक तो उसका फिगर खराब होने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था। सुशील नही चाहता था कि वह नौकरी छोडकर बस घर–गृहस्थी के लायक ही हो रहे।"[56]

दूसरे स्तर पर पारिवारिक सन्दर्भों की त्रासदी मनोरमा की पन्द्रह रूपये मासिक आमदनी पर रखी गयी काशी नौकरानी झेलती है फिर भी वह पतिनिष्ठ है। उसका पति अजुध्या शहर मे एक दूसरी औरत के साथ रहता है और दो–तीन साल के बाद एक बार काशी के पास आकर उसको मारपीट कर सारा धन छीनकर प्रसवावस्था मे छोड कर चला जाता है। काशी कितनी विपन्नावस्था में अपना व बच्चो का पालन करती है, इसका उसके पति को अहसास तक नही। इस प्रकार मनोरमा और काशी दोनो को विवाह का कोई सुख नही। वे तो केवल सुहागिन होने की विडम्बना ढो रही हैं– "हमारी असमान व्यवस्था अपने सोच एव व्यवहार में किस हद तक क्रूर, अमानवीय और स्त्री विरोधी हो सकती है। जैसी स्थितिया है उनमे आर्थिक दृष्टि से स्त्री के आत्मनिर्भर होने से भी कोई बडा फर्क पडने वाला नही है, पुरूष वर्चस्व वाले इस सामाजिक ढाचे मे बुनियादी परिवर्तन के बिना स्त्री सब कही एक सी बेबस और लाचार है।"[57]

मनोरमा और काशी देखने मे तो समाज के लिए सुहागिने हैं परन्तु उनका मन अकेलापन, खालीपन और घुटन की सवेदना से सम्बन्धो को

अजनबीपन की ओर ले जाता है "क्योकि वैयक्तिक स्तर पर काशी और मनोरमा जिस सामाजिक दायित्व को निभा रही है उसमे लेखक का समष्टि बोध झलकता है। नारी स्वातन्त्रय केवल एक नारा मात्र है, वस्तुत पुरूष द्वारा शासित समाज मे नारी अभी तक विवश जीवन जीने को मजबूर है।"[58] नारी की यह स्थिति उसे इतनी विवश कर देती है कि "सभी तरह से कोशिश करने पर वह अपने को दूसरो के बीच मिसफिट पाती है मनोरमा भी घर और बाहर के बीच दिन रात सन्तुलन स्थापित करने के लिए दिन रात रात खटती रहती है फिर भी किसी से जुड नही पाती।"[59]

लोकाचार की दृष्टि से सम्बन्धो का यह निर्वाह तो चलता ही रहता है और नारी का सस्कारी मन एक वाध्यता के रूप मे जुडा भी रहना चाहता है परन्तु इस जुडे रहने की विवशता ही उसे खोखला एवम जडहीन बना देता है। निष्कर्ष रूप मे ओम प्रभाकर की टिप्पडी इस प्रकार है– "सुहागिने , जिसमे मनोरमा और काशी दो विवाहित स्त्रियो के माध्यम से पत्नी रूप नारी की विवशता (लेकिन साथ ही त्याग और ममत्व भी) तथा सुशील और अजुध्या नामक दो पुरूषो के द्वारा पति–रूप पुरूष की निर्ममता और स्वार्थपरता को उभारकर दाम्पत्य जीवन के उसी भयावह रूप को ही अकित किया गया है। सस्कार ग्रस्त नारी का पत्नी–रूप मे कष्ट झेलना और पुरूष का पति–रूप मे जाने–अनजाने आततायी हो उठना ही जैसे दाम्पत्य जीवन की वास्तविकता है।"[60]

क्वार्टर

'क्वार्टर' कहानी निम्न मध्यवर्गीय परिवार के आपसी कलह तथा दाम्पतय सम्बन्धो मे आयी कटुता को रेखांकित करती है जो महानगरीय जीवन बोध की वर्तमान मे एक त्रासदी भी है। शकर राजवशी और उसकी पत्नी राधा दिल्ली मे कनाट पैलेस से कुल आधा मील की दूरी पर पॉच कमरे का फ्लैट लेकर रहते हैं। बेतन एवं क्वार्टर से वे दोनों सन्तुष्ट से दिखते है परतु इसमे शकर के पिता, दो बहने, दो भतीजे, बडे भईया नाथ तथा अन्त मे मुकुन्द के आ जाने से 'क्वार्टर' काफी व्यस्त सा हो गया है इसलिए तो पत्नी राधा कहती है कि "जितने जितने लोग आकर पडे रहते है, उससे मुसाफिर खाने से कुछ कम भी नही लगता मुझे।"[61] शकर को पहले इसी फ्लैट को लेकर कितना गर्व था, परन्तु सबन्धियो की इस भीड मे वह उसे काटने को दौडता है क्योकि पत्नी राधा के साथ–साथ उसे बच्ची की देखभाल जो करनी है।

पारिवारिक सम्बन्धियो का यह जमावडा अर्थ के स्तर के साथ साथ सभी सदस्यो के विचारो मे सन्तुलन भी नही स्थापित कर पाता है क्योकि शकर के बूढे पिता को ऐसा प्रतीत होता है कि शकर उनकी देखभाल उचित ढग से

नही करता है और पैसो को अनावश्यक पानी की तरह बहा रहा है। वही शकर को अपने पिता का अनावश्यक हस्तक्षेप पसन्द नही हैं शकर के दोस्तो के ऊपर होने वाला खर्च देखकर पिता जी कुढते रहते है– "कही इस तरह भी घर चला करते हैं? कमाना बाद में और खर्च पहले कर देना। मै कहता हूॅ सारे अरमान एक ही बार पूरे कर लोगे तो बाकी उम्र काटने को बचेगा क्या?"[62] पिताजी पुरानी पीढी की सोच रखते हुए भी वर्तमान की स्थिति को शंकर से इसलिए जिक्र करते रहते है, क्योकि यह अनावश्यक खर्च एक दिन उन्हे परेशानी मे डाल सकता है, परन्तु "क्वार्टर के पापा का अस्तित्व अपने बेटे शकर राजवशी की दृष्टि मे नगण्य है। पिता को पुत्र की आदते पसन्द नही और पुत्र को पिता की इसलिए दोनो पीढियॉ तनाव झेलती है । पापा विरोध चाहे कितना ही करे, पुत्र के साथ रहना उनकी मजबूरी है वह अपने को फलतू अनुभव करते हुए पहाड जैसे दिन बिता रहे है।"[63]

पत्नी राधा को शकर से शिकायत रहती है कि उसने इस भीड मे डालकर उसके साथ ज्यादती की है। शकर की बहनो की झिडकी तो एक हद तक वह सुन सकती थी, परन्तु राधा को यह कतई गवारा नही है कि उसकी बगल वाली पडोसन मिसेज शर्मा घर आये और उसके पति को काफी पिलाकर चली जाये। राधा को शकर की महिला मित्रो मिसेज शर्मा और लल्ला से चिढ है इसलिए वह शकर के प्रति शक करने लगती है। यही शक की स्थिति उसे अपने पैतृक घर जाने को विवश कर देती है। परन्तु शकर के गलतफहमी दूर करने मे उल्टे राधा गुस्से मे शकर से कहती है– "नाम लेने की भी जरूरत है क्या? मेरे सामने बैठे हुए तुम्हारी ऑखे ब्लाउज के अदर घुसी रहती है।"[64] और ऑखो की गलत फहमिया दोनो के जीवन मे एक ऐसी दरार पैदा कर देती है जो प्रयास करने पर भी नही पट पाती है। छोटा भाई मुकुन्द जो शादी के बाद अपनी ससुराल मे रह रहा था वह भी लडकर भाग आया है और उसने तय कर लिया है कि एक दो दिन मे वह पत्नी को भी यही ले आयेगा।

क्वार्टर मे परिवार के लोग केवल कुछ दिनो के लिए, अस्थाई रूप से साथ रहने को एकत्रित हुए है, पर वे उस थोडे समय के लिए भी सहज नही हो पाते। पिता–पुत्र, भाई–बहन, भाई–भाई और यहॉ तक कि पति–पत्नी के सम्बन्ध तक क्वार्टर मे इस सीमा तक विघटित हो चुके है कि वे एक दूसरे पर केवल अपना दृष्टि कोण लादना चाहते हैं तथा एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की चेष्टा ही नही करते है। बाप–बेटे, बहू, भाई–भाई सभी सम्बन्धो की निरर्थकता मे एक दूसरे से कटे, अजनबी और फालतू हो चुके है किसी को किसी के लिए किसी भी तरह की छटपटाहट नही है। बाप वृद्धावस्था और बेकारी से टूट रहा है। जिसके कारण वह अपने बहू–बेटे के साथ रहकर भी मेहमान हो गया

है। भाई–भाई साथ रहकर भी एक दूसरे के लिए कोई स्नेह नही रखते। पति–पत्नी अलग है। राधा बेबी को लेकर अलग ही टूट रही है। सभी एक दूसरे के लिए अजनबी और बेगाने से लगते है। दूसरी तरफ शकर सभी प्रकार के सम्बन्धो से घिरकर भी अकेला और खाली महसूस करता है– "ढेर सारी जगह बाह्य सुविधापूर्ण क्वार्टर भी मन के मेल के अभाव मे यातनादायी बन जाता है।"[65]

'क्वार्टर' कहानी मे परिवार के परिपूर्ण बिम्ब के खण्डित हो जाने की प्रक्रिया उपस्थित है। वास्तव मे आधुनिकीकरण के सन्दर्भ मे आज परिवार का ढाचा टूट रहा है। कहानी में सम्बन्धो की व्यर्थता और अकेलेपन की यन्त्रणा स्पष्ट तौर पर दिखती है। डॉ0 उर्मिला मिश्र के शब्दो मे – "क्वार्टर कहानी मे टूट रहे परिवार का यथार्थ चित्रण हुआ है। परिवार के सभी सदस्य स्वय मे सिमटे हुए और एक दूसरे से अलग और कटे हुए हैं। वे एक दूसरे को दोष देते हैं, खीजते है और क्रोधित होते है। एक क्वार्टर मे सभी रहकर भी न रहने की तरह है, एक दूसरे से न जुडकर भी जुडे रहने का असफल प्रयास करते है।"[66]

आर्थिक विवशता और जिन्दगी के दुहरेपन के कारण पारिवारिक विघटन

आधुनिकीकरण के द्वारा विकास को गति मिली। विकास एव प्रगति की दौड मे अभी 'और आगे' की भावना नही, साथ ही मनुष्य के लिए आधुनिकता ने परिवार रूपी सस्था मे एक ऐसे 'ब्लैक होल' का निर्माण किया है, जिसमे स्वय वह घुट रहा है। वैज्ञानिक आस्था ने आधुनिक समाज के सम्मुख दो दृश्य खडे कर दिये है। एक दृश्य है, पक्की सडकें, वस्तिया, ऊचे–ऊचे मकान, बाजार, मनोरंजन के साधन, बिजली के उपकरण, शिक्षा केन्द्र, राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र, तेज चलने वाले वाहन, अन्य शहर या देशो से सम्पर्क साधन, सुख–सुविधाओ की दुनिया, आदि यह आधुनिक नगरो की देन है। तो दूसरा दृश्य है, गन्दी बस्तियॉ, मुहतोड महगाई, बेकारी, सयुक्त परिवार मे दरार, भुखमरी, बीमारी, असमान वितरण, गरीबी का नर्क, मानसिक तनाव,न सुलझने वाली समस्याए, असुरक्षा, अपराध–बोध, अकेलापन, आत्मघाती स्थितियॉ और आत्म परायापन भी दिया है।

वर्तमान समय की बेकारी और धन–वितरण की अव्यवस्था व्यक्ति को व्यर्थ, नि सहाय और अजनबी बना चुकी है, जिससे पारिवारिक, सामाजिक और व्यक्तिगत सम्बन्ध छिन्न भिन्न हो रहे हैं। आधुनिक म्नुष्य पैसे की अनिवार्यता से बध गया है। उसके जीवन से सारे सम्बन्ध निर्मूल हो गये हैं।

अर्थ पर आधृत समाज की सरचना बन गयी है। किसी भी समाज का परिदृश्य मुख्यत आर्थिक कारणो से ही सचालित होता है। अर्थ एव अर्थ–व्यवस्था आज वह धुरी बन गयी है, जिसके द्वारा समाज के व्यवहार, सम्बन्ध, रिश्ते आदि सभी निर्धारित होते हैं। मनुष्य की दृष्टि अर्थोन्मुख और अर्थकेन्द्रित होने का परिणाम ही है कि सयुक्त परिवारो मे दरार पडकर अलग–अलग छोटे–छोटे परिवार बन गये है। माता–पिता, भाई–बहन, चाचा–भतीजे, पति–पत्नी आदि के सम्बन्ध ढोये जा रहे है। इन सब मे अर्थ का विषधर कुडली मारकर बैठ गया है। फलत वर्तमान समय बेकारी और अर्थ–वितरण की अव्यवस्था आदमी को व्यर्थ, असहाय और अजनबी बना चुकी है। राकेश जी की कहानियो मे आर्थिक तनाव और अर्थाश्रित विवशताओ का चित्रण मिलता है। अर्थ के सकट के कारण जिन्दगी का दोहरापन उनकी कहानियो मे प्रखरता से मिलता है– 'खाली', 'भूखे,' 'हकहलाल,' 'जानवर और जानवर', 'पाचवे माले का फ्लैट', मदी, वारिस, 'उसकी रोटी', इत्यादि।

खाली

'खाली' कहानी पति–पत्नी के ऊब भरे जीवन की कहानी है। प्रत्येक पात्र अपने दैनिक कार्यक्रम से बहुत बोझिल और रोचकता विहीन गति विधि से उदास दिखाई देता है। इसमें अकेलेपन की गहन अनुभूति है। यह अकेलापन कुछ विशिष्ट स्थितियो की उपज है जो व्यक्ति के बाहर और भीतर दोनो जगह विद्यमान है। ये स्थितियॉ उसकी अपनी चुनी हुई हैं। और इसलिए चुनाव के क्षणो मे यह मन स्थितियॉ, अनिश्चय और अनिर्णय की है। विद्रूप और व्यग्य की है। असगति और विसगति की है। इस ऊब और एकाकीपन ने इस कहानी के पात्रो को इतना नीरस बना दिया है कि सब आस–पास का वातावरण तथा सगे सम्बन्धी उनके जीवन के स्रोतों को सुखा से देते हैं।

तोषी और जुगल मध्यनिम्न वर्गीय दम्पत्ति है। जुगल एक दफ्तर मे साधारण कर्मचारी है, तोषी पढी लिखी है किन्तु घर के कार्यों को देखते हुए दिन भर उसे खालीपन तथा रिक्तता का अनुभव होता है। इससे सम्बन्धो मे बिखराव पैदा होने लगता है। तोषी और जुगल नामक दम्पत्ति के माध्यम से पति–पत्नी के असगत जीवन–सम्बन्धो को उकेरा गया है। तोषी को जीवन की एक रस निरतरता और अकेलेपन से इतनी ऊब हो गयी है कि उसका मनस्तत्व असतुलित हो उठा है। वह इस सूने घर मे एक विचित्र मन स्थिति का एहसास करती है। "दहलीज की तरफ जाते हुए उसे लग रहा था कि गर्मी उसे परेशान कर रही है। उधर से लौटते हुए लगने लगा की गर्मी नही, एक गन्ध है, जो उसे ठीक से सॉस नही लेने दे रही। वह गन्ध हर चीज से आ रही थी। पलग से खूटी पर टगे कपडो से फर्श से अपने आप से ।"[67] सम्बन्धों तथा अकेलापन की इस पूर्ति के

लिए तोषी पति जुगल से कुछ बात करना चाहती है तो ऐसे समय मे वह अपने को और खालीपन तथा खोखली महसूस करती है यदि कोई वस्तु की फरमाइश या शिकायत उसे जुगल से रहती है तो जुगल की आखो की बेबसी तथा असहाय चेहरा उसे बडा भयानक सा लगने लगता है– "तोषी को फिर वही चिढ हो रही थी। वह समझ नही पा रही थी– किस चीज से। अपने से ? कमरे के कोने–कोने मे लदे सामान से? खिडकी से कमरे मे फैल आयी धूप से।"[68]

तोषी को देखने से ऐसा लगता है कि सीमित परिवार के कारण उत्पन्न अकेलेपन ने तोषी को न केवल घर गृहस्थी अपितु बाहरी परिवेश (धूप) और यहाँ तक कि स्वयं से भी विरक्ति बना लिया है। वह इस सारी ऊब और तनाव भरे जीवन के लिए अपने पति जागरूक को जिम्मेदार मानती है तथा उसे छोडकर चली जाना चाहती है क्योकि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि जुगल के साथ वह बाहर की दुनिया से उत्तरोत्तर कट सी गयी है जिम्मेदार जुगल ही है, क्योकि "जुगल को उसके मायके के लोगो से चिढ थी, अपने घर के लोगो से चिढ थी, पास पडोस के लोगो से चिढ थी, हर आने–जाने वाले से चिढ थी, कभी–कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने, हर एक से चिढ है, बल्कि अपने आप से भी चिढ है। वह सुबह दफ्तर जाता था तो दफ्तर के लोगो पर बडबडाता हुआ शाम को घर आता था, तो घर के लोगो पर बडबडाता हुआ। जिन्दगी की हर चीज उसकी नजर से किसी वजह से गलत थी और वह अकेला हर गलत चीज को ठीक करने के लिए क्या कर सकता था?"[69] अस्तित्वादी दर्शन का एक मार्मिक पहलू होता है कि व्यक्ति अपने सिवाय किसी को कुछ समझता ही नही है उसे सारी दुनिया कटी एव खाली सी महसूस होती नजर आती है उसे सब सगे सम्बन्धी बेगाने से लगते है इसलिए तो तोषी से जुगल कहता है कि "कोई किसी का कुछ नही लगता. । ऐसा ही वहम होता है कुछ दिनो का, इन दो–तीन लोगो के साथ भी वहम ही बना हुआ है जब खत्म हो जाएगा, तब किसी को याद भी नही आएगी किसी की ।"[70] यह खालीपन तथा अलगाव वातावरण से उपजने के साथ ही साथ लेखक की व्यक्तिगत स्थिति को भी व्यक्त करता है। "यह अलगाव जहा एक लेखक के अपने स्वतन्त्र और निजी व्यक्तित्व को प्रभावित करता है, वहाँ वह उसके अन्दर उस अस्थिरता को भी जन्म देता है जो अपने आस–पास के पूरे रचना परिवेश के प्रति तटस्थ नही रहने देती। इस तरह 'अलग' होने के साथ–साथ सहभागी (पार्टिसिपेट) होना भी उसके लिए अनिवार्य हो जाता है"[71] यह अलगाव या खालीपन जुगल तोषी को पूरे विद्रोह तथा असन्तोष के बावजूद साथ रहने के लिए मजबूर करता है क्योकि वर्तमान जीवन की सबसे बडी विसगति भी यही है।

निष्कर्षत इस कहानी मे भी "पति–पत्नी साथ रहकर कुछ भी नही पाते, बल्कि एक दूसरे से भी खाली होते जाने की जिन्दगी की ओर बढते रहते है। पति–पत्नी के सम्बन्धो के ठडेपन के पीछे कोई सामाजिक दबाव नही, अपितु निजी स्वभावगत कारण है, अत यह कहानी व्यष्टि–बोध की है।"[72]

भूखे

'भूखे' कहानी मे आर्थिक विवशता एवम दाम्पत्य जीवन की पारम्परिक संस्कृति का परम्परागत रूप मानवीय सम्बन्धो के आधार पर उकेरा गया है। यह कहानी उस सुन्दर और आकर्षक युवती एवलीन की कथा है जिसे परिस्थितियो के क्रूर थपेडो ने निरन्तर प्रहार करके जर्जरित कर दिया है। सडक चलते नवयुवक, होटल का मैनेजर, ढाबेवाला सभी उसकी विवशता से लाभ उठाना चाहते है। वह आर्थिक अभाव मे भी अपना स्वाभिमान बनाए रखती है या अपने और अपने बच्चे के लिए किसी की दया नही चाहती।

एवलीन ने अग्रेज होते हुए भी सत्यपाल नामक पंजाबी युवक से प्रेम विवाह किया है। सत्यपाल अच्छा चित्रकार होते हुए भी धन कमाने मे सफल नही हो सका। चिता एवम सघर्ष के कारण उसे टी0 वी0 हो जाती है एवलीन अपना सब कुछ बेचकर उसे स्वास्थ्य लाभ हेतु शिमला ले आई है और तन–मन से उसकी देखभाल करती है पस्तु बचा नही पाती है। वह पति द्वारा बनाये गये चित्र बेचना चाहती है, पर उनका खरीददार नही मिलता। पति की मृत्यु, आर्थिक सकट और बच्चे का दायित्व उसे बिल्कुल ही तोड कर रख देते हैं– "एवलिन आर्थिक संकट के तनाव मे जीती है अर्थ के अभाव मे एवलिन अपने नवजात शिशु को अण्डे न देकर टिकिया खाने के लिए मजबूर करती है। माली हालत ठीक न रहने के कारण एवलिन को नैतिक और सामाजिक सकट भी झेलना पडता है।"[74] जहॉ कही भी जाती है लोग उसके यौवन और सौन्दर्य पर छीटा कशी करते है। उसके यौवन का सौदा करना चाहते है– लोग तस्वीरो को न खरीद कर कुछ दूसरी बात ही करते है। तभी तो होटल मैनेजर कहता है– "बात करने के लिए तो पचास आदमी जाते हैं, मगर उनका बात करने का मकसद तस्वीरे खरीदना थोडे ही होता है? वे तो इसलिए जाते हैं कि दस मिनट का लुत्फ ले ले. । तुम भी हो आओ।"[75] एवलीन जिस जगह भी जाती है सभी लोग उसे भूखे आदमी की तरह घूर–घूर कर देखते रहते है– "लोगो की आखे, नासिकाए और होठ मुसकरा रहे थे। जो बाते कही नही जा सकती थी उनका चटखारा लोग इशारो मे ले रहे थे"[76] परन्तु एवलिन कभी परिस्थिति से समझौता नही करती। उसकी आशा और विश्वास उसे हर सघर्ष का सामना करने की शक्ति देते है।

'भूखे' कहानी मे मोहन राकेश ने प्रतीकात्मक रूप से सम्बन्धो के क्षरण होने की प्रक्रिया को चित्रो के माध्यम से उभारा है। एवलीन द्वारा बेचे जाने वाले चित्रो का शीर्षक 'गिद्ध' एवम 'दाता' से यह तश्वीर उभर कर सामने आती है– "एक चित्र का शीर्षक था 'गिद्ध'। उसमे गिद्धो की आखे कुछ ऐसी थी जैसे वह दुनिया की हर चीज का मजाक उडा रही हो और चोचे कुछ इस तरह खुली थी जैसे हर चीज को निगल जाना चाहती हो। चोचो और पन्जों पर पुराने जमे हुए लहू के निशान थे। वह एक ऐसा चित्र था जिसे देख कर लेने को मन होता था और ऑखे हटा देने पर फिर देखने की कामना होती थी।"[77]। इसी तरह दूसरा चित्र भी वर्तमान हकीकत को प्रदर्शित करता था। चित्र का शीर्षक था 'दाता'। "उसमे एक हड्डियो का ढॉचा एक ठूठ के नीचे बैठा हाथ का खाली कटोरा शून्य की ओर उठाए था। वे ऐसे चित्र थे जो डरावनी छायाओ की तरह दिमाग मे घर कर जाते थे।"[78] कहानी मे भूखे प्रतीक ऐसा सजीव चित्र खीचता है जो मानवीय सम्बन्धो को दोनो स्तर पर जीते एव मरते चैन से नही रहने देता।

'भूखे' कहानी मे पारिवारिक विघटन की दास्तान एवलिन की निर्वासित और तनाव पूर्ण जिन्दगी मे जाकर उभरता है। और एवलिन की व्यर्थता मे जाकर स्पष्ट होता है। भूखे का मूल्याकन करते हुए डॉ0 ओमप्रभाकर लिखते है– "भूखे मोहन राकेश की एक कहानी है जिसमे एवलीन बार्कर नामक विदेशी महिला के माध्यम से एक ऐसी निष्ठावान पत्नी का चरित्र अकित किया गया है जो अपने पति के बीमार और बेकार हो जाने पर उसके (और अपने भी) पुत्र के पोषण तथा पति की तीमार दारी के लिए अथक सघर्ष कर अपने प्रेमी और पति (एवलीन ने प्रेम विवाह किया था) के प्रति अपने भक्ति के स्तर तक पहुँचे हुए प्रेम और कर्तव्य दोनो का एक साथ निर्वाह करती है। मोहन राकेश द्वारा उकेरा गया दाम्पत्य जीवन का एक चित्र यह भी है जो न केवल हमारी पारपरिक सस्कृति से ही अनुमोदित है अपितु स्वय में भी पर्याप्त आकर्षक वास्तविक अत स्पृहणीय है।"[73]

हकहलाल

'हकहलाल' आर्थिक विवशता और जीवन के दुहरेपन के कारण जीने वाले दम्पत्तियो के पारिवारिक दस्तान को यह कहानी रेखाकित्त करती है। 'हकहलाल' मे पहाडी बस्तिओ के उस परम्परा बद्ध प्रेम का निरूपण है जिसके अन्तर्गत नारी अन्य उपभोग वस्तुओ की भाति क्रय विक्रय की वस्तु मानी जाती है। भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है यहा पर सभी धर्मों के अपने–अपने रीति–रिवाज है जो व्यक्ति जिस समाज से सम्बन्ध रखता है उसे उसी के अनुसार अपनी रीतियो एव परम्पराओ का निवर्हन करना आवश्यक होता है यदि वह समाज की परम्पराओ या कर्मकाण्डो का उल्लघन करता है तो उसे सर्वप्रथम परिवार दण्ड देता है यदि

परिवार इसे नियत्रित नही कर पाता है तो सामाजिक सस्थाये या सरकार उसे दण्डित करती है। पहाडी रीति रिवाजो के अनुसार शादी के वक्त वधू की कीमत वर को चुकानी रहती है। बुडढा अपनी जवान और खूबसूरत लडकियो को बृद्ध अखबार वाले पण्डित के हाथ बेचता है। वह आर्थिक विवशता के कारण अपनी लडकियो की नही शादी कर सकता पर उन्हे बेचकर अर्थ का उपार्जन करता है।

अनमेल विवाह और उम्र का अन्तर अखबार वाले पण्डित को अपनी जवान बीबी से सामंजस्य स्थापित नही करने देता है और एक दिन उसकी बीबी घर से भाग जाती है। अपनी व्यथा को कथावाचक से पण्डित कहता है कि "आज इस औरत ने पुलिस वालो के जूते भी सुधा दिये। यह काम भी तकदीर मे लिखा था।"[79] अपनी इस विवशता एव सवेग को लेकर वह कथावाचक से यह भी कहता है कि कोई बात नही, मै इसके स्थान पर उसकी दूसरी बहन को ले आऊॅगा। और दावे के मुताविक वृद्ध पण्डित बुडढे की दूसरी जवान लडकी को ले आता है क्योकि ढाई सौ का खर्च वह बुडढा पडित को दे नहीं सकता था, फलतः उसने लडकी देना ही उचित समझा। कुछ दिन बाद उसकी दूसरी पत्नी पुलिस के हाथ लग जाती है और पुन बृद्ध पडित को सौंप दी जाती है ऐसी स्थिति मे दूसरी स्त्री को भी पडित बृद्ध को नही सौंपता, क्योकि पडित कथानायक से यह कहता है कि "मैने आपसे कहा था, इसका बाप बहुत गरीब आदमी है। उसके पास इसे खिलाने के लिए एक पैसा भी नही है। उसको इसका सौ–सवा सौ चाहिए सो मै उसे दे दूॅगा। इतने दिनो से घर में रही है, सो अब छोडने का मन नही करता आदमी को आदमी से मोह हो जाता है और क्या पता कल को बडी भाग जाय। ऐसी का कोई भरोसा थोडे है।"[80] आज मानवीय मूल्यो का पतन एव नारी जीवन की विवशता तथा सम्बन्धो का विखरना इतना तीब्र है कि उसे व्यक्ति रोक नही पा रहा है और निरन्तर विघटित होता जा रहा है। मोहन राकेश इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखते है कि इसमें "लेखक का वास्तविक कमिटमेन्ट किसी विशेष विचार धारा से न हो कर अपने से, अपने समय से और समय के जीवन से होता है।"[81]

निष्कर्ष रूप मे यह कहानी वर्तमान के यथार्थ, पारिवारिक मूल्यो के पतन होने की दम भरती है क्योकि "कहानी मे आर्थिक विपन्नता के कारण एक तरफ बुड्ढा कराह रहा है और दूसरी तरफ उसकी बेटी वृद्ध पंडित के साथ रहकर ऊब और घुटन से निर्वासित सी हो गयी है। वे दोनो बहिने वृद्ध पडित से जुडकर भी नही जुड पा रही। इसमे आधुनिकता बुड्ढे की घुटन और दोनो लडकियो की मजबूरी मे आकर स्पष्ट होती है। कहानी मे पात्र व्यर्थता के बोध से कराहते है, छटपटाते है पर मूक है।"[82]

जानवर और जानवर

आर्थिक विषमता ने किस सीमा तक निम्न मध्य वर्ग को तोड दिया है, झिझोड दिया है और टूटकर मनुष्य किस तरह जीवन की विडम्बनाओ व यातना मूलक असगतियो को विवश भाव से सहता हुआ भी जीने की ललक लिये हुए है यही सब 'जानवर और जानवर' कहानी मे अभिव्यक्त हुआ है। 'जानवर और जानवर' मे व्यक्ति के जीवन की विडम्बनाए और तत्सम्बधित घुटन को गहन सूक्ष्मता के साथ उरेहा गया है। इस कहानी मे मानवीय सम्बन्धो के विघटन का समकालीन परिपेक्ष मे यथार्थ का कडवा और तीखा स्वर है। कहानी के सभी पात्र अपनी विवशता के कारण पादरी से जुडे हुए है। उनमे आर्थिक अभावो से उत्पन्न पीडा गहरे मानवीय सम्बन्धो का बोध कराती है। जिस वर्ग के ये पात्र हैं, उस वर्ग की समस्त यातना गाथा और विडम्बनाएं पीटर, पाल, आन्ट सैली और अनीता के माध्यम से व्यक्त हुई है। अपनी विडम्बनाओं को सहते हुए भी इन पात्रो मे अभी भी कही न कही जीवन का स्पन्दन है जिसका स्वर पाल की वाणी मे सुना जा सकता है। जिस समय पाल के गिरजाघर न जाने पर पादरी उससे प्रश्न करता हुआ यह कहता है "तुम जानते हो जो अच्छा भला हो कर भी सुबह गिरजे मे नही आता उसे यहॉ रहने का कोई अधिकार नही है।"[83] मानवीय सम्बन्धो के प्रति पादरी की प्रतिक्रिया वाह्य एव आन्तरिक दोनो स्तर पर तोड कर रख देती है। यह राकेश की अनुभूति की प्रवणता ही कही जायेगी।

राकेश यथार्थचेता कलाकार थे, क्योकि उन्होने यह सब अनुभूति के स्तर पर झेला था। 'जानवर और जानवर' कहानी के माध्यम से पहाडी स्कूल की विशिष्ट परिस्थिति मे जीते, भोगते और झेलते मास्टर और मेट्रनो की जीवन–व्यापी विवशता पराश्रित भावना अरिक्षित स्थितियो की ओर सकेत किया है। फादर 'फिशर' का चरित्र काली स्याही से लिखा गया है अनीता और मणि नानावटी को वासनापूर्ति का माध्यम बनाया गया है, अधिकारो की शक्ति का प्रयोग करते हुए पादरी जिस तरह अनाचार, अनीति और भ्रष्ट तरीको को अपनाता है इससे मानवीय सम्बन्धो के पतित एव विघटन की यथार्थ तस्वीर स्पष्ट रूप से गवाही देती है। "तुम तीन दिन से गिरजे मे नही आये, उत्तेजना मे पादरी का हाथ पीठ के पीछे चला गया। वह बहुत कठिनाई से अपने स्वर को वश मे कर पाया था।"[84] पाल के प्रति यह पादरी का हिटलर जैसा वर्ताव एव स्कूल से निकाल दिया जाना, अन्य शिक्षको के लिए दहशत का रूप धारण कर लेता है तभी तो जॉन कहता है कि "मुझे लगता है कि इसके बाद अब मेरी बारी आएगी। मुझे पता है कि उसकी आखों मे कौन–कौन खटकता है। सैली का कसूर यह था कि वह रोज उसकी हाजिरी नही देती थी और न ही वह "[85] पादरी के पास अधिकारो की यह असीमित शक्ति दूसरो के लिए व्यवस्था विरोधी हो जाती है।

'जानवर और जानवर' मे कुत्तो के माध्यम से इसान और इसान के अतर को गहराया गया है। मिशन स्कूल की विशेष परिस्थिति मे जीते, भोगते, झेलते टीचर्ज और मेट्रनो की जीवन की व्यपक विवशता, पराधीनता और असुरक्षा की ओर किये गये सकेत लेखक के समष्टिबोध को प्रकट करते है। पादरी की कुतिया और पाल का कुत्ता छोटे और बडे के अतर को स्पष्ट करता है– ''हर जानवर एक सा नही होता। जानवर और जानवर मे फर्क होता है।''[86] जानवरो में यह अन्तर स्वीकृत है। बडी मछली, छोटी मछली को खा सकती है। इसी नियम के अनुसार फादर फिशर ने मिराशी, पाल, पीटर और आट सैली को जब चाहा नौकरी से बरखास्त कर दिया। मिशन के इस स्कूल का परिवेश इतना घुटन भरा है कि स्थिति कभी भी विस्फोटक हो सकती है, किन्तु फिर भी सभी चुप हैं। केन्द्रीय पात्र अनिता मुखर्जी के माध्यम से तनाव रचा गया है जिससे मिशन स्कूल की सम्पूर्ण खोखली सतही, नकली जिन्दगी बेनकाब हो उठती है। ऊपर से भलामानुस दिखने वाला फादर फिशर अदर से काली शक्तियो को प्रश्रय देने वाला एक शोषक हैवान है, मनुष्य के वेश मे जीवित जानवर है, जिससे लडना शेष है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान इस पर टिप्पडी करते हुए यह व्याख्या करते है कि ''इस कहानी की रचना प्रक्रिया व्यग्य के स्तर पर है। व्यग्य के छीटे इस रचना मे जान डाल देते है और जानवर का प्रतीक इसके अशो को बिखरने नही देता है। अन्त मे गिरजे की घटियो का डिगडाग मिशन के अहाते की सतही नकली और खोखली जिन्दगी को मुखरित करता है।''[87] कहानी मे अमानवीयता व्यग्य के स्तर पर अन्याय सहते हुए पात्रो के भीतर कसमसाहट को व्यक्त करती है तभी तो दूधनाथ सिह इस पर अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करते हैं– ''राकेश झॅझोड देने वाले तिलमिला देने वाले व्यग्य से काम लेते हैं ।''[88]

निष्कर्ष रूप मे यही कहा जा सकता है कि जानवर और जानवर कहानी में खोखली जिन्दगी के प्रति उभरता हुआ आक्रोश लेखक के समष्टिबोध पर पारिवारिक रिश्तो (स्कूल) पर प्रकाश डालता ही है, सामाजिक न्याय के अभाव को भी रेखाकित करता है। 'जानवर और जानवर' एक विशेष परिस्थिति मे जीते, उसे भोगने और झेलते मास्टर और मैट्रनो के जीवन की व्यापक विवशता और अरक्षा की कहानी है। लेकिन यह विवशता, पराधीनता और अरक्षा आज उन सभी के लिए है जो नौकरशाही के शिकार है।

पॉचवें माले का फ्लैट

'पॉचवे माले का फ्लैट' मे आर्थिक सकट को झेल रहे आधुनिक व्यक्ति को दिखाया है जो अर्थ के अभाव मे अपनी प्रेमिका के साथ दोहरी जिन्दगी जीता है एव अपने साथ दूसरी जिन्दगी जीता है। ''यहॉ अभावपूर्ण अविनाश की जिन्दगी है। वह समाज मे स्थान ग्रहण करने के लिए लोगो से

अपेक्षित न होने के लिए अपनी जेब मे एक–दो चारमीनार सिगरेट रखता है और उसके लिए पैंट का क्रीज ठीक रखना अनिवार्य है। वह पैसे के अभाव मे सरला और प्रमिला से भी नही बध पाता और यहॉ तक कि वह स्वय से भी नही जुड पाता। अर्थ के अभाव ने उसे 'पॉचवे माले के फ्लैट' से अवश्य जोड दिया है। कहानी का नायक अविनाश पैसे के अभाव मे अपनी प्रेयसी प्रमिला से सम्बन्ध नही जोड पाता है और उसे झूठ भी बोलना पडता है क्योकि प्रमिला एक आधुनिक लडकी है और वह अविनाश से कुछ न कुछ फरमाइश करती रहती है – "वह पिक्चर देखना चाहती थी हैमलेट। एक दिन पहले मै उनसे यही कहकर आयाथा। खुद ही उसने हैमलेट की तारीफ की थी। पचासेक रूपये एक दोस्त से उधार ले लिए थे। मगर चालीस से ज्यादा उनके यहा ताश मे हार गया था– उनके भाई के पास जो कि इस समय सत्ती से सतीश हो गया था। शर्मा के यहॉ वे लोग ठहरे थे। उसी ने उनसे परिचय कराया था। वह उस वक्त पर नही था। शाम की ड्यूटी पर गया था। वह होता तो और दस–बीस उधार ले लेता। जब उन दोनो को साथ लेकर निकला, जेब मे कल छ रूपये बाकी थे।"[89] अविनाश की यह विवशता हैकि वह झूठी शान शौकत दिखाकर प्रेमिका एवं उसकी बडी बहन सरला के साथ जुडा रहना चाहता है परन्तु इस जुडने मे आर्थिक समस्या उसे जुडने नहीं देती है। आधुनिक पारिवारिक विघटन मे महानगरो की एक अहम भूमिका रहती है। व्यक्ति अर्थ की तलाश मे ठोकरे खाता फिरता रहता है और समय से उचित काम न मिलने से अभाव ग्रस्त जीवन जीने पर मजबूर होता है अविनाश की स्थिति यही है कि वह पैसो के अभाव मे एक ऐसे गर्हित स्थान मे पॉचवी मजिल मे रहता है जहॉ हर कोई रहना पसन्द नही करता विशेष कर प्रमिला और सरला तो कतई इसे पसन्द नही करती है– "सोचा, घर ही चलना चाहिए, पर कदम ही नही उठे, अधेरे जीने का ख्याल आया। एक के बाद एक – पॉच माले। पहले माले पर सारी बिल्डिग की सडाध। दूसरे पर खोपडे की बास। तीसरे पर कुठ और अनारदाने की बू। चौथे पर आयुर्वेदिक औषधियो की गध। पाचवे माले की बू का ठीक पता नही चलता था। प्रमिला ने तब कहा था कि सबसे तेज बू वही हैसरला इससे सहमत नही थी। उसका कहना था कि सबसे तेज गन्ध आयुर्वेदिक औषधियो की है।"[90] कहीं न कही कुछ तो कमी थी ही इस फ्लैट मे नही इतनी व्यग्य भरी बाते उसके सम्बन्धी नही कहते। अविनाश की इस जगह रहने के पीछे उसकी अपनी विवशताये थी तो दूसरी ओर इस स्थान पर आना या न आना प्रमिला और सरला के लिए कोई महत्वपूर्ण बात नही थी, फिर भी अविनाश के प्रति लगाव के कारण प्रमिला यहॉ दो बार आयी थी शायद उसने सोचा हो कि अविनाश हो सकता है कि अब इस स्थान को बदल चुका हो इसलिए उसने इतने दिनो की मुलाकात मे बही प्रश्न किया कि वही पॉचवे माले मे अभी रह रहे हो शायद इसके पीछे प्रमिला के दिमागी जेहन मे वही गन्ध रही

हो जो सबसे ज्यादा सबसे तीखी थी। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार– "कहानी मे महानगरी बोध किस तरह इसान को परिवेश से काटकर अकेले छोड देता है इसका वर्णन किया गया है।"[91]

इस प्रकार सम्बन्धो के विघटन की यह त्रासदी अर्थ की समस्या को लेकर प्रमुख रूप से उत्पन्न हुई है। उर्मिला मिश्र के शब्दो मे कहे तो यह "बिखरी हुई जिन्दगी अभाव ग्रस्तता के कारण है। यहॉ परिवेश से कटकर जीने मे आधुनिकता स्पष्ट होती गई है। इस तरह की आधुनिकता नगरबोध से जुडकर भी उभरती है।"[92]

मंदी

'मदी' आर्थिक विषमता से ग्रस्त पहाडी जीवन के लोगो की अभाव ग्रस्त जीवन की दास्ता बया करती है क्योकि यहॉ का जीवन मैदानी लोगो की कृपा से ही चलता है। पहाडी जीवन की अपनी कुछ विषमतायें एव विडम्बनाये होती है जो विशेष वर्ग की कृपा से जुडी हुई होती है। इस कहानी के सभी पात्र नत्था सिंह, बसन्ते, हलवाई रेस्तरा का पाजामा कमीज वाला व्यक्ति, पहाडी कोयले वाली नवयुवती तथा उसका छोटा बेरोजगार भाई तथा बुड्ढा सभी लोग आर्थिक सकट झेल रहे हैं।, ये लोग अपने लिए नही दूसरो के लिए अवश्य जी रहे है ये सब स्वय से न जुडकर घूमने आये "मैं' से अवश्य जुड जाते है क्यो ये अपने लिए नही पर 'मै' के लिए मुर्गा बनाने की नियति मे जी रहे है "खास आपके लिए मुर्गा बनाया था, नत्थासिह ने कहा, हमने सोचा था कि भाई साहब देख ले, हम कैसा खाना बनाते हैं। खयाल था दो एक प्लेटें और लग जायेगी। पर न आप आए और न किसी और ने ही मुर्गे की प्लेट ली। हम अब तीनो खुद खाने बैठे है। मैने मुर्गा इतने चाव से , इतने प्रेम से बनाया था कि क्या कहूँ। क्या पता था कि खुद ही खाना पडेगा। जिन्दगी मे ऐसे भी दिन देखने थे। वे भी दिन थे कि जब अपने लिए मुर्गे का शोरबा तक नही बचता और एक दिन यह है भरी हुई पतीली सामने रखकर बैठे है गाठ से साढे तीन लग गए जो अब पेट मे जाकर खनकते भी नही।"[93] यह विवशता अकेले नत्था सिह की ही नही है इस दश रूपी मदी से यहॉ सभी पहाडी ग्रसित है क्योकि कोयले वाली लडकी अपने छोटे भाई को 'मै' के पास रखना चाहती है– "आपको खाना बनाने के लिए नौकर चाहिए? मेरा छोटा भाई है सब काम जानता है।पानी भी भरेगा। बरतन भी मलेगा। आठ रूपये महीने मे सभी काम कर देगा। पहले एक डॉक्टर के घर मे काम करता था। डॉक्टर अब यहॉ से चला गया है । मै कल इसी वक्त उसे लेकर आउगी लडकी ने फिर भी चलते–चलते मुडकर कह दिया।"[94]

आर्थिक विषमता से मानवीयता का लोप होता है बुड्ढा जो कभी एक कोठी एवम बाग का मालिक था, आज को एक प्याली की तलाश मे बर्बाद कर देना चाहता है– "उसी समय वह आदमी, जो कुछ घटे पहले मुझे चेयरिंग क्रास पर मिला था, मेरे पास आकर खडा हो गया। अधेरे मे उसने मुझे नही पहचाना और छडी पर भार देकर नत्था सिह से पूछा, नत्था सिह एक ग्राहक भेजा था, आया था? कौन ग्राहक? नत्था सिह चिढे– मुरझाए हुए स्वर मे बोला। घुघराले बालो वाला नौजवान था मोटे शीशे का चश्मा लगाए ? उसने मुझे लक्ष्य करके कहा और फिर नत्था सिह की तरफ देखकर बोला, तो ला नत्था सिह चाय की प्याली पिला"[95] बुड्ढे की यह त्रासदी और उसकी यह स्थिति असगति और फालतू होते जाने के बोध को अभिव्यक्ति देती है। पारिवारिक एव मानवीय सम्बन्धो का विघटन जारी है, साथ ही "भूख बेबसी, बीमारी बढती जा रही है और मनुष्य केवल पैसा कमाने वाली एक कलमात्र बनकर रह गया है और उधर 'मदी' ने अच्छे खाते–पीते व्यक्तियो को कमीना बना दिया है।"[96]

उसकी रोटी

'उसकी रोटी' कहानी सम्बन्धो के विघटन और जुडे रहने की छटपटाहट को व्यक्त करती है। इसमे पति–पत्नी किसी भी स्तर पर एक दूसरे से बधे है। सुच्चा सिह के आने की प्रतीक्षा मे उसकी पत्नी टूट रही है। बालो और उसका पति ड्राइवर सुच्चासिह के टूटते–जुडते सम्बन्धो की कहानी है एक गॉव मे बालो अपनी छोटी बहिन जिदा के साथ रहती है और सप्ताह मे छह दिन उसे सुच्चा के लिए एक मील पैदल चलकर खाना देने जाना होता है। घर के कार्यो मे थोडा लेट हो जाने पर उसे सुच्चासिह की झिडक भी सुननी पडती है सुच्चा कहता है कि "वह सरकारी नौकर है, उसके बाप का नौकर नही कि उसके इन्तजार मे बस खडी रखा करे वह चुपचाप उसकी डाट सुन लेती और रोटी दे देती"[97]

बालो पुराने सस्कारो से बधी एक भारतीय पतिब्रता स्त्री है उसकी विवशता है कि वह पति सुच्चा से खुलकर बात नही कर सकती है । पति सप्ताह मे चाहे एक दिन आये या न आये वह उससे कुछ पूछ नही सकती है क्योकि उसे चिन्ता है कि ऐसा करने से उसका पति उसे पैसे देना छोड देगा और पति प्रेम से वह वचित भी हो सकती है। बालो को पति से बहुत सी शिकायते एव आकाक्षाये है, जो उसे अदर ही अदर तोडती रहती है। उसे यह भी मालूम पडा है कि शहर मे सुच्चा ने एक रखैल छोड रखी है। और अपने वेतन का तीन चौथाई भाग वह उस पर खर्च भी करता है। इसी तरह बालो ने एक दिन सुच्चा से कहा था कि उसे शहर मे घूमने जाना है। तब सुच्चा ने कहा कि "क्यो तेरे पर निकल रहे है? घर मे चैन नही पडता? सुच्चा सिह वह मरद नही है कि औरत की बाह पकडकर

उसे सडको पर घुमाता फिरे। घूमने का ऐसा ही शौक है तो दूसरा खसम कर ले मेरी तरफ से तुझे खुली छुट्टी है।"[98] डॉ ओम प्रभाकर इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते है कि यहाँ "नायिका बालो का अपने बस ड्राइवर पति के प्रति एक सामान्य भारतीय ग्रामीण नारी का एक निष्ठ प्रेम है।"[99] सुच्चा सिह से बालो अपनी व्यर्थता एव कष्ट को बताना नही चाहती। इसके पीछे उसके पुरातन सस्कार हावी हो जाते है यही कारण है कि जिदा बहन को गाव का एक सिरफिरा जगी छेड देता है फिर भी बालो पति की भलाई के लिए इसकी चर्चा नही करती है क्योकि इसमे उसके पति का हित जुडा हुआ है ओम प्रभाकर की टिप्पडी है कि यहाँ बालो जैसी नारी का पत्नी रूप मे कष्ट झेलना और पुरूष का पति–रूप मे जाने–अनजाने आततायी हो उठना ही जैसे दाम्पत्य जीवन की वास्तविकता है।"[100]

नारी की यह विवशता ही उसको महान बनाती है क्योकि बालो यह भलीभाति जानती है कि उसका पति दूसरी स्त्री रखे हुए है और उसे सप्ताह मे जब कब ही मिलने का अवसर देता है परन्तु फिर भी वह समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाती है क्योकि इसी मे उसकी अभीष्ट सिद्ध है भविष्य की सुखद कल्पना मे बालो सुच्चा के प्रति पूर्ण आस्थावान भी नजर आती है। यह वर्तमान जीवन की नियति को रेखाकित करती है।

डॉ0 उर्मिला मिश्र इस कहानी के मूल्याकन मे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहती हैं कि "अपने 'लोकल टच' के कारण प्रेमचद की परम्परा की कहानी बन जाती है। सम्बन्धो की व्यर्थता ही मात्र कहानी को आधुनिक बना देती है। इस कहानी मे अनपढ और आश्रित नारी के आदर्श का उदघाटन सवेदन ढग से किया गया है जो यथार्थ परक, वास्तविक और विश्वसनीय है"[101]

बिलगाव और खण्डित होने की प्रक्रिया के कारण पारिवारिक विघटन

आधुनिकी और ज्ञान विज्ञान के प्रभाव के कारण मनुष्य मात्र पुर्जा बनकर जीवित है। परिवेश दबाव और वास्तविकता के त्रासद बोध से उसके अदर व्यापक सक्राति उत्पन्न हुई है। राकेश की कहानियो मे भारतीय परिवेश मे निरन्तर खण्डित होते हुए आदमी का चित्रण प्रखरता से दिखाई देता है। वर्तमान समय मे व्यक्ति की मानसिकता के स्तर मे बदलाव आया है। वह आपसी रिश्तो में केन्द्रित और सकुचित हो गया है। और निरन्तर अकेले होने की यत्रणा से पीडित है। अकेलापन मनुष्य के जीवन में सामाजिक स्थिति बन गयी है। एकान्त की कामना और अकेलेपन की दुर्निवार अनुभूति ही व्यक्ति मे बिलगाव की स्थिति लाती है। वह भीड में भी अकेला अनुभव करता है। परिणाम है कि व्यक्ति सबसे कटकर जीने के लिए विवश है। यही स्थिति आत्मनिर्वासन की स्थिति उत्पन्न

करती है। दूसरी तरफ आधुनिक भाव–बोध की स्थिति ने मनुष्य को स्थापित मान्यताओ और सामाजिक रीति–रिवाजो से काट दिया है। आधुनिकीकरण ने ही आदमी–आदमी के जीवन मे औपचारिकता का भाव घोल–घोल कर रख दिया है इसलिए वर्तमान मे व्यक्ति जिन्दगी के सारे चक्रो में फॅसने के लिए अभिशप्त है।

मोहन राकेश की कहानियो के अनेक पात्र दिग्भ्रमित, निर्वासित और अन्दर के तनाव मे टूटते हैं– जख्म, मिसपाल, वारिस, भूखे, मन्दी इत्यादि।

ज़ख्म

'जख्म' कहानी व्यक्ति के अलगाव एव आत्म खण्डित होने की कहानी है। राकेश कृत 'जख्म' केवल जख्मी आदमी की ही कहानी नही है बल्कि आज के उन लोगो की कहानी है जो मानव–नियति की भयकर प्रवंचना मे सास ले रहे है। इस कहानी मे जख्मी आदमी का सत्रास उसका केवल अपना नही है, सार्वदेशिक है। 'जख्म' का वह बिखरा हुआ, भटका हुआ और बदचलन दिखाई दे सकता है किन्तु जिन कारणो के दुर्दान्त यथार्थ ने उसे तोडा है और व्यवस्था विरोधी बनाया है उसकी स्पष्ट छाया पूरी कहानी के परिवेश मे है। कहानी का नायक 'वह' प्रबल अहवादी व्यक्ति है। यह झुकना नही जानता धीरे–धीरे टूटता जाता है इस टूटन की खनक भी कोई सुने, यह उसे गवारा नही है।वह पीकर घायल एव परेशानी में मित्र के साथ कही जाना चाहता है। वह अधिक पीकर बहुत खुश होता है। वह कही जाकर दोस्त को सिर्फ यह बताना चाहता है कि वे दोनो अब दोस्त नही है। वह दोस्त से भी इस तरह की बाते करता है जैसे उससे उसकी पुरानी दुश्मनी है . । "तुम्हारी बुश्शर्ट पर ये दाग कैसे है? मैंने पूछा उसने भी एक नजर उन दागों पर डाली–ऐसे जैसे उन्हे पहली बार देख रहा हो। कैसे है? उसने ऐसे कहा जैसे मैने उस पर कोई इल्जाम लगाया हो। 'हाथ कट गया था, उसी के दाग होगे।' हाथ कैसे कट गया? उसका चेहरा कस गया। कैसे कट गया? वह बोला, कैसे भी कटा हो, तुम्हे इससे क्या है।"[102]

नायक वह अनेक बार अच्छी सी लडकी देखकर शादी करने का निश्चय करता है क्योकि अपना अकेलापन उसके लिए असह्य हो गया है। वह छोटी–छोटी बातो मे लोगो से झगड जाता है। वह बिना किसी लाग लपेट के सब बाते कहने की क्षमता रखता था। उसका अधिकतर प्रेम विवाहित स्त्रियो के साथ ही होता था। वह जिन्दगी के विषय मे बडे–बडे मनसूबे बॉधता था। वह कभी नौकरी लगी होने पर कहता– "नही, मैं तुम लोगो की तरह नही जी सकता मै अपने वक्त का हिस्सा नही, उसका निगहवान हूँ।"[103] लम्बी बेकारी के दौरान वह कहता है "मुझे समझ आता है कि मैं बिल्कुल कट गया हूँ हर चीज से बहुत

दूर हो गया हूँ।"[104] इस तरह उसका बेकारी के दौरान सबसे कट जाना बहुत स्वाभाविक है। राकेश को मालूम था कि बेरोजगारी मनुष्य को क्या से क्या बना देती है। अत अनुभूति सत्य को उन्होने जख्म के माध्यम से सशक्तता प्रदान की है। नौकरी छूटने पर व्यक्ति अपने को अशक्त मानते हुए भी स्वीकार करना नही चाहता । उसका अह उसे झुकने नही देता है। डॉ0 उर्मिला मिश्र के अनुसार – "जख्म का नायक अमानवीय दौड धूप के बावजूद जीवन मे कोई निर्णय नही ले पाता, जीने के लिए कोई निश्चित धरातल नही ढूँढ पाता। वह बाहर भीतर से लहूलुहान होकर भी जिन्दा है।"[105]

जख्म कहानी का कथा–नायक आत्मकेन्द्रित है। वह अपने परिवेश से कटकर नितांत एकाकी जीवन जी रहा है, बिल्कुल अपनी ही तरह का जीवन । कभी वह नौकरी पर जाता है तो कभी बेकार है। व्यवस्थित जिदगी से शीघ्र ही ऊब जाता है। नायक वह अपने ढग से जीने का कायल है। किन्तु परिवेश मे अकेलेपन के बोझ से दबा हुआ है। कभी वह नौकरी करता है तो कभी बेकारी भोगता है। जीवन मे आये अकेलेपन को वह शादी से भरना चाहता है। वह जीने के लिए जीवन मे ऐसी लडकी का चुनाव करना चाहता है जो उसके बेकार होने पर "अपना भार खुद सभाल सकती हो"[106] वह विवाह करने का फैसला करता है लेकिन जीवन मे उस फैसले को दुहराता है, करता नही है। क्योकि वह "जैसा बेकार कल था वैसा ही आज भी है"[107] उसकी भटकन व अकेली स्थिति जीवन की व्यवस्था के कारण है। वह टूटा हुआ और बिखरा हुआ तो है किन्तु इस सबके पीछे व्यवस्था जिम्मेदार है क्योकि जख्म के नायक का चिन्तन साधारण न होकर असाधारण है सामाजिक व्यवस्था से टूटा हुआ और अकेला यह नायक वक्त का निगहवान है। "वह जीता नही है, देखता है क्योकि जीना अपने मे घटिया चीज है। जीने के नाम पर तो पेड–पौधे भी जीते है पशु पक्षी भी जीते हैं।"[108] नायक वह का व्यक्तित्व आस्तित्विक सदर्भों में भी देखा–परखा जा सकता है। भयावह परिवेश मे घिरकर और अकेलेपन से दबकर टूटता हुआ वह जिजीविषा से मुक्त है। उसका यह चाहना और कहना कि "पर तुम्हे इतना बता दूँ कि मुझे कम से कम बीस साल और जीना है। मै तुम्हारे या दूसरे लोगो के बारे मे नही कह सकता पर अपने बारे मे कह सकता हूँ कि मुझे जरूर जीना है।"[109] यह कथन उसकी आस्तित्विक दौड को स्पष्ट करता है। ऐसा लगता है कि जख्म यहॉ हाथ मे नही है अपितु उसके मूल अस्तित्व रूप मे भी है जिससे कचोट और पीडा बाहरी जख्म को महसूस ही नही होने देती असल मे बाहरी जख्म तो उतना नही है जितना कि भीतरी । यही कारण है कि बडे शहरो की भीड मे इस व्यक्ति का चेहरा यह इशारा करता है कि आज सम्बन्ध कितने जड निष्क्रिय हो गये है और व्यक्ति अर्थहीन और अकेलेपन से भर गया है।

डॉ0 इन्द्रनाथ मदान समीक्षात्मक रूप से इस कहानी की विवेचना करते हुए लिखते है कि – "यह कहानी एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसकी मूल समस्या है जीवन को अपने तौर–तरीके से जीने की समस्या, लेकिन लेखकीय प्रस्तुतीकरण नायक के चरित्र और उसकी समस्या दोनो को ही जीवन–जगत की सहजता से जुडा नही रहने देता। अपने देशकाल मे नायक की अकेले होने की अनुभूति के साथ अपनी शर्तों पर जिन्दगी जीने का विश्वास परस्पर एक–दूसरे को काटते है। ऐसा प्रतीत होता है कि नायक के आचार–विचार भोक्ता के नही, वक्ता के आचार–विचार है,... कथानयक की आस्था कहानी के भीतर से उभरने के बजाय बाहर से आरोपित लगती है।"[110] मदान जी की टिप्पडी उचित है परन्तु यह भी सच है कि यह टूटे हुए एवम बिखरे व्यक्ति की कहानी है जो अकेलापन झेल रहा है अस्तु फिर भी अपने अस्तित्व के प्रति सजग एवं जागरूक है।

मिसपाल

'मिसपाल' कहानी एक ऐसी अविवाहित नारी के पारिवारिक विघटन की अभिव्यक्ति है जो परम्परावादी परिवार मे अपने ही माता–पिता तथा भाई–बहनो के स्नेह से वचित होकर अपना घर नही बसा पाती, नौकरी तथा शरीर की स्थूलता से समाज उसे स्वीकार नही करता और वह बिलगाव तथा खण्डित हो जाती है।

अपने बाह्य परिवेश तथा अतर्जगत मे कोई सामजस्य न बैठा पाने के कारण 'मिसपाल' का जीवन एक कुठित नारी का जीवन बनकर रह गया है। लेखक ने इसका चित्रण वैयक्तिक स्तर पर किया है। 'मिसपाल' दिल्ली मे सूचना विभाग मे कार्यरत हैं। दफ्तर के वातावरण मे अपने–आप को मिसफिट महसूस करते हुए 'मिसपाल' बेहतर जीवन जीने के लिए नौकरी छोडकर कुल्लू मनाली चली जाती है यह सब निर्णय वह इसलिए करती है क्योकि दफ्तर मे उसके विभाग के सहयोगी उस पर व्यंग्य करते है– "क्या बात है मिसपाल आज रग बहुत निखर रहा है।". दूसरी ओर से दूसरा सहयोगी कहता है कि "आजकल मिसपाल पहले से स्लिम भी तो हो रही है।"[111] मिसपाल भी अपने स्थूल शरीर के प्रति असहजता महसूस करती है। इसलिए अपने एक सहयोगी मित्र रणजीत से कहती है कि मैने इस लिए त्याग पत्र दिया है कि "यहॉ ऐसे लोगो के बीच और रहूँगी तो मेरा दिमाग बिल्कुल खोखला हो जायेगा। तुम नही जानते कि मैं तुम्हारे लिए सुबह दूध और सब्जियॉ लेकरजाती रही हूँ, उसे लेकर भी ये लोग क्या क्या बाते करते रहे है। ये लोग अच्छे– से अच्छे काम का ऐसा कमीना मतलब लेते हो उनके बीच आदमी रह ही कैसे सकता है।"[112] ऐसे लोगो से बचने के लिए ऐसे स्थान की तलाश करती है। "जहॉ यहॉ की सी गन्दगी न हो, और लोग इस तरह

की छोटी हरकते न करते हो।"[113] 'मिसपाल' को "लोगो से अपना पिकी ज्यादा अच्छा लगता है।"[114] उसको सहसा देखकर यह निर्णय कर पाना मुश्किल हो जाता है कि वह औरत है या मर्द। यहॉ तक कि उसके बनाये हुए चित्रो से भी इसका आभास मिलता है। क्योकि वह हमेशा अपने चित्रो के लिए मोटी भद्दी और विकलाग आकृतियॉ ही चुनती है।

मिसपाल कहानी में एक ऐसे नारी चरित्र की व्याख्या हुई है, जो बहुत अधिक चर्चित उपेक्षित, निन्दित होते हुए भी हद से ज्यादा इन्सान हैं वह अपने वातावरण से अब ऊब चुकी है और नही चाहती कि उसका कोई परिचित उसे याद करे। मिसपाल इसलिए रणजीत से मिलने पर जो उसका कुल्लू मनाली मे सहयोगी के साथ–साथ इस समय अतिथि भी है, वह उससे अपने पूर्व सहयोगियो के प्रति अनास्था व्यक्त करती है साथ ही रणजीत के प्रति विशेष अनुराग, क्योकि "अब जबकि वह किसी भी पुरूष को स्वीकार कर लेने के लिए प्रस्तुत है, कोई भी तो नही है जो उसके अन्तर की पुकार सुन सके। इस स्थिति मे वह यदि असामान्य व्यवहार कर बैठे तो सहानुभति के स्थान पर अनेक शब्द और आक्षेप उस पर चिपका दिये जाते है।"[115] कुल्लू प्रवास के समय रणजीत भी मिसपाल से कट रहा है क्योकि एक रात मिसपाल के यहॉ व्यतीत करने पर मिसपाल का खुलापन रणजीत पचा नही पाता है और इसे वह मजाक की दृष्टि ही समझता है। मिसपाल ने रणजीत को अपने यहॉ जानबूझकर इसलिए ठहराया है कि वह उससे प्रणय निवेदन कर सके परन्तु कुण्ठित एव अनाम डर से वह ऐसा नही कर पाती है। रात मे सोते समय उसने पूरी कोशिश की कि रणजीत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके, रणजीत ने भी महसूस किया कि उसके "आस–पास एक बहुत तेज सांस चल रही है जो धीरे–धीरे दबे पैरो, सारे वातावरण पर अधिकार करती जा रही है।"[116] इन स्थितियो के प्रति ऐसा नही था कि रणजीत पहले से अवगत न हो? वह इस भय से भलीभाति परिचित था और यह अनकहा प्रणय निवेदन वह स्वीकार नही कर सका। सुरेश धीगडा इस पर टिप्पडी करते हुए लिखते हैं कि "कालान्तर मे भी 'सेक्स' उसे आब्सेस करता रहा। यहॉ तक कि वह जीवन मे कभी भी इतना साहस नही जुटा पाई कि मर्द की पशु–शक्ति का सामना कर सके। परिणामत वह नौकरी से त्यागपत्र देकर एकान्त पहाडी ग्राम मे एकाकी जीवन व्यतीत करने लगती है, किन्तु अनुभूति उसे नही त्यागती कि वह एकदम अकेले अनप्यार पाई स्त्री है।"[117]

मिसपाल जीवन के क्षेत्र मे ऐसी असफल आधुनिका नारी है जो अपने भीतर की घुटन और अवसाद से टूट रही है उसकी जिन्दगी विखर सी गई है। "हर चीज दूसरी चीज की जगह काम में लायी जा रही थी, एक कुर्सी ऊपर से नीचे तक मैले कपडो से लदी थी। दूसरी पर कुछ रग बिखरे थे और एक प्लेट

रखी थी। जिसमे बहुत सी कीले पडी थी।"[118] यह चित्र मिसपाल के बिखराव को व्यक्त करते है यही अस्त–व्यस्त जिन्दगी उसे अजनबी और अकेला बना देती है। डॉ0 इन्द्र नाथ मदान मिसपाल कहानी का मूल्याकन करते हुए लिखते है कि– "एक बार अपने अतिथि से थोडा खुलकर वह फिर अपने मे बद हो जाती है, उसका खुलना बेकार है, लेकिन उसका बद होना उसके भीतर को खोलता है। एकाएक थोडा परिचित होकर वह अपरिचित होने लगती है परिचित होना बेकार है। वह इसानो और चूहो से तग है।"[119]

वारिस

'वारिस' कहानी आर्थिक विवशता में जीते हुए तथा पढे लिखे उस वर्ग की कहानी है जो रोजगार की तलाश मे ट्यूशन तक करने पर विवश होता है और इस पीडा मे वह लगातार टूटता तथा विघटित होता जाता है। वारिस के अंग्रेजी मास्टर बी0 एल0 पास हैं और अर्थ की समस्या के कारण वह दो छोटे बच्चो को ट्यूशन पढाने पर विवश है, इस विवशता के बीच उन्होने सिद्धान्तो एवम उसूलो से समझौता नही किया है। वह एक वेतन मास्टर नहीं अपितु एक कर्मठ स्नेहशील, साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भी है– "एक दिन अचानक ही वे पिताजी के पास बैठक मे आ पहुँचे थे। उन्होने कहा था कि एक भी पैसा पास न होने से वे बहुत तगी मे है। मगर वे किसी से खैरात नही लेना चाहते, काम करके रोटी खाना चाहते है।"[120] ट्यूशन मास्टर की यह आर्थिक विवशता इतनी निरीय एव दयनीय है कि वह ऐसी गर्हित जगह मे रहते है जहॉ स्वास्थ्य ठीक रह ही नही सकता है कथानायक जब उनकी बीमारी मे उनके कमरे मे गया तो ठिठक गया– "कोठरी निहायत बोसीदा थी और उसमे चारो तरफ से पुरानी सीलन की गध आती थी। दीवारो का पलस्तर जगह–जगह से उखड गया था और कुछ जगह उखडने की तैयारी मे ईंटो से आगे को उभर आया था। पलस्तर का कोई टुकडा खप से नीचे आ गिरता, तो मै ऐसे चौक जाता जैसे मेरी आखो के सामने किसी मुर्दा चीज मे जान आ गई हो। खिडकी मे सलाखो की जगह बास के टुकडे लगे थे। गली से उठती हुई भयानक दुर्गन्ध से दिमाग फटने लगता। वह गली जैसे शहर का कूडा–घर थी। एक मुर्गा गली के कूडे को अपने पैरो से विखेरता रहता और हर आठ–दस मिनट के बाद जोर से बाग दे देता।"[121] मास्टर जी की यह विवशता उनकी अपनी व्यक्तिगत विवशता ही नही है वरन ऐसे कितने लोग और भी है जो इस तगहाली बेरोजगारी की मार झेल रहे है।

ट्यूशन मास्टर के पास कुल जमा पूँजी उनका लिखा हुआ साहित्य है जो वे बच्चो को देना चाहते है परन्तु समाज की विडम्बना देखिए कि जिस व्यक्ति ने जीवन के कटु यथार्थ को भोगा और उसे अपनी लेखनी से अनुभव सत्य

को लिखा, उसकी कद्र करने वाले उसे नही मिलते यदि मिलते हैं तो उन कागजो से एक खेल खेला जाता है– "मास्टर ही से कागज लेते हुए हम चोर आख से एक–दूसरे की तरफ देखते और मुश्किल से अपनी मुस्कुराहट दबाते। मास्टर जी किसी–किसी दिन अपने पुराने कागजो के पुलिदे साथ ले आते थे और वही बैठकर उनमे से हमारे लिए कुछ हिस्से नकल करने लगते थे। इधर मास्टर जी वे पुलिदे हमारे हाथो मे देकर सीढियो से उतरते उधर हमारी आपस मे छीना झपटी आरम्भ हो जाती और हम एक–दूसरे के कागज को मसलने और नोचने लगते। अक्सर इस बात पर हमारी लडाई हो जाती कि मास्टर जी एक को अठारह और दूसरे को चौदह पन्ने क्यो दे गए है।"[122] ये है मास्टर जी की जीवन पूजी जो आज बच्चो की निगाह मे सिर्फ कागज का रद्दी ढेर या पुलिदा मात्र है औरइसकी कीमत सिर्फ इतनी ही है कि मात्र ये गिनती मे केवल चौदह और अठारह ही क्यो है? "कैसा क्रूर व्यग्य है? प्रकृति का कि साहित्य की अमूल्य रचनाओं की बच्चे नाव बनाकर खेलते रहे और वह साहित्यकार ससार मे उपेक्षित और अनजान ही रह गया। विवश, पीडित, टूटे हुए और अकेलेपन के बोध को गहराने वाली यह राकेश की अच्छी कहानियो मे एक से है।"[123]

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि वारिस के ट्यूशन मास्टर इसलिए ही एकान्त पहाड की खोज मे जाना चाहते हैं कि अब शायद इससे ज्यादा सहने की विवशता अब उनमे शेष नही बची है। डॉ0 उर्मिला मिश्र इसका मूल्याकन करते हुए लिखती हैं कि– "वारिस कहानी का मास्टर अपने अकेलेपन और बेकारी के सत्रास को झेलता है और तग आकर एकात की तलाश मे घने पहाडो के बीच जाने की कामना करता है।"[124]

मानवीयता और नये मूल्यो की खोज के कारण परिवारिक विघटन

व्यक्ति पुरातन मान्यताओ, रूढियो और परम्पराओ को अस्वीकार कर रहा है। वह अपनी तरह से और अपने ढग से जीना चाहता है। आज प्राचीन मान्यताओ के द्वारा जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति आदमी अपने जीने के लिए नैतिकता का चुनाव स्वतन्त्र व्यक्तित्व और विवेक के साथ करता है। आज इसका स्वरूप आधुनिकता के बदलते स्वरूपो के साथ विकसित हो रहा है– "आज का युवक किसी की परवाह किये बगैर ही विश्वास के साथ अपना चुनाव खुद करता है। उसके चयन मे एक मानवीयता की गध है।"[125]

मोहन राकेश की 'जगला' और 'चादी और स्याह दाग' इन दोनो कहानियो मे विकल्प की स्वतन्त्रता की समस्या को उठाया गया है। जगला पारिवारिक सघर्ष की कहानी के साथ–साथ वर्तमान जीवन मे व्यक्ति के बदलते परिवेश एव जीवन मूल्य की कहानी है जो अपने सस्कारो से विद्रोह कर मानवीयता के धरातल पर बने नये सम्बधो को वरीयता देता है। कहानी का नायक

बिशना परम्परा से चिपके माता–पिता की परवाह किये बगैर एक विश्वास के साथ परित्यक्ता राधा का चुनाव करता है। सम्बन्धो को मानवीयता के परिप्रेक्ष्य मे देखकर मॉ–बाप को त्यागकर राधा का वरण करना उचित समझता है। इसी तरह से 'चॉदनी और स्याह दाग' मे नायक प्राचीन रूढियो को वैयक्तिक मूल्य के समक्ष तोडता है यह कहानी वैयक्तिक निर्णय के अन्त सघर्ष की कहानी है जिसमे समदू (नायक) अन्त मे कवाइलियो द्वारा लूटी जा चुकी अपनी प्रेमिका मेहर को स्वीकार कर परम्पराओ के प्रति गहरी चोट करता है।

जंगला

'जगला' कहानी मे विकल्प चुनने तथा बदलते मूल्यो के कारण पारिवारिक विघटन घटित होता है। मॉ–बाप की धार्मिक आस्था से समझौता न कर पाने के कारण बिसने घर छोड देता है। फूलकौर और बनवारी दम्पत्ति पति–पत्नी के रूप मे जी रहे हैं परन्तु परिवार से अधिक प्यार बनवारी को अपनी परम्परा तथा भक्तई से है। इसलिए तो फूलकौर "भगत के शरीर को वह हाथ से नही छूती। छूने से शरीर गन्दा हो जाता है। भगत को उतनी रात मे ही कपडे बदल कर नहाना पडता है।"[126] पति–पत्नी मे द्वन्द्व इस बात को लेकर है कि उनके बेटा बिसने ने एक ऐसी औरत से शादी कर ली है जो पति द्वारा परित्यक्त थी। मानवीय सम्बन्धो की इज्जत करते हुए बिसने ने घर छोडना ही उचित समझा और दोस्त राधे के साथ रहने लगा था। इसी को केन्द्र बनाकर बनवारी पर फूलकौर हावी रहती है– "हाय–हाय करते थे कि दूसरे की ब्याह कर छोडी हुई औरत घर मे बहू बनकर कैसे आ सकती है।"[127] दूसरी ओर बनवारी भगत पत्नी पर आरोप लगाता है कि इसी की रोज–रोज की रोक टोक ने बिसने को घर छोडने पर विवश किया है, क्योकि जब राधा प्रथमबार आई थी तभी फूलकौर ने कहा था– "बाप की बेटी है तो इसके बाद न कभी खुद इस घर मे कदम रखे, न उसे रखने दे।"[128] यहॉ पारिवारिक सस्कार दोनो लोगो को अपनी गलती स्वीकार करने मे अवरोधक बनते है और वे अन्दर ही अंदर खोखले होते जाते है।

यह सच है कि जीवन और लेखन के सम्बन्ध मे एक आन्तरिक दृष्टि उसी व्यक्ति मे विकसित होती है जो कि जीवन से सवेदना के स्तर के साथ ही साथ केवल समर्पण के स्तर से भी जुडा हो। इस कहानी मे मोहन राकेश ने यथार्थ को प्रेमचन्द्र युगीन परम्परा से जोडने का प्रयास किया है। प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को 'जगला' मे राकेश जी नही निभा सके हैं। पारिवारिक विघटन मे पात्र बनवारी भगत अपने सिद्धान्तो से समझौता नही करता है जबकि प्रेमचद के पात्र सभी तरह का समझौता करने को तैयार हो जाते हैं, इसलिए बनवारी भगत अन्त मे कहता है कि यदि बिसने घर पर लौटकर आ जाये तो "मुझे क्या फर्क पडता है   ठाकुर जी की सेवा के लिए मै कुए से किरमिच के

होल मे पानी ले आया करूँगा।''[129] राकेश जी की शायद यह सीमा है कि वे अपने सिद्धान्तो एव उसूलो के नीचे जाकर समझौता नही करते, क्योकि बनवारी से यह कहलाकर कि यदि बिसने को सही सगत या अच्छे मित्र मिले होते तो वह कभी परिवार से विद्रोह नही कर सकता था, मे राकेश ने अपनी परम्परा के प्रति आस्था व्यक्त की है वही दूसरी ओर बिसने से विद्रोह कराके आधुनिक जीवन दृष्टि का भी आरोपण किया है। डॉ0 उर्मिला मिश्र के अनुसार– ''जगला पारिवारिक सघर्ष की कहानी होते हुए भी आधुनिक कहानी है। जगला कहानी का नायक बिशने परम्परा से चिपके माता–पिता की परवाह किये बगैर एक विश्वास के साथ परित्यक्ता राधा का चुनाव करता है। वह अपनी मानवीयता की रक्षा के लिए मॉ–बाप को त्यागकर राधा का वरण करता है।''[130]

चाँदनी और स्याह दाग

'चॉदनी और स्याह दाग' कहानी पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन मे एक नये मूल्य की तलाश का बोध कराती है क्योकि इसमे मानवीय रूढियो और परम्पराओ के प्रति विद्रोह कर एक व्यक्ति ऐसी लडकी का चुनाव करता है जिसके साथ कई कबाइलियो ने बलात्कार किया है। इस कहानी मे दो स्तरो पर मानवीय सम्बन्धो के पतन का द्वन्द्व चलता है– एक समष्टिगत दृष्टि से तथा दूसरा स्तर समदू एव मेहर के एक दूसरे से जुडने एव स्वीकार करने का द्वन्द्व।

प्रथम प्रकार का द्वन्द्व है सामाजिक व्यवस्था के ढाचे को लेकर बदलने का जिसमे व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को आपसी प्रतिद्वन्द्विता तथा वैयक्तिक स्वार्थ के लिए उसका सम्पूर्ण जीवन चौपट कर देता है यही हादसा समदू के गॉव का हुआ है जो मेहर को प्राप्त करना चाहता है और उससे जी जान से प्रेम करने के कारण पैसे की खोज मे तीन वर्ष बाहर रहता है। ताकि अपनी होने वाली पत्नी को सुख एव वैभव दे सके। जब समदू लौटता है तो दृश्य कुछ इस प्रकार का होता है– ''जुम्मन, खालका और कादिरा माझा से कास्तकार हो गये थे। कादिरा फिरन की बजाय सलवार–कमीज पहनने लगा था। गॉव के एक ओर के सब घर जल गए थे। उनके साथ दोनो चिनार भी जल गए थे। मुहम्मद यार लगडाकर चलने लगा था।''[131] क्योकि समदू के बाहर जाने पर गाव पर कबाइलियो का आक्रमण हुआ था और ''गॉव के कई घरो मे कबाइली चार–चार, पॉच–पॉच दिन तक टिके रहे थे। उन घरो की लडकियो की आखे बदल गई थी। उनमे एक अस्वाभाविक पीलापन आ गया था। वे उसी तरह लकडिया काटती थी, जेहलम से पानी भरती थी और सिघाडे बीनने के लिए जाती थी, मगर । उन लडकियो मे उसकी महबूबा मेहर भी थी। उसके घर मे सात–आठ कबाइलियो का एक गिरोह कई दिनो तक रहा था।''[132] समय ने पलटा खाया और सभी पुरानी स्मृतिया और लोगो को कटु स्मृतियो से छुटकारा मिला एकाएक समदू की विचारधारा बदल

गयी और उसने सोचा कि "कुछ भी हुआ जो, वह मेहर से शादी जरूर करेगा। समय के दाग समय के साथ मिट जाएगे। कबाइलियो के वहॉ रह जाने से मेहर की मासूमियत मे क्या अन्तर आया था? पीलेपन के बावजूद उसकी ऑखो मे वही कोमलता थी और उसके नन्हे–नन्हे दात उसी तरह चमकते थे। मेहर आज भी गाव की सबसे हसीन लडकी थी।"[133] नायक समदू प्राचीन परम्पराओ और रूढियो को त्याग कर मेहर की तरफ अपना हाथ बढाता है, मेहर इस पर एतराज करते हुए कहती है कि– "तू समझता क्यो नही है, समदू? मैं तेरी जान की दुश्मन नही हूँ मेरे होठों मे साप से कम जहर नहीं है।"[134] इसके साथ ही मेहर यह भी स्पष्ट समदू को विश्वास दिलाना चाहती है कि "मै वह मेहर नही हूँ, जिसे तू पाना चाहता है, इस जिन्दगी मे। अब मै वह मेहर हो भी नही सकती मै एक गला हुआ बीमार जिस्म हूँ और कुछ नही, जिसमें अब जहर ही जहर है ।"[135] सम्बन्धो के समझने का विश्वास मेहर के अन्दर है। समदू का विश्वास ही मेहर को चॉदनी की तरह पाक और हसीन बना देता है। उसका निर्णय मेहर के जहर भरे होठ को चूमने मे सकोच नही करता और उसकी आत्मीयता मेहर के स्याह दाग को चॉदनी की तरह पाक और हसीन बना देती है। कहानी का अन्त मेहर और समदू के एकीकरण के साथ होता है।

इस कहानी के परिप्रेक्ष्य मे देखा जाय तो समदू मे प्राचीन सास्कृतिक तत्वो का लोप पाया जाता है और नायक अत्यन्त आधुनिक जीवन दृष्टि को लेकर चलने वाला है उसकी लडाई, उसका निर्णय स्वय उसका ही है। मोहन राकेश समदू जैसे अनेक नवयुवको द्वारा मेहर जैसी अनेक मजबूर लडकियो को स्वीकार करने का आवाहन करते हैं। डॉ0 सुषमा अग्रवाल इस कहानी की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए कहती हैं कि – "चॉदनी और स्याह दाग का नायक प्राचीन रूढियो को वैयक्तिक मूल्य के समक्ष तोडता है। यह कहानी वैयक्तिक निर्णय के अन्त सघर्ष की कहानी है। कहानी का नायक समदू सामाजिक रूढियों को छोडकर कबाइलियो द्वारा लुटी प्रेमिका मेहर को स्वीकार करने में सकोच नहीं करता।"[136]

समकालीन भ्रष्टाचार और उससे उत्पन्न अमानवीयता के कारण पारिवारिक विघटन

पाश्चात्य देशो के साथ ही जनवादी देशो मे मनुष्य का नवीनीकरण हुआ है। हमारे देश की चिन्ता, चुनने की प्रक्रिया की चिन्ता रही है। 'नई–सम्भावनाओ की' शीर्षकान्तर्गत मोहन राकेश जी लिखते है, टूटने वाली इमारतो मे एक इमारत उन विश्वासो की थी, जिन्होने बहुत दिनो तक हमारे साहित्यिक सृजन को प्रेरित किया था। विभाजन हुआ। रोजमर्रा के जीवन का व्यवहार बदला, मान्यताएँ बदली, आपस के सम्बन्ध बदले। पर जिन्दगी के पुराने ढाचे मे रची–बसी आखे परेशान होकर देखती रही और कोई प्रतिक्रिया उनमे

नही हुई। इसलिए जिन आखो मे कुछ सवाल जगने लगे, वे ऑखे बिल्कुल नई थी। साहित्य मे एक नये युग की शुरूआत तब तक नही होती जब तक कि उस युग की चेतना किन्ही विश्वासो या अविश्वासो मे परिणत नही होती। इस निर्वाण की सतह के नीचे से इन्सान का जो रूप सामने आया, वह बहुत ही विकृत था, हालाकि अपरिचित वह नही था। लगा कि आस–पास के बडे–बडे परिवर्तनो के साये मे हम लोग निरन्तर पहले से छोटे और कमीने होते जा रहे है, हमारी नैतिकता की जो भी तथाकथित मर्यादाएँ थी, वे टूट रही हैं। "जिन्दगी का सारा अन्दरूनी ढॉचा भुरभुरी मिट्टी की तरह झडता ढहता जा रहा है"[137]

भारत की सामाजिक एव राजनीतिक दशा इस कदर बदतर है कि बहुसख्यक गरीब लोग जिन्दा लाश की तरह हो गये हैं। वर्तमान समय मे असगति इतनी भर गई है कि व्यक्ति सिर्फ व्यर्थ जीवन ही ग्रहण करने के लिए मजबूर है। आज जहॉ देखो वहॉ सघर्ष, विग्रह विक्षोभ, संत्रास, अशाति ही फैली हुई है। सभी जीवन मे असन्तुष्ट एव अभाव का अनुभव करने लगे हैं। इसबुरी प्रक्रिया को देखते हुए राकेश ने स्वातन्त्रयोत्तर राजनीतक संघर्ष और व्यवस्था से उत्पन्न स्थितियों का चित्रण कहानियो में किया है। वर्तमान मे ऐसे भी व्यक्ति है जो पदोन्नति के लिए पत्नी को मुर्गी की तरह इस्तेमाल करने मे हिचकिचाते नही। यहॉ तक कि नौकरी के लिए जमीर तक गिरवी रख छोडते है। उपभोग के लिए अनैतिक राह चुनना आज की नियति बन चुकी है। दूसरी ओर राजनीतक व्यवस्था की कचौट जिसने व्यक्ति को असहाय और अपग बना दिया है। इस तरह भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक फैला हुआ है जिसमें मध्यवर्गीय व्यक्ति पीसा जा रहा है। वह शिक्षित होकर तथा अन्य योग्यताएँ रखते हुए भी ऊंची सिफारिश के अभाव मे बेकारी झेल रहा है– परमात्मा का कुत्ता, फौलाद का आकाश, आखिरी सामान, एक ठहरा हुआ चाकू समकालीन भ्रष्टाचार को विश्लेषित करने वाली कहानिया है।

परमात्मा का कुत्ता

'परमात्मा का कुत्ता' कहानी मे समकालीन भ्रष्टाचार एव सरकारी कार्यालयो की निष्क्रियता व कायरता का वर्णन है। जिसने मानवीय सम्बन्धो को खोखला कर दिया है। 'परमात्मा का कुत्ता' मे आदमी के कुत्ते और परमात्मा के कुत्ते का विरोध उभारते हुए राकेश ने सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, रिश्वत खोरी और अन्याय से ग्रस्त परिवेश को तोडने के लिए बेचैन सतप्त, विवश और उपेक्षित व्यक्ति का चित्रण यथार्थ शैली मे किया है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अदर किस प्रकार अफसर लोग काम न करे, पाइप सुलगाकर, रीडर डाइजेस्ट पढते रहते है और बाबू चाय का मजा लेते है या दफ्तरी कागजो पर लिखी गजल सुनाते है। ऐसे मे यदि अधेड आदमी की अर्जी न पास करे तो इसमे आश्चर्य नही

है लोग किस प्रकार कामचोर हो गये है और कार्यालयो मे केवल औपचारिकाये ही बरती जाती हैं इसी कटु यथार्थ को मानवीय सम्बन्धो के क्षरित होने को 'परमात्मा का कुत्ता' मे दिखाया गया है। एक अधेड आदमी समस्या ग्रस्त होकर कार्यालय मे आता है जिसकी स्थिति पाकिस्तान के बटवारे से पैदा हुई है। जमीन की जगह उस अधेड व्यक्ति को गड्ढा एलाट कर कर दिया है। वह गड्ढे की जगह कम जमीन लेने के लिए भी तैयार है। इसलिए उसने अर्जी दी थी, परन्तु दो साल से अर्जी पास नही हुई है। वह अपनी भाभी, भाई की बेटी व बेटे को लेकर कार्यालय के बाहर बैठ जाता है तथा अफसरो को खूब गाली सुनाता है। इन सब परेशानियो मे उसे केवल अर्जी की सख्या याद है। 'बाहर सौ छब्बीस बटा सात' वह कहता है–

"एक तुम्ही नही यहॉ तुम सबके सब कुत्ते हो वह आदमी कहता रहा, तुम सब भी कुत्ते हो, और मै भी कुत्ता हूँ। फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो– हम लोगो की हड्डियॉ चूसते हो और सरकार की तरफ से भौकते हो मैं 'परमात्मा का कुत्ता' हूँ। उसकी दी हुई दवा को खाकर जीता हूँ और उसकी तरफ से भौकता हूँ"[138] अधेड ने भौंक–भौक कर नौकर शाहो को अपने प्रति न्याय करने के लिए मजबूर कर दिया चूहो की तरह बिटर–बिटर देखने मे कुछ नही होता। "भौंको, भौको, सबके–सब भौको। अपने–आप सालों के कान फट जाएगे। भौको, कुत्तो भौको "[139] इस प्रकार भगवान के कुत्ते ने सरकारी कुत्तो पर भौककर गतिहीन स्थिति को गतिशील बना दिया। "परमात्मा का कुत्ता सरकारी कुत्ते पर इस तरह भौकता है जिससे न्याय का दरवाजा जबरदस्ती खुलवा लेता है।"[140]

मोहन राकेश ने अन्याय अत्याचार शोषण और ऐसे ही अमानुषिक कृत्यो ओर तत्वो के प्रति अपनी झुँझलाहट व्यक्त की है। इतना ही नही इस अभिव्यक्ति मे लेखक ने अत्यन्त साफ जुबान मे सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन निष्क्रियता, घूसखोरी और अन्याय से ग्रस्त वातावरण मे उपेक्षित मर्दित आदमी का व्यंग्यात्मक ढग से चित्रण किया है। न्याय पाने के लिए भौकने वाले सामान्य व्यक्ति के भौंकने को नियति के स्तर पर ही नही छोड दिया है उसमे विद्रोह का अर्थ एक और उपलब्धि भी प्राप्त करता है। भौकने से व्यवस्था की जडता टूटती है, कान मे तेल डालकर सोये हुए अफसरो की निद्रा टूट जाती है।

व्यग्य बोध की पीठिका पर यथार्थ का चित्रण मानवीय सम्बन्धो का पतन अधिक सहज, अधिक विश्वस्त और प्रभावी प्रतीत होता है। यथार्थ के निरूपण मे राकेश भावुकता का वरण करते हुए कही भी द्रवित नही होते है।

आखिरी सामान

'आखिरी सामान' कहानी मे एक सभ्रात परिवार के अवसान का चित्र एलबम द्वारा अकित किया गया है जिसका सारा सामान नीलाम हो चुका है एलबम का आखिरी पन्ना खाली है। इस घर का आखिरी सामान मिसिज बेला भण्डारी है जिसे कभी भी नीलाम किया जा सकता है। लेखक इस कहानी मे सामाजिक मूल्यो के ह्रास की ओर सकेत करना चाहता है। आज दुनिया मे वही आदमी सफल है जिसके पास पैसा है, पदवी है। कहानी मे बेला भडारी की मानसिकता का जो सवेदनात्मक चित्र खीचा गया है उसके पीछे लेखक का समष्टि बोध ही झलकता है। 'आखिरी सामान' एक ऐसी आकर्षक युवती की कथा है जिसे समाज मे पर्याप्त प्रशसा और सम्मान मिलता है। मिसेज भण्डारी जहॉ भी जाती है लोग उसके रूप गुण पर मुग्ध हो जाते है। उसके पति को उस पर गर्व है, लेकिन वह अपने पति की महात्वाकाक्षा पूर्ति के लिए उसके अधिकारी की वासना–पूर्ति का साधन बनने को तैयार नही है। परिणामत अधिकारी के रूष्ट होने पर जब पति जेल चले जाते है। तो घर की हर वस्तु नीलाम जो जाती है। आखिर उसे नीचे बुलाया जाता है तो वह अनुभव करती है "सीढियॉ उतरते हुए उन्हे लगा, जैसे वे आप नही उतर रही, घर का अखिरी सामान नीचे पहुॅचाया जा रहा है"[141] वास्तव मे मिसेज बेला भण्डारी का यह रूप एक बिखरी हुई नारी का रूप है जो अपने परिवेश के वहशीपन से सत्रस्त तो है किन्तु अपने अस्तित्व–रक्षण के लिए प्रत्यत्नशील भी बनी रहती है वह अपने इस प्रयत्न मे अकेला अनुभव करती है। क्यो न करे? जब उसका ही ऐसा है और तो और उसका पति भी वह अकेले क्षणो मे कुलबुलाती है, व्यथित रहती है, किन्तु गिरती नही है। उसका अकेलापन बढता जाता है।

"सुबह नास्ते के समय भी उनमे बात–चीत नही होती। किसी चाय–पार्टी पर उन्हे साथ जाना पडता तो भी सारा समय वही खिचाव बना रहता। मिस्टर भण्डारी का बारह सौ की नौकरी पाने का मसूबा पूरा नही हुआ था। वे सोचती कि क्या इसकी वजह वही है।"[142] मिसेज भण्डारी का पीडा बोध और अकेलापन पति की गिरफ्तारी, एक–एक सामान की नीलामी और आडे वक्त मे उनके सहपाठी सुधीर की अपेक्षा से और गहरा जाता है। "यह जानते हुए भी कि आज उनके सामान का नीलाम होगा, वह पहले नही आया था। अब आया था जब । पहले उन्होने सुधीर से कितनी आशा की थी। मगर सुधीर की आखे अब और हो गई थी। उनकी आखो में जो हल्का हल्का आभास होता था, वह कही गहरा हो गया था। वे देर तक उसकी एकटक दृष्टि का सामना नही कर पाती थी"[143]

आज के इस आर्थिक भौतिक युग मे व्यक्ति इतना लालची एव अमानवीय हो गया है कि उसने सम्बन्धो को ताक पर रख दिया है। आखिरी सामान का मिस्टर भण्डारी बगला और ड्राइग रूम को सुसज्जित करने के लिए अनैतिक ढग से घूस लेने का अपराध करता है यहाँ तक कि पदोन्नति के लिए अपनी पत्नी को उच्चाधिकारी के पास मुर्गी की तरह सप्लाई करने मे सकोच नही करता। यह मात्र मिस्टर भण्डारी की कहानी नही इस तरह के अनेक मिस्टर भण्डारी हमारे देश मे है। जो उपभोग के लिए अनैतिक कार्यों मे फसते हैं।

एक ठहरा हुआ चाकू

'एक ठहरा हुआ चाकू' समकालीन जीवन मे फैले अत्याचार तथा मानवीय सम्बन्धो के विघटन पर व्यग्य है क्योकि आज सार्वजनिक रूप से व्यक्ति की सुरक्षा खत्म होती जा रही है। वह सन्त्रस्त और आरक्षित जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर है। 'एक ठहरा हुआ चाकू' आदमी–आदमी के बीच उत्पन्न अमानवीयता की कहानी है। आज व्यक्ति–व्यक्ति से डरने लगा है। क्योकि आज गुण्डागर्दी की घटनाये पहले से पौने तीन गुना ज्यादा हो गयी है। यानी पहले से एक सौ पिचहत्तर फीसदी ज्यादा। आज दिन दहाडे सडक पर आदमी पर वार होता है। इस कहानी मे दादा लोगों के आतक का यथार्थ परिप्रेक्ष्य मे वर्णन मिलता है। एक बेरोजगार युवक अपनी प्रेयसी से मिलकर घर लौटते समय रास्ते मे बर्फ खरीदने के लिए स्कूटर रोककर उतरता है तो एक नत्था सिह नामक गुण्डा उसमे बैठ जाता है तथा बाशी को एक झापड जड देता है। युवक द्वारा विरोध जताने पर वह चाकू निकाल लेता है। खुले चाकू को देखकर युवक की हालत खराब हो जाती है और वह भागता हुआ अपने साथी महेन्द्र को इस घटना की सूचना देता है। महेन्द्र पुलिस मे रिपोर्ट लिखवाता है तथा हर प्रकार से उस गुण्डे के विरूद्ध कार्यवाही करने को तत्पर होता है उसका एक रिपोर्टर मित्र भी उसके साथ होता है। घटना स्थल का कोई व्यक्ति सरकार के खिलाफ गवाही देने को तैयार नही। सभी गुण्डो से डरते है क्योकि उनसे पुलिस मंत्री अधिकारी कोई उसकी रक्षा नही करते।जिस समय नत्थासिह को शिनाख्त के लिए लाया जाता है उस समय युवक की मनस्थिति अच्छी नही रहती है। वह बहुत बुझा–बुझा रहता है मित्र के आश्वासन से भी उसमे किसी प्रकार के उत्साह का सचार नही होता–

"उसने पेसिल हाथ से रख दी और हथेली पर बने शब्दो को अगूठे से मल दिया। तब तक न जाने कितने शब्द और वहा लिखे गए थे जो पढे भी नही जाते थे। सब मिला–कर आडी–तिरछी लकीरो का एक गुझल था जो मल दिए जाने पर भी पूरी तरह मिटा नही था। हथेली सामने किये वह कुछ देर उस अधबुझे गुझल को देखता रहा। हर लकीर का नोक–नुक्ता कही से बाकी था।

उसने सोचा कि वहा कही एक वाश–बेशिन होता, तो वह दोनो हाथो को अच्छी तरह मलकर धो लेता"[144] यह मन स्थिति युवक के अकेलेपन और महानगरीय जीवन मे व्याप्त सत्रास, भयावहता और असुरक्षा को भी स्पष्ट कर देती है। बडे शहरो की जिन्दगी जितनी तनाव भरी और दहशत भरी होती जा रही है इसका जीवन्त उदाहरण नत्थासिह जैसे लोग है। कहानी मे आये सदर्भ और विवरण महानगरीय सत्रास और क्षरित मानव सम्बन्धो की भयावहता को प्रमाणित करते है– "खुले चाकू की चमक से उसकी जवान और छाती सहसा जकड गई। उसके हाथ से पैसे वही गिर गए और वह वहा से भाग खडा हुआ।"[145] गुण्डो के खिलाफ गवाही देने वाला इन महानगरो मे कोई नही होता है। सारा परिवेश और जीवन इनसे आतकित रहता है। मेडीकल स्टोर के इचार्ज का यह कथन महानगरीय भयावहता और सत्रासमय सम्बन्धो को सकेतित करता है– "नत्थासिह को यहॉ कौन नही जानता ? अभी कुछ ही दिन पहले उसके आदमियो ने पिछली गली मे एक पान वाले का कत्ल किया है . खैरियत समझिये कि आपकी जान बच गई वरना हमे तो किसी को इसकी उम्मीद नही रही थी। अब बेहतरी इसी में है कि आप चुपचाप मामले को पी जाये। यहॉ आपको एक भी आदमी ऐसा नही मिलेगा जो उसके खिलाफ गवाही देने को तैयार हो।"[146] यह अमानवीयता आज के परिवेश की है। जिसमे "लेखक ने पुलिस–अधिकारी, कानून, सुरक्षा, समाज, सरकार सबका भडा फोड किया है। 'चीफ क्राइम रिपोर्टर' की बाशी को रिपोर्ट वापस ले लेने की सलाह निश्चय ही चौका देने वाली है । रिपोर्टर, थानेदार, एस0 पी0, डी0 एस0 पी0– सभी नत्थासिह की गुंडागर्दी जानते है, किन्तु कोई उसको सजा नही दे पाता। सारी व्यवस्था, जिसके हाथ में जनता की सुरक्षा का बीडा है नपुशक हो उठी है। गुडे, बदमाश, पुलिस अधिकारी–सभी आपस मे मिले होते है, फिर कौन किसका न्याय करे? सबके सब एक–से–एक ही थैली के चट्टे बट्टे है।"[147]

युवक बाशी अनवरत एक भय और असुरक्षा का अनुभव करता है। लगता है कि उसने रिपोर्ट लिखाकर अच्छा नही किया। गुण्डे समय आने परउससे अवश्य बदला लेगे और यह भय उसे सोने नही देता– "महेन्द्र के सो जाने के बाद वह काफी देर तक साथ के कमरे से आती सॉसो की आवाज सुनता रहा था– उस आवाज मे उतनी सुरक्षा का अहसास उसे पहले कभी नही हुआ था। वह आवाज एक जीवित आवाज उसके बहुत पास थी और लगातार चल रही थी। जितनी जीवित वह आवाज थी, उतना ही जीवित था उसे सुन सकना–चुपचाप लेटे हुए, बिना किसी कोशिश के अपने कानो से सुन सकना। खिडकी से कभी–कभी हवा का झौंका आता जिससे रोगटे सिहर जाते शायद रोगटो मे अपने अस्तित्व की अनुभूति।"[148] स्पष्ट ही इसमे महानगरीय जीवनगत सम्बन्धो की भयावहता और तज्जनित सत्रास पूरी सफाई के साथ अभिव्यजित हुआ है क्योकि

सुरक्षा और अस्तित्व का सकट आज के मानव की सबसे बडी समस्या है। डॉ० सुरेश धीगडा इस कहानी के परिणाम की ओर इशारा करते हुए लिखते है– "बाशी का भय एक अकेले व्यक्ति का भय नही, बल्कि सम्पूर्ण समाज का भय है, जो परिवेशगत असुरक्षा के कारण उत्पन्न हुआ है। वह भय व्यक्ति के बाह्य जीवन मे ही नही, उसके आतरिक पक्षो तक व्याप्त है, क्योकि वह अपने भीतर तक स्वय को असुरक्षित और भयभीत पाता है। वह जानता है कि सुरक्षा प्रदान करने वाली सामाजिक सस्था भी उसे सुरक्षित नही रख सकती"[149] बाशी जैसे लोगो को अपनी सुरक्षा स्वय करनी होगी, भले ही चाहे इसके लिए उन्हे अपना इलाका और मकान ही क्यो न छोडना पडे?

विभाजन की त्रासदी के कारण पारिवारिक विघटन

देश को एक ओर आजादी मिलती है तो दूसरी ओर विभाजन का ताप और दाह भी उसे झेलना पडा। विरूद्धो के इस सामजस्य से कितने ही लोग घर से बेघर हो गये और कितनो को अपने भरे–पूरे परिवार में न केवल साजो सामान से हाथ धोना पडा वरन् अपनी सतति को भी छोडकर इस ओर से उस ओर जाना पडा। विभाजन तो देश का हुआ पर साथ ही घर भी विभाजित हो गये और लोगो के दिलों के बीच एक विभाजक रेखा खिच गई। यह दारूण और त्रासद स्थिति थी, जिसे सभी भोगने के इच्छुक न होते हुए भी विवश थे। सभी ने इसे सहा और सहने से ज्यादा झेला। देश में एक नया परिवेश बना–एक नई लहर दौडी और इसे गहरे तक अनुभव किया कलाकारो ने कथाकारो ने परिणामत तत्प्रभावी साहित्य की सर्जना हुई। राकेश इसके एक खास अग बने और इस सच्चाई को अपने कथा साहित्य के माध्यम से चित्रित करने मे भी अग्रणी रहे। इस विभाजन ने अपने प्रभाव तो अनेक रूपो मे छोडे किन्तु सशक्त प्रभाव दो रूपो मे ही सामने आये। मानव–सम्बन्धो मे परिवर्तन हुआ और व्यक्ति को अपेक्षित सहायता और सहयोग नही मिलने के कारण वे विकृत, विघटित व फ्रस्ट्रेटेड होकर रह गये। विभाजन के नाम पर राजनैतिक हाथकण्डो के बीच मनुष्य की बर्बरता और अमानवीयता की स्पष्ट रेखा राकेश ने 'मलवे का मालिक', 'कम्बल' और 'क्लेम' कहानी मे खीची है। "राकेश ने इन कहानियो मे भारत का यह रूप प्रस्तुत किया है जिसको इतिहास अपने पन्नो मे दबाकर हमेशा–हमेशा के लिए सिसकता रहेगा"[150] मोहन राकेश इन कहानियो मे कुछ कहना चाहते हैं परन्तु कहने का साहस नही जुटा पाते है। पर पात्रो का मूक क्रन्दन सब कुछ मुखरित कर देता है।

मलवे का मालिक

'मलवे का मालिक' एक ऐसे व्यक्ति की भावनाओ को अभिव्यक्त करती है जिसका घर परिवार हिन्दू मुस्लिम दगो की भेट चढ चुका है। कहानी मे सामाजिक यथार्थ की खोज, उसके मूल्यो का निरूपण और सक्रमणशील दृष्टि मिलती है। कहानी केवल 'रक्खे पहलवान' या बुड्ढे गनी की नही, बल्कि विभाजन की विभीषिका से बचे उस मलवे की है जो हमारे सामने आज भी ज्यो का त्यो पडा है और जिसकी चौखट की सडी लकडी के रेशे झर रहे है। यहाँ मलबे का भी एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व उभरता है और हमारी चेतना उस जड से सम्पृक्त होती हुई, उस सारे अतीत से गुजरती हुई बार–बार वही लौट जाती है। मलवा भारत–पाकिस्तान के विभाजन के परिणाम तथा उजडे हुए जीवन व टूटते हुए मूल्यो का प्रतीक है। विभाजन के साढे सात साल बाद मुसलमानो की एक टोली अमृतसर आती है और प्रत्येक स्थान का उत्सुकता से निरीक्षण करती है बहुत से लोग उनसे बहुत से सवाल पूछ रहे थे। इन सवालो मे इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता लाहौर एक शहर ही नही है, हजारो लोगो का सगा सबधी है जिसके हाल जानने के लिए सभी अमृतसर के लोग उत्सुक है आने वालों मे बूढा मुसलमान गनी भी है जो पहले अमृतसर मे अपने पुत्र और पुत्रबधू के साथ रहता था। उसका पुत्र और परिवार हिन्दू पहलवान रक्खे द्वारा पहले ही मारे जा चुके है। गनी खा एक नजर अपने मकान को देखना चाहता है तो पता चलता है कि वह मकान एक मलबे का ढेर बन कर रह गया है। रक्खा पहलवान ने इस मकान के लालच मे ही उस मकान के रहने वाले परिवार को मारा था, किन्तु किसी ने उसे जलाकर खाक कर दिया है। बूढा गनी यह सब नही जानता। वह मकान के अवशेष को देखकर बहुत दु खी होता है और दरवाजे की टूटी चौखट से लगकर विलाप करने लगता है। रक्खा पहलवान मलवे को ही अपनी जायदाद समझता था। बूढा गनी रक्खे पहलवान को बाहे फैलाकर आवाज देता है। अपराधी रक्खा किकर्तव्यविमूढ सा रह जाता है। गनी उससे पूछता है–

"तू बता रक्खे, यह सब हुआ किस तरह? गनी किसी तरह अपने आसू रोक–कर बोला। तुम लोग उसके पास थे। सब मे भाई–भाई की सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता तो तुम मे से किसी के घर मे नही छिप सकता था? उसमें इतनी भी समझदारी नही थी"[151] तो रक्खा केवल ऐसे ही है कहकर रह जाता है। गनी की बातो से उसकी नसो मे एक तनाव आ जाता है। मार्मिक सवेदना का चित्रण राकेश जी ने कितना यथार्थ ढग से किया है। "रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योकि उसकी रीढ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जाघो के जोड पर उसे सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अतडियो के पास से जैसे कोई चीज उसकी सास को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने

से भीग गया था और उसके तलुओ मे चुनचुनाहट हो रही थी। बीच–बीच मे नीली फुलझडिया– सी ऊपर से उतरती और तैरती हुई उसकी आखो के सामने से निकल जाती। उसे अपनी जबान और होठो के बीच एक फासला–सा महसूस हो रहा था।''[152]

यह मलवा ही टूटते और टूटे मूल्यो की सारी कहानी सुना देता है। रक्खे पहलवान की तरह हमारा एक वर्ग आज भी इन टूटे मूल्यो के मलवे पर, उसे ही अपनी जागीर समझे हुए बैठा है जबकि यह मलबा न तो उसका है, न गनी का, वह तो इतिहास हो चुका है, अब उसे हटना ही चाहिए, क्योकि यही इतिहास और युगजीवन की प्रतिक्रिया है। कहने की आवश्यकता नही कि 'मलवे का मालिक' विभाजन के परिणाम स्वरूप विघटित परिवारो की ही कहानी नही है, बल्कि इसमे बदलते परिप्रेक्ष्य मे मूल्यों की टूटन भी व्यक्त हुई है मूल्यो के ध्वंश और निर्माण के बीच की यह कहानी संकेत देती है कि कुछ इमारते तो नई बन गई हैं, किन्तु पुराने मकानो के मलवे का ढेर अभी भी जहॉ–तहॉ पडा दिखाई देता है और इस ''अमानवीय विभीषिकाओ में रौंदे हुए गनी का बेटा चिराग, जुबेदा, किश्वर और सुल्ताना मलवे के भीतर से चीख रहे उनका मौन विलाप कहानी मे आदि से अन्त तक कारूणिक ढग से छाया हुआ है।''[153]

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि यह कहानी केवल मलबे पर उन तमाम नवयुवतियो, नवयुवको और बुजुर्गों की कहानी है जो हिन्दुस्तान पाकिस्तान के नाम पर टुकडे–टुकडे कर दिये गये हैं, जिन्हे बेइज्जत होते और कत्ल करते समय लोगो ने बन्द खिडकियो के भीतर से देखा था।

कम्बल

'कबल' भारत विभाजन के बाद कैम्पों मे रहने वाले एक परिवार की कहानी है। विभाजन ने पारिवारिक सम्बन्धो को किस प्रकार प्रभावित किया है यह कहानी उसकी ज्वलत तस्वीर पेश करती है। रात की ठडक मे यह परिवार कैम्प मे पडा सर्दी से ठिठुर रहा है इनके पास गर्म कपडे नहीं है, बेटी जवान है कम्बल बाटने वाले भी उन्ही लोगो को कम्बल देते हैं जिनसे उन्हे कुछ लाभ हो सके, तभी तो अधसोई वनारसी पर कम्बल की कृपा हुई है–''बनारसी ने आखे मूद ली। जतलाना चाहा कि सो रही है। पर सोए व्यक्ति की तरह विखर नही सकी। पैरो की आहट का ठीक अनुभव हुआ। पास आकर कोई झुका किसी ने छत्रियो को छुआ। बनारसी कपकपाई। तभी सुखद सिहरन फैलगई। शरीर कम्बल से ढक गया। शीत का रोमाच बैठने लगा। नीद के अभिनय मे जाधो–छातियो पर किसी के स्पर्श की उपेक्षा कर दी।''[154] मानवीय सम्बन्धो के पतन की यह प्रक्रिया बनारसी बाहरी लोगो के साथ तो झेलती ही है अपनो से भी वह शोषित होती है,

क्योकि मॉ राजू को साथ लिटा लेती है जिससे उसे सर्दी नही लगती है और अपने पति की उपेक्षा भी करती है। कबल जब बनारसी पर पडता है तो वह गगादेई छीन लेती है—"आधा कम्बल शरीर से खिच गया था। खामोश रात में वर्षा का तीब्र स्वर फैल रहा था। बनारसी ने कम्बल को समेटने की चेष्टा की। झटके से कम्बल थोडा और हट गया। गगादेई का स्वर नीद मे भी कर्कश था, डायन को अपने ही शरीर से मोह है। बच्चा पास पडा ठिठुर रहा है, उसे ढकने की चिता नही। थोडा और छोड कम्बल, बच्चे को भी दो घडी सोने दे।" बनारसी ने आवेश में पूरा कम्बल फेक दिया। कहा ले ले कम्बल। अपने ऊपर भी ले ले। मुझे ठण्ड खाकर मौत नही आएगी।"[155] सम्बन्धो की यह विडम्बना इतनी क्रूर हो जाती है कि इसने बनारसी के ह्रदय मे, मॉ के एवम समाज के प्रति एक आक्रोश को जन्म दिया और अदर ही अदर वह घुटती रही वह सोचती है कि आखिर मॉ गगादेई ने उससे इतनी सर्दी मे कम्बल छीनकर कैसा मातृत्व निभाया है? यह मातृत्व बनारसी की ओर से छिल गया। "यह छिलन कहा है? यहा कि वह मा होने से पहले पत्नी है। पति स्वस्थ नही। सर्दी से ठिठुर रहा है। दूसरी छिलन और भी है। मातृत्व का उफनता व्यग्य जो बोल पडता है। बनारसी की हर करवट बोलती है, ताना देती है"[156] मा का पुत्र के प्रति यह मातृत्व बनारसी एवम् पति रामसरन की आन्तरिक वेदना मे अजनबी पन एव अकेलापन का बोध कराता है। गगादेई कम्बल का त्याग नही कर पाती और पति रामसरन जीवन का परिणाम स्वरूप असहाय मॉ बेटी रोती है अपनी विवश नियति पर। डॉ0 सुषमा अग्रवाल के शब्दो मे "अभाव जीवन मूल्यो को किस तरह प्रभावित करते है यह तथ्य इस कहानी मे बखूबी चित्रित है। कहानीकार की संवेदना यथार्थ से मिलकर यहॉ ह्रदय द्रावक हो उठी है।"[157]

क्लेम

'क्लेम' भारत—पाक विभाजन मे बरबाद हुए लोगो की कहानी है। लोगो का सरकार से अपनी नष्ट हुई सम्पत्ति का क्लेम है, वे किसी न किसी तरह उसकी लूटी हुई सम्पत्ति की पूर्ति कर अपने विघटित परिवार बसाना चाहते हैं। क्लेम मे शरणार्थियो को दी जाने वाली सरकारी सहायता के बटवारे को लेकर कशमकश चलती रहती है जिन्होने अपनी वास्तविक जायदाद से अधिक क्लेम मॉगे उन्हे तो एक लम्बी चौडी रकम मजूर हो गई जिन्होने सत्य का आश्रय लिया वे घाटे मे रहे। एक स्त्री का अठारह हजार का 'क्लेम' मजूर होता है क्योकि वह विधवा है "पीछे बैठी स्त्री रो रही थी कि बेडा गर्क हो 'क्लेम' मजूर करने वालो का जो उसका सिर्फ अटठारह हजार का 'क्लेम' मंजूर किया गया है गुजरावाला मे उनके चार मकान थे और एक साढे तीन कनाल का बगीचा था। बगीचा चार कनाल का होता, तो उन्हे ज्यादा रूपया मिलता। अगर उन्हे पहले पता होता तो वे आधा

कनाल ज्यादा लिख देते . वे अपनी सच्चाई मे मारे गए''[158] विधवा की यह चाह बगल वाला बैठा पुरूष यह कहकर तोड देता है कि भाई तुम्हे तो कुछ मिल भी गया है "यहाँ हम जैसे भी है जिन्हे आज तक एक पाई नहीं मिली। हमारा कसूर यही है कि मिया–बीबी दोनों सलामत है। मै अगर मर–खप गया होता, तो मेरे बच्चो को भी अब तक दो रोटियाँ नसीब हो जाती। आखे मेरी अधी हो रही है, जोड मेरे दर्द करते है कि लोग इन्सान की जरूरत को नही देखते, बस जीते और मरे हुए का हिसाब करते है। मुझे आज ये एक हजार दे दे तो मै कोई छोटी–मोटी दुकान डालकर बैठ जाऊ। मेरे बच्चो के पास तो एक–एक फटी हुई कमीज भी नही है''[159] एक अन्य व्यक्ति अपनी जायदाद का कई गुना 'क्लेम' भरता है और उसे साठ हजार रूपया मंजूर हो जाता है इस पर उस स्त्री की जो प्रतिक्रिया हुई वह इस प्रकार है–"मै कहती रही कि जितना छोड आये हो, उससे ज्यादा का क्लेम भरो। मगर ये ऐसे मूरख थे कि हठ पकडे रहे कि जितना था उतने का ही क्लेम भरेगे पहले ही इतने दु ख उठाए है, अब और बेइमानी क्यो करे? आज ये मेरे सामने होते, तो मै पूछती कि बताओ बेईमानी करने वाले सुखी हैं या हम लोग सुखी है? लोगो ने जितना छोडा था, उसका दुगना–तिगुना वसूल कर लिया, और मै बैठी हूँ छ. हजार लेकर । हाय, इन लोगो ने तो मेरे बच्चो को भूखो मार दिया''[160]

साधुसिह का 'क्लेम' सरकार से नही है क्योकि उसकी लूटी हुई पत्नी और आम का वृक्ष पुन सरकार वापिस नही कर सकती। साधुसिह का 'क्लेम' जानवर (घोडे) से है जो उसके जान को खैर मनाता है। साधुसिह ने भी शादी की थी। और बडे अरमानो के साथ घर मे आम का पेड लगाया था कि आम खायेगा परन्तु क्रूर नियति ने बलवा के रूप मे उसे अपनी बीबी और मकान से हाथ धोने पर मजबूर कर दिया। परन्तु साधुसिह अन्य लोगो की भाति 'क्लेम' मे विश्वास न करके मेहनत को महत्व देता है– "तेरी बरकत रही अफसरा, तो अपने पुराने दिन फिर आयेंगे । खाले, अच्छी तरह पेट भर ले। अपने सब 'क्लेम' तुझी को पूरे करने है, तेरी जान की खैर .''[161]

'क्लेम' कहानी विभाजन की त्रासदी झेलते हुए उन टूटे हारे एवम बिखरे लोगो की दास्तान कहती है जिन्होंने अर्थ के साथ–साथ अपनी सतानो को भी खो दिया है फिर भी अभी साधुसिह जैसे साहसी लोग है जो सरकारी 'क्लेम' मे विश्वास न कर खुद मेहनत की कमाई कर अपना घर परिवार बसाना चाह रहे है। डॉ सुषमा अग्रवाल 'क्लेम' की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए लिखती है – "परिवेश से अखडाव ही इस कथा की मूल सवेदना है। इसमे 'क्लेम' को आधार बनाकर न केवल तत्कालीन स्थिति को उभारा गया है, बल्कि यह भी सकेतित है कि विभाजन के कारण व्यक्ति टूटा है, परिवार विघ टित हुए है और जीवन

विडम्बना बन कर रह गया है। मानव–मूल्यो मे परिवर्तन हुआ है। परिणामत मानव–सम्बन्ध भी अप्रभावित नही रहे है।"[152]

सन्दर्भ

1 बकलमखुद–मोहन राकेश, पृ0 स0 118
2 नये बादल (भूमिका), मोहन राकेश, पृ0 1974
3 एक और जिन्दगी (भूमिका), पृ0 13
4 एक और जिन्दगी (भूमिका), पृ0 14
5 मोहन राकेश, परिवेश, पृ0 121
6 मोहन राकेश परिवेश, पृ0 198
7 कहानी नयी कहानी – डॉ0 नामवर सिंह, पृ0 36
8 मोहन राकेश परिवेश, पृ0 203
9 मोहन राकेश श्रेष्ठ कहानियां – सम्पादक राजेन्द्र यादव, भूमिका, पृ0 6,7
10. धनजय, हिन्दी कहानी का समकालीन सफर (लेख), सारिका, अगस्त, 74
11 आधुनिकता और मोहन राकेश – डा0 उर्मिला मिश्र, पृ0 56
12 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 56
13 मेरी प्रिय कहानिया – मोहन राकेश, पृ0 11
14 एक और जिदगी, पृ0 278
15 एक और जिन्दगी, पृ0 280
16 आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ–डॉ0 नरेन्द्र मोहन, पृ0 79
17 बकलम खुद–मोहन राकेश, पृ0 66
18 परम्परा का नया मोड· रोमाटिक यथार्थ (लेख), आलोचना, 1965
19 अपरिचित, पृ0 95
20 अपरिचित, पृ0 96
21 आलोचना और साहित्य – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, पृ0 153
22 आर्द्रा, पृ0 48
23 आर्द्रा, पृ0 48
24 आर्द्रा, पृ0 47
25 आर्द्रा, पृ0 47
26 कहानीकार मोहन राकेश, पृ0 54
27 हिन्दी कहानी एक अन्तरग परिचय–उपेन्द्र नाथ अश्क, पृ0 253
28 ग्लास टैक, पृ0 52–53
29 ग्लास टैक, पृ0 55
30 ग्लास टैक, पृ0 59
31 ग्लास टैक, पृ0 53

32 ग्लास टैक, पृ0 60
33 ग्लास टैक, पृ0 63
34 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 62–63
35 फौलाद का आकाश, पृ0 113
36 फौलाद का आकाश, पृ0 115
37 फौलाद का आकाश, पृ0 114
38 फौलाद का आकाश, पृ0 114
39 फौलाद का आकाश, पृ0 117
40 हिन्दी की नयी कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–मिथिलेश रोहतगी, पृ0 180
41 गुंझल, पृ0 380
42 गुझल, पृ0 382
43 गुझल, पृ0 382
44 गुंझल, पृ0 382
45 गुंझल, पृ0 383
46 गुझल, पृ0 388
47 बकलम खुद, पृ0 125
48 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 58
49 पहचान, पृ0 273
50 पहचान, पृ0 270
51 पहचान, पृ0 273
52 कथाकृति मोहन राकेश – ओम प्रभाकर, पृ0 242
53 आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ0 61
54 सुहागिने, पृ0 154
55 सुहागिने, पृ0 115
56 सुहागिने, पृ0 154
57 हिन्दी कहानी का विकास– मधुरेश, पृ0 82
58 हिन्दी कहानी का मूल्याकन– कान्ता (अरोडा) मेहदीरत्ता, पृ0 152
59 आधुनिकता और हिन्दीकहानी– जगन सिह, पृ0 48
60 कथाकृति मोहन राकेश, पृ0 242
61 क्वार्टर, पृ0 138
62 क्वार्टर, पृ0 126
63 आधुनिकता और हिन्दी कहानी – जगन सिह, पृ0 44–45
64 क्वार्टर, पृ0 138
65 हिन्दी कहानी का विकास – मधुरेश, पृ0 81
66 आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ0 62

67 खाली, पृ0 28
68 खाली, पृ0 27
69 खाली, पृ0 30
70 खाली, पृ0 31
71 बकलम खुद–मोहन राकेश, पृ0 125
72 हिन्दी कहानी का मूल्याकन–कान्ता (अरोडा) मेहदीरत्ता, पृ0 153
73 कथाकृति–मोहन राकेश, पृ0 241
74 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 66
75 भूखे, पृ0 105
76 भूखे, पृ0 105
77 भूखे पृष्ठ, 104
78 भूखे पृष्ठ, 104
80 हकहलाल, पृ0 365
81 बकलमखुद, पृ0 112
82. आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 70
83 जानवर और जानवर, पृ0 371
84 जानवर और जानवर, पृ0 371
85 जानवर और जानवर, पृ0 372
86 जानवर और जानवर, पृ0 371
87 हिन्दी कहानी अपनी जबानी – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, पृ0 116
88 विवेक के रग, पृ0 374
89 पॉचवे माले का फ्लैट, पृ0 267
90 पॉचवे माले का फ्लैट, पृ0 267
91 हिन्दी कहानी अपनी जबानी, पृ0 232
92 आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ0 68
93. मन्दी, पृ0 321
94 मन्दी, पृ0
95 मन्दी, पृ0 321
96 हिन्दी कहानी का मूल्याकन – कान्ता (अरोडा) मेहदीरत्ता, पृ0 149
97 उसकी रोटी, पृ0 232
98 उसकी रोटी, पृष्ठ 234
99 कथा कृति मोहन राकेश – ओम प्रभाकर, पृ0 238
100 कथाकृति मोहन राकेश, पृ0 242
101 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 65
102 जख्म, पृ0 413

103 जख्म, पृ0 415
104 जख्म, पृ0 415
105 आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ0 73–74
106 जख्म, पृ0 416
107 जख्म, पृ0 417
108 जख्म, पृ0 415
109 जख्म, पृ0 418
110 हिन्दी कहानी, पृ0 117
111 मिसपाल, पृ0 11
112 मिसपाल, पृ0 12
113 मिसपाल, पृ0 12
114 मिसपाल, पृ0 13
115 हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा – डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 105
116 मिसपाल, पृ0 24
117 हिन्दी कहानी दो दशक, पृ0 54–55
118 मिसपाल, पृ0 14
119 हिन्दी कहानी अपनी जबानी, पृ0 117
120 वारिस, पृ0 420
121 वारिस, पृ0 421
122. वारिस, पृ0 423
123 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 88
124 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 74
125 मोहन राकेश की कहानियो मे आधुनिकता– एम0 एस0 मुजावर, पृ0 73
126 जगला, पृ0 88–89
127 जगला, पृ0 187
128 जगला, पृ0 187
129 जगला, पृ0 192
130 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 77
131 चॉदनी और स्याह दाग, पृ0 445
132 चॉदनी और स्याह दाग, पृ0 445
133 चॉदनी और स्याह दाग, पृ0 446
134 चॉदनी और स्याह दाग, पृ0 446
135 चॉदनी और स्याह दाग, पृ0 47
136 कहानीकार मोहन राकेश – डॉ0 सुषमा अग्रवाल, पृ0 77
137 बलकमखुद – मोहन राकेश, पृ0 85

138 परमात्मा का कुत्ता, पृ0 324
139 परमात्मा का कुत्ता, पृ0 326
140 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 79
141 आखिरी सामान, पृ0 179
142 आखिरी सामान, पृ0 177
143 आखिरी सामान, पृ0 178
144 एक ठहरा हुआ चाकू, पृ0
145 गए ठहरा हुआ चाकू, पृ0 143
146 एक ठहरा हुआ चाकू, पृ0 145–46
147 हिन्दी कहानी का मूल्याकन– कान्ता (अरोडा) मेहदीरत्ता, पृ0 48–49
148 एक ठहरा हुआ चाकू, पृ0 147
149 हिन्दी कहानी दो दशक – डॉ0 रामदरश मिश्र, 1974, पृ0 140
150 आधुनिकता और मोहन राकेश–डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 80
151 मलबे का मालिक, पृ0 229
152 मलवे का मालिक, पृ0 230
153 आधुनिकता और मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 80–81
154 कबल, पृ0 334
155 कबल, पृ0 334–35
156 कबल, पृ0 335
157 कहानीकार मोहन राकेश – डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 100
158 क्लेम, पृ0 109
159 क्लेम, पृ0 110
160 क्लेम, प0ृ 110
161 क्लेम, पृ0 112–13
162 कहानीकार मोहन राकेश – डॉ0 सुषमा अग्रवाल, पृ0 98

पंचम् अध्याय

मोहन राकेश के उपन्यासों में पारिवारिक विघटन का अंकन

अन्धेरे बन्द कमरे,
न आने वाला कल,
अन्तराल

पंचम् अध्याय

मोहन राकेश के उपन्यासों में परिवारिक विघटन का स्वरूप

मोहन राकेश के उपन्यासो– 'अधेरे बन्द कमरे मे' (1961), 'न आने वाला कल' (1968) तथा 'अतराल' (1972) का काल स्वातन्त्रयोत्तर भारत का काल है और यह युग भौतिक युग तथा प्रगति का काल माना जाता है जिसने जीवन को आन्तरिक एव बाह्य दोनो तरफ से प्रभावित किया है। भौतिक विकास के साथ हमारे जीवन मे मानसिक प्रक्रिया मे, रूचियो मे और सम्बन्धो मे, जटिलता आ गई है। आज व्यक्ति का बाह्य क्रिया कलाप और आन्तरिक अनुभूतियो की एक सूत्रता प्राय समाप्त सी हो गयी है। आधुनिक मनुष्य अपने को बाहर से सन्तुलन नहीं रख पा रहा है। क्योकि व्यक्ति अपने अदर की अकुलाहट, छटपटाहट, कसमसाहट आदि से पीडित है।

डॉ0 देवराज के कथनानुसार – "आधुनिक युग मे शायद ही कोई उपन्यास मिले, जिसमे पुराने उपन्यासो की तरह कथा एक पक्ति की सीध मे विकसित होती हुई दिखलाई पडे।"[1] क्योकि आधुनिक व्यक्ति के क्रिया कलाप और आन्तरिक अनुभूतियो की एक सूत्रता नष्ट होती जा रही है। औद्योगिक सभ्यता ने आज के आदमी को बहुत अधिक औपचारिक आवरण मे जीने के लिए बाध्य कर दिया है जिससे वर्तमान व्यक्ति अपने भावो को सहज ही छिपाने के लिए विवश हो गया है। आधुनिकीकरण के सन्दर्भ मे आदमी की मानसिक प्रक्रिया, रूचिया और जीवन की जटिलता बढती जा रही हैं। इसलिए आज का लेखक वास्तविकता के इस पहलू को और मानव के आन्तरिक जगत् को अपनी रचनाओ मे मूर्तिमान करता है। मानव जीवन के अन्तर्तम रूप को मूर्त कर देना ही आज के उपन्यास को अन्य साहित्यिक रूप विधानो से प्रथक करता है। मोहन राकेश के उपन्यासो मे नायक की धारणा या चरित्र और सिलसिलेवार कथा का मोह नही है। वे एक मुख्य मन स्थिति से जुडे हुए अनेक प्रसगो को प्रस्तुत करते है जिससे बाह्य परिवेश भी भीतरी संदर्भ मे परिवर्तित हो गये है। बाहर की हलचल उनके भीतर की हलचल बन गई है जिससे राकेश जी का साहित्य कथा के रचाव की दृष्टि से चरित्र के मिथ को तोड सका है और उनकी रचना नये रूप मे परिकल्पित हुई है। प्राचीन औपन्यासिक विधान मे रद्दोबदल का सकेत उनके उपन्यासोके माध्यम से मिलता है। राकेश की रचनाओ मे (कहानी, उपन्यास और

नाटक) पूरे दौर को मानवीय सम्बन्धो और उनके संकटो को पकडने का प्रयास किया गया है, विशेषकर बदलते हुए या टूटते हुए सामाजिक मूल्यो के सन्दर्भ मे व्यक्ति के निजी सम्बन्धो की, स्त्री–पुरूषो के रिश्तो की दरारो को उन्होने बार–बार कई तरह से पहचानने की कोशिश की है। उल्लेखनीय है कि ये सम्बन्ध या उनके विघटित हुए रूप आज के ही आदमी के अनुभव को परिभाषित करते है उनकी रचनाओ मे स्त्री अक्सर नौकरी करने वाली है। जैसे कहानियो मे 'सुहागिनें की मनोरमा', 'एक और जिन्दगी' की बीना, 'पहचान' की मिसेज सचदेव, नाटको में 'आधे अधूरे' की 'सावित्री' और उपन्यासो मे 'अन्तराल' की श्यामा और 'अन्धेरे बन्द कमरे' की नीलिमा आदि अनेक ऐसी नारिया है जो किसी न किसी रूप मे अपने स्वतन्त्र जीवन की तलाश करती हैं लेकिन बदली हुई परिस्थितियो मे प्राचीन सामन्तवादी पुरूष की मानसिकता से जूझकर अकेली पड जाती हैं या उनमे टूट कर जुडे रहने की छटपटाहट बनी रहती है।

मोहन राकेश एक स्थान पर लिखते है कि "मेरी रचनाये सम्बघो की यन्त्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगो की कहानिया है उनकी परिणति किसी तरह के सिनिसिज्म मे नही, झेलने की निष्ठा में है।"[2] इसी सत्यता को उजागर करते हुए मोहन राकेश के उपन्यासो परविचार प्रकट करते हुए डॉ0 ज्ञान अस्थाना लिखते हैं कि "मोहन राकेश के तीनों उपन्यासो 'अधेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल', 'अन्तराल' मे आधुनिक जीवन की विसगतियो मे सगति न ढूढ पाने की विवशता है। कम से कम 'अधेरे बंद कमरे' मे जीवन अपनी सस्कार बद्धता के कारण विवश है। 'न आने वाला कल' में विवशता की यह जकड कुछ ढीली पडी है। 'अन्तराल' मे इसे खुली छूट मिली है सम्बन्धो को खोजने के लिए और इस खोज का परिणाम है 'अन्तराल' – जीवन मे कभी न पटने वाली खाई।"[3] निष्कर्ष रूप मे यही कहा जा सकता है कि राकेश के उपन्यास मूल रूप से स्त्री–पुरूष के द्वन्द्व को लेकर चलते रहते हैं और इस द्वन्द्व मे परिवार रूपी सस्था की धुरी पति–पत्नी ही केन्द्र मे रहते हैं।

मोहन राकेश के उपन्यासो का मूलाधार दाम्पत्य–जीवन है। मूलाधार इस अर्थ मे कि उनके तीनो उपन्यासो की तमाम अवान्तर कथाए और लगभग सभी प्रश्न दाम्पत्य जीवन के ही किसी न किसी रूप या पक्ष से उद्भूत है। आधुनिक, उन्नति अह, आत्म केन्द्रित, बुद्धिजीवी, महानगर–निवासी स्त्री–पुरूष जो परम्परा से चले आये सम्बधो मे आबद्ध हैं। मोहन राकेश के उपन्यासों मे उन सम्बन्धो की जाच–पडताल या छानबीन करते अथवा उन सम्बधो के सदर्भ मे निजी व्यक्ति जीवन की सार्थकता तलाशते या निजी–व्यक्ति जीवन के सदर्भ मे

उन सम्बन्धो की अर्थवत्ता खोजते हुए दिखाई देते हैं इसलिए उन्होने इन पारम्परिक मानवीय सम्बन्धो में सर्वप्रथम पति–पत्नी सम्बन्ध का ही अपने उपन्यासो की आधारिक विषय–वस्तु बनाया है , शायद वह इसलिए कि मानव–समाज का यही सम्बन्ध सबसे अधिक गहन व्यापक और प्रमुख है कि अन्य सम्बन्ध उपसम्बध इसी से जन्म लेते है इसके अतिरिक्त दाम्पत्य जीवन को ही अपने उपन्यासो की विषयवस्तु चुनने के पीछे राकेश जी के सामने आधुनिक मानव–समाज का वह साम्प्रतिक रूप भी हो सकता है जिसमे विभिन्न सम्बन्धो से भरे पुराने, बडे और सम्मिलित परिवार टूटते जा रहे है तथा परिवार नाम की सस्था पति–पत्नी (और एक या दो बच्चे) तक ही सीमित होती जा रही है। इस तरह पति–पत्नी के जीवन–सम्बन्धो को अपनी औपन्यासिक–कृतियो की आधारभूत विषय–वस्तु बनाकर मोहन राकेश मानो आज के मानव–समाज के मूल सम्बन्ध, उसकी मूल सस्था को उद्‌घाटित और विश्लेषित करना चाहते है।

मोहन राकेश ने 'अधेरे बद कमरे' की भूमिका मे रचना के कथ्य की ओर संकेत करते हुए हरबंश और नीलिमा के अतर्द्वन्द्व की कहानी (भी) कहा है। प्रश्न यह उठता है कि अतर्द्वन्द्व क्यो? और कैसा? चली आयी भारतीय समाज व्यवस्था के अनुसार तो 'अर्धागिनी' और 'जीवन सगिनी' 'पत्नी तथा भर्ता' और परमेश्वर पति के मध्य किसी द्वन्द्व का स्थान ही नही है। 'पति की अनुयायिनी' पत्नी–पति के प्रति तथा 'योषिता और पोषिता' पत्नी के प्रति भला द्वन्द्व की स्थिति मे कैसे हो सकता है? पारपरिक समाज और उसके दर्पण पहले के साहित्य मे ऐसा होता भी नही था। या होते हुए भी हमारी पारंपरिक दृष्टि उसे स्वीकार नही करती थी, कही–कही आज भी नही करती। लेकिन, जोर देकर कहने की आवश्यकता नही कि यह दृष्टि अधूरी और नकारात्मक थी। यह दृष्टि पति और पत्नी को एक 'व्यक्ति' न मानकर उनकी अस्मिता को नकारती हुई उनकी वास्तविकता को भी झुठलाती थी। ऐसी स्थिति मे जब आज का कथाकार पति और पत्नी के मध्य जैसे ही द्वन्द्व की दशा को स्वीकार करता है, उसी क्षण वह पारपरिक समाज तथा पुरानी दृष्टि को एक झटके से निरस्त कर केवल समाज के बदले हुए आधुनिक रूप को ही स्वीकार नही करता अपितु पति और पत्नी के प्रथक–प्रथक स्वतन्त्र अस्तित्व को भी स्वीकृति प्रदान करता है। आज पति और पत्नी एक साथ रहते हुए भी, आसगबद्ध होते हुए भी एक–दूसरे के लिए अपने–अपने अह के विलयन हेतु तैयार नही है। इसका एक मात्र कारण है अह का घोषित स्वीकार तथा व्यक्ति की स्वतत्र सत्ता की स्थापना । अपने अह की

रक्षा और स्वतत्र व्यक्ति की इस स्थापना की धारणा ही पति और पत्नी के मध्य द्वन्द्व को जन्म देती है।

'अधेरे बन्द कमरे' की "नीलिमा इब्सन के 'ए डॉल्स हाउस' की नोरा की तरह अपने लिए पति को सोचने का समस्त अधिकार देकर छुट्टी पा लेना नही चाहती।"[4] जबकि उसका पति "हरबश उसमे वही आदिम (पारपरिक) भावना कार्य कर रही है कि वह पति होने के नाते नीलिमा का रक्षक, निर्देशक और नियता है। वह चाहता है कि नीलिमा आर्थिक या शारीरिक कारणो से ही नही, अपनी व्यक्तिगत पूर्णता और सार्थकता के लिए भी उसी पर आश्रित रहे—न सही उस पर, उसके मूल्य—दर्शन पर ही।"[5] बस, मूल द्वन्द्व यही है। मोहन राकेश के 'अधेरे बद कमरे' मे हरबश और नीलिमा नामक पति—पत्नी के दाम्पत्य जीवन के बहाने आधुनिक समाज के "उस औसत दाम्पत्य जीवन की कहानी है जो ऊपर से तो ईष्या की हद तक सुखी और सतुलित दिखता है, लेकिन जिसके भीतर एक अजब कुहासा, घुटन और 'कॅआस' बसा हुआ है"[6] इसमे सन्देह नही कि मोहन राकेश ने अपने इस उपन्यास में विवाह की सस्था और उसके दोनो कर्ताओ—पति और पत्नी—की आतरिक पर्तो को उधेडकर दाम्पय—सम्बन्धो के जो बारीक—से—बारीक रोये—रेशे प्रस्तुत किये है वे कथाकार की अपनी क्षमता के तो प्रमाण है ही साथ ही, इस प्राचीन सामाजिक सस्था के प्रति कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न भी उठाते है कि मानव—समाज के भावी रूप के हित में जिनका समाधान भी अपेक्षित है। पूरे उपन्यास मे पृष्ठ दर पृष्ठ फैले हरबश और नीलिमा के आपसी विवाद, प्राय नित्य ही उनका छोटी—छोटी बातो पर आपस मे उलझ जाना, दोनो का ही स्वयं को सही सिद्ध कर पाने की मानसिक तृप्ति के लिए मधुसूदन जैसे किसी तीसरे साक्षी की शरण मे जाना, रोज के चाहे—अनचाहे विवादो के कारण दोनो को स्वय और जीवन मे बढती हुई अरूचि, ऊपर के तमाम विवादो और तानो—झगडो के बावजूद दोनो की यह प्रच्छन्न कोशिश कि सम्बन्धो का आतरिक सूत्र अनटूटा बना रहे, बार—बार एक दूसरे से भागना और फिर लौट कर मिलना आदि स्थितिया और उनका विशद चित्रण अतत पाठक को विवश कर देता है कि वह दाम्पत्य जीवन की इन भीतरी असगतियो से दो—चार होने पर युग युगो से चली आयी विवाह नाम की इस सामाजिक सस्था की सार्थकता के बारे में एक बार फिर नये सिरे से सोचे। यह सत्य है कि हरबश और नीलिमा के दाम्पत्य जीवन से साक्षात्कार करता पाठक एक बार तो पति—पत्नी अभिधानक समान—व्यवस्था के इन मूलाधारो के प्रति न केवल शकाकुल हो उठता है, अपितु घबरा उठता है। समाज के इस आधारित सम्बन्ध के प्रति सहसा उसका पारपरिक विश्वास विचलित

हो उठता है और इस दृष्टि से लगता है कि मोहन राकेश ने अपना रचना–हेतु पूर्ण सफलता के साथ प्राप्त किया है।

लेकिन, थोडी और गहरी तटस्थ दृष्टि से देखने पर अर्थात लेखक द्वारा आयोजित स्थिति–परिस्थितियो का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर सहसा ही ऐसा भी प्रतीत होता है कि हरबश और नीलिमा का यह विवाद वास्तविक नही, बल्कि जान बूझकर अकारण खडा किया हुआ विवाद है। निरपेक्ष विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दाम्पत्य जीवन के सबध में प्रस्तुत हरबश और नीलिमा (अर्थात लेखक) की ये सारी प्रश्न वाचक मुद्राएं सतही और वायवीय हैं। इस दाम्पत्ति के तमाम विवादो, समूचे तनाव और समपूर्ण द्वन्द्व के पीछे कोई भी ठोस और उचित कारण खोज पाना पाठक के लिए सभव प्रतीत नही होता। हरबश और नीलिमा के द्वन्द्व मे से कोई शरीरिक रूप से अक्षम है? नही। क्या उनके पारस्परिक दाम्पत्य सम्बन्धो में किसी अन्य व्यक्ति के कारण कोई दरार है? नही। आशय यह कि आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक, नैतिक मानसिक आदि किसी भी दृष्टि से कोई भी निश्चित कारण नहीं है जिसे उनके द्वन्द्व के लिए मूलत रेखाकित किया जा सके। तब फिर द्वन्द्व क्यो है? बार–बार परस्पर विरोधी बाते और हरकते करते समय इस दपति के द्वन्द्व का कोई भी यथार्थ, निश्चित और औचित्यपूर्ण कारण अपने इस वृहत और बहुचर्चित उपन्यास मे मोहन राकेश नही दे सके हैं।

ज्ञानोदय 'खुले और रोशन कमरे के सवाल' नामक शीर्षक के अर्न्तगत सुधा अरोडा ने मोहन राकेश से 'अन्धेरे बन्द कमरे' उपन्यास के बारे मे कुछ प्रश्न पूछे थे। हरबश का चरित्र एक विचित्र या कहा जाय अटपटा चरित्र है। सामान्यत पाठक उसे जितना क्रियाशील–हर स्थिति पर प्रतिक्रिया करने वाला पाता है वस्तुत वह उतना सक्रिय है नही। और उसकी यह दृश्य सक्रियता तब व्यर्थ प्रतीत होने लगती है जब पाठक सोचता है "हरबश के टूटने का स्पष्ट कारण क्या है? नीलिमा? या नीलिमा की उसकी पत्नी होना? या वैवाहिक बधन? या नीलिमा को न समझने की असमर्थता या अपनी दुर्बलता या फिर शुक्ला के प्रति एक अस्पष्ट–सा आकर्षण।"[7] और यह सत्य भी है कि क्यो तो हरबश लदन जाता है, यदि नीलिमा से बचने के लिए तो फिर क्यो वहाॅ से पत्र पर पत्र लिखकर नीलिमा को बुलाता है? जब वह नही चाहता कि नीलिमा अपने नृत्य का सार्वजनिक प्रदर्शन करे तो क्यो – ऊपरी ही सही वह उसको सहयोग देता है? जब नीलिमा उसका घर छोडकर चली जाती है तो एक 'अधेरे बद कमरे' मे अकेले शराब पीने के अतिरिक्त वह क्या ठोस कार्यवाही करता है? और जब नीलिमा लौट आती है तब क्या करता है? वह क्यो नही स्पष्ट करता कि शुक्ला

के प्रति उसका क्या स्टैंड है? ऐसे अनेक प्रश्न जो हरबश के चरित्र को अविश्वसनीयता प्रदान करते है उपन्यास मे अनुत्तरित ही रह गये है कि जिनके कारण हरबश भी मूलत एक आरोपित निर्मित चरित्र प्रमाणित होता है।

न्याय नही होगा यदि हरबश के चरित्र के सम्बन्ध मे उठाये गये इन प्रश्नो के समाधान हेतु उपन्यासकार मोहन राकेश के शब्द (जब उपलब्ध है तो) उद्धत न किये जाये। 'ज्ञानोदय' के जुलाई 65 अक मे सुधा अरोडा के प्रश्नो के उत्तर मे राकेश लि.खते है, "हरबश उसका अतर्द्वन्द्व किन्ही मूल्यो को लेकर है जबकि नीलिमा का अतर्द्वन्द्व मुख्य रूप से उपलब्धि की खोज पर आश्रित है। . वह टूटता है क्योकि वह नीलिमा को उपलब्धि से हटकर मूल्यो के स्तर पर जीना सिखाना चाहता है और नही सिखा पाता। वह टूटने से बचने के लिए नीलिमा से दूर भागता है, मगर अंदर के रेशो से वह इस तरह उससे जुडा हुआ है कि उससे अलग होकर वह किसी भी तरह नये सिरे से जिदगी शुरू नही कर पाता। . हरबश को नीलिमा के 'बनने' से चिढ नही है (जैसा कि नीलिमा भी कई बार कहती है), बल्कि उस रास्ते के 'बनने' से चिढ है जिसे वह अपनी जिंदगी मे अपना रही है।"[8] सुधा अरोडा द्वारा और कुछ प्रश्नो का उत्तर देते हुए स्वय मोहन राकेश ने लिखा है, "उपन्यास का सबध आज के यथार्थ से है। यह यथार्थ एक गतिरोध है– मध्यवर्ग के दाम्पत्य सम्बन्धो मे आया एक गतिरोध। हरबश और नीलिमा इस गतिरोध मे रहकर छटपटाते है पर इससे उबर नही पाते। आरम्भ से अन्त तक वे तनाव और निष्फल सघर्ष की स्थिति मे जीते हैं। सारी कोशिशो के बावजूद जहॉ के तहॉ बने रहना उनकी अनिवार्य स्थिति है– स्थिति, नियति नही।"[9]

मोहन राकेश के दूसरे उपन्यास 'न आने वाला कल' का मूल कथ्य तो कुछ और ही है, लेकिनउसमे भी मनोज और शोभा के दाम्पत्य जीवनका काफी सक्षिप्त लेकिन बहुत ही संश्लिष्ट चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है। सात साल विवाहित रहने के बाद शोभा की दूसरी शादी मनोज से होती है, और मनोज ने अपनी जिदगी के पैंतीस लबे वर्ष अकेले रहकर गुजारने के बाद यह पहली बार शादी की है और अब उन दोनो की स्थिति क्या है (मनोज के शब्दो मे) – "उसकी (शोभा की) नजर मे मै अब भी एक अकेला आदमी था, जिसका घर उसे सभालना पड रहा था जबकि मेरे लिए वह किसी दूसरे की पत्नी थी, जिसके घर मे मै एक बेतुके मेहमान की तरह टिका था।"[10] न केवल इतना, बल्कि यह भी कि, " एक दूसरे की बढती पहचान हमारे अदर एक औपचारिकता मे ढलती गयी थी। यह जान लेने के बाद कि न तो हम अपनी–अपनी हदे तोड सकते है

और न ही एक–दूसरे की हदबन्दी को पार कर सकते है, हमने एक युद्ध–विराम मे जीना शुरू कर दिया था।"[11]

'न आने वाला कल' मे चूँकि लेखक ने रचना के मूल कथ्य के रूप मे मनोज द्वारा अपनी नौकरी से त्यागपत्र देने तथा उस पर उसके सहयोगियो की प्रतिक्रिया को मुख्य प्रतिपाद्य बनाया है अत मनोज और शोभा का दाम्पत्य–जीवन गौण स्थिति मे चला गया है। फिरभी इस उपन्यास मे मोहन ने दो वयस्क स्त्री–पुरूषो के निजी पति–पत्नी सम्बन्धो को बहुत स्पष्ट और संश्लिष्ट रूप मे प्रस्तुत किया है। पैतीस वर्ष की वय तक के अकेलेपन से ऊब कर मनोज ने शोभा से शादी तो कर ली लेकिन अब स्थिति है कि (मनोज के शब्दो में) "अपनी ही इच्छा और जिम्मेदारी से हम लोगो ने अपने लिए एक परिस्थिति खडी कर ली थी, जिससे उबरने का उपाय दोनो को ही नहीं आता था। इसके बाद साथ रह सकना लगभग असम्भव था, पर सम्बन्ध विच्छेद की बात दोनो अपने अपने कारणों से जबान पर नही ला पाते थे। शोभा के लिए प्रश्न था विरोधी परिस्थितियो मे लिए गए अपने निर्णय का मान रखने का, मेरे लिए पहले की बनी अपनी गलत तस्वीर को सही साबित न होने देने का।"[12]

आशय यह है कि मनोज और शोभा भी 'अधेरे बद कमरे' के हरबश और नीलिमा की भॉति अकारण के सकट से ग्रस्त है। अपने–अपने अहं की मीनार मे कैद दोनो उसे सुरक्षित बनाये रखने के प्रयत्नो में अपने जीवन की सुख–सुविधाओ का बलिदान कर रहे है। किसी अन्य पुरूष के साथ सात–वर्ष दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर चुकने वाली शोभा मनोज नाम के इस दूसरे पुरूष की पत्नी बनकर स्वय को इसके अनुरूप बदलने के लिए कतई तैयार नही है और दूसरी ओर मनोज है, जो पुरूष होने के नाते यह कतई गवारा नही करता कि वह एक स्त्री के लिए स्वय को बदले। अपने–अपने अह के चौखटो मे कैद दोनो विच्छिन्न भी नही होते, क्योकि विच्छेद के लिए प्रवर्तन करनेवाले को अपना अहं टूटता प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति मे मानसिक पीडा और द्वन्द्व सहते रहने के अतिरिक्त दोनो के सामने कोई अन्य रास्ता नहीं है। लेकिन फिर वही प्रश्न उठता है कि क्या इन दोनो की यह स्थिति और इसका कारण यथार्थाधारित है? क्या ये दोनो सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं? निश्चित रूप से नही यदि वे ऐसा चाहते तो दोनो या दोनो मे से कोई एक स्वयम् को दूसरे के अनुकूल बदल या ढाल सकता है। लेकिन चूकि ये दोनो चरित्र ही लेखक की मानसिक कृतिया है, इसलिए इनका जीवनऔर द्वन्द्व भी मानसिक ही है, वास्तविक नही। वास्तविक जीवन जीते यथार्थ जगत के दम्पत्ति एक–दूसरे के अनुरूप जीवन मे न जाने

कितने समायोजन करते रहते है। इस प्रकार देखा जाय तो 'न आने वाला कल' मे अनेक पात्र – थोडी–थोडी देर के लिए आते है और जीवन के प्रति असन्तोष और ऊब व्यक्त करते है। शारदा–कोहली, टोनी व्हिसलर, चेरी लारा, मिसेज ज्याफ्रे, रोज ब्राइट, मिसेज दारूवाला पादरी, माली क्राउन, बानी, फकीरे काशनी और पादरी ये सारे पात्र एक पहाडी स्कूल की जिन्दगी के साथ जीते हुए भी इतने अकेले है कि अपने सिवा और किसी के अकेलेपन को महसूस तक नही कर पाते। अपने–अपने काम से अपने परिवेश से वे बेजार है लेकिन वे अपने परिवेश से इस प्रकार बधे है कि उससे छिटककर दूर भी नहीं हो पाते अर्थात वे अपने आप मे विवश हो जाते है। नायक मनोज आदि से अन्त कि अनिश्यात्मक स्थिति मे रहता है। वह छुटकारा पाना चाहता था परन्तु किससे? नौकरी से पत्नी से? किसी चीज से? वह स्वय नही जानता कि उसने त्यागपत्र क्यो दिया?

मोहन राकेश के प्रथम दो उपन्यासो की भाति ही तीसरे उपन्यास 'अन्तराल' मे भी समस्या ग्रस्त दाम्पत्य जीवन का चित्रण है, बल्कि कुछ ज्यादा ही है लेकिन यहां भी समस्या का उत्स वही मानसिक है, वास्तविक जीवन जगत से परे। 'अंधेरे बन्द कमरे' के हरबंश और नीलिमा मे अह और विचारो भावनाओ का टकराव है, 'न आने वाला कल' की शोभा मनोज को अपने अनुरूप नही ढाल पाती तो 'अतराल' की श्यामा की भी अपने पति से यही शिकायत है कि वह उसके अह की लगातार उपेक्षा करता हुआ, अपने व्यक्तित्व को उस पर बलात आरोपित करता हुआ डेढ वर्ष तक दाम्पत्य जीवन बिताकर अचानक ससार से चला गया।

श्यामा–कुमार के सम्पर्क मे जब आती है तब उसके पति के मरे हुए तीन वर्ष गुजर गये हैं ऐसी परिस्थितियो मे एक बार फिर उसके भीतर की नारी पुरूष प्राप्ति की आकाक्षा से भर उठती है। श्यामा ने देव को पति रूप मे प्राप्त कर अपने नारी–जीवन को सर्वाशत उसी एक पुरूष मे विसर्जित कर देना चाहा था, लेकिन दो– एक जागतिक तथा अधिसख्य मानसिक असंगतियो के कारण ऐसा नही हो सका। देव के श्यामा के प्रति लगातार के विरक्ति पूर्ण व्यवहार ने श्यामा को उसके प्रति एक विद्रोह भरे क्षोभ से भर दिया। अचानक देव के देहात ने जैसे उससे श्यामा के सम्बन्धो को वही 'स्थिर' कर दिया है। श्यामा अब न तो अपने क्षोभ को ही व्यक्त कर सकती है और न देव की आतरिक भावनाओ को ही जान सकती है और अब शेष जीवन उसे उसी क्षोभ की मन· स्थिति को ढोते हुए व्यतीत करना है। यही कारण है कि श्यामा अब भी देव के व्यक्तित्व के प्रभाव से मुक्त नही है। उसे लगता है कि देव जीवित अवस्था मे तो उसके साथ रहकर

लगातार उसकी उपेक्षा करता रहा है और अब अचानक मरकर तो जैसे उसने श्यामा को आखिरी बार भी एक बडा धोखा देकर पराजित कर दिया। अब तो उससे अपने विद्रोह को प्रकट करने की भी कोई सम्भावना नही रही। 'अतराल' के तीनो खण्डो मे विविध प्रसगो मे उल्लिखित श्यामा के विचार उसकी उपर्युक्त बाह्मातरिक दशा को ही व्यक्त करते है।

सास्कारिक असगति और अह के टकराव से उत्पन्न असामजस्य से भरे देव और श्यामा के दाम्पत्य–जीवन के अतिरिक्त 'अतराल' मे दाम्पत्य जीवन के दो अन्य रूप भी अकित किये गये हैं। पहला है "श्यामा के जीजा प्रो0 मल्होत्रा का जो अपनी पत्नी–बच्चों के साथ रहते हुए भी लगातार अन्य स्त्रियो और लडकियो से यौन–तृप्ति करने की घात मे बने रहते हैं।"[13] और दूसरा है कुमार का जो बंबई आकर लगातार के अकेलेपन से ऊबकर किसी परिचित द्वारा बताई गयी एक स्त्री से विवाह तो कर लेता है लेकिन "छः माह से अधिक उसका विवाहित जीवन नही चल पाता। परिस्थिति विशेष से विवश हुई वह स्त्री कुमार से विवाह तो कर लेती है, लेकिन जैसे ही स्थितियां उसके अनुकूल होती हैं, वह उसे छोडकर चली जाती है।"[14] दाम्पत्य जीवन के ये दोनो ही रूप विशेष उल्लेख्य नही है। उपन्यासकार ने भी इन्हें अधिक महत्व नही दिया है तथा यो भी ये दोनो ही रूप सामान्य जीवन–जगत मे आये दिन होने वाली घटनाओ और रहने वाले व्यक्तियों के उदाहरण मात्र ही हैं। हॉ इतना अवश्य है कि इनमे से कुमार वाले प्रसग के द्वारा कुमार के दाम्पत्य जीवन के बारे मे विचारो का परिचय अवश्य मिल जाता है। श्यामा जब पूछती है कि उस स्त्री के साथ उसने कैसा अनुभव किया तो कुमार प्रकारातर से विवाहित जीवन के बारे मे ही अपने विचार प्रकट करता है, मुझे "सिवाय शरीर के कुछ नही मिला। उसे भी मुझसे केवल इतना ही मिला होगा। . . और जो था, वह था केवल एकडर। बात अपने तक रहे, किसी को पता न चले। जितना सडना है, अदर ही अंदर सडो। उसी सडाध और जहर से बच्चे पैदा करो और उन्हें भी उसी ढग से जीने की शिक्षा दो। अपनी स्वाभाविकता के साथ विश्वासघात करो और ऐसा करने की परम्परा को बनाये रखो।"[15]

कुमार अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित लगता है उसे अपने अह के सिवाय कुछ नजर ही नही आता है वह दूसरो की भावनाओ का कुछ ख्याल ही नही करता है क्योकि विवाहित जीवन के बारे में कुमार के ये विचार स्वय ही स्पष्ट कर देते है कि दाम्पत्य जीवन केवल शरीर सुख और सतानोत्पत्ति का ही नाम नही है, उसमे मानसिक सामजस्य और भावात्मक प्रेम भी जरूरी है। यहॉ

आकर जैसे कुमार और श्यामा के विचार एक बिन्दु पर मिल जाते हैं। श्यामा की पीडा और समस्या भी यही है कि देव से न तो उसकी मानसिक सगति ही बैठ सकी और न वह उससे हार्दिक स्नेह ही पा सकी। शोभा और मनोज के विच्छेद के पीछे भी उनका मानसिक आसामाजस्य ही है और यही आन्तरिक असगति हरबश और नीलिमा के दाम्पत्य–जीवन की प्रमुख समस्या है।

आशय यह कि मोहन राकेश के उपन्यासो मे वर्णित दाम्पत्य जीवन समस्या ग्रस्त दाम्पत्य–जीवन है और उसकी एक मात्र समस्या है पति–पत्नी का मानसिक असामांजस्य, ऐसा मानसिक असामजस्य जिसके पीछे कोई यथार्थ भौतिक कारण नहीं है।

'अंधेरे बन्द कमरे'

'अधेरे बन्द कमरे' कालक्रम की दृष्टि से मोहन राकेश का प्रथम उपन्यास है। 'अंधेरे बन्द कमरे ' की कथावस्तु के विशद विवेचन से पूर्व यह समीचीन होगा कि उसके सक्षिप्त कथानक से परिचय प्राप्त कर लिया जाय। इस उपन्यास की सम्पूर्ण कथा चार शीर्षक हीन खण्डो मे विभाजित है। प्रथम खण्ड का आरम्भ उपन्यास के वाचक 'मै' – जो कि कथा का सूत्रधार और नायक भी है तथा जिसका नाम मधुसूदन है की इस सूचना से होता है कि वह नौ साल बाद लखनऊ से दिल्ली लौटा है और अपने मित्र हरबश के साथ कनाट–प्लेस के काफी हाउस मे काफी पीता हुआ पूर्वदीप्ति पद्धति के द्वारा उस काल खण्ड को प्रस्तुत करता है जब नौ साल पहले वह बम्बई मे रहता था और उस महानगर के ऊब भरे जीवन को छोडकर कही चला जाना चाहता था। कथा के अन्य प्रमुख पात्र और मधुसूदन के मित्र हरबश से उसका परिचय बबई मे ही हुआ था। बम्बई से मधुसूदन दिल्ली चला आया था और कस्साबपुरा मे ठकुराइन के यहॉ अपने एक अन्य मित्र अरबिंद के साथ रहता हुआ 'इरावती' पत्रिका मे 160 रू0 मासिक नौकरी मे लगा था। बीच–बीच मे कस्साबपुरा के निम्न वित्तीय जीवन के ऑचलिक प्रसग, सितारबादक बुड्ढे इबादत अली और उसकी लडकी खुरशीद का कथाश, कनाट–प्लेस के रेस्तराओ–बराडो मे व्यतीत होते हरबश, नीलिमा, शुक्ला, जीवन भार्गव, शिवमोहन, सुरजीत आदि के आधुनिक बौद्धिक जीवन के कथा चित्र 'इरावती' नामक पत्रिका के मालिक सम्पादक के शोषक जीवन व्यवहार का वर्णन, हरबश और नीलिमा के दाम्पत्य जीवन में वैचारिक असगति से उत्पन्न तनाव के फलस्वरूप हरबश का शोध करने के बहाने लदन चले जाना वहा से पत्र लिखकर नीलिमा को बुलाना कितु नीलिमा का भरतनाट्यम सीखने के लिए मैसूर जाने का

सकल्प आदि कथा प्रसगो के वर्णन के अतिरिक्त वाचक मधुसूदन के द्वारा 'इरावती' की नौकरी से त्यागपत्र देकर लखनऊ चले जाने की कथा का क्रमानुकूल प्रस्तुतीकरण किया गया है। उपन्यास का प्रथम खण्ड यही समाप्त हो जाता है।

मोहन राकेश ने दूसरे खण्ड की कथा को फिर उसी बिदु से उठाया है जहां उसने प्रथम खण्ड के आरम्भ मे उसे स्थगित कर पूर्व दीप्ति के द्वारा नौ साल पहले की दिल्ली की उपर्युक्त कथा को प्रस्तुत किया था। अर्थात वही स्थिति कि मधुसूदन अपने मित्र हरबश के साथ कॉफी हाउस मे कॉफी पी रहा है। नौ साल पहले दिल्ली से लखनऊ जाकर वह छ महीने गॉव मे रहा फिर चार साल एक प्रकाशक के यहॉ तथा चार साल एक अग्रेजी दैनिक पत्र मे सहायक सपादक की नौकरी करके अब दिल्ली के 'न्यू हेरल्ड' में नगर सवाददाता होकर आ गया है। इस खण्ड के आरभ तथा बीच मे लेखक पत्रकारो के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की थोडे विस्तार के साथ चर्चा करता हुआ फिर मुख्य कथा को विकास देता है। मधुसूदन के एकाध बार पूछने पर हरबश अपने लदन–प्रवास के जीवन का सविस्तार वर्णन करता है कि किस प्रकार एक वर्ष बाद भरतनाट्यम का प्रशिक्षण लेकर नीलिमा भी लदन पहुँच गयी। लदन मे नीलिमा का उमादत्त के ट्रूप के साथ यूरोप का दौरा करना ट्रूप के एक वर्मी कलाकार ऊबानू के साथ नीलिमा का विशिष्ट आसक्ति प्रसग, हरबश और ए0बी0सी0 (अमृत बाला चावला) का भी ऐसा ही प्रसग दौरे से लौटकर हरबश और नीलिमा के बीच भेद और तनाव का और अधिक बढ जाना, दिल्ली वापस साथ–साथ लौटना, इधर सुरजीत का शुक्ला से शादी कर लेना, हरबंश और नीलिमा दोनो का ही बेहद मानसिक तनाव मे दिन व्यतीत करना, एक बार नीलिमा द्वारा भी मधुसूदन को अपने लदन–प्रवास के कुछ प्रसग सुनाना आदि वर्णनो के साथ यह खंड हरबश और नीलिमा को असगति, तनाव और विवाद भरे वातावरण मे ही छोडता हुआ समाप्त हो जाता है।

तृतीय खण्ड मे कथा के विकास और विस्तार की दृष्टि से दिल्ली के महानगरीय जीवन के व्यौरो के साथ हरबश–नीलिमा की तनाव भरी गृहस्थ जिदगी का वर्णन, उनके बार–बार के विवाद–झगडे, दिल्ली का कला जगत, कॉफी हाउसो मे चित्र सगीत नाटक, राजनीति, कूटनीति तथा आधुनिक जीवन पर होती बौद्धिक बहसे, विदेशी दूतावास, उनके अभिजात्य समारोह, बीच मे थोडा–सा कस्साबपुरा, ठकुराइन और उसकी जवान हो गयी बेटी निम्मा का प्रस्तुत चित्रण, मधुसूदन की निजी नौकरी का विस्तृत वर्णन आदि विभिन्न प्रसगो को प्रस्तुत

करते हुए यह कथा–खण्ड भी दूसरे कथा–खण्ड की भॉति हरबश और नीलिमा के नित्य–नैमित्तिक विवाद के साथ समाप्त होता है।

चतुर्थ खण्ड उपन्यास का अन्तिम कथाश है जिसके आरम्भ मे रचना के शुरू से चला आया हरबस और नीलिमा के दाम्पत्य–तनाव का सूत्र विद्यमान है नीलिमा कला–निकेतन की ओर से अपने नृत्य का एक सार्वजनिक प्रदर्शन करना चाहती है। हरबश ऊपरी तौर पर उसे सहयोग करता हुआ भी नही चाहता कि नीलिमा अपनी 'स्थापना' हेतु इस प्रकार के तुच्छ व्यावसायिक प्रयत्न करे, बीच मे दूतावास की एक कर्मचारी सुषमा श्रीवास्तव और मधुसूदन का प्रणय–प्रसग आता है जो दोनो के विवाह की स्थिति तक जाकर इसलिए टूट जाता है कि सुषमा किसी विदेशी सरकार की ऐजेट है, कथा प्रसंगो के अन्य व्योरो के साथ ठकुराइन तथा शुक्ला की भी चर्चा है– कि ठकुराइन अपनी बेटी निम्मा का मधुसूदन से विवाह करना चाहती है जिसे मधुसूदन अस्वीकार कर देता है और स्वय भीतर ही भीतर एक टीस का अनुभव करता है कि शुक्ला से शादी नही कर पाया, नीलिमा के नृत्य प्रदर्शन की सफलता के बाद उसका और हरबश का विवाद और उग्र रूप धारण कर लेता है और नीलिमा हरबश का घर छोडकर चली जाती है और अतत एक सुबह अचानक स्वय लौट आती है। इधर मधुसूदन मानो चारो ओर से मुक्त होकर अचानक (अनायस ही) कस्साबपुरा चलने के लिए टैक्सी–ड्राइवर से कहता है और इस तरह एक अचानक–सी स्थिति मे उपन्यास समाप्त हो जाता है।

'अधेरे बन्द कमरे' की यह कथावस्तु अपनी विभिन्न स्थितियो के बारे में यद्यपि अनेक प्रश्न, शकाएँ पाठक के मन मे उत्पन्न करती है, लेकिन कहने की आवश्यकता नही कि इन शंकाओ का एक मात्र कारण लेखक की इस नयी रीति, कथा के इस नये निर्वाह से पाठक का अपरिचय ही है और इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'अधेरे बंद कमरे' की कथावस्तु आरम्भ, विकास तथा अवसानादि के तत्वो से सर्वथा मुक्त अपने नये रूपशिल्प से सम्पन्न है।

साठोत्तरी उपन्यासो में यथार्थ के अनेक आयामी चित्रण ने उपन्यास के परम्परित शिल्प और रूपबन्ध को छिन्न–भिन्न कर उपन्यास के ढॉचे को चरमरा दिया। हिन्दी उपन्यास का ढॉचा बहुत विखरा–विखरा सा है। प्रत्येक दिशा में खण्डित मर्यादाएँ है और विच्छिन्न मूल्यो की अस्त–व्यस्त परम्परा है। इसका तात्कालिक परिणाम एक ओर सामाजिक एव वैयक्तिक सीमाओं का टूटना तथा दूसरी ओर नैतिक मान्यताओ की विकृति है। इन दोनो के मध्य मानव जीवन मे अनास्था एव कुण्ठाओ की ऊँची मीनारे उठ रही है तथा मानव–मूल्य की मर्यादा

शकालु बनती जा रही है। इस तथ्य की ओर सकेत करते हुए डॉ0 गिरिजाराय कहती है कि – "आधुनिक उपन्यासो का नयापन मूलत जीवन के प्रति दृष्टि कोण का नयापन है, मानवीय अस्तित्व की समस्याओ, सामाजिक जीवन की विडम्बनात्मक विसगतियो, सम्बन्धो के खोखलेपन और अजनबीपन को अभिव्यक्ति देने के लिए रचनाकार सक्रिय हुआ।"[16] उपर्युक्त विसगतियो की यह प्रवृत्ति बहुत कुछ विध्वसात्मक है और ऐसी परिस्थिति में उपन्यासकार का दायित्व बढ जाता है।

मोहन राकेश के उपन्यास 'अधेरे बद कमरे' (1961) मे आधुनिक जीवन की विसगतियॉ और विकृतियॉ, भयावहता मे रूपायित हुई है। इसमे आधुनिक सवेदना दाम्पत्य जीवन की अभिशप्त और तनाव पूर्ण स्थितियो को उठाने मे है। महानगरीय जीवन मे मानवीय सम्बन्धो के टूटने की स्थिति और अकेलेपन मे आधुनिकता–बोध को ऑका गया है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान इस उपन्यास को "कृति के रूप मे न आककर एक सभावना के रूप मे आकते हैं। उन्होने पहले इसे कथाकार के अनुसार ही आज की दिल्ली के रेखाचित्र, पत्रकार मधुसदन की आत्म कथा और हरबश और नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी–तीनो मे आका है, पुन उपन्यास मे व्याप्त एक महानगर के शिक्षित समुदाय की नयी चेतना को पकडने और उसको परत–परत को उघाडने तथा उनके अकेलेपन की अनुभूति की अभिव्यक्ति को कृति की सभावना माना है।"[17] इसमे सन्देंह नही कि राकेश ने यहॉ किस तरह महानगर में अकेलेपन की उस गहरी अनुभूति को अभिव्यक्ति देनी चाही है, जिसके मूल मे स्नेह हीनता है, मानवीय सम्बन्धो की अर्थहीनता है, लेकिन सिर्फ इसी स्तर पर उपन्यास मे कृति की सम्भावनाओ को आकना उसी तरह एकोन्मुखी होना है,जिस तरह उपन्यास को सिर्फ पत्रकार मधुसूदन की आत्म कथा मानना या आज की दिल्ली का रेखाचित्र मानना, या फिर हरबश नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी कहना।

डॉ0 अतुलवीर अरोरा के अनुसार "इस उपन्यास मे छाये हुए महानगर के जीवन के रेशे–रेशे को उकेरना होगा, जिसके मूल मे एक धुरीहीनता का भुक्त सन्दर्भ है, जिसके कारण हमारी जिदगी के अपने–अपने घेरो मे, अपनी–अपनी परिधियो मे अधेरे बद कमरो का निर्माण हो रहा है। यह निर्माण महज हो रहा है। हमारी अपनी वजह से हो रहा है, हम चाहते हैं कि यह सब न हो, लेकिन कुछ क्षण हैं जो हमे अपने अक्ष से दूर फेक देते है और वही नियति साप के फन की तरह हमे डस लेती है और हम निश्चेष्ट हो जाते है।"[18] यही 'अधेरे बन्द कमरे' हमारे निर्णयो को निर्णय के क्षणो को नकारात्मक भ्रमजालों की

ओर आकृष्ट करते हैं जिसकी कोई सकारात्मक दिशा नहीं होती है।
नियति का यह भ्रमजालिक सदर्भ आधुनिकता की प्रकृति की पूँजी है यही विसगति पारिवारिक विघटन को जन्म देती है।

'अधेरे बद कमरे' मे कथा का आधार मुख्य रूप से –हरबश नीलिमा (सावित्री) के पारस्परिक अन्तर्द्वन्द्व, जीवन भार्गव, शुक्ला के बिगडते सम्बन्ध तथा शुक्ला सुरजीत के बनते सम्बन्ध, मधुसूदन–सुषमा के प्रणय सम्बन्धो का टूटना तथा कस्साब पुरा मे इबादत अली की हबेली मे बेटी खुरशीद को अपने पिता के प्रति विद्रोह और चारो तरफ के निम्नमध्यम वर्गीय विशेषकर ठकुराइन तथा उसकी लडकी निम्मा की बन्द कोठरी मे टूटते अरमानो एव अकुलाहट का अकन मानवतावाद के आधार पर किया गया है।

डॉ0 अतुलवीर अरोरा 'अधेरे बद कमरे' को "कथ्य–प्रकृति के सन्दर्भ मे तनावो का उपन्यास मानते है और तनावो की स्थिति प्राय प्रत्येक पात्र मे देखते हैं।"[19] तनाव की स्थिति मे सभी पात्र है जो दिल्ली के पूरे सास्कृतिक जीवन मे छाया हुआ है और उसकी गति इतनी तीव्र है कि वह मलीन बस्ती हरफूलसिह को भी नही छोडता है। नीलिमा का लोगो से अधिक मिलना जुलना हरबश एक प्रकार की वेश्यावृत्ति समझाता है। उसके इस विचार का कारण नीलिमा यह समझती है कि वह इस हीन भावना का शिकार है कि पत्नी को पति से अधिक लोग जानते है हरबश को सुषमा श्रीवास्तव बिल्कुल पसन्द नही थी। मधुसूदन उसके साथ विवाह निश्चय कर चुका था। लेकिन हरबश उसे बताता है कि सुषमा कुछ दिन उसके साथ भी घूमती रही है। उन्ही दिनों उसने करनाल मे अपने पिता को नया मकान बनवा दिया था। उसके पिता की आर्थिक हालत क्या थी, कुछ भी नही। मधुसूदन इस सूचना से सन्नाटे मे रह जाता है। वह आश्चर्य से हरबश का हाथ दबाकर पूछता है कि वे लोग अचानक इतने अमीर कैसे हो गए, तो वह उत्तर देता है कि इस तरह के सवाल किसी से नही पूछने चाहिए। और वह सुषमा श्रीवास्तव के यहॉ न जाकर कस्साबपुरा जाता है, जहॉ ठकुराइन और निम्मा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, जिनके साथ वह कभी रहता था।

डॉ0 सुरेश सिन्हा के अनुसार "इस उपन्यास में स्वतन्त्रता पश्चात देश मे बडी सास्कृतिक गतिविधियो और राजनीतिक दॉव के साथ पारिवारिक जीवन के अन्धेरे बन्द कोनो का मोहन राकेश ने बडी कुशलता से पर्दाफाश किया है।"[20] रचनाधर्मिता की दृष्टि से अधेरे बन्द कमरे मे उपर्युक्त विसगतियॉ तथा वहॉ के जनजीवन, सास्कृतिक जीवन एव वातावरण के आडम्बरो के ऊपरी नकाबो का पर्दा उधेडते हुए इसमे यह सत्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि

आज कितनी कृत्रिम परिस्थितियो मे व्यक्ति अपना जीवन जी रहा है, जिससे वह कोई समझौता कही चाहते हुए भी नही कर सकता हर व्यक्ति असम्पृक्त सा है। हर व्यक्ति अन्दर से एक रिक्तता का अनुभव करता है, अपने को टूटा हुआ, पराजित सा थका हारा महसूस करता है। उससे और पत्नी के मध्य भी दुराव है, एक दूसरे के प्रति हिसाब है और असमर्पित होने के साथ ही अविश्वास है, तथाकथित उच्चस्तर के जीए जाने वाले जीवन मे वासना का ज्वार है, प्रदर्शन की भावना है, अपनी सत्ता सिद्ध करने की चेष्टा है।

सास्कृतिक जीवन तो पूर्णतया आडम्बरपूर्ण है। विदेशी सरकारो की आर्थिक सहायता से चलने वाली अनेक सास्कृतिक सस्थाए दिल्ली मे है, जिनकी अपनी अलग दिशाए है। दूतावासों मे बी0 आई0 पी0 लोगो द्वारा जीए जाने वाले जीवन की अपनी भिन्न स्थिति है। काफी हाउसो गप्पो का दूसरो पर कीचड उछालने और अपनी महानता सिद्ध करने का दौर दूसरा है। साहित्यिको कलाकारो का अपना माहौल है, जिसमे बनावट की आखिरी सीमा है। आज की इस तथाकथित प्रगतिशीलता मे नारी का महत्व अधिक बढ गया है। पति अपनी मनोवाछित भावना की पूर्ति के लिए उसे खिलौना बना सकता है। पत्नी के लिए कोई पति से मित्रता जोड सकता है, अपना रिकार्ड प्लेयर घर मे जगह न होने का बहाना करके छोड सकता है, फिर पति की अनुपस्थिति मे पत्नी और साली का सरक्षक बन सकता है, फिर एक दिन घूम फिर कर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देता है कि साली से उसका विवाह हो जाता है स्त्री चाहे तो वह अपने कगाल पिता को अच्छा सा मकान बनवाकर दे सकती है, रातो–रात अमीर बन सकती है जबकि उसकी योग्यता वाला पुरूष अपने कैरियर के लिए सघर्ष ही करते रह जाते है। पत्नी के लिए ही पति का महत्व बढ जाता है, उसकी पूंछ होने लगती है। पार्टियों में बुलाया जाता है, डॉस के लिए आमंत्रित किया जाता है और फिर कल्चरल सेक्रेटरी का पद प्रदान किया जाता है। ऐसा ही हो गया है यह जीवन आज का, जहॉ लोग खोखली हॅसी हॅसते हैं, बनावट के ऑसू गिराते है, जहॉ हर चीज फार्मेलिटी की बॉहो पर टिकी हुई है।

'अंधेरे बद कमरे मे' "मै मोहन राकेश मानवीय विशिष्टता की अर्थपूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकारते है। वे किसी प्रकार के बधन को उचित नही मानते क्योकि उससे मानव व्यक्तित्व का विघटन होता है और वह अपनी सही अर्थवत्ता प्राप्त करने मे असमर्थ रहता है।"[21] प्रगतिशीलता की भगिमा से अवलोकन करे तो यह बात समझ मे आती है कि मनुष्य को अपनी सही अर्थवत्ता प्राप्त करनी चाहिए लेकिन मोहन राकेश यह कहीं स्पष्ट नही कर पाते कि पूँजीवादी सभ्यता ने मानव

सभ्यता को ध्वसोन्मुखता के जिस कगार पर लाकर खडाकर दिया है, वहॉ पूर्ण स्वतत्रता मात्र ही मनुष्य को कैसे समग्रता प्रदान कर सकेगी? मोहन राकेश आधुनिकता के प्रति अतिरिक्त रूप से मोह ग्रस्त है इसलिए वे किसी भी परम्परागत आदर्शों को स्वीकारना पुरानापन समझते है– उनके लिए उनकी उपयोगिता अन पयोगिता का प्रश्न ही नही उठता। मोहन राकेश चूँकि मनुष्य को उसके यथार्थ परिवेश मे चित्रित करने पर बल देते है,इसलिए वे मानते है कि जब तक यह यथार्थ परिवेश नही सुधरेगा, मानव–मूल्यो को प्राप्त नही किया जा सकता।

हरबश नीलिमा (सावित्री) पति–पत्नी है। दोनो को एक दूसरे के प्रति पर्याप्त आकाक्षाए है ये पर्याप्त आकाक्षाए जब पूरी नही होती है तो उनके व्यक्तित्व और अह मे टकराहट होती है। हरबश अपनी पत्नी नीलिमा को लेकर सहसा बहुत महात्वाकाक्षी बन जाता है और कला के क्षेत्र मे उसे चरम सीमा तक जाने के लिए प्रेरणा देता रहता है। पहले तो वह तैयार नही होती, ''मै पेट नही, सिर करती हूँ। नीलिमा ने जिस स्वर मे यह कहा, उसमे दिखावटीपन नही था, यह मेरे पीछे पडा रहता है कि मैं पेट करूँ, इसलिए मै पेट करती हूँ वरना मुझे न तो कुछ आता–जाता है और न ही इसमे रूचि ही है। हॉ अब तक इतना पता चल गया है कि किस तरह के स्ट्रोक्स के लिए कौन सा ब्रश इस्तेमाल करना चाहिए।''[22] लेकिन हरबश के इस उकसावे मे वह जिस क्षेत्र को चुनती है उसमें प्रसिद्ध भी प्राप्त कर लेती है। अब उसका अपना अलग व्यक्तित्व बन जाता है और वह सदैव अपने निजत्व के लिए प्रयत्नशील रहती है। यह विस्फोटक स्थिति बन जाती है, जिसे हरबश सहन नही कर पाता।

''हरबश और नीलिमा आधुनिक है– वैयक्तिक चेतना दोनो की अत्यन्त प्रखर है। हरबश के भीतर का पुरूष आधुनिकता की नकाब के नीचे उसी परम्परित सामंती मानसिकता वाला है जो बात तो आधुनिकता और नर–नारी समता की करता है लेकिन उसके सस्कार सामती और मनोवृत्तियॉ आदिम है । वह औरत को गुलाम बना कर रखना चाहता है अपने सकेतो पर कठपुतलियो की तरह उसे नचाना चाहता है। पर नीलिमा का आधुनिक मानस और उसकी प्रबल वैयक्तिक चेतना अपनी नियति स्वय निर्मित करना चाहती है और उसके इस चाहने मे हरबश के अह को खरोच लगती है तथा वह झीकने चीखने–चिल्लाने लगता है। अपनी असफलताओ का दोष नीलिमा के ऊपर मढकर बरी हो जाता है।''[23] सामती मानसिकता वाला पुरूष सब कुछ कर सकता है, नारी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व नही बनने दे सकता है इसके साथ ही उसके निजत्व को भी सहन नही

कर सकता है। उच्च वर्ग या उच्चतम मध्यवर्ग की यह नियति है कि पुरूष स्त्रियो को छूट तो देता है, उन्हे विशिष्ट तो देखना चाहता है किन्तु एक सीमा तक इस सीमा को वह स्वय निर्धारित करना चाहता है किन्तु भीतर–भीतर वह चाहकर भी स्त्री से कह नही पाता और भीतर ही भीतर कुछ क्रोध, कुछ अनमनापन , कुछ ईर्ष्या, कुछ अजनबीपन अनुभव करता है। हरबश और नीलिमा मे बराबर किसी न किसी बात को लेकर झगडा बना ही रहता है और वे कभी सुख–शान्ति से जीवन नही व्यतीत कर पाते। यह प्रकृति सत्य है कि जब तक नारियो को मानवीय भाव से देखा–समझा और ग्रहण नहीं किया जाएगा, तब तक यह सुख–चैन और उल्लास प्राप्त नही हो सकता है।

तीन साल के वैवाहिक जीवन के बाद भी वह हरबश को नहीं समझ सकी है और हरबश का आरोप है कि वह कभी उसे नही समझ सकेगी। सम्बन्धो मे यह बिखराव दूर तक सालता रहता है।– इस कमी को दोनो महसूस करते है– "क्योकि मैं तुमसे अलग रहना चाहती थी। तुम जानते हो कि हम दोनो के बीच कहीं कोई है जो हम दोनों को खटकती रहती है। हम दोनो चेष्टा करके भी उसे अपने बीच से निकाल नही पाते।"[24] नीलिमा और हरबश का यह एकाकीपन उत्तरोत्तर बढता जाता है और उसका सारा व्यक्तित्व अस्तित्ववादी दर्शन की बलि चढ जाता है।

आस्तित्ववाद की मान्यता है कि व्यक्ति अपने अतिरिक्त और किसी को जान नही सकता, वह औरों को इसलिए जान पाता है क्योकि वह अपने को जानता है। 'अस्तित्ववाद और मानववाद' नामक सुप्रसिध्द व्याख्यान मे 'सार्त्र' कहते है –"मनुष्य अपनी योजना से भिन्न कुछ और नही है उसका अस्तित्व उसी सीमा तक है जहॉ तक वह अपने आपको पूरा करता है। इसलिए वह अपने कार्यो के एकीकृत समूह से भिन्न कुछ भी नही है। व्यक्ति अपने जीवन के अतिरिक्त कुछ नही है। बहुधा अपनी बदकिस्मती और निकम्मेपन को छिपाने के लिए लोगो के पास एक मात्र मार्ग यह सोचना रहता है कि परिस्थितियॉ हमारे प्रतिकूल रही हैं। जो मैं रह चुका हूँ और कर चुका हूँ– मेरे सही मूल्य को नही प्रकट करते। यह निश्चित है कि मुझे कोई महान प्रेम या महान मित्रता नही मिली है लेकिन यह इसलिए है कि मुझे कोई पुरूष या स्त्री इस योग्य नही मिल सकी"[25] सार्त्र के अनुसार अस्तित्ववाद इस तरह की बकवासो को महत्व न देकर, घोषणा करता है कि तुम अपने जीवन के अलावा और कुछ नही हो मनुष्य कार्यो की एक परम्परा से अलग दूसरी चीज नही है यानी वह उन सम्बन्धो के योगफल का एकीकरण है जो इन कार्यों का निर्माण करता है। अस्तित्ववाद मानव ससार की अपेक्षा दूसरे

किसी ससार का अस्तित्व नही मानता। व्यक्ति के अलावा नियमो को बनाने वाला दूसरा कोई नही है। अस्तित्ववाद घोषणा करता है कि यदि परमात्मा का जीवन हो भी तो वह कुछ परिवर्तन नही करेगा। इस तरह अस्तित्ववाद मनुष्य के इर्द–गिर्द फैले अधविश्वासो और अज्ञान के झूठे जालो को काटकर व्यक्ति को नितात एकाकी कर देता है। इस एकाकीपन के बोध से व्यक्ति मे अन्तर्द्वन्द्व तथा पारिवारिक विघटन के बीज पनपने लगते है इस बोध से हरबश और नीलिमा दोनो गुजर रहे है– "हरबश सोचता है मुझे कुछ समझ मे नही आता कि मैं क्या चाहता हूँ। कोई चीज है जिसे मै बहुत शिद्दत के साथ महसूस करता हूँ । एक अजीब सी वेबसी महसूस होती है, जैसे मैं एक कवच मे जकडा हुआ हूँ, जो मेरे लाख कोशिश करने पर भी टूट नही पाता।"[26] इसी मन स्थिति मे नीलिमा जीती है, वह सब कुछ करना चाहती है जो उसे अभ्यास और अधिकार से मिल सके इसके अलावा और भी कुछ– "मै मरने से पहले एक बार खूब नाम कमाना चाहती हूँ। मै चाहती हूँ कि लोग मुझे जाने और ... मगर यह नही है कि मै सिर्फ ख्याति चाहती हूँ। मैं जानती हूँ मेरे अदर वह चीज है जो मुझे इस क्षेत्र मे आगे ला सकती है । दरअसल . तुम नही जानते कि मेरे शरीर मे उन दिनो कितनी लोच और लचक थी। मै अब भी ठीक से अभ्यास करूँ, तो । मै ख्याति की भूखी नही, मगर मेरे अदर वह चीज है, तो मै क्यो न । मेरे गुरू भी कहते थे कि मेरी जैसी भावपूर्ण ऑखे और हाथ उनकी किसी शिष्या के नही है। मैं वही चीज पाना चाहती हूँ जो मेरा अधिकार है।"[27] नीलिमा का यह अस्तित्व और सारे मूल्य अन्तर्मुखी है, अर्थात वे मूल्य ही नही बल्कि उसकी प्रतिश्रुटि ही होते है, उसकी प्रतिबद्धता ही होते है, और उसका प्रत्येक वरण सामान्य कर्म न होकर एक नैतिक कर्म बनता जा रहा है क्योकि वही उसको बनाता है। इस रूप मे अस्तित्व वाद कर्म प्रधान विचारधारा है। पर यह कर्म किसी परोक्ष सत्ता द्वारा पूर्वनियत कर्म न होकर नीलिमा के वरण से उदभूत कर्म है। क्योकि उसके प्रत्येक कर्म का प्रभाव केवल नीलिमा पर नही समस्त मानवता पर पडता है अत वह मानवता है और उसका अपने प्रति दायित्व एक प्रकार से समस्त मानवता के प्रति दायित्व ही है। इस सन्दर्भ मे डॉ0 इन्द्रनाथ मदान का यह कथन प्रासगिक है – "इनके पास एक दूसरे को चोच मारने या काटने के सिवाय और चारा ही क्या है। इस तरह शायद पहली बार हिन्दी उपन्यास मे विवाहित जीवन की अर्थहीनता का सजीव चित्रण हुआ है।"[28]

हरबश अपने ही घर और मन के अकेलेपन से उबकर विदेश जाता है– "मै इतना ही जानता हूँ कि मै जिस तरह अकेला रहना चाहता था, उसी

तरह इस समय हूँ और नही चाहता कि कोई चीज मेरे इस अकेलेपन मे बाधा डाले।"[29] कुछ दिनो बाद ही वह सामान्य कोटि के 'होम सिक नेस' से पीडित होता है और एक छिछले भावुक की तरह बार-बार नीलिमा को बुला भेजता है। वह अपने को बहुत अकेलापन महसूस करता है उसका यह अकेलापन पॉच हजार मील की दूरी के कारण नही है और शायद न ही शारीरिक प्राप्ति के अभाव के कारण। हरबश का यह अकेलापन उसके अदर वर्षों से पनप रहा है जो उसे अदर ही अदर कीडेकी तरह खा रहा है, और भविष्य मे शायद इसकी पूर्ति भी न हो सके परन्तु यदि नीलिमा उसकी सच्ची मित्र बन सके तो यह समस्या हल हो सकती है- "मेरे अंदर कही एक खालीपन हैजो धीरे-धीरे इतना बढता जा रहा है कि मेरे जैसा खाली आदमी भविष्य के सपने बुनकर नही जी सकता। शायद वह मेरे ही व्यक्तित्व का अकेलापन और खालीपन है जो तुम्हे भी मेरे साथ बॉटना पड रहा है। मगर तुम इसे मजबूरी में न बॉटकर उत्साह के साथ बॉट सको, तो सब कुछ बदल सकता है। मैं किसी की ऐसी ही तो मित्रता चाहता हूँ जो मेरी सब आशाओ और निराशाओ को, इच्छाओ और आशकाओ, उत्साह और चाह के साथ बॉट ले। मै यही तो चाहता हूँ कि मेरे व्यक्तित्व के साथ किसी का अस्तित्व मिलकर दो परमाणुओ की तरह एकाकार हो जाये।"[30] हरबश ने जीवन मे कुछ आदर्श पाले है, वह आदर्शों को नष्ट होते देखता है, परन्तु इनकी रखवाली करने मे भी वह सक्षम नजर नही आता तो उसकी उदासी और अकेलापन एक मानसिक बीमारी के रूप मे स्थाई घर बना लेता है। इस सदर्भ मे मोहन राकेश विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं। "मजलिसी तौर पर कुछ बाते मान ली जाती है, मगर लगता है कि मानना भी गलत है। मानने के पीछे जो विश्वास होना चाहिए, वह विश्वास नही मिलता। हर चीज पर सन्देह होता है। हर बात पर सन्देह होता है। हर व्यक्ति पर सन्देह होता है। उन सब शब्दो पर सन्देह होता है जिनके अर्थ नकारात्मक नही है।"[31]

पति-पत्नी के बीच एक साहचर्य तथा विश्वास का होना अति आवश्यक है और इन दोनो की कमी वैवाहिक जीवन की कटुता बढा देते है, लदन जाने पर जब हरबश अकेलेपन एव उदासी से नही उबर पाता तो वह नीलिमा को वहॉ बुला भेजता है। नीलिमा मैसूर के लिए आयोजित अपनी नृत्य कला छोडकर लदन पहुॅचती है। वहॉ पहुॅचने पर फिर दोनो की आपसी ऊब का, ईर्ष्या और खीज का वही पुराना दौर शुरू होता है नीलिमा कहती है-"देखो, मै कहती हूँ मै यहॉ से वापस जा रही हूँ । मुझसे इस तरह की जिन्दगी नही जी जाती। क्या यही जिन्दगी जीने के लिए तुमने मुझे यहॉ बुलाया था? यही तुम्हारा

वह 'विजन' है जिसकी तुम लम्बी–चौडी बाते लिखा करते थे।"[32] जब हरबश नीलिमा को अपनी तरफ से कोई सफाई देना चाहता था कि वह भी तो उसी के साथ उसी जिन्दगी को जी रहा है तब नीलिमा और दुगने गुस्से मे चिल्ला उठती– "मगर मेरी वजह से तो नही जी रहे। मै यह जिदगी तुम्हारी वजह से जी रही हूँ। मै इसलिए पहले साल–भर वहॉ से नही आयी थी। मै जानती थी कि यहॉ हम लोगो की क्या दुर्गति होगी। मगर पहले तो तुमने झूठे विश्वास देकर मुझे यहॉ बुला लिया और अब मुझसे बेबी–सिटिग कराते हो और खुद खिडकी के पास बैठे आसमान को घूरते रहते हो। मैं ऐसी जिन्दगी वर्दास्त नही कर सकती।"[33] इस विषय मे टिप्पणी करते हुए डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ कहते है– "पत्नी की उदासीनता और विश्वासघात दाम्पत्य जीवन के समजन को बर्बाद कर देते है।"[34] उपर्युक्त सन्दर्भ जब हरबश के चाहने पर भी नीलिमा एक भारतीय नृत्य–मण्डली के साथ चली जाती है, पर भी लागू होता है जो दाम्पत्य जीवन में विघटन को प्रोत्साहित करता है जो शेष कमी थी, वह उसने उबानू नामक एक भोले–भाले वर्मी कलाकार के साथ पॉच राते–पॉच दिन काटकर ताबूज मे आखिरी कील का काम किया। परन्तु नीलिमा ऐसे ही व्यक्ति को पसन्द करती है, जो सीधा साधा और उसके आगे पीछे चलने वाला हो और इसलिए उबानू नामक यह कलाकार उसे तब तक सही लगता है जब तक उसकी बाते मानता है जब वह नीलिमा से उसकी पत्नी के बारे मे असहनीय बाते सुनता है जिसे वह (उबानू) सुनना नही चाहता तो वह बिफर पडता है तब नीलिमा कहती है– "उसे उसका वही रूप अच्छा लगता है, सीधा–सादा, पालतू, मूर्खतापूर्ण। "[35] वर्मी कलाकार ऊबानू से नीलिमा सम्बन्ध नहीं जोड पाती क्योकि वह स्वयं भी हरबश के बिना नही रह सकती। थोडे समय के पेरिस–प्रवास से ही आभास हो जाता है कि वह उससे अलग रहकर भी उससे मुक्त नही हो सकती। आधुनिक भारतीय जीवन की यह विवशता सबसे बडा अभिशाप है। यही मनुष्य को एक दूसरे से, यहॉ तक कि इस ससार से भी अजनबी बनाती है। हरबश और नीलिमा के दाम्पत्य जीवन मे रिसती हुई विवशता आपसी सबधो मे कडवाहट घोलती है और तनावो के बीच अजनबीपन को विकसित करती है।

दिल्ली लौटने पर नीलिमा दिल्ली वासियों के सामने अपने नृत्यप्रदर्शन की योजना बनाती है। हरबश भी टिकट बेचने का काम सभाल कर इस योजना को सफल बनाना चाहता है और उसका दोस्त पत्रकार मधुसुदन प्रचार मे सहायक बनता है किन्तु इतना सब कुछ होने के बावजूद नृत्य–समारोह असफल होता है। पत्रो में रिपोर्ट अच्छी नही आती। नीलिमा समझती है कि

हरबश के कारण ही उसे असफलता मिली परन्तु हरबश यह सोचता है कि ऐसा कोई काम मै क्यो करूँ जिसे करने मे मेरा मन कुढता है और मेरी आत्मा को ग्लानि होती है? "तुम अपना प्रदर्शन करो, नाम कमाओं और जो चाहे करो, मगर मेरी तुमसे इतनी ही प्रार्थना है कि मुझे तुम इसमे एक औजार बनाकर इस्तेमाल न करो। मुझे चिढ है तो इसी बात से कि मै एक ऐसी चीज के लिए इस्तेमाल किया जा रहा हूँ जिसके लिए मेरे मन मे कोई उत्साह नही है। और उत्साह न होने की ही बात नही है, मुझे उस चीज से नफरत है।"[36] दूसरी ओर नीलिमा सोचती है कि यह आदमी कितना जलील करता है, अपना काम आने पर बहला–फुसलाकर तो करवा लेता है परन्तु हमारे कार्यों मे सहयोग नही करता। जब वह हरबश की तरफ से यह बात सुनती है तो गुस्से मे कहती है–"तुम्हे शरम नही आती, तो मुझे क्यों आयेगी ? तुम भी अच्छी तरह जानते हो कि कौन किसे इस्तेमाल कर रहा है। कुछ लोगो के साथ अपना सम्पर्क और परिचय बढाने के लिए उनसे अपने छोटे–छोटे काम निकालने के लिए, आज तक तुम किसे आगे करते आये हो? अपने विदेशी मित्रो से क्यो बार–बार मेरी चर्चा किया करते हो? क्यो बार–बार मुझे उनसे मिलाने के लिए ले जाते हो? किसी को भारतीय नृत्यो के सम्बन्ध मे जानकारी चाहिए तो कहते हो कि नीलिमा तुम्हे यह सब बता सकती है। किसी को कोई भारतीय पोशाक चाहिए तो कहते हो कि नीलिमा तुम्हे बनवाकर दे सकती है। क्यो? क्या यह इसलिए नही कि तुम उन सब लोगो से अपने लिए मान्यता चाहते हो और दूसरो पर इस बात का प्रभाव डालना चाहते हो कि तुम्हारे परिचय के क्षेत्र मे कैसे–कैसे लोग है। जहॉ नीलिमा तुम्हारे काम आ सकती है, वहॉवह तुम्हारी पत्नी है और तुम्हे उसे इस्तेमाल करने का पूरा हक है, मगर आज मेरी वजह से तुम्हे कुछ लोगो की दावत करनी पडी है, तो तुम्हारी आत्मा विद्रोह कर रही है कि मैं तुम्हे कीचड मे घसीट रही हूँ। अपने स्वार्थ में तुम्हारी आत्मा को कीचड नही लगता, दूसरे के काम मे वह एकदम महान होकर कीचड से ऊपर उठ जाती है। आदमी के पास ऐसी रग बदल लेने वाली आत्मा हो तो उसे और क्या चाहिए।"[37] मनोविज्ञान भी यही कहता है कि व्यक्त की सफलता असफलता उसकी अपनी नही होती है वह दूसरे द्वारा आरोपित कर दी जाती है। हरबश और नीलिमा एक दूसरे के प्रति झल्लाते , खीजते और कुठित होते रहते है। डॉ0 अतुलवीर अरोरा के अनुसार– "पति पत्नी के इन सम्बन्धो की उक्त भूमिका स्त्री–पुरूष के सम्बन्धो के मध्य आकी गयी है। पति–पत्नी की भूमिका मे स्त्री पुरूष का आपसी सम्बन्ध यहॉ नीलिमा और हरबश के बीच द्वन्द्व की भगिमा लिए हुए है। इस स्तर मैत्रीभाव का सन्दर्भ उतना महत्व नही रखता,

जितना एक—दूसरे को समझ पाने का। यह समझ पाने का। सन्दर्भ उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। हरबश बार—बार चिल्लाता है कि उसे समझा नही जा रहा। शायद वह खुद भी अपने को ठीक तरह समझ नही पाता। शायद कोई भी अपने को समझ नही पाता।"[38]

पुरूष और महिला दोनो को ये लगता कि "विवाह, या परिवार के बन्धन ने उनकी स्वतन्त्रता का अतिक्रमण कर दिया है, वे अब सिर्फ एक ऐसी स्त्री या पुरूष से ही सम्बध बनाने के लिए बाध्य हैं। उन्हे लगता है कि उनकी अपनी पहचान गिरती जा रही है। उन्हे एक जैसे कार्य ही करने पड रहे हैं उनमे कुछ नया न कर पाने की टीस होती है।"[39] नीलिमा और हरबश इसी पीडा से गुजर रहे है। और एक—दूसरे से च्युत हो जाते है। फिर भी साथ रहने की ऐसी मजबूरी थी जिससे वे निकल नही पाते थे इसलिए मधुसूदन के पूछने पर नीलिमा अत मे इतना ही सक्षिप्त उत्तर देती है – "मै आना नही चाहती थी, मगर फिर मैंने सोचा कि .. सोचा नहीं, मुझे लगाकि. शायद अब यही ठीक है।"[40] मानव सम्बन्धों के विघटन की जो कहानी जो मानसिक यथार्थ की सतह पर बहती रही वह सतह के ही एक सुखद बिन्दु पर ठहर जाती है। हरबश और नीलिमा की जिन्दगी एक स्थिति है, जिसे बहुतेरे लेकर जी रहे है वे छटपटाकर रह जाते है, इससे उबर नही पाते।

हरबंश और नीलिमा के इस अन्तर्द्वन्द्व के बीच कई कथाये समानान्तर चलती है, जिसमे हरबश का एक पत्रकार मित्र मधुसूदन है जिसके बारे मे लेखक संकेत करता है कि वह सजग तथा सचेत है, वह जिन्दगी से टूटा हुआ है, उसका जीवन अभिशप्त है, वह जीवन में सगति खोजना चाहता है, उसे जिंदगी के टुकडे मिलते है, हर टुकडा कही से टूटा हुआ है या जग खाया हुआ है। वह अदर और बाहर से पथराया हुआ है। वह जीवन के खण्डित रूप को स्वीकार नही करता तटस्थ नही हो पाता, इसलिए वह लगातार भटकता और छटपटाता है। प्रारम्भिक स्थिति मे मधुसूदन शुक्ला के प्रति आकर्षित होता है परन्तु यह रिश्ता नही हो पाता है शायद उसकी अपनी कमी या अगर हरबश बीच मे अडचन न डाल देता तो क्या अधिक सम्भव यह नही था । कि सर्दियो तक शुक्ला का उससे ब्याह हो जाता और उस साल वह पहाड से हनीमून की तस्वीरे भेजता। परन्तु मधुसूदन इसमे अपने को कम उत्तरदायी नही समझता– "दूसरी तरफ मै था जो लोगो की उपस्थिति मे चेहरे पर एक खोल चढाये रखता था, एक झूँठी हस्ी हँसता था, एक झूँठी उपेक्षा प्रकट करता था और इस तरह हर समय अपने को एक यन्त्रणा मे रखता था क्या इस झूँठ को मै अपनी सहिष्णुता कह सकता था।"[41] यह

तथाकथित सहिष्णुता मधुसूदन के आदर्श को खण्डित कर देती है, वह टूटता है और फिर एक बार सभलने की कोशिश करता है, मगर पत्रकार सुषमा श्रीवास्तव की पहचान ने तथा उसके बारे मे लोगो द्वारा सुने और लगाये गये आरोप और प्रत्यारोपो की उसने परवाह नही की वह सोचता है– "लोग कहते है कि सुषमा लोगो के घर तोडती है, 'होम ब्रेकर' है मगर मै जानता था कि वह घर तोडना नही घर बनाना चाहती है। अपने लिए घर बनाने और उसमे रहने की उसे कितनी चाह है, यह बात उसके शब्दों से नहीं, सारे हाव–भाव से प्रकट होती थी।"[42] सुषमा के स्नेह एव आकर्षण ने मधुसूदन को एक स्थाई आधार देना चाहा तथा उसकी बुद्धि तथा विवेक ने तो मानो मधुसूदन के ऊपर जादू कर दिया हो सुषमा की कही बात उसे भली भाति याद है– "लोग जिन्दगी मे एक तरह का धोखा बनाये रखना चाहते है। और मे अपनेको उस धोखे से मुक्त रखना चाहती हूँ। हमारे आस–पास जो लोग बहुत–बहुत सिद्धान्तो की बाते बधारते है, तुम उनमे से किसी को भी देख लो। यह बहुत साफ नजर नही आता कि उसकी सैद्धान्तिक जिन्दगी और व्यक्तिगत जिन्दगी मे एक बहुत बडी खाई है।"[443] सुषमा का यह जीवन दर्शन यदि उसके वैयक्तिक जीवन में सच है तो मधुसूदन फिर इस सच्चाई से भागकर बस्ती हरफूलसिह अर्थात कस्साबपुरा मे ठकुराइन और उसकी लडकी की ओर क्यो आकर्षित होता है। यह शायद मधुसूदन के पुराने सस्कार तथा घर बसाने के सपनो को साकार करने की बात हो सकती है दूसरा लेखक का आदर्शवादी दृष्टिकोण भी हो सकता है।

'अधेरे बन्द कमरे' मे समानान्तर कथा के रूप मे शुक्ला और जीवन भार्गव का प्रकरण आता है परन्तु सरक्षक हरबश की मानसिकता जिसे अतुलवीर अरोडा के शब्दो मे 'आदमी की आदिम भूख' ने जुडने नही दिया। हरबश शुक्ला का बहनोई है और मन ही मन शुक्ला उसे जरूरत से ज्यादा मानती है तभी तो इसके बारे मे नीलिमा कहती है– "मुझे इस लडकी के दिमाग की कुछ समझ नही आती , कई बार तो सचमुच मै सोचती हूँ कि हरबश का ब्याह मुझसे न होकर इस लडकी से ही होना चाहिए।"[44] यह आकर्षण हरबश की तरफ से भी उत्पन्न होता है नीलिमा के घर छोडने के पश्चात विवाहित शुक्ला हरबश की देखभाल करती है और वह महसूस करता है कि उसे पहली बार ऐसा प्रतीत होता है कि जो वह नीलिमा से चाहता है वह सब कुछ उसकी अनुपस्थिति मे उसे मिल रहा है और इसलिए सब कुछ होते हुए भी उसके मन मे खालीपन अभी ज्यो का त्यो है। हरबश मे यह मध्यकालीनबोध है, लेकिन वह आदमी की आदिम भूख को आधुनिकता की चुनौती मे स्वीकारता है, जिसे बहुत कम लोग अभिव्यक्त कर पाते

है। वह उसे अपनी लडकी समझता है, लेकिन इसके परे अपनी आदिम भूख को वह मधुसूदन की साक्षी मे स्वीकार कर लेता है। शुक्ला गर्भावस्था मे भी उसका घर सभाले हुए है और उसे (हरबश) डर लगता है। हरबश को अपने से यह डर है? शरीर की आदिम भूख उसमे वर्तमान है, जिसे उसने एक सकेत मे स्वीकारा है कि "यह लडकी कल से जिस तरह का व्यवहार कर रही है अगर मै अकेला घर मे रहा और यह सब कुछ इसी तरह करती रही तो न जाने ।"[45] और यह न जाने का डर मध्यकालीन बोध की ही प्रकृति की उपज है, जिसे वह केवल अधूरे मे ही सकेतिक करता है, लेकिन अपने को समझ पाने की आधुनिकता की प्रकृति और चुनौती के समक्ष वह इस सकेत मात्र मे· ही सही हो उठता है। उक्त भगिमाओ मे सम्बन्धो के विघटन की मूलभूत भूमि की तस्वीर उभरती है और सम्बन्धो के अनगिनत आयाम खोलती है जहॉ जीवन भार्गव ही नही मधुसूदन तथा हरबश का भी सम्बन्ध है।

कस्साबपुरे मे इबादत अली की हवेली और चारो तरफ के निम्न मध्यमवर्गीय परिवारो मे विशेषकर ठकुराइन और निम्मा तथा इबादत अली की बेटी को लेकर कानाफूॅसी उपन्यास मे सम्बन्धो को स्पष्ट नही कर पायी है, एक परिवार को परिवेश के आधार पर खुरशीद को घर से अपने प्रेमी के साथ भाग जाने भर का संकेत देकर लेखक प्रयोगशीलता वादी पुट से बरी हो जाता है। आधुनिक जीवन के खोखलेपन को कला और सस्कृति की बहसो मे राजनैतिक मसलो मे, विदेशी दूतावासो के खोखले समारोहो मे, काफी हाउस के वातावरण मे, विदेशयात्राओ के विवरण पात्रो की जिन्दगी को बहुत प्रभावित नही कर सके उनके अन्दर जो अतहीन झल्लाहट थी उसमें कोई कमी नही आ सकी।

'अधेरे बन्द कमरे' में मानव सम्बन्धो की बुनियादे इतनी कमजोर है कि उसके अन्दर का ढॉचा भुरभुरी मिट्टी की तरह झडता–ढहता जा रहा है साथ ही यही सब पात्र चाहते है उसे टूटने से बचा सके, मगर न जाने क्या मजबूरी है कि केवल गवाह की तरह खडे उस ढहने की प्रक्रिया को चुपचाप अवलोकित करते रहते है। तटस्थ और उदासीन भाव से कभी–कभी वे कन्धे हिला देते है बस। वे सभी अपने–अपने प्रयत्नो को निरर्थक मानते हैं और सोचते है कि कुछ होगा तो बाहर से होगा। वरना जो ढह रहा है उसे ढहना तो है ही। यह सब दृश्य यहॉ के पूरे परिवेश मे होटलो –कहवाघरो मे–मजलिसो मे, सब जगह ये पात्र एक निजी जिन्दगी की जरूरतो से शुरू होकर कुछ बुनियादी सवालो तक अपना दामन फैलाए रहते है और जरूरतो को पूरा करने मे सवाल धुधलाने लगते है, और सवालो की नोक पर अपने को टाग दे, तो सभी को जख्मो के अलावा

और कुछ हासिल नही होता है। इस तरह से इस उपन्यास का मूल स्वर पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन का है जिसे मोहन राकेश ने महानगरीय परिवेश के सन्दर्भ मे व्याख्यायित है।

न आने वाला कल

'न आने वाला कल' (1968) उपन्यास के मूल कथ्य मे नायक वाचक मनोज सक्सेना जो कि फादर बर्टन स्कूल मे जूनियर हिन्दी टीचर है, कुछ वैयक्तिक कारणो से अपनी नौकरी से त्यागपत्र देना चाहता है– दे देता है ओर उसके इस निर्णायक कृत्य पर होती होने वाली उसके साथियो सहयोगियो की विभिनन प्रतिक्रियाए तथा उन पर मनोज की वैचारिक प्रतिक्रियाए अकित की गयी है।

सम्पूर्ण उपन्यास सात छोटे–छोटे कथाध्यायो मे विभाजित है।

पहले कथाश 'त्यागपत्र' मे मनोज सक्सेना, जूनियर हिंदी टीचर, फादर बर्टन स्कूल मे अपनी पत्नी शोभा के साथ स्कूल के ही क्वार्टर मे रहता है। निसंतान शोभा की मनोज से यह दूसरी शादी है। मनोज और शोभा दोनो ही आपस मे वैचारिक सगति नही बैठा पा रहे है और उनका दाम्पत्य जीवन एक नीरस ऊब से भरा हुआ है। मनोज अपनी नौकरी से भी सतुष्ट नही है । शोभा ऊबकर अपनी पहली ससुराल खुरजा चली जाती है। वहॉ से पत्र लिखकर कुछ दिनो के लिए मनोज को बुलाती है। अकेला रहता मनोज इस कथाश मे शोभा के पत्र का उत्तर लिखना चाहता है और अपनी नौकरी से त्यागपत्र भी देना चाहता है, लेकिन दिमागी कशमकश मे कुछ भी नही कर पाता और कथाश के अत मे मानो उस कशमकश से मुक्ति पाकर त्यागपत्र लिखने बैठ जाता है।

उपन्यास के दूसरे कथाश 'डर' मे मनोज के त्यागपत्र पर बर्सर बुधबानी, हेडक्लर्क पार्कर, एकाउटेट गिरधारीलाल, बॅनी हॉल, कोहली, जेम्स, मिसेज पार्कर आदि स्कूल के विभिन्न शिक्षको कर्मचारियो के विचार मनोज से उनकी बातचीत वर्णित की गयी है। स्कूल के अत्यंत रूक्ष अनुशासन और हेड मास्टर टोनी व्हिसलर के बेहद सख्त स्वभाव के कारण उक्त सभी लोग मनोज से उसके त्यागपत्र के सम्बध मे बात करते डरते है और दूसरा एक हल्का डर मनोज को भी है कि नौकरी छूट जाने के बाद क्या होगा? फिर भी इस खण्ड का शीर्षक 'डर' अपेक्षित पूर्णता और स्पष्टता के साथ चरितार्थ नही हो पाया है।

तीसरा कथाध्याय है 'कुर्सी'। 'कुर्सी' वस्तुत हेड मास्टर की प्रतीत है। इस कथाश मे मनोज के त्यागपत्र पर विभिन्न लोगो की प्रतिक्रियाए व्यक्त की गयी है। आरम्भ मे मनोज और हेड मास्टर की इसी सम्बन्ध मे बातचीत है। मनोज जो कि अपनी आतरिक ऊब परिवेशगत जडता से मुक्ति पाने के लिए, या महज एक परवर्तन के लिए या जीवन के किसी एक नये अनुभव के लिए त्यागपत्र देता है। जबकि टोनी व्हिसलर (कुर्सी) समझता है कि चूँकि मनोज की नियुक्ति डी0 पी0 आई0 की ओर से हुई है इसलिए वह शायद उसे (टोनी व्हिसलर को) आतकित करने के लिए त्यागपत्र दे रहा है और इस तरह स्कूल के बाहर टोनी के खिलाफ जो एक षडयन्त्र है, मनोज भी उसमे शामिल है। जेम्स समझता है कि मनोज सीनियर ग्रेड पाने के लिए यह त्यागपत्र अथवा धमकी दे रहा है। यह कथाश यही समाप्त हो जाता है।

चौथे कथाश 'सहयोगी' मे स्टिवर्ड चार्ल्टन के आमत्रण पर मनोज शाम को उसके यहॉ ड्रिंक पार्टी मे पहुँचता है। पार्टी एक अन्य सहयोगी चैरी के क्वार्टर पर आयोजित होती है। पार्टी का उद्देश्य मनोज के त्यागपत्र से उत्पन्न नयी स्थिति पर विचार करना है। लेकिन वहॉ इस सम्बन्ध मे बातचीत न होकर चैरी और लेरी दोनो अपने–अपने स्वार्थों और अह को लेकर विवाद की स्थिति मे बने रहते है। मनोज इन लोगो के साथ रहते हुए बुरी तरह ऊबता है। उसका जी मिचलाने लगता है और पार्टी की समाप्ति पर वह चैरी के क्वार्टर से बाहर आकर लेरी के जाते ही सडक पर कै कर देता है और अपनी छाती के कसाव को ढीला हुआ अनुभव करता है।

पॉचवे कथा खण्ड 'नाटक' मे स्कूल मे प्रतिवर्ष होने वाले सत्रांत के नाटक का वर्णन है। मनोज छुट्टिया होने तक स्कूल मे ही समय व्यतीत करने के लिए विवश है। विभिन्न कथा–स्थितियो और पात्रो की संगति मे इसी समयावधि का वर्णन करते हुए लेखक सूचित करता है कि मनोज स्कूल के काम के साथ–साथ किसी के पत्र (शायद शोभा के) की प्रतीक्षा भी करता है। प्रिफेक्ट जसवत को जब सीनियर मास्टर जिमी ब्राइट बेतो की सजा देता है तो नितात यात्रिक रूप से मनोज उसकी साक्षी दे देता है रात के स्कूल के हाल मे वह नाटक देखने जाता है जहा नौकर फकीरे की स्त्री कहानी से उसका हल्का यौनेत्तेजक सस्पर्श होता है। यही सस्पर्श उसे नाटक के बाद डिनर लेते समय वॉनी हॉल के द्वारा मिलता है। मनोज को लगता है कि यह स्कूल यहॉ के सारे लोग और सभी गतिविधियॉ एक नाटक ही है।

छठे कथाश 'सडक' मनोज के चरित्र की उस गति अर्थात चलते जाने अर्थात किसी से न जुडने की वृत्ति का प्रतीक है जिसके चलते वह अपनी पत्नी, अपने परिवेश, अपनी आजीविका, अपने स्नेही–साथियो और स्वय तक से कटा हुआ अकेला रहता है। इस कथाध्याय मे वाचक मनोज स्कूल मे अपने आखिर दिन की गतिविधियो का वर्णन करता है। शोभा के एक और पत्र के आ जाने से उसकी चिता शोभा की ओर मुड जाती है। बॉनी हॉल, प्रिफेक्ट जसवत आदि के बारे मे सोचता हुआ मनोज स्कूल मे अपनी अतिम 'ड्यूटी'–आज का डिनर– भी पूरा करता है। फिर बाहर आकर मिसेज दारूवाला से थोडी बातचीत करता हुआ पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार बॉनी हॉल के साथ घूमने के लिए माल रोड की तरफ रवाना हो जाता है। मनोज बॉनी के साथ देर रात तक त्रिसूली रोड पर घूमता रहता है लेकिन दोनो ही अपने विशिष्ट और आत्मलीन स्वभाव के कारण अपेक्षित और सभावित यौन–सुख उपलब्ध न कर ऊबे हुए अपने–अपने घर लौट आते है इस अध्याय मे मनोज लगातार चलता रहता है। अपने घर से स्कूल से माल रोड त्रिसूली और हवाघर और फिर लौटकर अपने घर तक, लेकिन मनोज किसी के साथ नही रहता। वह लगातार चलता जाता है और उसका लगातार चलते जाना ही दरअसल 'सडक' है।

'न आने वाला कल' उपन्यास का अन्तिम खण्ड 'दरवाजे' है। इसमे मनोज स्कूल से जाने की अन्तिम तैयारी करता हुआ सामान छॉटता है कि क्या साथ ले जाना है, क्या गिरधारीलाल के यहॉ छोड जाना है और क्या यो ही बॉट देना है। मकान के दूसरी ओर रहते कोहली और उसकी पत्नी शारदा के वर्णन का आख्यान है। इसमे यह भी ज्ञात होता है कि शारदा भी कोहली को छोडकर जा रही है क्योकि कोहली 'आदमी' नही है। मनोज का स्कूल से अपने शेष वेतन का चैक प्राप्त करना फालतू सामान लेने आयी काशनी से उसका अधूरा यौन–ससर्ग और परिवेश की ऊब से मुक्ति के एक हडबडाहट भरे एहसास के साथ मनोज का बस स्टैड पहुँचना, किन्तु वहॉ जाकर देखना कि अभी तो उसकी गाडी आने मे काफी देर है। कथाक्रम तो यही समाप्त हो गया है लेकिन मनोज अभी भी उस देशकाल से बाहर नही हो सका है जिसके लिए वह कथारभ से ही प्रयत्नशील है, उसकी गाडी अभी भी नही आयी है। 'दरवाजे' या 'दरवाजा' जो मनोज के बाहर जा सकने का माध्यम है मानो अभी नही खुला।

'न आने वाला कल' मानव सम्बन्धो विशेषकर स्त्री पुरूषो के विघटन का उपन्यास है जिसमे अस्तित्व की समस्या प्रमुख है। हेडमास्टर मिस्टर व्हिसलर से लेकर चपरासी फकीरे की पत्नी काशनी तक जो एक पहाडी स्कूल मे एक ही

जिन्दगी के सहभागी होकर जी रहे थे, साथ–साथ जीते हुए भी वे सब इतने अकेले थे कि सिवाय अपने और किसी के अकेलेपन को महसूस नही कर सकते थे।

अपनी अपनी चौहद्दी मे बद वे लोग अपनी–अपनी जगह एक ही चीज को खोज रहे थे– अपने आने वाले कल को, परन्तु उस कल की निश्चित रूपरेखा उनमे से किसी के सामने स्पष्ट नही थी। नायक मनोज सक्सेना के त्यागपत्र से हरचौहद्दी के अन्दर एक खलबली सी मच जाती है। हर आदमी सत्रस्त हो जाता है कि जिस खतरे से वह बचना चाहता है। वह शायद अब बिल्कुल ही सामने है । मनोज का त्यागपत्र सबको अपने अपने भविष्य के प्रति आशकित कर देता है। इस प्रकार इस उपन्यास मे आज के टूटते, बल्कि टूटकर भी न टूट पाते– मानव सम्बन्धो के बीच व्यक्ति की अकुलाहट का अकन अस्तित्ववादी मनवतावाद के आधार पर किया गया है।

अस्तित्ववादी विचारधारा का आरम्भ वस्तुतः दर्शन के ही क्षेत्र में हुआ। इस सम्प्रदाय का उद्‌गम–स्रोत जर्मन दार्शनिक 'हसरेल' तथा 'हेडेगर' और डेनिश चितक कीर्कगार्ड की विचार–पद्धतियों मे देखा जा सकता है। इन विभिन्न चितको के मतवादो का सघटन वर्तमान युग मे फ्रास मे हुआ, जहॉ अस्तित्ववाद को साहित्यिक ख्याति जापाल सार्त्र के माध्यम से 1946 ई0 के आसपास मिली। यूरोप मे द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के कारण जो भीषण सत्रास एवं अस्थिरता की सृष्टि हुई उसी ने इस विचारधारा को पीठिका प्रदान की तथापि उसका दार्शनिक पक्ष अनेक वर्षो पूर्व ही उदित हो चुका था और शनै शनै. प्रचारित हो रहा था। अस्तित्ववाद मानव जन्म और मानव जीवन को एक अभिनव रूप मे ग्रहण करता है। वर्गसा ने जिस चिरतन प्रवाहमान एव परिवर्तनशील मानव चेतना मे आस्था प्रकट की थी, अस्तित्ववाद उसी का अगला चरण है। यह उस युग का वैचारिक विग्रह है, जब पूजीवाद फासिज्म का रूप ले चुका है और साम्यवाद शक्तिशाली सुसज्जित वर्गराज्य का। बाह्य सघर्ष के कारण इन दोनों के दर्शन की नीव हिल जाती है और मनुष्य उस सघर्ष मे आबद्ध विवश एव निरूपाय होकर अपने अस्तित्व के सम्बन्ध मे प्रश्न उठाता है। तो पाता है कि उसका अस्तित्व अनेक शक्तियो से अनुशासित है, जिन पर उसका कोई बस नही है। पहली शक्ति है मृत्यु। उसके जन्म के क्षण से ही उसकी मृत्यु इतनी अनिवार्य और ध्रुव निश्चित है कि उस सम्बन्ध मे उसे कोई विकल्प अथवा वरण की स्वतत्रता प्राप्त नही है। क्योकि समग्र रूप मे उसका अस्तित्व तो अन्त पर ही उजागर होगा।

इसी दर्शन के कारण अस्तित्ववाद मे वरण की स्वतत्रता का अन्यतम महत्व है। मानव अस्तित्व पहले से ही अपनी नियति से बंधा है अत उसमे कोई भी अतिरिक्त बन्धन मनुष्य क्यो स्वीकार करेगा? इसलिए अस्तित्ववादी व्यक्ति ऐसी स्थिति का विरोध करता है जो उसे वरण की यह स्वतन्त्रता नही देना चाहती। वरण की यह स्वतन्त्रता मानव–जीवन मे प्रतिक्षण और प्रत्येक स्थिति मे उपस्थिति रहती है और व्यक्ति पर एक ऐसा दायित्व लाद देती है जिससे वह बच नही सकता।

अस्तित्ववाद की मान्यता है कि व्यक्ति अपने अतिरिक्त और किसी को नही जान सकता वह औरों को इसलिए जान पाता है क्योकि वह अपने को जानता है। अतएव सारे मूल्य अन्तर्मुखी होते है अर्थात वे मूल्य होते ही नही, वे व्यक्ति की प्रतिस्तुति ही होते है, उनकी प्रतिबद्धता ही होते हैं और उसका प्रत्येक वरण सामान्य कर्म न होकर एक नैतिक कर्म होता है, क्योकि वही उसको बनाता है। इस रूप मे अस्तित्ववाद कर्म प्रधान विचारधारा है। पर यह कर्म किसी परोक्ष सत्ता द्वारा पूर्व–नियत कर्म न होकर व्यक्ति के वरण से उद्भूत कर्म है और क्योकि उसके प्रत्येक कर्म का प्रभाव केवल उसी पर नही समस्त मानवता पर पडता है, अत वह मानवतावादी है और उसका अपने प्रति दायित्व एक प्रकार से समस्त मानवता के प्रति दायित्व ही है। अत व्यक्ति को प्रतिक्षण अपने वरण मे अपने आपको प्रतिफलित करते चलना होता है, तभी उसकी मुक्ति सार्थक होती है। यह कह सकते है कि मनुष्य को वरण की स्वतत्रता तो प्राप्त है, पर वरण न करने की स्वतन्त्रता नही है, क्योकि वरण न करना भी तो विकल्प ही है। चूँकि हम अपने कर्मों से ही अपना निर्माण करते है अतः हम स्वय निर्माता है। 'न आने वाला कल' उपन्यास मे सभी पात्र इसी दर्शन की अनुभूति से गुजर रहे है।

मनोज सक्सेना की समस्या इतनी ही थी कि वह मुक्ति चाहता था। परन्तु किससे? सम्बन्धो के इस विखराव मे क्या नौकरी से? या फिर पत्नी से? या किसी और चीज से, जिसे कि वह स्वय भी नही जानता था? मनोज सदैव ही अपने अस्तित्व के प्रति चिन्तित रहता है। कर्नल वत्रा के कहने पर कि "तुम्हे बीमारी असल मे कुछ नही है। अगर है तो सिर्फ इतनी ही कि तुम अपने को बीमार माने रहना चाहते हो।"[46] और यह बात मनोज को अपने सम्बन्धो के अस्तित्व के प्रति चुनौती लगती है। इसी से मिलती–जुलती स्थिति स्कूल जो एक परिवार की तरह है कि एक पात्र बॉनीहॉल की है वह 'चीज' नही बनना चाहती है और इस साठ सदस्यों के स्टाफ तथा तीन सौ विद्यर्थियो के समूह से व्यक्तिगत रूप से जुड चुकी है और किसी के साथ स्थायी सम्बन्ध नही बनाती है क्योकि

अस्तित्ववादी दर्शन ने उसे निरूद्देश्य तथा भटकाव के मोड पर लाकर खडा कर दिया है। जब मनोज के लिए बॉनीहॉल 'चीज' नहीं बनती तो उसके अह को चोट पहुँचती है और उसे लगता है कि "एक चेहरा और चेहरे में जडी दो ऑखे जो एक चुनौती लिए मुझे देख रही थी।"[47] इस प्रतिक्रिया के कारण उसका अवचेतन मन बॉनी से सचेत हो जाता है और सम्बन्धो में स्थायित्व नही हो पाता। सम्बन्धो के विघटन की यही समस्या नायक मनोज को अपनी पत्नी शोभा के सामने सालती रहती है। क्योकि शोभा के सामने सिगरेट पीते हुए वह सहज नही रह पाता था। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि "वह मुझे देख ही नहीं रही, मन ही मन उस दूसरे के साथ, मेरी तुलना कर रही है जिसके साथ विवाहित जीवन के सात साल उसने विताये थे।"[48] मानव सम्बन्धो की यह कृत्रिमता अस्तित्ववादी चिन्तन की पृष्ठभूमि मे विशेष रूप से दृष्टव्य है। पति–पत्नी दोनो ही एक दूसरे के निकट आने या आत्मीय बनने की चेष्टा नही करते, क्योकि इसे वे अपने ऊपर दबाव अनुभव करते है – यह स्थिति शोभा मनोज के साथ घटित होती है। मनोज सोचता है– "उसकी नजर में मै अब भी एक अकेला आदमी था जिसका घर उसे सभालना पड रहा था जब कि मेरे लिए वह किसी दूसरे की पत्नी थी जिसके घर मे मै एक बेतुके मेहमान की तरह टिका था। मै कोशिश करता था कि जितना ज्यादा वक्त घर से बाहर रह सकूं, रहूं। पर मजबूरन घर मे रूकना पड जाता, तो वह काफी देर के लिए साथ के पोर्शन मे शारदा के पास चली जाती थी।"[49] साथ–साथ रहते हुए ये दोनो इतने अभ्यस्त हो गये थे कि एक दूसरे के मामलो मे दखल देना छोड दिया था, यदि दोनो में किसी को गुस्सा आता भी था तो बाहर आने पर उसकी कोमल अभिव्यक्ति हो जाती थी। और यही बढती गुस्सा साथ ही पहचान दोनो को औपचारिकता के बधन में बाधे हुए थी क्योकि–"उस युद्ध विराम की दोनो की अपनी–अपनी शर्ते थी– अपने–अपने तक सीमित। दोनो को एक–दूसरे से कुछ आशा नही थी, इसलिए हदबदी टूटने की नौबत बहुत कम आती थी।"[50]

शारदा और कोहली दम्पति मे सम्बन्धो का विघटन भी अस्तित्व वादी दृष्टिकोण के तहत चलता रहता है– "मेरा इस आदमी के साथ गुजारा नही है। मेरे मॉ बाप ने पता नही क्या देखकर मुझे इसके साथ व्याह दिया। यह कोई भी आदमी है जिसके साथ एक लडकी जिन्दगी काट सके । पर मैने सोच लिया है, मुझे चाहे, सारी उम्र कुवारी रहना पडे, मै इस आदमी के साथ और एक दिन भी नही रहूँगी।"[51] यहॉ शारदा का मानवीय अस्तित्व वैयक्तिक सन्दर्भ मे स्वअस्तित्व भय से नि स्त्रत होकर पुन उसी ओर उन्मुख होता है। वैयक्तिक अस्तित्व

सम्भावनापरक है, अत उसकी अन्तिम रूप से व्याख्या नही की जा सकती। चेतना के स्वर पर उत्पन्न स्वतत्रता वैयक्तिक निर्णय और कार्यरूपो मे शारदा को अन्तर्भूत करती है और वह कार्यकारी क्षणो मे अनुभवात्मक धरातल पर व्यक्ति–मानव अनुभव–सारणी के माध्यम से अपनी चेतना के विभिन्न रूपो को गृहण करती हुयी आगे बढती जाती है जिसे वह दबाव या परिस्थितियो मे खण्डित नही करना चाहती है।

तीसरा, परिवार जो आपसी अन्तर्द्वन्द्व से गुजर रहा है जिमी और रोजी का है, रोजी जबसे इस परिवार रूपी सस्था मे आयी है बहुत थकी सी महसूस करती है और यूँ कहा जाय कि उसे यहॉ की जिन्दगी रास ही नही आई और उसकी अपनी थकान बढने के साथ ही पति रोजी के प्रति भी सम्बन्धो मे थकान बढती स्पष्ट नजर आने लगी है, उसे जिमी की फरमाइशो से चिढ है वह अपना स्वतन्त्र वजूद रखना चाहती है इसलिए इस स्कूल की नपी–तुली जीवन शैली का वह वहिष्कार सी करती प्रतीत होती है।–

"वह बोली कि मेरी वजह से आपसब लोग आज भूखे रह गये हैं। पर यह दोष मेरा नही, मेरे पति का है मैने इससे कहा था कि मुझे घर पर अकेली छोड दो। पर इसका ख्याल था कि मै पार्टी मे शामिल न हुई, तो लोग जाने क्या सोचेगे। जिमी का सबसे बडा दोष यही है कि यह बहुत भला आदमी है। लोगो की बहुत चिन्ता करता है मेरी भी बहुत चिन्ता करता है। कोई चाहे कितनी कोशिश करले, इसका चिन्ता करना नही छुडा सकता। यही वजह है जो आप सब लोगो को आज आधा खाना–खाकर उठ जाता पडा है। पर मै समझती हूँ इसके बाद कभी आपको ऐसी स्थिति का सामना नही करना पडेगा, क्योकि आज के बाद कम से कम आज के बाद मेरा ख्याल है जिमी चिन्ता करना छोड देगा।"[52] रोजी की यह वैयक्त्तिक चेतनानात्मक दृष्टि अपनी सम्पूर्ण स्वतत्रता के साथ कटिबद्ध है इसलिए वह अलग रहकर अपनी पहचान बनाना चाहती है।

मनोज सक्सेना अस्तित्ववादी दर्शन मे मृत्युभय के कारण सत्रास झेलता रहता है और समाज से तथा स्वय से कटा–कटा महसूस करता है– एक स्थान पर मनोज कहता है कि "मन को मै आत्महत्या की पटरी पर नही चलने देना चाहता। इसलिए कि उसका कुछ अर्थ नही था। मैं जानता था कि मै किसी भी स्थिति मे आत्महत्या नही कर सकता। मैं हर स्थिति के परिणाम को स्वय देखना चाहता था– और जिसमे देखना न हो, उस परिणाम की कल्पना ही मुझे झूठ लगती थी।"[53] यही तीव्र अस्तित्वबोध एव पूर्णस्वतन्त्रता की भावना मनोज को शोभा से बॉनी या अपनी पूर्व पत्नी से नही जोड पाती है और वह दिग्भ्रमित

होकर भटकता रहता है। मनोज के सारे मित्र जब एक स्थान पर एकत्रित होकर उसके त्यागपत्र की समस्या पर विचार करना चाहते हैं और उससे सहानुभूति प्रकट कर सहायता करना चाहते है तो वहॉ भी यही समस्या प्रमुख हो जाती है। और यह स्पष्ट होता है कि कोई किसी का मित्र नही है सब अपनी अपनी परिधि मे कैद है' इन सब बातो से मनोज सदैव भयाक्रात रहता है। एक स्थान पर अपने अनुभवो को स्पष्ट करते हुए वह कहता है। "उसी तरह बैठे हुए और अपनी सॉस के आने–जाने को महसूस करते हुए एक क्षण आया जब मै जैसे किसी चीज से डरकर सहसा उठ खडा हुआ। वह डर किस चीज का था? उस खामोशी का? अपने अकेलेपन का? अपनी सॉस मे रूकावट आ जाने के खतरे का? या वहॉ होते हुए भी न होने, बीत चुकने के एहसास का।"[54] मृत्यु का यह भय जगह–जगह पर छाया रहता है, जो मनोज को सन्त्रास उत्पन्न किए रहता है और बहुत कोशिशो के बाद अपने विभाजन को नही रोक पाता है।

अस्तित्व की इस चटपटाहट मे शोभा भी कई बार चटक–चटक कर टूटती है फिर भी सक्रिय प्रतिरोध के साथ स्वतत्रता बनाये रखना चाहती है। शोभा भी नायक मनोज की तरह मृत्यु से डरती है और प्रत्येक मूल्य पर अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्य बनाए रखना चाहती है। शोभा बार–बार मनोज से इसी बात की शिकायत महसूस करती है। कि उसने ऐसी परिस्थितियॉ निर्मित कर दी, जो उस पर निरतर दबाव डालती गई हैं और वह अपने अस्तित्व एव स्वतत्रता को सुरक्षित नही रख पा रही है– "एक ऐसे आदमी के साथ मैने अपनी जिन्दगी को उलझ जाने दियाजिसके पास मुझे दे सकने के लिए कुछ नही था, किसी कोभी दे सकने के लिए कुछ नही था। कभी तुमने सोचा है कि तुम अपनी जगह कितने स्वार्थी, कितने दम्भी और कितने हठी आदमी हो? क्या तुम्हारे जैसे आदमी को कभी किसी भी लडकी की जिदगी को अपने साथ उलझाना चाहिए था? क्या इतने साल अकेले रहकर तुम्हे यह पता नही चला था कि अकेलेपन की जिदगी ही तुम्हारे लिए एक मात्र जिन्दगी हो सकती है।"[55] इन परिस्थितियो के केन्द्र बिन्दु मे मनोज तो था ही साथ उसकी अपनी कुछ व्यक्तिगत समस्याये भी थी वह सोचती भी है, यदि वह पूर्व पति का घर छोडकर पिताजी के घर न गयी होती और फिर मनोज के साथ शादी न करती तो हो सकता है कि स्थितियॉ कुछ अनुकूल रहती परन्तु मनोज से "अपने को जोडकर मैने हर चीज से अपने को वचित कर लिया।"[56]

बानीहॉल एक स्वतत्र व्यक्तित्व की नारी है इसलिए परिवार से अधिक वह स्वतत्रता को महत्व देती है शायद यही कारण है कि उसका परिवार

बस नही पाया बॉनीहॉल अपने बारे मे अवगत कराते हुए मनोजसे कहती है कि–"जहॉ तक शरीर की नैतिकता का सम्बन्ध है, उसे लेकर मेरे मन मे कभी कोई कुण्ठा नही रही जब सत्रह साल की थी, तभी से मै तुम्हारे सामने यह भी स्वीकार कर सकती हूँ कि कई– एक लोगो के साथ मेरा शारीरिक सम्बन्ध रहा ही है, हालाकि हर एक के साथ एक–सा नही।"[57] वह वही कुछ करना चाहती है जिससे उसकी आत्मा को सन्तुष्टि मिले और कट्टर पथी विचारधारा तो उसमे है ही नही, वह जो कुछ अच्छा गलत करती है उसे ही पवित्र मानती है। इससे उसे मानसिक स्वतत्रता महसूस होती है। बॉनीहॉल 'अन्तराल' की श्यामा की तरह है श्यामा भी मानसिक स्थितियो को पवित्र मानती है– "भावना साथ देते मै किसी भी तरह के आचरण को हीन नही समझती।"[58] इन्ही भावनाओ के साथ प्रश्न उठता है कि स्वतन्त्रता की एक सीमा होती है और इसे बॉनी च्युत नही करना चाहती – "मै नही चाहती कि किसी भी आदमी का मुझ पर इतना अधिकार हो कि मैं उसके बिना जी ही न सकू।"[59] शोभा और बॉनी दोनो ही नही चाहती कि कोई उन्हे 'इस्तेमाल' कर सके। उनका चेतना बोध बराबर इस बात के लिए सक्रिय रहता है कि वे मनुष्य है, पदार्थ नही, जिसको जिस रूप मे कोई चाहे, प्रयोग कर सके। इसलिए ये टूटती विघटित होती रहती है और परिवार से मानसिक रूप से जुड नही पाती है।

नायक मनोज का भय और आतक इस सीमा तक उसके अन्दर गहन हो जाता है कि वह बर्फ के निशानो को देखकर भी सत्रस्त हो जाता है– "थोडी देर मे वे सब निशान पिघल जायेगे, यह सोचकर मुझे सिहरन हुई।"[60] यह डर उसकी वास्तविक मन·स्थिति का प्रतीक है। वह अपने मित्रो, शोभा तथा बॉनी– किसी से भी घृणा नही कर पाता और न चाहता है कि कोई उससे घृणा करे, क्योकि वह एक एक कलकित भावना है और इसका एकमात्र उद्देश्य एक दूसरे की स्वतन्त्रता का अपहरण करना है, व्यक्तित्व को विभाजित करना है। मनोज न तो स्वय कोई निर्णय ले पाता है और न किसी दूसरे के ऊपर कोई निर्णय ले पाता है। वह बस असहाय अवस्था मे इन सम्बन्धों से मुक्ति के लिए छटपटाता रहता है। उसे लगता है कि कोई उसका अपना नही है। उसकी मनोव्यथा को कोई नही समझ सकता। मानव सम्बन्धो के विघटन मे यहॉ फिर वही प्रश्न उठता है कि अस्तित्ववादी मानवतावाद की जो दुहाई बार–बार दी गई है, क्या उसे मनोज शोभा, शारदा, बॉनी या दूसरे लोगो के अस्तित्व सचमुच सुरक्षित रह पाये है?

सम्बन्धो को बनाये रखने के लिए एक सीमा की आवश्यकता होती है, जो व्यक्ति को एक बधन मे बाधे रखना चाहती है, यदि किसी भी व्यक्ति को उसके घर की दीवारो के अन्दर देखा जाए तो वह किसी न किसी रूप मे जरूर उन दीवारो की अपेक्षाओ से बधा होगा। अगर वह अपने से बाहर उमडता या हाथ पैर पटकता है, तो भी उन सीमाओ से जकडकर ही क्योकि दीवारो की अपनी एक नैतिकता होती है। उनके बीच रहकर आदमी या तो चुपचाप उस नैतिकता का पालन करता है, या उसके प्रति एक खामोश विद्रोह और विद्रोह की खामोशी भी उस नैतिकता के दबाव की स्वीकृति ही मानी जाती है। उस दबाव से आदमी अपने को मुक्त अनुभव कर सकता है केवल वहा जहा किसी भी तरह की दीवारे न हो किसी भी दीवारो के न होने और स्वतन्त्रता की सांस लेने की जो आकुलता इन पात्रो मे है, उससे क्या सुख मिला? मृत्यु का भय, स्वतन्त्रता, अस्तित्व की चेतना, अकेलापन और सम्बन्धो के विघटन का सत्रास ये प्रश्न और सन्दर्भ सब कृत्रिम जान पडते है और इनमे अस्तित्ववादी मानवतावाद की विकृतियॉ भी स्पष्ट उभरती हैं, जो मानव की अन्तर्रात्मा की रक्षा करने के बजाय उसे ध्वांसोन्मुख बनाती है।

'न आने वाला कल' उपन्यास पारिवारिक विघटन के स्वरूप को तथा इनकी विसगतियो को स्पष्ट नही कर पाया है इसके पात्र अपनी निजी उलझनो मे इतने व्यस्त रहते है कि एक दूसरे के प्रति उनके मन मे क्या–क्या अपेक्षाये रहती है स्पष्ट रूप से व्यक्त नही कर पाते, उनका निजी अनुभव सार्थक प्रतीत नही होता तो वे अस्वस्थ मनोवृत्ति के शिकार हो जाते है या छोटी–छोटी क्षुद्रताओ एव सकीणताओ के नजरिये से वे एक–दूसरे को हीनता ग्रन्थि के कारण समझ नही पाते और अपना आक्रोश अपने परिवेश अपने लोगो से निकालने मे जल्दबाजी कर बैठते है। कुल मिलाकर मनोज जैसाकि उपन्यास मे इसके क्रिया–कलापो और विचारो से प्रकट होता है लेखक के मानस से उत्पन्न कृत्रिम चरित्र है। सामान्य जीवन का सहज गतिमय रूप उसकी किसी भी हरकत से प्रकट नही होता। वह "सब कुछ को छोडकर या अस्वीकार करके एक निषेधात्मक स्थिति में जा पहुँचता है, पर यह अस्वीकार उसे कही भी ले जाने मे असमर्थ है।"[61]

अन्तराल

मोहन राकेश का तीसरा उपन्यास 'अतराल' कथा–शिल्प की दृष्टि से प्रयोगशील है। 'अतराल' उपन्यास को लेखक ने तीन खण्डो मे विभाजित किया है अतराल–1 और अतराल–2 और अतराल–3 के मध्य कई छोटे–छोटे कथाश है।

जिनमे कही क्रमिक गति से, कही पूर्व–दीप्ति पद्धति से, कही चेतना–प्रवाह और कही विवरण तथा कही डायरी शैली से कथा का प्रस्तुतीकरण हुआ है।

अतराल–1 सप्रति नायक कुमार बम्बई के किसी विज्ञापन–प्रतिष्ठान मे कार्य करता है। उसे आज शाम साढे पॉच बजे टी–सेटर पर श्यामा से मिलने जाना है उसका फोन आया था। कुमार दफ्तर से निकलता है, बबई के भीड भरे रास्तो मे मिलते लोगो के वर्णन के साथ जब वह टी–सेटर पहुँचता है तो श्यामा उसे वहॉ नही मिलती। पौन घटा प्रतीक्षा कर कुमार लौट आता है। लौटते मे चर्च गेट से फास्ट ट्रेन मे वापसी के ब्यौरे के साथ कहानी अतीत की ओर घूम जाती है। . . कुमार किसी कस्बे मे प्राध्यापक है। वही एक पार्टी मे उसके सहकर्मी प्रोफेसर मल्होत्रा उससे अपनी साली श्यामा का परिचय कराते है कि वह मडी के एक स्कूल मे प्रधानाध्यापिका है और दर्शनशास्त्र में एम0 ए0 करने के लिए छुट्‌टी लेकर आयी है और यह भी कि कुमार उसे गाइड कर दे दूसरे दिन से श्यामा कुमार के घर पढने आने लगती है। श्यामा की पढाई के दौरान दोनों मे जो अन्य बहुत सी बाते होती है उनसे कई कथासूत्र भी जन्म लेते जाते है। श्यामा विधवा है शादी के दो साल बाद उसका पति (देव) एक बच्ची छोडकर मर गया। कुमार का इससे पूर्व लता नाम की लडकी से प्रेम व्यवहार था, जिसे समाप्त हुए दो साल बीत गये और कुमार को इस जगह से कही और चले जाने की सोचते–सोचते भी दो साल बीत गये । एक बरसाती शाम श्यामा कुमार के साथ खेतो की ओर घूमने जाती है। रास्ते मे ईषत् प्रेम–प्रसग श्यामा बताती है कि जीजाजी उसके प्रति दूषित यौन–भाव रखते है और अब शायद वह जल्दी ही मडी लौट जाय। कथा सूत्र यहॉ से फिर पीछे को मुडकर कुमार के चर्चगेट से फास्ट ट्रेन मे वापस लौटने के बिदु से जाकर जुड जाता है। कुमार बाद्रा पर उतरता है और घर के लिए बस मे सवार होता है और कथा फिर वही कस्बे के परिवेश मे पहुँच जाती है। जहॉ कुमार और श्यामा की कथा खेतो की सैर से छूटी थी।. एक खेत के रहट पर श्यामा कुमार को प्रो0 मल्होत्रा के द्वारा किये गये ईषत् बलात्कार के बारे मे बताती है। बीच मे लता की चर्चा आती है। कुछ देर उस रहट पर रूककर कुमार और श्यामा लौट पडते है लौटते मे श्यामा कुमार के आलिगन के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करती है। फिर दो दिन तक श्यामा कुमार के यहॉ नही आती। तीसरे दिन जब वह आती है और उस आलिगन प्रकरण पर जब दोनो मे बाते होती है तो जाहिर होता है कि श्यामा अभी भी अपने स्वर्गीय पति के प्रभाव से मुक्त नही है। अगले दिन श्यामा मडी चली जाती है कुमार उसे कस्बे से अगले

स्टेशन पर विदा करने पहुँचता है और कुमार के घर वापस लौटने के वर्णन के साथ प्रथम कथा–खण्ड समाप्त हो जाता है।

'अन्तराल–2' का कथा–सूत्र लेखक ने 'अतराल–1' के टी–सेटर वाले उस आरम्भिक बिन्दु से जोडा है जहॉ से कुमार श्यामा से बिना मिले अपने घर लौट जाता है। इस खड की कथा बबई के उक्त स्थल–प्रसग से श्यामा के शब्दो से शुरू होती है। टी–सेटर पहुँचने मे विलबित हो जाने के कारण वह कुमार से नही मिल पाती और लौट आती है। श्यामा की वापसी के रास्ते और समुद्र–तट के लेखकीय दार्शनिक वर्णन के साथ कथा मडी मे श्यामा के घर की ओर मुड जाती है। अकेली रहती मानसिक रूप से अशात और क्षुब्ध श्यामा सोचती रहती है, उसे बस्ती के अगले स्टेशन से कुमार की विदाई की याद आती है। अकेलेपन की पीडा से मुक्ति के लिए एक मुद्दत बाद श्यामा ने अब फिर से डायरी लिखना शुरू किया है। डायरी मे वह आत्म, प्रेमभाव, देव, गृहस्थजीवन तथा कुमार आदि के बारे मे अपने विचारभाव व्यक्त करती है । अपने विद्यालय की रजु नामक एक अध्यापिका की शादी के लिए देखने के बहाने वह कुमार को पत्र लिखकर बुलाती है। यहॉ से ये कथा फिर बम्बई के उसी कथा क्रम से जुड जाती है जहॉ से श्यामा टी–सेटर से घर वापस लौट रही थी। नरीमनप्वाइट, मैरिन–ड्राइव चर्च गेट स्टेशन तथा अधेरी आदि के रास्ते से ट्रेन का सफर करने के बाद श्यामा घर पहुँचती है। घर पर बीजी (मॉ), सीमा (छोटी बहन) तथा बेबी (पुत्री) के सम्बन्ध मे आत्मीय–अनात्मीय विचार करती हुई वह थककर सो जाती है।इसके आगे कथा फिर मडी के उसी छूटे हुए सूत्र से जुड जाती है जहा वह कुमार के आने की प्रतीक्षा कर रही है। आज शनिवार है और कुमार को आना है। दैनदिन के कार्यों के दौरान श्यामा अपने अतर मे लगातार कुमार के आ पहुँचने और उसके बाद के सारे व्यवहार की कल्पना मे जी लेती है लेकिन कुमारआखिरी बस से भी नही आता।

अब फिर कथा बबई–अधेरी मे तब से शुरू होती है जब श्यामा टी–सेटर से घर आकर सो गयी थी। बेबी को लेकर श्यामा और बीजी मे विवाद हो जाता है श्यामा और बीजी के बीच पत्र व्यवहार से तय हुआ था कि पूना का घर बेचकर यदि बम्बई मे रहा जाय तो वह भी मडी छोडकर उनके साथ रह सकती है। और इसी हेतु श्यामा लबी छुट्टी लेकर इस समय बम्बई आयी है। लेकिन यहॉ आकर वह पाती है कि बीजी और सीमा से 'एडजस्ट' करना बहुत कठिन है। वह चिन्तित रहती है। देव की याद करती है शादी के तुरत बाद से ही देव ने उसे कभी भी आत्मीय स्तर पर ग्रहण नही किया। एक दिन देर रात

को जब सीमा शराब पीकर लौटती है तो श्यामा से उसका विवाद हो जाता है। बेबी भी यहाँ आकर उससे कट गयी है। सीमा बीजी और श्यामा मे तनाव बढता ही जाता है।

'अतराल–3' की कथा बबई मे कुमार के दफ्तर से शुरू होती है। जहाँ एक दिन अचानक ही श्यामा पहुँच जाती है। दोनो दफ्तर से बाहर आते है, टी–सेटर मे चाय पीकर चर्च–गेट स्टेशन से दोनो गाडी पकडते हैं बांद्रा पर उतर कर श्यामा अपने ही आग्रह से कुमार के घर जाती है। कुमार का अस्त–व्यस्त और गदा कमरा। वहाँ चाय पर दोनो मे आत्मीय वार्तालाप होता है जिससे श्यामा को जानकारी मिलती है कि इस बीच कुमार ने विवाह किया था, लेकिन छ माह से अधिक सम्बन्ध न रह सके। काफी देर तक बाते करने के बाद जब श्यामा चलने को होती है तो कुमार उसे बलात् प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और श्यामा बलात् ही अपने को बचा लेती है।

रात भर के उनीदेपन के बाद अगली सुबह जब कुमार सोकर उठता है तो उसकी पूर्व स्मृति में कथा वहाँ से आगे बढती है जब श्यामा उसे धकेल कर चली गयी थी। पूर्व कथा सन्दर्भ मे कुमार आत्मग्लानि मे डूब जाता है और फिर स्टेशन तक छोड आने के लिए श्यामा से कहता है श्यामा इनकार कर देती है। और कल की घटना की कुछ दार्शनिक–सी व्याख्या कर कुमार को ऊपरी क्षमा और सात्वना देकर चली जाती है। कुमार चाय बनाने मे व्यस्त हो जाता है और कथा अतत समाप्त हो जाती है।

मोहन राकेश के उपन्यास 'अन्तराल' मे प्राचीन आदर्शों के प्रति कोई ममत्व नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि दिग्भ्रमित मानव अपनी मतोनुकूल पगडण्डी खोजने में व्यस्त है। एक नगर के चौराहे से भटकता हुआ छोटे कस्बे तक का मार्ग बहुत ही जटिल बन गया है। मानव सम्बन्धों के विघटन की अनेक समस्याये मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा आत्मकेन्द्रितता के वजह से अन्तराल में विखरी हुई है।

अन्तराल मे यथार्थ रूप मे आधुनिक मानव सम्बन्धो के विघटन की कहानी चित्रित है। मुख्य रूप से 'सैक्स' तथा मानवीय सम्बन्धो के टूटने की कहानी है जो सम्बन्ध केवल देखने मे सहने भर के लिए ही है। स्त्री–पुरूषो का सम्बन्ध एक ज्वलन्त समस्या है। इसके विषय मे रिवेल इ० मेन्जेज अपना मत देते है– "Sexual Permissiveness is good in theory, but it is doubted in Practice" परन्तु पाश्चात्य प्रभाव के सम्पर्क मे आये लोग 'सैक्स' को ठीक मानते है। "Over

go percent thinks, that saxual permissiveness is not wrong while 65 Percent are opposed to it, the rest are defferent"[62] (Illustrated weekey of India Author ERVELL EMENEZES june 16, Sunday 1974)।

'अन्तराल' के सन्दर्भ मे कुछ सन्दर्भ ऐसे हैं जो प्राचीन नैतिक धारणाओ को तोडते नजर आते है क्योकि स्वतन्त्रता के बाद देश का कायापलट हो रहा है। जब देश मे औद्योगिक क्रान्ति गतिशील है तो उसका प्रभाव देश के सास्कृतिक मानव–मूल्यो पर पडना स्वाभाविक है। जीवन मे भौतिकता का प्रवेश दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है। इससे हमारे जीवन के पुराने मूल्यो के प्रति जो आस्था अब तक बनी हुई थी। वह बदलती हुई परिस्थितियों मे विघटित हो रही है। स्त्री–पुरूषो के आपसी सम्बन्धो के सम्बन्ध मे नैतिक आस्थाओ का लोप होता जा रहा है, भौतिक समृद्ध जनमानस का लक्ष्य होती जा रही है, वर्ग, जाति या सम्प्रदाय के आधार पर व्यक्ति को ऐतिहासिक सन्दर्भो के आधार पर अधिकार प्राप्त था उनमे परिवर्तन होता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे मानव मे विघटन होना (आस्थाओ मे परिवर्तन) स्वाभाविक ही था।

'अन्तराल' की कथा मे पारिवारिक विघटन का स्वरूप दो कोटियो मे रखा जा सकता है।

1 पारिवारिक मानव सम्बन्धो के विघटन का स्वरूप।

2. वैयक्तिक मानव सम्बन्धो के विघटन का स्वरूप।

समाज मे परिवर्तन आने के साथ ही साथ पारिवारिक मानवीय सम्बन्धो के विघटन का स्वरूप भी बदल रहा है। मानवीय सम्बन्धो के मूल्य बदलते जा रहे है समाज मे परिवारो की इकाइयॉ बदलती जा रही है। परिवार मे आपसी सम्बन्ध भी अपनी नैतिकता को छोड गए है। वह सम्बन्ध केवल सहने के सम्बन्ध रह गये हैं। इनमे वह आपसी प्यार नही रहा है दिखावे के सम्बन्ध जो अन्दर ही अन्दर घुटते टूटते से नजर आ रहे है।

'अन्तराल' मे पारिवारिक विघटन के सन्दर्भ मे पहले श्यामा और राजीव का प्रेम लिया जा सकता है। राजीव अक्सर श्यामा के घर आता है। श्यामा की शादी की बात राजीव के साथ चलती है श्यामा मन ही मन उसे अपना पति मान चुकी थी क्योकि राजनीति से सम्बन्धित बातो मे उसकी बहुत जानकारी थी, और श्यामा उसके मुॅह से निकले एक–एक शब्द को आदर के साथ सुनती हुई सोचा करती कि "राजनीतिक जीवन की धॉधलियो के कारण उस क्षेत्र मे कुछ करने का अवसर न भी मिला तो केवल अपने विचारो से ही एक दिन वह व्यक्ति

सारे ससार को चमत्कृत कर देगा। इसलिए विवाह का प्रस्ताव किए जाने पर जब राजीव ने यह कर मना कर दिया कि उसने जीवन भर अविवाहित रहकर राजनीतिक कार्य करने का सकल्प ले रखा है तो उसके लिए उसके मन मे आदर और भी बढ गया।"[63] पर एक दिन उसे अपनी चचेरी बहन से मालूम पडा कि राजीव की शादी ससद सदस्य की छोटी बहन से हो गयी तब श्यामा स्तब्ध रह जाती है। राजीव के साथ श्यामा के सम्बन्धो का विघटन आकर्षण के अतिरिक्त और कोई नाम नही दिया जा सकता क्योकि यह परिवार के सम्पर्क से बना और उसी से टूटा।

श्यामा और उसकी ससुराल वालो के विघटन का सम्बन्ध भी पारिवारिक दायरे मे आता है। देव के साथ तो किसी तरह से श्यामा ने काट लिया और देव की ओर से उसने कभी कोई शिकायत भी नही की। परन्तु शादी की प्रथम रात को ही "वह अन्धेरे का सम्बन्ध था जो कि अन्धेरे मे भी ठीक से नही जुड पाता था, कोशिश दोनो तरफ से होती थी।"[64] श्यामा और देव मे तनाव दोनो लोगो के आपसी मेल मिलाप मे कमी के कारण भी हो सकता है क्योकि देव ने एक बार श्यामा से कहा था "हम जिन्हे सम्बन्ध कहते है वे केवल मच पर अभिनेताओ के आपसी सम्बन्ध है और कुछ नही।"[65] देव की मृत्यु ने इस सम्बन्ध को श्यामा के भविष्य मे रास्ता प्रशस्त कर दिया। बीजी और सीमा के साथ श्यामा का सम्बन्ध आर्थिक कारणो से जुडा हुआ था। यही व्यस्तता सीमा और बीजी के साथ थी। श्यामा भी यहॉ घुटन महसूस करती रहती है "क्योकि उस घर मे रहना भी लगातार एक तीन तरफा दबाव मे जीने की तरह था । उस दबाव को कोहनियो की भार से अपने से परे नही किया जा सकता था, और न ही आशा की जा सकती थी।"[66] जब कुमार से वह मण्डी लौट जाने की बात कहती है तो कुमार कहता है कि क्या इसका कारण घर के लोग है कुमार, श्यामा से कहता है कि तुम मन मे इस निष्कर्ष तक पहुच गई हो कि तुम्हारा अब उन लोगो के साथ कुछ भी साझा नही है . कि किसी तरह साझेदारी बना रखने की चेष्टा अपने मे एक धोखा है। पर इतने दिन उस धोखे मे काट लेने के बाद तुम्हारा स्वाभिमान ही इसे स्वीकार करने से तुम्हे रोकता है।"[67] और कुमार श्यामा से कहता है कि मण्डी जाने का इरादा तुम्हारी कोशिश यहॉ से दूर जाकर फिर किसी तरह उस धोखे को बनाये रखने की नही है। श्यामा इस पारिवारिक सम्बन्ध को बनाए रखने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करती है, यहॉ तक कि बीजी के साझे मे फ्लैट भी खरीदती है, लेकिन सफल नही होती। अन्त मे श्यामा का परिवार से सम्बन्ध टूट जाता है।

'वैयक्तिक मानव सम्बन्धो के विघटन' का स्वरूप दो रूपो मे 'अन्तराल' मे आया है–

1 भौतिक आवश्यकता के कारण पारिवारिक विघटन।

2 मनोवैज्ञानिकता के आधार पर पारिवारिक विघटन।

पारिवारिक सम्बन्धो के अतिरिक्त मनुष्य के निजी सम्बन्ध भी होते है। बदलते युग के साथ इन सम्बन्धो के मूल्य बदलते जा रहे है। मानव को भौतिक सम्बन्धो की आवश्यकता महसूस हो रही है। हमारे समाज मे भौतिकता के आधार पर जो सम्बन्ध स्थापित हुए है वे जरा सी भी जमीनी हकीकत नही रखते है, और कुछ सम्बन्ध तो ऐसे है जिन्हे कोई नाम नही दिया जा सकता इसलिए इन सम्बन्धो के टूटने से व्यक्ति को कष्ट भी नही होता। हमारे समाज मे 'पुरूषमित्रो' की सख्या बहुधा मिलती है। जिन स्त्रियो के बॉय–फ्रैण्ड नही होते है, वह गवार समझी जाती है। यद्यपि भारतीय समाज मे बॉय–फ्रैण्ड का फैशन अभी शैशवावस्था मे ही है। आधुनिक भारतीय समाज मे स्त्री आत्मनिर्भर रहना पसन्द करती है। उसके अपने वैयक्तिक सम्बन्ध होते है और यही वैयक्तिक सम्बन्ध लोगो को अपने मूल परिवार से काट देते है इसलिए एकल परिवार का जोर चल रहा है।

'अन्तराल' भौतिक आवश्यकता के आधार पर विघटित परिवारो की सशक्त वकालत करता है। कुमार का पीली लडकी लता के साथ वैयक्तिक भौतिक सम्बन्ध है, जिससे वह घर बसाने की चेष्टा करता है। क्योकि कुमार जब लता से अन्तिम बार मिलता है, उस समय लता की शादी हो जाती है और लता अन्तिम बार उससे मिलने आती है और कुमार को वह अभिसार के लिए कहती है– "कुछ पल उसे देखती रहकर बोली "एक बात कहूँ? और वह फिर एक बार उसके पास आ गई। यह भी तो हो सकता है कि बिना ब्याह के तुम मुझे . ।"[68] लता का कुमार के साथ सम्बन्ध केवल शारीरिक रूप से उसके जेहन मे था और जब वह पूरा नही होता है तब वह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

कुमार का भौतिक सम्बन्ध श्यामा के साथ भी होता है, क्योकि लता द्वारा रिक्त कोष्ठ वह श्यामा से भरना चाहता है और श्यामा के ह्रदय मे देव का स्थान उसकी मृत्यु के कारण रिक्त हुआ है और भौतिकता की अन्धी दौड मे जब दोनो व्यक्ति शारीरिक सम्पर्क करते है तो वास्तविक रूप मे उसे सहन न करने की स्थिति मे विघटित हो जाता है,– कुमार और श्यामा ने वासनामय स्थिति के समय इस तथ्य को स्वीकार किया है– "कुमार की सॉस तेज हो रही थी और

चेहरा एक स्त्री को पा लेने के पुरूष भाव से जड होता जा रहा था। श्यामा के शरीर मे एक–साथ सहानुभूति और वितृष्णा की झुरझुरी दौड गई । ''देखो अब मुझे चलना चाहिए''[69] इन भौतिक सम्बन्धो की आड मे जब ये लोग असफल हो जाते है तब अपना सम्बन्ध च्युत कर लेते है।

शुद्ध भौतिक सम्बन्धो के स्खलित होने का एक स्वरूप सीमा मे देखने को मिलता है जो अविवाहित होने पर भी पुरूष मित्रो से सम्बन्ध रखती है और प्रेमियो को कपडो की तरह बदलती है और वह स्वीकार भी करती है– ''मेरे दो–एक बाय फ्रैण्ड है जिनके साथ मै शाम को बाहर जाती हूँ। मैं जानती हूँ ममी उनमे से किसी को भी पसन्द नही करती। खास तौर से अख्तर को, वह बहुत कल्चर्ड लडका है, ममी से बहुत मीठा बोलता है, पर वह उन्हे इसलिए नही भाता कि उसका नाम सुरेश या रमेश नही, अख्तर है और वह नमस्ते की जगह आदाब अर्ज कहता है।''[70] सीमा के चरित्र का विश्लेषण करने से इस बात की कल्पना होती है कि वह 'सोसाइटीगर्ल' है और जब उसकी भौतिक आवश्यकताये समाप्त हो जाती हैं तब अपने लिए पुराना साथी (बॉय फ्रैण्ड) के स्थान पर नया (बॉय फ्रैण्ड) चुन लेती है।

श्यामा और गोपाल जी का सम्बन्ध भी भौतिकता के कारण स्थायित्व नही पा पाता है क्योकि वासना के कारण श्यामा उनसे जुड नही पाती। प्रारम्भ मे प्रो0 गोपाल जी के सानिध्य मे आने पर वह उनका आदर करती है। साथ ही उनके प्रति एक आकर्षण भी बनाये रखती है। गोपाल जी का स्नेह श्यामा के प्रति वासनामय है यही कारण है कि एक दिन उसने घर के सभी सदस्यो को बाहर भेज कर, श्यामा के आने की प्रतीक्षा करता रहा, और उसके आने पर – ''खिडकियॉ दरवाजे बन्द करके उन्होने अन्धेरा कर रखा था। उसके अन्दर पहुँचते ही उन्होने बिना किसी भूमिका के उसे बाहो मे लेकर अपने होठ उसके होठो पर रख दिए। उसके साथ ही उन्होने चेष्टा की उसे अन्दर के कमरे मे ले जाने की।''[71] इस घटना ने श्यामा को गोपाल जी से विलग कर दिया।

'मनोवैज्ञानिकता के आधार पर' 'अन्तराल' मे कई परिवार टूटते है, जुडकर भी एक दूसरे के प्रति आपस मे घुटते पिसते रहते है। यद्यपि इन सम्बन्धो को कोई नाम नही दिया जाता लेकिन यह सूक्ष्म अतिसूक्ष्म होते है। मानव केवल वासना ही नही चाहता, वासना के अतिरिक्त भी उन्हे जिन्दगी मे कई अहम चीजो की आवश्यकता होती है और ऐसे सम्बन्धो के अभाव मे जो मनोवैज्ञानिक होते है न जुड पाने से व्यक्ति अन्दर ही अन्दर टूटता रहता है।

कुमार जिसका व्यवहार कई अवसरो पर वासनामय हो उठता है, इसके अतिरिक्त उससे कुछ और भी की अभिलाषा रहती है और जब 'यह कुछ' व्यक्ति प्राप्त नही कर पाता तो उसकी व्यक्तिगत जिन्दगी बिखर जाती है और यह प्रस्फुटन निरन्तर चलता रहता है– "शारीरिक आकर्षण से हटकर एक और आकर्षण होता है, व्यक्ति का चुम्बकीय आकर्षण जो शारीरिक आकर्षण से ही कही अधिक मन को खीचता है।"[72] सस्ते दामो पर मिलने वाले स्त्री सम्बन्धो से उसे वितृष्णा हो गई थी। कुमार अपने को कभी धोखे मे नही रखना चाहता और ऐसे सम्बन्धो से अलग हो जाना वह उचित समझता है– "पर यह जिन्दगी जानवरो से बदतर नही कि जिसे आदमी अदर से नफरत करे, उसके साथ रात–दिन एक घर मे रूधा रहे? जिसके शरीर की गन्ध तक से जी मितलाए, उसके साथ एक विस्तर में सोने का नाटक करे।"[73] इसी तरह श्यामा भी जो कुछ देव से पाने मे असमर्थ रहती है वही कुमार से पाना चाहती है। इसी खोज मे भटकती फिरती है। वह स्वय सोचती है– "कुमार से वह क्या चाहती थी? उस रात की प्रतीक्षा मे जो चाह मन मे थी, क्या सचमुच बस उतना ही? उतना तो देव ने भी उसे दिया था। चाहती तो देव के अतिरिक्त किसी से भी उसे मिल सकता था। प्रोफेसर मलहोत्रा ने कितनी याचना के साथ वह चाहा था और कुमार ने भी एक बार उससे झपट लेने की कोशिश की थी, तब वह दोनो मे से किसी के साथ भी अपने को उस सम्बन्ध मे देखने के लिए तैयार नही हो सकी थी। कुछ था जो उसे उसके अतिरिक्त भी चाहिए था और जिसे देने का प्रस्ताव उन दोनो मे से किसी ने नही किया था।"[74] ये टूटे–बिखरे सम्बन्ध इतने सूक्ष्म हैं कि मानव इन्हे कोई नाम नही दे सकता है और इनको पाने मे निरन्तर लगा रहता है यह सच है आदमी भी सम्बन्धो से कोरा नही होता। फिर भी कुछ विघटित सम्बन्धो को सम्बन्ध मानने से डरता जरूर रहता है।

मानव जीवन मे अनेक दुर्बलताएं एव विकृतिया भरी पडी हैं। भूख के समान भोग भी एक मूल प्रवृत्ति है और ऊपर से अत्यधिक सरल सज्जन एव सदाचारी दिखलाई पडने वाले व्यक्ति के भीतर भी नारी रूप के प्रति बडी उत्कण्ठा होती है। स्त्री–पुरूष का आकर्षण चिरतन है और यही एक दूसरे की सबसे बडी दुर्बलता है जो पारिवारिक विघटन का रूप लेती है, 'अन्तराल' में इसी अनाम सम्बन्धो के बिखराव को मनोवैज्ञानिक ढग से मोहन राकेश जी ने चित्रण किया है। मानव सम्बन्धो मे पर्याप्त परिवर्तन समाज की रूपरेखा बदल रहा है।

'अन्तराल' मे आधुनिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में

पारिवारिक विघटन

आज का समाज चाहे प्रगति कर रहा है या पाश्चात्य प्रभाव मे आया है प्रगतिशील हो रहा है पुराने मूल्यो और रूढियो का खण्डन हो रहा है, और समाज मे नये मूल्य टिक रहे है। समाज छिन्न–भिन्न हो रहा है। समाज और व्यक्ति भिन्न–भिन्न हो गए है। मानव ने समाज को छोड दिया। समाज मे आज नारी पर्दानशी नारी नही है, वह पुरूष के साथ कदम से कदम मिलाकर काम करती है क्योकि यह प्रेमचद युगीन स्त्री नही है जो अपनी चारदीवारी मे बन्द हो बल्कि यह आत्म निर्भर रहने वाली नारी है, और अपने बारे मे सोचने तथा निर्णय लेने मे पूर्णरूप से स्वतत्र है, इसलिए नये–पुराने मूल्य टकरा रहे है और नारी पुरूष के सम्बन्ध नवीन रूप में प्रस्तुत हो रहे है तथा सम्बन्धो के विघटन मे आर्थिक पीठिका मुख्य भूमिका लिए हुए है।

आधुनिक समाज का गठन ही इस प्रकार का हो गया है कि प्राचीन एव नवीन मूल्यो मे अन्तराल पैदा होने से परिवारो का विघटन हो रहा है। प्राचीन लोग अपने धर्म का ढोल पीट रहे है और नई पीढी उनके प्रति विद्रोह कर रही है नई पीढी धर्म, समाज, रूढि का विद्रोह कर रही है और पुरानी पीढी नए लोगो की क्रान्ति को दबाना चाहती है। यही कारण है कि Generatıon Gap की एक विशाल समस्या खडी हो गई है।

"The older generatıons greatest concem ın all ıts domgs ıs to avoıd scandal That ıs done by presentıng a respectable facade But the younger generatıon ıs frank, and out spoken In fact there ıs a tendency to glorıfy whats ıs concerned wrong by the establıshment"[75] युवको का अपने बुजुर्गों के प्रति कोई मान नही रहा है समाज के नियमो का पालन नही होता है। वह एक तरह से समाज से कट गया है। मानव के व्यवहार आचरण और नैतिकता मे परिवर्तन आ गया है। अग्रज अपने छोटो पर आश्रित है, अत उसका सहमा सा रहना स्वाभाविक है। समाज मे आमूल परिवर्तन हुआ है। यदि समाज के इस आमूल परिवर्तन की ओर निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाए तो यही निष्कर्ष निकलता है कि समाज का यह परिवर्तन विकास की कडी के कारण हुआ है।

'अन्तराल' उपन्यास मे प्राचीन और नवीन मूल्यो के टकराव के कारण सम्बन्ध विघटित हुए हैं। सीमा के सन्दर्भ को देखे तो – वह एक आधुनिक शोख तितली है, वह 'सोसाइटी गर्ल' है। 'सोसाइटी गर्ल' का फैशन समाज मे

नया नही है। यह प्राचीन वेश्याओ का नया नाम है। प्राचीन समय मे इन्हे नगर बधुओ की भी सज्ञा दी जाती थी। सीमा अपनी मॉ का पोषण करती है उसके कई 'बॉयफ्रैण्ड' हैं जो केवल मनोरजन मात्र के लिए है। सीमा उन स्त्रियो का प्रतिनिधित्व करती है जो आत्मनिर्भर हैं और बॉयफ्रैण्ड रखना गर्व मानती है । सीमा उन स्त्रियो का प्रतीक है जो अपने अग्रजो के प्रति कोई विशेष मान नही रखती हैं इससे सम्बन्धो मे फूटन हो रही है– इस बात की पुष्टि स्वय सीमा के कथन से होती है। वह मा के बारे मे कहती है– "पहले वे बडबडाया करती थी, अब समझ गईहै कि मुझे ज्यादा तग करेगी, तो मै उनके साथ नही रहूगी। यही चीज है जिससे वह डरती है। मै रात व रात देर–सबेर जब भी आऊ, जिस के साथ भी आऊं, अब उनकी नीद नही टूटती।"[76] सीमा उस अत्याधुनिक वर्ग की नारी है जो वर्जनाओ को स्वीकार नही करती और फ्रैकली मॉ भाभी के सामने शराब आदि नशीली चीजो का व्यसन करने मे नही हिचकती इस बर्ताव ने उसे भाभी से अलग भी कर दिया।

'अन्तराल' मे श्यामा के चरित्र को देखकर भी कह सकते हैं कि इन नैतिक मूल्यो के बदलने से उसके परिवार का स्खलन हुआ है। श्यामा विधवा युवती है और आत्मनिर्भर है। अगर प्राचीन समाज की विधवा श्यामा होती, तो उसे घृणित दृष्टि से देखा जाता, घूमने फिरने की स्वच्छदता नहीं होती। उसकी ओर कोई सहानुभूति की दृष्टि से नही देखता कोई प्यार का प्रस्ताव रखता, यह तो दूर की कौडी थी। इसके विपरीत परिवार से अलग रहने पर तथा नौकरी एव आत्मनिर्भरता ने उसे समाज मे एक नया सम्मान दिलाया। अगर वह कुमार से शादी भी करती तो समाज की ओर से कोई रूकावट नही होती। समाज के इन कई नैतिक मूल्यो के विकास ने परिवारो को सफलता का नया रूप दिया है। अब विधवा विवाह पर कोई रोकथाम नही है।

इसके अतिरिक्त एक और पात्र है, वह है कुमार की पत्नी। वह कुमार के साथ समझौते के तौर पर शादी करती है न निभने पर वह अपने घर वापस लौट जाती है। प्राचीन समाज मे जिस व्यक्ति से नारी शादी करती थी, उसी के साथ बधी रहती थी, चाहे उसकी इच्छा हो या अनिच्छा। परंतु आज की नारी स्वतत्र है। वह अपना मार्ग स्वय ढूंढ लेती है। इसलिए 'अधेरे बन्द कमरे' की नीलिमा ठीक ही कहती है। उसके अनुसार – "किसी भी व्यक्ति के साथ बधकर उसके शासन मे रहना मुझे बहुत गलत लगता था और तुम मुझे जानते हो कि हर पुरूष किसी न किसी रूप में स्त्री पर शासन करना चाहता है। मै सोचती हूँ कि मै एक अपवाद बन सकती हूँ। पुरूषो के शासन से बचकर उन्हे अपने शासन मे

रख सकती हूँ. मै आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नही रहना चाहती थी। इसलिए मैने आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त की, अकेली रहना और खुद अपने लिए कमाना सीखा।"[77] अब नारी अपने अधिकारो के लिए सचेत हो गई है। नैतिकता के सम्बन्ध मे धारणाए बदलती जा रही है।

इसके अतिरिक्त 'अन्तराल' प्रो0 मल्होत्रा और श्यामा मिस रोहतगी तथा प्रो0 मलहोत्रा एव लेडी डॉ0 वत्रा तथा डॉ0 दूबे के नैतिक सम्बन्धो के बिखराव की भी दास्तान कहता है क्योकि यहॉ पुराने और नये मूल्य नैतिकता के बारे मे बदलते जा रहे हैं इनके पीछे मूल्यों के परिवर्तनो का विकास है। यदि कही कुछ बुराइयॉ आयी हैं तो इसके पीछे आधुनिक शिक्षा प्रणाली का दोष है। 'पुरूष और नारी के यौन सम्बन्धी' नैतिक मूल्यो में परिवर्तन के कारण परिवारो मे विलगाव हो रहा है। समाज प्रगति कर रहा है मानव शिक्षित होने के साथ–साथ अत्याधुनिक बनता जा रहा है। यौन समस्या जिसका केवल विवाहित वर्ग ही विश्लेषण कर सकते थे, आज जनसाधारण की समस्या बन गई है। आज यौन नैतिकता पढे लिखे समाज मे रूढ नहीं रही है। पहले विवाह एक ऐसी व्यवस्था थी जो एक नारी पुरूष से सम्बन्ध रखती थी। लेकिन आज 'सैक्स मौरेलिटी' का उल्लघन हो रहा है। आज चूँकि व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध कट गया है इसलिए व्यक्ति स्वतन्त्र है। यही कारण है कि यौन सम्बन्धो मे रूढि नही रही है। यहॉ तक कि बहुत सी युवतिया जीवन भर कुमारी रहकर अपने यौन सम्बन्धों मे स्वतत्र रहती है। यह स्वतन्त्रता भली समझी जाए या बुरी, इस विवाद के बारे मे अधिक चितन नही हुआ है। न ही इस विषय मे अधिक सोचने की आवश्यकता है, क्योकि परिवार और व्यक्ति का सम्बन्ध भी टूट रहा हैं। यहॉ तक कि पति पत्नी के सम्बन्धो मे दरार पैदा हो गई है, इसके अनेक मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते है लेकिन तथ्य सदैव यही रहा है कि यौन–सम्बन्ध शारीरिक आवश्यकता पर टिके हुए है। आधुनिक युग मे प्राचीन व्यवस्था के विरूद्ध क्रान्ति और विद्रोह के स्वर सुनाई देते है इसमे आधुनिक प्रकार की शिक्षा का भी बडा हाथ है।

"More and more young people are rebelling against age old values, sex drugs, and non relegion are the 'IN' things they belive they are fighing against the Establishment riddled with hypocrisy and corruption"[78]

जटिल जीवन होने के साथ7साथ जीवन के मूल्यो के साथ सगत वही स्थापित हो पाती है। विशेषकर स्वतन्त्रता के पश्चात दो दशको मे जिस पीढी ने जन्म लिया है। उसने चतुर्दिक परिवेश मे खोखला जीवन, झूठी आस्था,

धर्म का पाखण्ड, अनाचारी और भ्रष्टाचारी राजनीतिक नेता तथा भ्रष्टाचार और तस्करी के वातावरण को खुली ऑखो से देखा है उसकी अग्रेजो के प्रति श्रद्धा डावाडोल हो उठी है। गुरूजनो के झूँठ और पापाचार पूर्ण जीवन को नगे रूप मे देखने के कारण प्राचीन मूल्यो के प्रति वितृष्णा हो गई है। यही कारण है कि यौन सम्बन्धो मे भी औचित्य अनौचित्य, विवेक और अनेक आदर्शों का अभाव खटकता है। पुरानी पीढी के उपदेश देने का अधिकार छिन गया है। परिणामत अनुशासनहीनता पनपने लगी है।

'अन्तराल' मे यौन सम्बन्धी समस्त आधुनिक विचार धाराये स्पष्ट की गई है जिसके कारण पति–पत्नी या स्त्री पुरूषो में तनाव उभरता है। या यूँ कहा जाए कि समस्त उपन्यास ही यौन समस्या पर ही आधारित है सम्बन्धो के विघटन की प्रमुख समस्या यही है। कुमार को जिस चीज की प्राप्ति लता से नही हुई उसकी तृप्ति वह श्यामा से करना चाहता है, यद्यपि लता ने उसके समक्ष एक खुला पन्ना रखा था। और श्यामा एक विधवा स्त्री है वह जवान है उसका विवाहित जीवन सुखी नहीं था। श्यामा के अनुसार वह कुछ साल सहने के लिए उसके साथ गुजार कर चला गया। मनोविज्ञान के अनुसार यह स्वाभाविक है कि वह पर पुरूष की ओर आकृष्ट हो जाए। जो चीज वह अपने पतिदेव से नही पा सकी उसको पाने की अभिलाषा वह कुमार से करती है। मण्डी मे जब वह कुमार को दशहरे की छुट्टियॉ एक साथ बिताने का निमन्त्रण लिखती है उस समय उसके सयम और सस्कृति का बाध टूट चुका था, जो वह स्वय कुमार से इस प्रकार कहती है–

"मैने तुम्हे बताया था, मैने उन दिनो तुम्हे पत्र लिखा था अपने यहॉ आने के लिए। तब मेरे मन मे कोई रूकावट नहीं थी उस दिन तुम आये होते तो सम्भव था कुछ भी हो जाता। मैने अपने को बचाने का कुछ भी प्रयत्न न किया होता । जो सस्कार मन को रोकता था, वह तब तक टूट चुका था।"[79] यौन सम्बन्धो की तुष्टि शरीर तक रहने से व्यक्तियो मे और भी एक अनाम आकर्षण की जरूरत रहती है और जब यह प्राप्त नही हो पाता तब सम्बन्ध विघटित हो जाते है– कुमार का अपनी अनाम पत्नी के प्रति सबध इसी लिए टूटे। "मुझे उससे सिवाय शरीर के कुछ नही मिला। उसे भी मुझसे केवल इतना ही मिला होगा। केवल भरोसे के साथ–साथ जीवन वह शायद ढो सकती थी। मुझसे नही ढोया गया।"[80] समस्त उपन्यास मे श्यामा के शारीरिक आकाक्षाओ के टूटने की कहानी ही दिखाई पडती है, और यौन सम्बन्धी दृष्टिकोणो मे वह अक्सर दोहरी मनस्थिति मे पाई जाती है। यह सामाजिक और सास्कृतिक प्रथा आज यन्त्र

व्यवस्था का शिकार बन गई है, जिस समाज मे यह परम्परा युग से चली आ रही थी, आज खण्डित हो रही है।

'आर्थिक आधार पर आश्रित रहने' से जो सम्बन्ध स्थिर थे। वह आज के युग मे टूट रहे है, चूँकि मानव समाज से कट गया है व्यक्ति और परिवार का सम्बन्ध कट गया है यही कारण है कि परिवारो का ढॉचा छिन्न–भिन्न हो गया है। समाज की यह समस्या बहुत जटिल है। समाज मे व्यक्तिवाद का बोल बाला है। अग्रज और अनुजो मे आपस का प्यार केवल पैसे पर टिका है। समाज में अलगाव की समस्या क्या है ? इसका उत्तर यो होगा– 'मूल्यो की विसगति' की समस्या। आज के सम्बन्ध केवल आर्थिक आधार पर बने हुए है। मॉ बेटे का सम्बन्ध, भाई–बहन का सम्बन्ध पैसो पर ही टिका है।

'अन्तराल' उपन्यास मे आर्थिक सम्बन्ध अत्यत ही गौण महत्व लिए हैं तथापि यह देव के सम्पूर्ण परिवार का चित्र प्रस्तुत करता है। 'अतराल' मे श्यामा और देव के परिवार का सम्बन्ध केवल पैसो पर ही टिका है। देव की मृत्यु के पश्चात (देव की इच्छानुसार) श्यामा, सीमा और बीजी का उत्तरदायित्व लेती है। उनका सम्बन्ध केवल पैसों का ही सम्बन्ध है। बीजी जो हमेशा श्यामा से घृणा करती है। उसके सिर पर सवार रहती है लेकिन "फ्लैट और उसकी नौकरी ये दो बाते थी जिन्हे लेकर बीजी उसके सामने छोटी पड जाती थी।"[81] पैसो के अतिरिक्त न ही सीमा और बीजी को श्यामा से लगाव था और न ही श्यामा को उनसे। श्यामा एक उत्तरदायित्व निभा रही थी।

आर्थिक आधार पर टिका दूसरा सम्बन्ध सीमा और बीजी का है। यह सच है कि बीजी को सीमा के पैसो की आवश्यकता न होती तो सम्भवत सीमा कभी का बीजी को छोडकर गर्ल्ज होस्टल मे चली गई होती और न ही बीजी सीमा से इस प्रकार दबती। सीमा और श्यामा का बीजी से सम्बन्ध केवल केवल पैसो का सम्बन्ध है, जिसे सीमा स्वय स्वीकार करती है "जरूरत पडने पर मै यहॉ से छोडकर गर्ल्ज होस्टल मे जा सकती हूँ लेकिन सवाल ममी का है। न तुम तो अकेली उन्हे सपोर्ट कर सकती हो, न मै ही। इसलिए बेहतरी सबके साथ रहने मे है।"[82]

श्यामा को देव के परिवार के साथ कोई स्नेह या लगाव नही है अगर पैसो की बात न होती तो निश्चय ही उनके सम्बन्ध टूट गये होते यह बात दूसरी है कि श्यामा को कितनी परेशानी उठानी पडती है ताकि वह सीमा और बीजी को पैसे भेज सके। अपनी ओर से वह हर कोशिश करती है कि वह उनसे

सम्बन्ध बढाये अपना रिश्ता पैसो तक ही सीमित न रखे यही कारण है कि वह बीजी की साझेदारी मे फ्लैट बम्बई मे खरीदती है उस साझेदारी मे वह अपनी तमाम पूँजी लुटा देती है लेकिन दुर्भाग्यवश बीजी और सीमा उसका रिश्ता पैसो से बढकर नही मानती । फलस्वरूप श्यामा को पुन मण्डी लौट आने की बात सोचनी पडती है। धन आज के समाज की धुरी बन गया। इस धुरी का आकर्षण इतना प्रभावशाली है कि कोई भी इससे प्रभाव मुक्त नही रह सकता। मानव के सभी सम्बन्ध इसी धुरी के आधार पर बने हुए है यहॉ तक कि प्रेम जैसा पवित्र भाव भी इसके प्रभाव से मुक्त नही रह पाता है। 'अन्तराल' भी इसका अपवाद नही है।

आज समाज मे मुख्य साध्य अर्थ की प्राप्ति है चाहे साधन कितने ही निम्न क्यो न अपनाने पडे, यही कारण है कि नैतिकता धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही है और धन पर टिके सम्बन्ध केवल सहने के सम्बन्ध बन जाते है, जिन्हे विवशता के साथ फैलना पडता है क्योकि सम्बन्ध अक्सर भावना से जुडे होते है और जब भावनाओ की आर्थिक सम्बन्धो से टकराहट होती है तो पारिवारिक व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती है।

'जीवन मे दरार पडने' से भी सम्बन्धो का विभाजन हो जाता है। आज के जीवन की व्यवस्था कुछ इस प्रकार की हो गई है कि न चाहते हुए भी उसके सम्बन्धो मे दरार पड जाती है, क्योकि वह व्यक्ति वादी हो गया है। उसके लिए समाज का कोई महत्व नही है। वैयक्तिकता के कारण ही वह अन्तर्मुखी बनता जाता है। उसके व्यक्तित्व का परिवेश उस तक ही सीमित रहता है, देखा जाय तो वह एक प्रकार से समाज से कट चुका है। उसके लिए समाज नाम मात्र की वस्तु है, जो पति–पत्नी के सम्बन्ध विच्छेदो, बाप–बेटे का बिछुडना तथा सम्बन्धो मे कटुता के रूप मे आती है।

जब सम्बन्धो मे शिथिलता होती है तो उसे जीवन का समरूप माना जा सकता है, लेकिन जब सतह दरक जाती है तो दरारो के पडनेके कारण उसे विषम जीवन की सज्ञा दी जा सकती है। दरार दो कारणो से व्यक्ति को अलग अलग कर देती है। दरार पडने का कारण नितान्त वैयक्तिक ही होता है। व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध टूट जाने के बाद वह अपने परिवेश तक सीमित रह जाता है औरपरिवेश से टूटने के पश्चात नितात अपने वैयक्तिक रूप मे रह जाता है। ऐसे व्यक्ति अन्तर्मुखी बन जाते है, और उनका अह समायोजन करने मे बाधक सिद्ध होता है। सम्बन्धो मे दरार पडना यह सिद्ध करता है कि मनोवैज्ञानिक रूप मे कही पर कोई कुण्ठा काम करती है यह कुण्ठा दो रूपो मे प्रकट होती है–

1 काम मूलक कुण्ठा।

2 अर्थ मूलक कुण्ठा।

'अन्तराल' मे श्यामा और देव के बीच की दरार काम मूलक कुण्ठा के आधार पर है, क्योकि देव का आधार व्यवहार श्यामा के प्रति दो प्रेमियो का व्यवहार नही माना जा सकता। देव श्यामा को एक वस्तु के रूप मे प्राप्त करता है और शारीरिक भूख मिटाने का साधन समझता है, उसे श्यामा की भावना समझने की चिन्ता नही है। श्यामा के प्रति उसका व्यवहार तटस्थता लिए हुए है। शादी की प्रथम रात्रि से ही उसका यह मनोभाव श्यामा और देव के बीच दरार पैदा करता है। श्यामा 'सैक्स' के रूप मे अतृप्त रहती है। वह देव से वह सब कुछ न पा सकी, जिन भावनाओ से एक युवती का हृदय स्पन्दित होता है। देव ने श्यामा को प्रेम नही दिया और न ही श्यामा ने शरीर के साथ–साथ आत्मा का समर्पण ही किया है इस प्रकार पति–पत्नी के बीच पहले दरार पैदा की और फिर बहुतबडा अन्तराल पैदा कर दिया। यह अन्तराल इतना विकराल रूप धारण कर लेता है कि देव की मृत्यु के पश्चात भी श्यामा को उससे शिकायत रहती है। अपनी जिन्दगी की तबाही के लिए वह देव को ही दोषी ठहराती है, जब कि सम्बन्धो मे दरार पडने का कारण स्वय श्यामा भी है।

'अन्तराल' मे दूसरा सम्बन्ध जो काम मूलक कुण्ठा पर टिका हुआ है, वह है कुमार और उसकी पत्नी का। कुमार के जीवन मे लता एक काम मूलक कुण्ठा के बीज बो देती है। बाद मे कुमार एक अन्य स्त्री से विवाह भी करता है, लेकिन कुमार को अपनी पत्नी से वह प्यार नही मिलता है, जिसकी उसने कामना की थी। इसी कारण पति–पत्नी मे दरार पड जाती है और वह अलग रहने के लिए विवश हो जाते है। अपने सम्बन्धो मे दरार पडने का कारण कुमार स्वय इस प्रकार व्यक्त करता है "और जो था, वह था केवल एक डर। बात अपने तक रहे किसी को पता न चले। जितना सडना है, अन्दर ही अन्दर सडो। जो जहर चखना है अन्दर ही अन्दर चखो उसी सडाध और जहर से बच्चे पैदा करो और उन्हे भी उसी ढग से जीने की शिक्षा दो। अपनी स्वाभाविकता के साथ विश्वास घात करो और ऐसा करने की परम्परा को बनाए रखो। जिनसे निभना है, निभ जाता है, मुझसे नही निभ सका।"[83] इसी न निभने के कारण उनके सम्बन्धो मे दरार पड गई। कुमार की पत्नी ने भी शादी केवल उसी उद्देश्य से की थी ताकि वह अपने प्रेमी को (जिसने उसे ठुकराया था) नीचा दिखा सके। देखने से तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि उनके सम्बन्धो मे प्रेम लेश मात्र नही था। केवल एक कृत्रिमता थी जो उनके सम्बन्धो मे विभाजन (विघटित) होने का कारण बनी।

तीसरा काम मूलक सम्बन्ध श्यामा और उनके जीजा प्रो0 मलहोत्रा के बीच है वह भी अपनी पत्नी को भोग की वस्तु मानते है। वासना के अतिरिक्त उसके साथ उनका कोई सम्बन्ध नही है। कभी वह अपनी पत्नी को किसी पार्टी या उत्सव में नही ले जाते, क्योकि प्रो0 मलहोत्रा अपनी पत्नी को दासी माने हुए है जिससे वे कभी-कभी अपनी काम-पिपासा शात करते है। श्यामा बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे उनके सम्बन्धो का वर्णन करती है- 'उन दोनो का आपसी बरताव भी ऐसा है जैसे मिलकर अपने बच्चो के लिए एक होस्टल चला रहे हो वे''[84]

'अन्तराल' मे काममूलक कुण्ठा के साथ-साथ अर्थ मूलक कुण्ठा के भी दर्शन मिलते है। अर्थ मूलक कुण्ठा ही श्यामा, बीजी तथा सीमा के सम्बन्धो मे दरार पैदा कर देती है। श्यामा के पैसो से ही बीजी और सीमा का निर्वाह चलता है। श्यामा पैसे भेजकर एक उत्तर दायित्व निभा रही थी लेकिन बीजी कभी भी उसके सम्बन्ध को पैसो के अतिरिक्त कोई महत्व नही देती है, क्योकि एक बार आपसी तकरार में श्यामा, सीमा से झल्ला उठती है ''पैसा तो पता नहीं कितना-कितना, किस-किस चीज पर बरबाद होता रहता है। आदमी इसी का हिसाब करने लगे, तो. .।''[85] इन सब बातो को लेकर श्यामा मे कुण्ठा पैदा होती है कि जिनके लिए वह मुश्किल से पैसे जुटाती है वही उसे स्नेह के साथ अपनाते नही है। सीमा भी कमाती है और मॉ का खर्चा श्यामा के खर्चे के साझे से करती है। बीजी अगर कभी-कभार श्यामा के आगे नीची पड जाती है तो केवल फ्लैट और खर्चे की बातो के सामने बीजी धन विहीन है, और यही धन का अभाव बीजी मे कुण्ठा उत्पन्न कर देता है क्योकि वह श्यामा (बहू) और सीमा (बेटी) के पैसों से गुजारा करती है अत विपरीत इसके कि वह उनको अपने अकुश मे रखती उनसे दबती रहती है। इसका मूल कारण अर्थमूलक ही है।

इन सम्बन्धो के अतिरिक्त एक सम्बन्ध और है जिनमे दरार पडती है वह श्यामा की अपनी पुत्री बेबी है। श्यामा को वह अपने से कटती हुई इस लिए लगती है, क्योकि उसकी शक्ल, आचरण, व्यवहार बीजी और सीमा जैसा होता जा रहा है। ''यहॉ आने के बाद से उन लोगो से इतनी घुल मिल गई थी कि मॉ को मॉ की तरह समझती ही नही थी। हर वक्त बीजी के पास बैठना, बीजी के साथ खाना, बीजी के साथ घूमने जाना शौक भी उन्ही सब चीजो का जो बीजी को पसन्द आती थी। लगता था कि बीजी, सीमा और बेबी तीनो घर की मालकिन है।''[86]

'एकाकीपन की अनुभूति' के कारण परिवारो मे विघटन हो रहा है क्योकि समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार है। आधुनिक परिवारो मे पति–पत्नी का सम्बन्ध भी अब टूटता दिखाई दे रहा है। यद्यपि आधुनिक समाज मे तलाक की प्रथा विरल सी है किन्तु पाश्चात्य प्रभावो के कारण अब स्त्री पुरूषो के सम्बन्धो मे अन्तर आता जा रहा है। इस नई सभ्यता से रगे जन–जीवन मे पारिवारिक सदस्यो मे अधिकार बोध की भावना बढती जा रही है परिणाम स्वरूप पारिवारिक सदस्यो मे सघर्ष हो रहा है यही कारण है कि परिवार टूट कर सीमित होते जा रहे है। यही टूटने की सीमा या अलगाव की सीमा पति–पत्नी तक पहुँच गई है अगर दम्पत्ति आपस मे तलाक भी न ले फिर भी वह साथ रह कर भी कोसो मील दूर हैं।

'अन्तराल' मे सवेदना के धरातल पर पारिवारिक के विघटन को आधुनिक बोध के सन्दर्भ मे उभारा गया है। जीवन का बोध श्यामा और कुमार द्वारा गम्भीर परिस्थितियो मे प्रकट किया गया है। वर्तमान जीवन वैयक्तिक यथार्थ से आक्रान्त है, इसलिए नागरिक जीवन मे यह आक्रान्त रूप और घना हो गया है। आन्तरिक सघर्ष का चित्रण पात्रो को आत्म केन्द्रित बना देता है वह सघर्ष अदर ही अदर चलता है, इसका प्रभाव बहुत दूर जाकर एकाएक प्रकट होता है। इसी वैयक्तिक चेतना के धरातल पर जिन्दगी की तलाश मे आदमी भटक रहा है। कुमार इसी प्रकार का नायक है जिसे उसका आन्तरिक बोध कसकर जकड लेता है। श्यामा अकेलेपन से ऊबी हुई नायिका है। बार–बार उसका आन्तरिक बोध नया निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है और बार–बार बालू की तरह विखर जाता है। श्यामा जीवनमे नितान्त अकेली है भटकाव और अकेलेपन की स्थिति मे पारस्परिक सम्बन्ध विघटित हो जाते है और नायिका अपने में टूटन महसूस करती है। बिखरती है और कटु यथार्थ के रूप मे अलग जा पडती है। उसके अन्दर जीवित रहने की इच्छा है, लेकिन अकेलापन उस जीवन को निरूद्देश्य बनाये हुए है। टूटे हुए और बिखरे हुए अतीत जीवन की स्मृति रेखाए उसके अन्तर मन को खरोचती रहती है–

"मै एक–एक अपरिचित व्यक्ति से तो ठीक मिल लेती हूँ, लेकिन एक साथ इतने अपरिचित लोगो के बीच अपने को नही खपा पाती आप इसे काम्पलेक्स समझ लीजिए या जो कुछ भी। शुरू से ही मेरे साथ ऐसा है और अपने से बहुत लडकर भी मै अपने को बदल नही पायी।"[87] इसलिए तो श्यामा कस्बे मे आने के बाद एम0 ए0 करने का निश्चय करती है और कुमार से परिचित होने के पश्चात अपने निश्चय को कार्यरूप मे परिणित नही कर पाती। यह

भटकाव की ही स्थिति मानी जाएगी जहॉ साध्य साधन बन जाता है और कुमार के प्रति भावुकता अधिक बल पकडने लगती है। इस प्रकार मण्डी में जाकर भी उसको अकेलेपन की अनुभूति अशात बना देती है। तीसरा अनिश्चय का रूप बम्बई आने पर प्रकट होता है, श्यामा बम्बई मे फ्लैट खरीदने के लिए पैसे भी देती है और भावी जीवन बम्बई मे ही काटना चाहती है। क्योकि उसके उपचेतन मे कुमार के साथ रहने की भावना छिपी हुई है। इसलिए कि वह नितान्त अकेली है, अकेलेपन को दूर करने के लिए सहारा चाहती है। उसके मन के किसी कोने मे यही भावना काम करती दिखाई देती है और इसी से प्रेरित होकर वर्षों के अन्तराल को पाटने के लिए बम्बई मे रहना चाहती है, जो लोग अकेले रहते है अथवा आत्मकेन्द्रित होते है उनका मनोविज्ञान एक विशेष प्रकार का रूप धारण कर लेता है। वे छोटी–छोटी बात को भी तीव्र सवेदना के रूप मे ग्रहण कर लेते हैं बहुत सवेदनशील होने के कारण साथ चाहते हुए भी श्यामा कुमार से अलग छिटक जाती है क्योकि देव और उसके बीच कटने का जो कारण था, उससे मिलता जुलता कारण कुमार और उसकी पत्नी के जीवन मे अनुभव हुआ। यह सूक्ष्म तथ्य उसे कुमार के साथ रहने मे और नारी–पुरूष के रूप मे स्थापित करने मे अथवा उस सम्बन्ध के नामकरण करनेमे बाधक सिद्ध होता है।

इसी प्रकार बीजी अपने परिवेश मे नितान्त अकेली वृद्धा है, जिसका दैनिक कार्यक्रम यन्त्रवत है। सीमा नागरिक वातावरण मे उद्‌भ्रान्त चक्कर लगाती हुई अकेली तारिका के सदृश है जो कभी भी किसी से टकरा कर टूटती हुई जमीन पर गिर सकती है और उस का जीवन किसी भी क्षण ट्रेजिक बन सकता है।

'अन्तराल' मे आधुनिक बोध से जो यथार्थ उपजा है उसने परिवार को छिन्न–भिन्न कर दिया है और इसके उत्तरदायी कारक यौन समस्या, नैतिकता, अलगाव की समस्या है जीवन की ये विविध लहरे और इन लहरो का सघर्ष मानवीय सम्बन्धो के विघटन की दास्तान है क्योकि मोहन राकेश जी ने इन अनुभूतियो को भोगा था और उसे खूब चबा–चबाकर पचाया था। इसलिए अस्तित्ववादी जीवन दर्शन की स्थापना के बावजूद यह व्यक्तिवादी उपन्यास हैं। 'अन्तराल' मे आधुनिक युग के सत्रस्त व्यक्तियो का चित्रण है, युग के सामाजिक जीवन का नही। अन्त मे युग के सास्कृतिक जीवन का खोखलापन लेखक बताना चाहता है, किन्तु इस सास्कृतिक जीवन के खोखलेपन का चित्रण करना लेखक का उद्‌देश्य नही है। इसका केन्द्र बिन्दु समाज न होकर व्यक्ति ही है यही कारण है कि 'अधेरे बन्द कमरे' यदि दिल्ली के परिवेश मे विघटित सम्बन्धो की कहानी

बन कर आया तो 'अन्तराल' मानवीय सम्बन्धो के विघटन की विविधता को तात्कालिकता के दर्पण मे प्रतिच्छवित कर सका। 'अन्तराल' की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए डॉ0 उर्मिला मिश्र लिखती है कि– "उपन्यास की स्थापना है कि जीवन मे शारीरिक अपेक्षाओ के अलावा भी कुछ ऐसी अपेक्षाये होती हैं जिसको पाने के लिए मानव नियति ग्रस्त होता है। इस उपन्यास मे नामहीन समबन्धो की तलाश मे आधुनिकता की अभिव्यक्ति हुई है लेकिन उस तलाश मे आत्मसघर्ष रोमेन्टिक ढंग से चलताहै। क्योकि आज के जीवन मे सम्बन्धो को महसूस किया जा सकता है, सम्बन्धों को नाम नही दिया जा सकता है।"[88]

संदर्भ

1 आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य–डॉ0 देवराज, पृ0 454
2 मेरी प्रिय कहानिया–मोहन राकेश, पृ0 11
3. हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सदर्भ–डॉ0 ज्ञान अस्थाना, पृ0 91
4. ज्ञानोदय, जनवरी, 1966 अंक – धनजय वर्मा, पृ0 120
5. ज्ञानोदय, जनवरी, 1966 अक – धनजय वर्मा, पृ0 121
6 ज्ञानोदय, जनवरी, 1966 अक – धनजय वर्मा, पृ0 120
7 ज्ञानोदय, खुले और रोशन कमरे के सवाल–सुधा अरोडा, पृ0 13
8 ज्ञानोदय, जुलाई, 1965 अक– मोहन राकेश, पृ0 112
9 ज्ञानोदय, जुलाई, 1965 अक
10 न आने वाला कल, पृ0 15
11 न आने वाला कल, पृ0 15
12 न आने वाला कल, पृ0 22
13 अन्तराल, पृ0 30
14 अन्तराल, पृ0 202–4
15 अन्तराल, पृ0 201, 2
16 साहित्य का नया शास्त्र–डॉ0 गिरिजा राय, पृ0 269
17 आज का हिन्दी उपन्यास–डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0 90
18 आधुनिकता के सन्दर्भ मे आज का हिदी उपन्यास–डॉ0 अतुलवीर अरोरा, पृ0 175
19 आधुनिकता के सन्दर्भ मे आज का हिदी उपन्यास–डॉ0 अतुल वीर अरोरा, पृ0 175
20 हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 349
21 हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 350
22 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 35
23 साहित्य का नया शास्त्र– डॉ गिरिजा राय , पृ0 269

24 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 189
25. एक्झिस्टेशियलिज्म एड हयूमन इमोशस– पृ0 36
26 अधेरे बद कमरे, पृ0 68
27 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 236
28 हिन्दी उपन्यास एक नई दृष्टि–डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, पृ0 72
29 अधेरे बद कमरे पृ0 108
30 अधेरे बद कमरे पृ0 122
31 बकलम खुद–मोहन राकेश, पृ0 67
32 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 166
33 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 166
34 क्योकि समय एक शब्द है–डॉ0 राकेश कुन्तल मेघ, पृ0 509
35 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 233
36 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 320
37. अधेरे बन्द कमरे, पृ0 20, 21
38 आधुनिकता के सन्दर्भ मे आज का हिदी उपन्यास–डॉ0 अतुलवीर अरोरा, पृ0 177
39 डिवलपमेटल मनोविज्ञान–हरलोक इ0 बी0–सं0 2000 पृ0 326
40 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 409
41 अंधेरे बन्द कमरे, पृ0 97
42 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 339
43 अधेरे बंद कमरे, पृ0 341
44 अधेरे बन्द कमरे, पृ0 210
45 अन्धेरे बन्द कमरे, पृ0 405
46 न आने वाला कल, पृ0 7
47 न आनेवाला कल, पृ0 125–26
48 न आने वाला कल, पृ0 14
49 न आने वाला कल, पृ0 15
50 न आने वाला कल, पृ0 15–16
51 न आने वाला कल, पृ0 151
52 न आनेवाला कल, पृ0 100
53 न आनेवाला कल, पृ0 27
54 न आने वाला कल, पृ0 86
55 न आनेवाला कल, पृ0 107
56 न आने वाला कल, पृ0 106
57 न आने वाला कल, पृ0 136
58 अन्तराल पृ0 70
59 न आने वाला कल, पृ0 137
60 न आने वाला कल, पृ0 162

61 हिन्दी साहित्य का इतिहास– स डॉ नगेन्द्र, प्रथम सस्करण,
1973 'छायावादोत्तर काल मे गद्य साहित्य'– डॉ0 बच्चन सिह, पृ0 689
62 Illustrated Weekly of India Author. ERVELL-E MENEZES JUNE 16, Sunday, 1974
63 अन्तराल, पृ0150
64 अन्तराल, पृ0 214
65 अन्तराल, पृ0 214
66 अन्तराल, पृ0 107
67. अन्तराल, पृ0 207
68 अन्तराल, पृ0 55
69. अन्तराल, पृ0 207
70 अन्तराल, पृ0 176
71. अन्तराल, पृ0 150
72 अन्तराल, पृ0 51
73 अन्तराल, पृ0 202
74. अन्तराल, पृ0 159
75. Illustrated weekly of india Author, ERVELL EMENEZES June 16, 1974.
76 अन्तराल, पृ0 175
77 अन्धेरे बन्द कमरे, पृ0 353
78 Illustrated weekly of India author ERVELLE MENZES JUNE 16 1974
79 अन्तराल, पृ0 213
80. अन्तराल, पृ0 201
81 अन्तराल, पृ0 141
82 अन्तराल, पृ0 175
83 अन्तराल, पृ0 202
84 अन्तराल, पृ0 30
85 अन्तराल, पृ 162
86 अन्तराल, पृ0 105
87 अन्तराल, पृ0 25
88 आधुनिकता और मोहन राकेश–डॉ0 उर्मिला मिश्र, पृ0 104

षष्ठम् अध्याय

मोहन राकेश के नाटकों में पारिवारिक विघटन का बीज

आषाढ़ का एक दिन,
लहरों के राजहंस,
आधे–अधूरे

षष्ठम् अध्याय

मोहन राकेश के नाटकों में पारिवारिक विघटन का बीज

नाटककार मोहन राकेश ने विभाजनोत्तर भारत मे सामाजिक और अर्थिक विषमताओ के फलस्वरूप व्यक्ति के जीवन मे आने वाले मूल्य–सकट और सम्बन्धित घटना को अपना लक्ष्य बनाया है। जीवन मे व्यक्तिगत रूप से इनका कटुतम अनुभव भोगने के कारण ही वे अपने नाटको मे उसे सजीव अभिव्यक्ति दे सके। मोहन राकेश ने स्वीकार किया है कि "सोलह की उम्र मे जिन्दगी ने एक चौखटे मे फिट कर दिया था। जैसे भी हो, अपने को उस चौखटे के आकार में ढालना था। आखे आस–पास की जिदगी के प्रति बहुत सतर्क हो रही थी। अपने से बाहर घर को और घर से बाहर सामाजिक बन्धनो को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखने लगी थी।"[1] इसी तरह मोहन राकेश का लेखन एक जटिल प्रक्रिया से गुजरा है। उन्होने बार–बार लिखा है कि अपने लिखे को अवास्तविक जानकर नकारा है। इसलिए कभी उन्हे लगता है कि "वह कुछ मेरे अदर नही है जिससे व्यक्ति सच मुच लिख सकता है, वरना लिखने के लिए क्या पहाड खोदने की जरूरत है।"[2]

नाटककार मोहन राकेश वस्तुत पारिवारिक जीवन की त्रासदी के ही कलाकार हैं। जीवन एक ऐसा विशाल रगमच है, जहॉ केवल त्रासदियॉ ही मचित होती है। सुख वहॉ केवल कोई पैर फिसलने पर पॉव की सिहरन मात्र है। गर्दिश के दिन मे अपने को व्यक्त करते हुए राकेश ने लिखा है कि उन दिनो उनके लिखे शब्दो मे अनायास ही जो एक कटुता घुल जाती है। तो वे यह नही समझ पाते थे कि उसका वास्तविक स्रोत अदर का रिसता हुआ बिन्दु है। वास्तव मे वर्तमान युग नायक का नही, अनाम और अपाहिज व्यक्ति का है, जिसकी सघर्ष–यात्रा की घुटन, पीडा और करूण परिणति को आज साहित्य की प्रत्येक विधा मुखर कर रही है। इसलिए सामयिक साहित्य मे व्यक्ति के बाह्य सघर्ष की अपेक्षा आन्तरिक सघर्ष के चित्रण पर बल दिया है इस सम्बन्ध मे मोहन राकेश ने लिखा कि "कुछ लोगो की जिन्दगी मे बिखराव

होता है, मै अपने को ऐसे ही लोगो मे पाता हूँ बिखरना और बिखेरना मेरे लिए जितना स्वाभाविक है सम्भलना और समेटना उतना ही अस्वाभाविक।"[3]

मोहन राकेश के नाटक स्थितियो के नाटक है। मनुष्य जीवन के द्वन्द्वात्मक क्षणो की स्थितियो को ही वे नाटको की कथावस्तु का रूप देते है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे आर्थिक और सामाजिक विषमताओ के फलस्वरूप तीव्रता से छाने वाले मूल्य–विघटन और सम्बन्धो मे आने वाली दरार को राकेश ने अपने नाटको का केन्द्र बिन्दु बनाकर मानव जीवन के विस्फोटक और द्वन्द्वपूर्व क्षणो की विरोधी स्थितियो के टकराव को प्रस्तुत किया है।

जीवन मे निरन्तर भटकाव और कटु अनुभवो ने उन्हे मनुष्य के अधूरेपन और उसकी यातना पर केन्द्रित कर दिया था, मनुष्य का वही रूप उनके नाटको के मुख्य पात्रो का वरण है– वरण और मुक्ति के लिए छटपटाते, अपने अधूरेपन को पूर्ण करने के लिए भटकते ये पात्र वर्तमान जीवन के एक पक्ष का सत्य चित्र प्रस्तुत करते है, पर पूर्ण नही, क्योकि जीवन मे तमाम विसगति और अनास्था के बाद भी 'कुछ' ऐसा है जिसके लिए मनुष्य जीता है। इसलिए राकेश के नाटक समाज की व्यापक समस्याओ से दूर नितान्त व्यक्तिपरक माने जाये, तो अत्युक्ति न होगी। राकेश का यथार्थ आन्तरिक यथार्थ है उसमे परिस्थितियो के चित्रण की अपेक्षा परिस्थितियो से दबे मनुष्य की घुटन, द्वन्द्व और पीडा का वर्णन है। इस आन्तरिक यथार्थ के चित्रण मे उन्होने मानवीय सम्बन्धो, विशेषकर स्त्री–पुरूष सम्बन्धो का परिवर्तित परिस्थितियो तथा मानदण्डो के आधार पर सूक्ष्माति सूक्ष्म पक्षो मे उद्घाटन किया है।

राकेश ने अपने नाटको मे जिस प्रकार पुरूष के जीवन की मूल त्रासदी को व्यक्त किया है उसी प्रकार नारी जीवन की भी मूल त्रासदी को उजागर किया है। पुरूष प्रधान दृष्टिकोण से लिखे जाकर भी इनके नाटक नारी जीवन की मूल त्रासदी को उजागर करते है। पारिवारिक जीवन मे त्रासदी का सम्बन्ध दोनो नर–नारी मे समान होता है पर यह त्रासदी नारी मे कही वृहत्तर हो जाती है क्योकि नारी भावनामयी हो, सथूल आवश्यकताओ की मौन भाव से उपेक्षा करने वाली हो, अपनी कामनाओ को मन मे दबा देने वाली हो अथवा स्वार्थ का उद्घोष करने से कतराने वाली हो, अथवा पति को अपने

अधिकार मे लेकर सम्पूर्ण जीवन का सुख भोग करने वाली हो, अपनी कामनाओ को मन मे दबा देने वाली हो अथवा अपनी कामनाओ को किसी क्षण के लिए स्थगित न करने वाली हो, जीवन के यथार्थ को मौन बने रहकर चुप–चाप सहन करते–करते एक कब्रिस्तान बन जाने वाली हो अथवा अपनी इच्छाशक्ति एव प्रयत्नशीलता के द्वारा जीवन को अपने अनुसार मोडने को उत्सुक रहने वाली हो, पुरूषो के निर्णयो को उसकी इच्छाओ को चुप–चाप स्वीकार करके अभाव का जीवन बिता देने वाली हो अथवा अपने पति मे एक पूरी शख्सियत एक माद्दा देखने व उसको पति मे पैदा कर देने के लिए एडी–चोटी का जोर लगाने वाली हो, नारी का जीवन हर स्थिति मे एक असफलता है, एक अतृप्ति है, एक अपूर्ति है, एक विवशता है, दयनीयता है और एक ग्रिमत्रासदी। नारी को जीवन की जिस परिस्थिति मे चाहे रख दिया जाये, उसकी नियति एव उसके जीवन का सत्य एक ही है– परमुखापेक्षिता, अवसाद, असफलता एव रिक्तता। असमय वैधव्य ने यदि अम्बिका के मन प्राण आत्मा की इकाई को तोड दिया था तो पति पर एकच्छत्र शासन करने वाली सुन्दरी अचानक हाथ मलती रह गयी थी। अभाव की सन्तान यदि मल्लिका के सुख के रास्ते मे आ गयी थी तो अपने दाम्पत्य की सन्तानो के कारण सावित्री का जीवन एक दम ऐसा मशीन बन गया था कि अपने दिन–रात को उनके लिए आटा–पीस–पीसकर देने मे ढेर कर दे रही थी। एक अभाव की सतान ने मल्लिका के द्वार से उसके प्रेमी को लौटा दिया था और तीन वैध सन्तानो एव उनके प्रश्न ने जगमोहन को, सावित्री को घर वापस छोड आने का बहाना दे दिया था।

मोहन राकेश ने स्वतन्त्र भारत की आर्थिक–सामाजिक विषमताओ के बदले मानवीय सम्बन्धो और टूटते जीवन–मूल्यो से व्यक्ति के जीवन मे आने वाले द्वन्द्व, सघर्ष और मानसिक विघटन को अपने नाटको मे चित्रित किया है। राकेश के पात्रो की निरर्थक–सघर्ष यात्रा व्यक्ति का तनाव और द्वन्द्व मे टूटना अपरिचय और अकेलेपन की पीडा तथा पारिवारिक सम्बन्धो की हास्यास्पद स्थिति वस्तुत वर्तमान युग का का यथार्थ है, जो हमारे पूरे परिवेश पर व्याप्त है। डॉ0 रीता कुमार इसे स्वीकार करते हुए लिखती है कि "राकेश ने अपने व्यक्तिगत जीवन मे दाम्पत्य सम्बन्धो से प्राप्त तनाव, घुटन, विसगति परिवेश और पराजित नियति के कटु अनुभवो को ही बार–बार विभिन्न

रूपो मे मूर्त करने के प्रयोग किये है।"[4] 'आषाढ का एक दिन' के कालिदास और 'लहरो के राजहस' के महेन्द्रनाथ की छटपटहाट, बौनापन और चाहकार भी सत्रास पूर्ण वातावरण से मुक्त न हो पाने की करूण नियति राकेश के ही व्यक्ति और जीवन का परोक्ष चित्र है।

मोहन राकेश के सभी नाटको मे पात्र वर्तमान युग–जीवन के परिवेश और उसमें जीने के लिए संघर्षरत मानव का सटीक निर्वहन करते है। कलाकार के शाश्वत संघर्ष, कलाकार और राज्य–सरक्षण के सम्बन्ध, व्यक्ति की पार्थिवता मे अपार्थिवता की खोज जन्य छटपटाहट, स्वातन्त्र्योत्तर भारत मे बढते मूल्य–सकट और मानवीय सम्बन्धो की हास्यास्पद स्थिति को मच पर मूर्त करने की दृष्टि से राकेश के पात्र सशक्त प्रतीक की भूमिका निभाते है। 'आषाढ का एक दिन' के कालिदास को स्वय राकेश ने सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक माना है। कालिदास का चरित्र कलाकार और राज्य एव कलाकार और प्रेम के सघर्ष को सजीव रूप मे मूर्त करता है। 'लहरो के राजहंस' मे नन्द पार्थिव–अपार्थिव मूल्यो के अन्तर्दन्द्व मे उलझे तथा निर्णय लेने मे अक्षम मनुष्य का और सुन्दरी नारी के स्वाभिमानी, अहम प्रिय और सौन्दर्य गर्वित रूप का सशक्त प्रतीक है। 'आधे–अधूरे' के चरित्र मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के विघटित, भग्न और अपाहिज रूप को मूर्त करते हैं। सावित्री, महेन्द्र नाथ, अशोक, बिन्नी, किन्नी आदि पात्र यद्यपि आज के जीवन की विसगतियों और सम्बन्ध विघटन के फलस्वरूप आने वाली कटु सम्भावना के प्रतीक हैं, जिसे राकेश की सूक्ष्म–दृष्टि ने गहराई से पकडा है। सामयिक युग की स्त्री के लिए नाटककार द्वारा सावित्री के नाम का चयन अपने आप मे नारी के परिवर्तित रूप (सत्यवान की सावित्री) पर सशक्त व्यग्य है "राकेश के लिए रचना जीवन के परिस्पन्दनो की अभिव्यक्ति है, इसलिए किसी एक व्यक्ति को माध्यम बनाकर अपने युग के मानव के अन्तर्द्वन्द्व, और पीडा को अभिव्यक्ति देना वे आवश्यक मानते है।"[5]

मोहन राकेश इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखते है कि स्वतन्त्रता के बाद देश मे महगाई, मुद्रा स्फीति, काला धन, लूट–खसोट, बेरोजगारी व असामाजवादी नारो ने एक ऐसी स्थिति खडी करके रख दी, जिससे अस्तित्व के कई प्रश्न उभरकर ऊपर आये– "निर्माण हुआ बडे–बडे

भवनो का, सरकारी और अर्द्ध सरकारी सस्थाओ समितियो और आयोगो का, कारखानो और मशीनो का, बॉध और विकास योजनाओं का और शासकीय शब्दकोशो का, इस निर्माण की सतह के नीचे इसान का जो रूप सामने आया, बहुत ही विकृत था। लगा कि आस–पास के बडे–बडे परिवर्तनो के साये मे लोग निरन्तर पहले से छोटे और कमीने होते जा रहे हैं। जिदगी का साराअदरूनी ढॉचा भुर–भुरी मिट्टी की तरह झडता ठहरता जा रहा है।"[6]

आषाढ़ का एक दिन

'आषाढ का एक दिन' नाटक के निर्माण मे आठ–दस वर्षों के विस्तार का रेखाकन हुआ है। यह समय नाटक के तीनो अको में कलापूर्ण ढग से विभाजित है। मोहन राकेश ने समय के विस्तार को मल्लिका के घर, वर्तन और वस्त्रों की मलिनता तथा अम्बिका के बिगडते हुए स्वास्थ्य के द्वारा प्रस्तुत किया है।

'आषाढ का एक दिन' की प्रत्यक्ष विषय–वस्तु कवि कालिदास के जीवन तथा उसकी बालसगिनी मल्लिका से सम्बन्धित है। कवि कालिदास ऐतिहासिक होते हुए भी भिन्न है। उसकी प्रेमिका मल्लिका एक सीधी सादी समर्पित लडकी है। मल्लिका कालिदास से प्रेम ही नही करती बल्कि उसे यशस्वी होने के निर्णय के दर्द को सहन करने का प्रसशनीय साहस भी दिखाती है। मल्लिका कालिदास को उज्जैन का राज कवि बनने के लिए उसे प्रेरित करती है लेकिन मल्लिका के प्रेम का अभाव महसूस कर कालिदास जाने के प्रति उदासीनता व्यक्त करता है। कालिदास उज्जैन जाने के बाद महान् अवश्य बनता है लेकिन उसका सारा मूल्य मल्लिका को सर्वस्व न्यौछावर करके चुकाना पडता है। कालिदास मल्लिका को सहानुभूति के अलावा कुछ भी नही दे पाता। बिना किसी आकाक्षा के वह गुप्त सम्राट का राज कवि और फिर कश्मीर का शासक बन जाता है किन्तु गॉव की पर्वतीय सरल सरस प्रकृति और मल्लिका के सहज स्वाभाविक प्रेम की मादक स्मृति उसे पुन प्रकृति की गोद मे वापस ले आती है। तब तक मल्लिका किसी की पत्नी और किसी की मॉ बन चुकी रहती है। कालिदास लौटने पर समय के शक्तिशाली रूप को देखकर क्षत–विक्षत हालत मे ही आषाढ के दिन चमकती बिजली और गरजते बादलो मे

चला जाता है। लेकिन मल्लिका उसके साथ जाना चाहकर भी बच्ची की आवाज सुनकर अपने कमरे मे बॅधी रह जाती है।

नारी समस्या 'आषाढ का एक दिन' मे आधुनिक सन्दर्भ मे उभरकर आयी है। मल्लिका कालिदास से प्रेम और विलोम से घृणा करती है। कालिदास के प्रेम के साथ ही साथ उसकी सृजनात्मक–प्रतिभा के विकास मे सहायक सिद्ध होती है। परन्तु इस मार्ग पर चलते हुए वह परिस्थितियो की चक्की मे पिसकर टूट जाती है जिससे वह घृणा करती है उसी को परिस्थितयों के कारण स्वीकार करती है, परन्तु उसका अन्त'करण स्वीकार नही करता। नारी हृदय की कोमलता और उत्सर्ग की भावना मल्लिका मे है, लेकिन बारम्बार प्रवचित होकर भी उसके मन मे आक्रोश क्यो नही जगता, वह मानवीय से अधिक देवी या यो कहिए मूर्तिमती समपर्ण सी लगती है। मल्लिका का प्रवचना सहन करते जाना और अत तक प्रवचित रहना आधुनिक (पारिवारिक विघटन) समाज की कुठाओ की ओर सकेत करता है। आज समाज में मल्लिका जैसी अनेक महिलाएँ है जो परिस्थितियो के चक्र मे पिसकर टूट रही हैं। "मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नही, भूमि मे रोपित उस स्थिर आस्था का भी है जो ऊपर से सुलझ कर भी अपने मूल में विरोपित नही होती।"[7]

'आषाढ का एक दिन' मे नाटकीय सघर्ष कला और प्रेम सर्जनशील व्यक्ति और परिवेश भावना और कर्म, कलाकार और राज्य आदि कई स्तरो पर चित्रित किया गया है। प्रेम कलाकार की आन्तरिक क्षमता का विकास करता है और राज्याश्रय से उसे प्रतिष्ठा होती है किन्तु अपने आधार से कटकार राज्याधिकार ग्रहण करने पर कलाकार भीतर–भीतर टूटता और रीता होता जाता है मल्लिका और कालिदास दोनो पात्र एक स्तर पर टूटने का एहसास करते है। कालिदास को इस सन्दर्भ मे व्याख्यायित किया जा सकता है, वह वास्तविक सम्राट है। उसके अधिकारो तथा आचरण को कोई चैलेज करने वाला नही है। स्पष्ट है मल्लिका उसकी नारी, अभाव सहते–सहते शून्य बन जाने की स्थिति मे भी उसको कोई दोष देने अथवा अपना कोई भी अधिकार मागने जैसा सवाल उठाती ही नही। उसके मन मे ही यह बात नही समा सकती। उस पुरूष को वह कही भी कटघरे मे नही खडा करती। मल्लिका न केवल कालिदास को बल्कि विलोम को भी कही कटघरे मे नही खडा करती।

प्रियगुमजरी भी उसी युग की नारी है। विदुषी होते हुए भी वह नारी की पुरूष के बराबरी अथवा नारी के अधिकार और पुरूष के कर्तव्य जैसी कोई बात नही उठाती। कालिदास उसका पति है। वारागनाओ का सहवास करता है। वह तो शायद उसकी सामती प्रतिष्ठा के अनुरूप ही हो–पर वह राज्य–कार्य के बीच–बीच मे कही स्वय मे खो जाता है। प्रियंगुमजरी जानती है कि वह कहॉ खोता है, और उसी सब को अपनी ऑख से देखने के लिए वह मार्ग बदलकर ग्राम–प्रातर मे आती है। मल्लिका को देखती है और बहुत कुछ समझ जाती है पर उसके वाद उसका प्रवास अपने पति का मन बदल सकने का है। उस पर उसे कोई क्रोध नही आता है। कालिदास रूपी पुरूष इस रूप मे नारी से बहुत ऊँचा है। बराबरी का प्रश्न ही नही है। नारी का दमन, शोषण करने की रत्ती मात्र इच्छा या प्रयास न होते हुए भी वह स्वच्छन्द है, मुक्त है इसी मुक्तत में उसका विघटन होता जाता है। "कालिदास का अकेलापन समय और स्थिति की देन है किन्तु मल्लिका के अकेलेपन के और भी आयाम हैं। उस व्यक्ति के समान कोई अकेला नही जिसके जीवन मे कुछ घटता ही नही। उसके सामने कोई चुनाव की गुजाइश नही, रास्ता भी नही। फिर भी औरो की तुलना मे वह कितनी दृढ है, कितनी सक्षम उसकी जिदगी इसलिए उतनी त्रासद नही जितनी सतप्त है और यदि त्रासद है भी तो उसकी त्रासदी औरो मे बट जाती है। इसलिए मल्लिका, कालिदास और विलोम तीनो एक ही बिन्दु से खीची तीन रेखाए है किंतु अपनी शक्ति मे मल्लिका, कालिदास की आस्था का विस्तारित रूप बन जाती ह।"[8] मोहन राकेश ने अन्य नाटको की भॉति 'आषाढ का एक दिन' मे नायक को लौटाया है टूटने और बिखरने के पश्चात् कालिदास मल्लिका के पास पहुॅचता है। कालिदास भी 'नन्द–सुन्दरी' और 'महेन्द्रनाथ–सावित्री' की भॉति विस्फोटक स्थिति से साक्षात्कार करने मे कतराता है यही कारण है कि वर्तमान का सामना न कर पाने वाले कालिदास का चुपचाप प्रस्थान 'कायरता तथा अहमपूर्ण कृत्य' सा प्रतीत होता है और यह कालिदास का अन्तर्द्वन्द्व वेतुका नही–लगता। शायद आधुनिक जीवन मे भी कुछ ऐसा होता है–जब सुख की खोज मे आदमी भटकते–भटकते थक जाता है तब अपने पुराने सुख–स्थान पर लौटता है। कालिदास जब मातृ गुप्त या सरकारी चोले से मुक्त होकर अपने ग्राम–प्रान्तर मे लौट आता है तथा जीवन को अथ से प्रारम्भ करना चाहता है। परन्तु समय किसी की प्रतीक्षा नही करता, वह

असफल होता है इसमे त्रासदी है या आयरनी इसमे सन्देह हो सकता है लेकिन पारिवारिक विघटन की दास्तान स्पष्ट दिखती है। डॉ0 गिरीश रस्तोगी 'आषाढ का एक दिन' की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए कहती है— "इस माने मे यह कालिदास और मल्लिका का नाटक है लेकिन वस्तुत यह आधुनिक मानव की विवशता, उसके अन्तर्द्वन्द्व का, उसकी जटिलता का नाटक है.....कालिदास का अन्तर्द्वन्द्व और टूटन आज के साहित्य का द्वन्द्व और पीडा है।"[9]

लहरों के राजहंस

'लहरो के राजहस' तीन अको मे विभाजित है। तीनो अक अपने आप में सशक्त, सुगठित, भावपूर्ण और सम्पूर्ण है। नाटक का सूत्र नन्द और सुन्दरी के सम्बन्ध—सूत्र से खुलता है। प्रथम अक से ही नाटक मे आधुनिक भाव—बोध होने का सकेत मिलने लगता है इसमे नन्द और सुन्दरी के जीवन दर्शन से अन्तर्द्वन्द्व की झलक मिलने लगती है। नन्द आधुनिक मुनष्य के सन्दर्भ मे ही नही देश—काल के द्विधाग्रस्त व्यक्ति का चरित्र है जिसके अन्दर निर्णय और अनिर्णय के द्वन्द्व की स्थिति चलती है। सुन्दरी आधुनिक अभिजात वर्ग की नारी है। जो साहसी, विदुषी, रूप गविर्तता और नन्द की पत्नी है। वह नन्द को गौतमबुद्ध बनने से रोकना चाहती है। सुन्दरी एक ऐसी स्वाभिमानी, आत्मविश्वासी और गर्वमयी पत्नी है जो अपने सौन्दर्य, आकर्षण और प्रणय के बन्धन मे अपने पति (नन्द) को बॉधे रखना चाहती है। वह देवी यशोधरा के भिक्षुणी रूप मे दीक्षा ग्रहण करने के दिन जान—बूझकर कामोत्सव का आयोजन करती है, रात के अन्तिम पहर तक भोजन, नृत्य और आपानाक का आदेश देती रहती है क्योकि उसका कहना है कि कामोत्सव कामना का उत्सव है और वह आज की कामना कल के लिए नही टालना चाहती है उसका विश्वास है कि राजकुमार सिद्धार्थ के गौतम बुद्ध बनने देने का श्रेय यशोधरा को है। वह स्पष्ट कहती है— "देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को अपने पास बॉधकर रख सकता, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते? गौतम बुद्ध बनकर नदी तट पर लोगो को उपदेश दे रहे होते? नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाती है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बनाता है।"[10] सुन्दरी गौतम बुद्ध के उपदेश मे दैविक आकर्षण नही बल्कि भौतिक आकर्षण

ही मानती है। लेकिन दूसरी तरफ नन्द के मन मे बुद्ध के लिए विशेष अनुराग और स्नेह की धडकन मिलती है। लेकिन मन का अवसाद सुन्दरी को देखते ही समाप्त हो जाता है। नन्द कहता है कि कुछ न कुछ है जो उसकी चेतना मे कुण्डली मारे बैठा रहता है और उससे वह मुक्त नही हो पाता है। वह कुछ, कुछ और नही 'अपनी ही क्लाति से भरे मृग को देखकर' यह वक्तव्य नन्द के मन मे उठे प्रश्न से सम्बन्ध रखता है। वह जानता है कि हर व्यक्ति की स्थिति मरे मृग की ही भॉति है। व्यक्ति जन्म लेता है और मरता है। लेकिन जीवन की सार्थकता क्या है? किसमे है? नन्द इन्ही प्रश्नो से टकराता है। इसलिए वह कभी सुन्दरी से जुडकर हल ढूँढना चाहता है तो कभी गौतम बुद्ध से टकराकर। नन्द का अपना जीवन दर्शन है वह जानता है कि जिये जाने से जीवन धीरे–धीरे चुक जाता है क्योकि हर उन्मेष का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार मे उन्मेष और निमेष अस्थाई होते है। अत नन्द अपनी आन्तरिक आवश्यकता के कारण ही कभी सुन्दरी (प्रवृत्ति) से, कभी व्याघ्र (हिसा) से जुडकर जीवन (जन्म, मृत्यु और अमरत्व) से सम्बन्धित प्रश्नो का समाधान प्रवृत्ति से हटकर निर्माण की प्राप्ति मे खोजा है लेकिन नन्द ने बुद्ध की थोपी हुई आस्था से तर्क किया। उसे बुद्ध के उपदेश मे आस्था नही है वह नाटक के अन्त तक उस आस्था को चुनौती देता गया है। नन्द सुन्दरी (प्रवृत्ति) और बुद्ध (निवृत्ति) से जुडकर नही जिन्दा रहना चाहता है नन्द कहता है कि "मै तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढकर नही जी सकता, नही जीना चाहता।"[11] आस्था को चुनौती देने मे आधुनिकता का बोध स्पष्ट होता है।

नन्द का अन्तर्द्वन्द्व वर्तमान व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व के समानान्तर है क्योकि नन्द अनिर्णय की स्थिति मे जिन्दा रहने की प्रक्रिया मे सास लेता है। नन्द अपनी उपलब्धि की खोज न तो सुन्दरी से जुडकर करना चाहता है और न तो गौतम बुद्ध से जुडकर। वह अपने ही अन्दर के प्रश्नो से टकराता है। वह जानता है कि बुद्ध की दीक्षा का साधनात्मक पहलू आज के सन्दर्भ मे निरर्थक है। और वह (नन्द) अपनी पत्नी के निकट रहकर होने के बोध से टकराता है वह कहता है कि "मै केवल उतना–सा ही हूँ जितना–सा कि तुम्हारी दृष्टि मुझे चाहती है।"[12] वह अपने अन्तर्द्वन्द्वो से इतना टूट चुका है कि वह स्वय को "चौराहे पर खडा नगा व्यक्ति"[13] महसूस करता है। गौतम बुद्ध के पास से उसकी (नन्द) वापसी अपने घर मे होती है तो वह स्वय घर मे

आकर अजनबी, पराया और निर्वासित अनुभव करता है। नन्द कहता भी है– . "मै अपने को एक ऐसे टूटे हुए नक्षत्र की तरह पाता हूँ जिसका कही वृत्त नही है जिसका कोई धुरा नहीं है।"[14] वह (नन्द) अपने अन्दर के प्रश्नो से जूझकर इतना थक चुका है कि वह अपने को अधूरा महसूस करता है। उसकी वापसी सुन्दरी के निकट आधे–अधूरे के बोध मे ले जाती है वह कहता है– "सब जगह मै अपने को एक–सा अधूरा अनुभव करता हूँ।"[15] नन्द के होने की स्थिति को न तो सुन्दरी ने बोध किया और न तो गौतम बुद्ध ने। अपने अस्तित्व की चुनौती बुद्ध के पास जाकर देनी चाही तो बुद्ध भी कर्तनी द्वारा नन्द को केशहीन कराकर उसकी चुनौती को इनकार करने का प्रयास करते हैं। इस तरह उसके (नन्द) होने की वास्तविकता व्याकुलता मे ढक, गई और नन्द की नियति सबसे कटकर व्याकुलता मे वास्तविकता को ढूँढने के प्रयास मे स्पष्ट होती है अत सम्बन्धो की त्रासदी नन्द के अनिर्णय की स्थिति मे परायेपन और परम्परा से कटकर जीने मे मिलती है। डॉ0 गिरिश रस्तोगी इसकी विशिष्टता को रेखाकित करते हुए लिखती है– "यह नाटक गौतम बुद्ध के सौतेले भाई नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी के ऐसे अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करता है जिसका सम्बन्ध युग से है और जो ऐतिहासिक परिस्थितियो मे भी आधुनिक है सर्वत्र जीवित है।"[16]

नाटक के अन्त मे सम्बन्धो के विघटन की दास्तान आधुनिकता के परिपेक्ष्य मे व्यक्त हुई है जो अन्त होने की सीमा को तोडती है। क्योकि नाटक का अत नये बिन्दुओ की तलाश मे बाहर होने की स्थिति मे आ जाता है। 'लहरो के राजहस' का अन्त सुन्दरी के इन शब्दो से किया गया है– "इतना ही समझ पाये हैं वे ? . इससे अधिक कभी समझ भी नही पाएँगे ये

कभी नही समझा पाएँगे।"[17] नाटक की सम्पूर्ण सरचना सवेदनात्मक धरातल पर है। सम्प्रेषण और अभिव्यक्ति के सम्बन्धो को आधुनिक पद्धति मे विवक्षित किया गया है। "नाटक के अन्त मे लगता है कि नन्द के अन्तर्द्वन्द्व की जिस अदाज मे अभिव्यक्ति हुई है वह कुछ–कुछ शेक्सपियर की त्रासदियो से गुथे घायल पात्रो की अभिव्यक्ति से मिलती जुलती है। असहनशीलता की चरम स्थिति मे सुन्दरी को कहे गये नन्द के अन्तिम शब्द अपने निहितार्थ मे शेक्सिपियर के तनमन घायल पात्र हेमलेट के कहे गये इन शब्दो की याद दिलाते है, 'What a wounded name, things standing thus unknown, shall

live behind me' (HAMLET-SCENE II)– मगर इसका मतलब यह नही कि हेमलेट से नन्द की कोई तुलना की जा सकती है। 'हेमलेट' तो सदियो के सिर पर सवार, कराहता हुआ एक घायल पात्र है, और नन्द विचारा है। लहरो का एक राजहस।"[18]

आधे–अधूरे

'आधे–अधूरे' नाटक की पृष्ठभूमि अति आधुनिक है जिसमे आज के इन्सान की जिदगी का निरूपण किया गया है। इसलिए यह स्त्री–पुरूष के सम्बन्धो, अमानवीय स्थितियो और पारिवारिक विघटन का दस्तावेज बन गया है। 'आधे–अधूरे' का प्रमुख पात्र महेन्द्रनाथ (पुरूष एक) है। जो बेकार, आत्मकेन्द्रित, आत्मविश्वासहीन, फालतू और व्यक्तित्वविहीन व्यक्ति है। वह अपनी स्थिति का अनुभव करते हुए भी उबर नही पाता वह स्वय की दृष्टि मे गिर चुका है। वह मात्र एक रबड स्टैम्प का टुकडा से ज्यादा अपने को महसूस नही करता है दूसरी तरफ उसकी पत्नी सावित्री बेकार पति (महेन्द्रनाथ) से ऊबी हुई स्त्री है जो टूटते बिखरते परिवार से ऊबकर किसी अन्य पुरूष से जुडने की ललक मन मे धारण किये हुए है। वह जुनेजा, जगमोहन, मनोज और सिहानियॉ जैसे भ्रष्ट लोगो से जुडकर एक पूर्ण पुरूष की तलाश कर रही है फिर भी सावित्री सबमे अलग–अलग मुखौटो मे चेहरा एक ही देखती है। सावित्री (स्त्री) हर पुरूष से टकराकर अपने मे टूटती है। फिर भी तलाश के भटकाव मे अपने बेटे–बेटी और यहॉ तक कि अपने पति (महेन्द्रनाथ) से उबकर अपने पुराने प्रेमी जगमोहन से हमेशा–हमेशा के लिए जुडने का असफल प्रयास करती है। सावित्री अपनी असफलता के कारण ही चीखती चिल्लाती है और सबसे अलग होना चाहती है। लेकिन पुन उसकी वापसी बेकार पुरूष महेन्द्रनाथ के घर मे होती है। नाटक के सहपात्र बडी लडकी (बिन्नी) लडका (अशोक) और छोटी लडकी (किन्नी) अपने माता–पिता के साथ रहकर भी एक दूसरे से कटे और अलगाव बोध से एक ही परिवार मे जहॉ–तहॉ बिखरे हुए है। बडी लडकी (बिन्नी) मनोज रूपी हमदर्द को पाते ही बेगानी दुनियॉ (अपने ही घर) से निकल जाती है। और लडका (अशोक) फिल्म पत्रिका से तस्वीरे काटता हुआ मौके की तलाश मे है। और छोटी लडकी (किन्नी) के लिए पूरा

परिवार 'मिट्टी के लोदे   सबके सब मिट्टी के लोदे' के समान हो गया है।

नाटक के सभी पात्र महेन्द्रनाथ सावित्री, बिन्नी, अशोक और किन्नी आदि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज के चरित्र का प्रतिनिधित्व करते है सभी एक दूसरे से अलग होकर जुडे रहने के लिए बाध्य है। नाटक के सम्बन्ध मे नाटककार ने स्वय कहा है "विभाजित होकर मैं किसी न किसी अश मे आप मे से हर–एक व्यक्ति हूँ और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अन्दर मेरी कोई भी एक निश्चित् भूमिका नही है।"[19] राकेश ने नूतन शिल्प, प्रतीक और भाषा के माध्यम से कथानक को घटनाओ से नही बल्कि आज के व्यक्ति की मन स्थितियो की बनावट से निर्मित किया है।

सावित्री महेन्द्रनाथ को केवल अपना देखना चाहती है औरो के लिए उसके मन मे या विचारो मे, स्थान सह्य नही है। मित्रो का साथ देने की महेन्द्र की इच्छा सावित्री को आपे से बाहर कर देती है। प्रतिक्रिया स्वरूप महेन्द्रनाथ के मित्रो से सावित्री घृणा करने लगती है उसकी यह घृणा एव उपेक्षा महेन्द्रनाथ को जिद्दी बना देती है, महेन्द्रनाथ चाहता है कि सावित्री उसके मित्रो के सामने वैसा ही व्यवहार करे जैसा वह चाहता है। मित्रो और पत्नी के द्वन्द्व के बीच घिरा और उन दो पाटो के बीच पिसता–महेन्द्रनाथ उस राकेश को रूपायित कर रहा है जो कि घर की, घर के अर्थ की, जीवन मे–पत्नी एव मित्रो की भूमिका की वास्तविकता से तलाश कर रहा है। महेन्द्रनाथ मित्रो से जितना जुडा है, पत्नी से भी उतना ही जुडा है, इन दोनो मे से किसका पलडा भारी है, यह कहा नही जा सकता है इसलिए सावित्री कहती है कि "जबसे मैने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूँढते पाया है। खास तौर से आपका यह कहना चाहिए या नही, जुनेजा से पूँछ लूँ वहाँ जाना चाहिए या नही–जुनेजा से राय कर लूँ। कोई–छोटी से छोटी चीज खरीदनी है तो भी जुनेजा की पसन्द से। कोई बडे से बडा खतरा उठाना है– तो भी जुनेजा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे व्याह करने का फैसला भी कैसे किया उसने? जुनेजा के हामी भरने से।"[20] महेन्द्र नाथ जुनेजा को दोस्त मानता है, जुनेजा भी दिल से महेन्द्रनाथ को चाहता है फिर भी सावित्री इनसे सन्तुष्ट नही है, और हर बात मे जुनेजा

के प्रति शकित एव सतर्क रहती है क्योकि उसे जुनेजा जैसा एक पूरा व्यक्ति चाहिए। परन्तु जुनेजा को सावित्री का दृष्टिकोण पसन्द नही है और हर बात मे जुनेजा के प्रति शकित एव सतर्कता जुनेजा के दिल मे आक्रोश पैदा कर देती है इसलिए महेन्द्रनाथ के प्रति मित्रता का रूख अख्तियार करते हुए जुनेजा सावित्री से कहता है "वह उसे बहुत प्यार करता है . वह इस औरत को इतना चाहता है इतना चाहता है अन्दर से कि अगर ऐसा न होता तो आज सुबह से ही रिरियाकर मुझसे न कह रहा होता कि जैसे भी हो, मैं इससे बात करके इसे समझाऊँ तुमकिसी तरह छुटकारा नही दे सकती उस आदमी को ? तुमने जिस तरह बॉध रखा है उसे अपने साथ।"[21] और इन दो ध्रुवो के बीच पिसता महेन्द्रनाथ इतना दयनीय बन गया है कि वह अपने को बिल्कुल बेसहारा समझता है। उसका मित्र उसके भविष्य के लिए चिन्तित है वह उसमे, नई चेतना, नया आत्म विश्वास, नई जीवन-दृष्टि जगाना चाहता है इसलिए जुनेजा सावित्री से कहता है- "ठीक है वह नही आएगा वह कमजोर है, मगर इतना कमजोर नही है तुमसे जुडा हुआ है, मगर इतना जुडा नही है। उतना बेसहारा भी नही है जितना वह अपने आपको समझता है। वह ठीक से देख सके, तो एक पूरी दुनिया है उसके आस-पास मै कोशिश करूँगा कि वह ऑख खोलकर देख सके।"[22] महेन्द्रनाथ जिस तरह पत्नी से घर मे दुखी होकर मित्र के पास चला गया था, उसी प्रकार उसी आकर्षण मे बधकर फिर घर लौट आता है पत्नी के पास। यह वर्तमान जीवन की विडम्बना ही है कि व्यक्ति को न चाहते हुए भी ऐसा निर्णय लेना पडता है। गोविन्द चातक इस पर टिप्पडी करते हुए लिखते है कि "सावित्री का अधूरापन कुछ उसके व्यक्तित्व और कुछ परिस्थितियों का परिणाम है। उसका व्यक्तित्व आक्रामक नारी का व्यक्तित्व है।"[23]

सावित्री-महेन्द्रनाथ के समानान्तर पारिवारिक विघटन की त्रासदी इनके पुत्र एव पुत्रिया भोगती हैं- बडी लडकी बिन्नी उस पुरूष के साथ भाग जाती है। जिसको सावित्री अपने मित्र (या भावी पति) की हैसियत से घर बुलाया करती थी। बिन्नी ससुराल मे प्रसन्न नही रह पाती क्योकि उसका स्वभाव पति मनोज स्वीकार नही कर पाता है। एक प्रश्न कर बिन्नी अपने मम्मी पापा से उत्तर जानना चाहती है कि ऐसी कौन सी वस्तु है जो पति मनोज द्वारा उसे प्रताडित करती रहती है, इसलिए मनोज, क्यो कहता है कि "मै इस

घर से ही अपने अदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हू जो किसी भी स्थिति मे मुझे स्वाभाविक नही रहने देती।"[24] मनोज का कथन नयी पीढी मे मनोवैज्ञानिकता की तलाश करता है यही गलत फहमियॉ पति–पत्नी मे एक दरार उत्पन्न कर देती है और बिन्नी ऐसा कुछ करने लगती है जो उसके पति मनोज को पसन्द ही न आये और दाम्पत्य जीवन की यह कटुता उसे अपनी मॉ की ओर खीच लाती है। नयी पीढी का लडका अशोक वयस्कता की ओर अग्रसर है, न उसका पढने मे दिल करता है और न ही कही नौकरी करना चाहता है वह घर को घर नही समझता और जब तब घर का सामान भी चोरी से बेच देने मे उसे कोई परहेज नही है। तेरह वर्षीय छोटी लडकी किन्नी ऐसे कशम–कश व अवसाद भरे वातावरण मे पलकर ढीठ हो गयी है एव कच्ची आयु मे अपनी सखियो के साथ गोपनीय विषयो पर बाते करती है, और इसी कारण अपनी सहेलियो की माताओ से उसे बार–बार भर्त्सनाऍ सुननी पडती है। सावित्री ऐसे घर को सम्भाल पाने मे जब अपनी असमर्थता देखती है तो किसी मित्र के सहारे घर छोड देने की योजना बनाती है, कुछ दिन बेहद उद्विग्न रहती है और अपने को सारे वातावरण से काट लेती है, किन्तु फिर धीरे–धीरे गृहस्थी पुराने ढर्रे पर आ जाती है और यही क्रम न जाने कितनी बार दोहराया जा चुका होता है। डॉ0 सिद्धनाथ कुमार आधे–अधूरे की विशिष्टता को रेखाकित करते हुए कहते है– "आधे–अधूरे वे लोग है, जिनकी, भौतिक उपलब्धियो की आकाक्षाए पूरी नही हो पायी है जिनको आत्मिक शान्ति उपलब्ध नही है, जिन्हे भरे–पूरे परिवार के बीच रहकरभी रागात्मक तृप्ति नहीं मिल पायी है। आधे–अधूरे मे ऐसे ही लोगो की कहानी है।"[25]

सन्दर्भ

1 परिवेश चीटियो की पक्तिया– 1973– जमीन से कागजो तक, पृ016

2 सारिका–अगस्त, 1968, पृ0 73

3 परिवेश–भूमिका अश–मोहन राकेश

4 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ मे–डॉ रीता कुमार, पृ0 366

5 मोहन राकेश और उनके नाटक–डॉ0 गिरीश रस्तोगी, पृ050

6 बकलम खुद–मोहन राकेश, पृ0 97

7 आषाढ का एक दिन–भूमिका, पृ0 9

8 आधुनिक हिन्दी नाटक का मसीहा मोहन राकेश–गोविन्द चातक, पृ0 58

9 मोहन राकेश और उनके नाटक–डॉ0 गिरीश रस्तोगी, पृ0 66

10 लहरो के राजहस, पृ0 36

11 लहरो के राजहंस, पृ0 126

12. लहरो के राजहस, पृ0 138

13 लहरो के राजहस, पृ0 122

14. लहरो के राजहस, पृ0 131

15 लहरो के राजहस, पृ0 137

16. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेदन–डॉ गिरीश रस्तोगी, पृ0 321,22

17 लहरो के राजहस, पृ0 125

18 नाटक कार मोहन राकेश–जीवन प्रकाश जोशी, पृ0 67

19 आधे–अधूरे भूमिका, पृ0 12

20 आधे–अधूरे, पृ0 84–85

21 आधे–अधूरे, पृ0 80–84

22 आधे–अधूरे, पृ0 94

23 आधुनिक नाटक का मसीहा–मोहन राकेश, पृ0 86

24 आधे–अधूरे, पृ0 28

25 नाटककार मोहन राकेश–सवाद और शिल्प– सिद्धनाथ कुमार, पृ0 23

सप्तम अध्याय

उपसंहार

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

यह सर्वविदित है कि मोहन राकेश आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में बहुचर्चित एव विवादास्पद लेखक रहे हैं। उनके साहित्य की तरह उनका जीवन भी विवादो का जीवन रहा है। वहीं दूसरी ओर राकेश जी का रचना–ससार एक ईमानदार लेखक की सहज अभिव्यक्ति है। जिसमे वे अन्तर्लोक एवं वाह्यलोक के द्वन्द्व मे सामंजस्य बिठाने के प्रयत्न मे भटकते नजर आते हैं।

मोहन राकेश के सम्पूर्ण कथा साहित्य कहानी, उपन्यास (तीन नाटक पारिवारिक विघटन के विशेष सन्दर्भ में) मे चित्रित पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन के स्वरूप के अध्ययन करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

वर्तमान सक्रमणशील समाज मे मूल्य विघटन की प्रक्रिया से सम्बन्धो मे बिखराव आ रहा है। और सम्बन्धो को किसी ठोस धरातल पर स्थापित करना कठिन होता जा रहा है सभी सम्बन्ध एक दबाव की नियति से गुजर रहे है तथा मानव मन आस्था, विश्वास एव भावनात्मक गहराई के अभाव मे कमजोर होता जा रहा है। प्रेम सम्बन्ध कुठाओ के शिकार हो रहे है। दाम्पत्य सम्बन्धो मे मुक्त भोग एव अह का विस्फोट हो रहा है तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्ध आर्थिक अभावो एवं भावनात्मक लगाव की कमी के कारण कृत्रिम और मशीनी होते जा रहे है। उच्चतर मूल्यो मे अनास्था पारिवारिक सम्बन्धो को विकृत कर रही है। मैत्री सम्बन्ध गहन संवेदना वा पारस्परिक समझ और सहानुभूति के अभाव मे समय काटने या सामाजिक औपचारिकताए निभाने तक सीमित हो गये है।

मानवीय सम्बन्धो मे मोहन राकेश सर्वाधिक महत्व स्त्री–पुरूष सम्बन्धों को देते है जिनमें विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्ध तथा दाम्पत्येत्तर सम्बन्धो का विवेचन करने मे उनकी विशेष रुचि है। मोहन राकेश ने पारिवारिक सम्बन्धो की निरर्थकता की ओर भी संकेत किया है। सास–बहू, मॉ–बेटी, ननद–भाभी, भाई–बहन आदि सम्बन्ध भी अब किन्ही नैतिक सीमाओ को स्वीकार करना पसन्द नही करते है। मॉ–बेटी के व्यभिचार के सम्मुख मुह नही खोल पाती, ननद–भाभी को अपने पुरूष मित्रो की सूचना गर्व से देती है और उसे भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है। कुल मिलाकर पारिवारिक सम्बन्धो का आधार ही इस नगरीय सभ्यता ने हिला दिया है। इस संक्रमण काल मे मूल्यों का विघटन इतनी तीव्रता से हुआ है कि कोई भी मूल्य महत्वपूर्ण नही रहे हैं।

मोहन राकेश की अधिकाश कहानिया पारिवारिक सन्दर्भों मे बदलते स्त्री–पुरूष के सम्बन्धो को रेखाकित करती है। जिसमें राकेश जी ने समकालीन जीवन के सुखद दु खद प्रसगो, जीवन मे भरती जा रही ऊब, अकेलापन और उदासी का अकन जिस सूक्ष्मता से किया है। उतनी ही गहराई से मानव सम्बन्धो मे आई कटुता को भी रेखाकित किया है। राकेश जी की कहानिया मे प्रतिपादित अनुभूतियॉ कच्ची नहीं हैं वे लेखकीय मानस मे घुट–पिसकर रसायन बन गयी है। उनका असर कही तेज और तिक्त तथा खट्टी मीठी और मादक स्थिति मे उभरता है। वे कभी मानवीय संवेदना को सहलाती है तो कभी धक्का देती हैं। उनमे सरबत का स्वाद तथा तेजाब की गन्ध है वे समकालीन परिवेश के ताप–सताप, भय, अकुलाहट, सुरक्षा, आत्मीयता, परायापन, निजता, बेगानापन और गर्म श्वासो की वाष्प की खुशबू है। यदि हम कतिपय प्रयोगशील कहानियो को छोड दे तो राकेश जी की कहानियॉ नख से शिख तक चुस्त और दुरूस्त है। उनके अधिकाश पात्र विराट मानवीय चेतना का परिचय देते–देते अन्तर्मुखी होकर रह गये है। उनमे से

अधिकाश अकेलेपन व अजनबीपन का बोझ ढोते–ढोते घुटनशील माहौल मे डूब से गये है। एक वाक्य मे कहें तो ये सभी पारिवारिक जीवन की त्रासदी के प्रतिरूप है। इसके साथ पात्रो की स्थिति अपने परिवेश से ढली समकालीन जीवन के ट्रेजिक विजन और टेन्शन की यथार्थवादी अभिव्यक्ति है।

मोहन राकेश मूलत. शहरी मध्यमवर्ग को अपनी रचनाओ का आधार बनाते है। 'अंधेरे बद कमरे', 'न आने वाला कल' तथा 'अंतराल' में उन्होंने कस्बाई तथा महानगरीय परिवेश मे मध्यमवर्ग के बदलते स्त्री पुरूष सम्बन्धो का चित्रण किया है।

'अधेरे बंद कमरे' मे मध्यमवर्गीय महत्वाकाक्षा और परिवेशगत दबावो मे सम्बन्ध कैसे बनते बिगडते है, मध्यमवर्गीय सस्कार एव चेतना आधुनिकता के दबाव में किस प्रकार प्रगतिशीलता, चेतना से टकराकर मानवीय नियति को असहाय बना देती है, तथा स्थितिवाद किस प्रकार मध्यवर्ग को अपने आपसे दूर भागने और फिर किसी जादुई सम्मोहन से फिर अपनी मध्यवर्गीय धुरी पर लौटने के लिए विवश करता है। इन सब की स्पष्ट अभिव्यक्ति इस उपन्यास मे दिखती है। हरबश और नीलिमा के बीच जो टकराहट है वह पति–पत्नी की नोक–झोक नही है। वह पुराने और नये मूल्यो की मांग की टकराहट है। उसमे पुरूष और स्त्री को एक दूसरे पर अधिकार पा लेने की होड है। लेखक कही न कही आस्था से जुडा है जिससे उसने हरबश, शुक्ला और मधुसूदन के माध्यम से अभिव्यक्ति किया है। शुक्ला, सुरजीत जैसे लम्पट व्यक्ति को पति बनाकर भी उससे जुडी रहती है। मधुसूदन सुषमा से जुडकर भी न जुडे रहने की प्रक्रिया से गुजरता है और हरबश आधुनिक होते हुए भी पत्नी की मागो के सन्दर्भ मे कमजोर है क्योकि वह प्रयास करने पर भी अपने पूर्वाग्रहो से मुक्त नही हो पाता। वह नीलिमा के निर्णय को भूलने के लिए शराब से भरा गिलास खाली करता रहता है। हरबश को नीलिमा की वापसी की खबर भले ही न हो लेकिन नीलिमा को हरबश के पागलपन की खबर

अवश्य है। इस तरह सक्षेप मे कहा जाय तो अधेरे बन्द कमरे के सभी पात्र हरबश, नीलिमा, सुषमा और इबादतअली महानगरीय परिवेश के अदर टूट–टूट कर बिखरे रहने की स्थिति मे जिन्दा रह रहे है। आज स्वभावत लोगो के भीतर परायीकृत भावना घर करती जा रही है। वर्तमान मे हरबश, मधुसूदन, नीलिमा, सुषमा जैसे बहुत लोग हैं जो इस स्थिति का बोध करते हुए जिदा होने का उपक्रम करते है क्योंकि यह स्थिति आदमी की परिस्थिति के भीतर से उत्पन्न होती है। महानगर अमानवीयता की प्रक्रिया का नासूर बनता चला जा रहा है। जहॉ मानवीय सम्बन्धों मे अलगाव, अजनबीपन, परायापन तथा फूहडता का बोध तीब्रतम होता जा रहा है।

'न आने वाला कल' मे मोहन राकेश ने विवाहपूर्व, विवाहेत्तर एव दाम्पत्येत्तर प्रेम सम्बन्धो का स्वरूप सभी पुरूष एव स्त्रियो में समान रूप से चित्रित किया है। किसी का भी प्यार गहरा नहीं और सबके लिए क्षणिकसुख ही महत्वपूर्ण है। एक भी प्रेम सम्बन्ध, सुखी दाम्पत्य जीवन मे नहीं बदल पाता। उपन्यास मे समाविष्ट सभी दम्पत्ति तनाव ग्रस्त, उखडे हुए, एक दूसरे से छिटकने की कोशिश मे लगे है। सभी दम्पत्ति कुठित एव परेशान है।

'न आने वाला कल' मे अलगाव और अकेलेपन की दारूण यन्त्रणा मे मनोज, शोभा, बॉनी, रोज, मिसेज पार्कर सभी पात्र जीने के लिए अभिशप्त है। मनोज अपने अकेलेपन की यन्त्रणा को शोभा से शादी करके खत्म करना चाहता है। लेकिन मनोज और शोभा पति–पत्नी के सम्बन्ध का बोध एक–दूसरे के प्रति नही कर पाते है। शोभा और मनोज के इस अलगाव मे अलक्षित तीसरा पुरूष है। जो शोभा से जुडकर उपन्यास मे उपस्थिति न होते हुए भी हुआ है। शोभा का जीवन आधुनिक भाव बोध के सन्दर्भ मे विघटित हुआ है। उसके आधुनिक विचार ही, उसे तोडते है और टूटकर न टूट पाने की छटपटाहट मे रहने के लिए बाध्य करते है। मनोज ने उसे कुछ नही दिया इसके बावजूद वह उससे जुडे रहने के लिए विवश है। मनोज बॉनी से बधकर

शोभा से उत्पन्न अभाव की पूर्ति करना चाहता है। लेकिन मनोज सम्बन्धहीनता के स्तर पर बॉनी और काशनी से बॅधने का प्रयास करता है। इसलिए कि दोनो के बीच कोई सम्बोधन नहीं है। वह जिस अकेलेपन और अलगाव का शिकार है बॉनी भी उसी की शिकार है। बॉनी के लिए किसी भी प्रकार के रिश्तो का कुछ भी दर्द नही है। क्योंकि उसे भटकने मे ही एक आनन्द मिलता है। वह अनेक पुरूषो के सहवास के बावजूद न जुडे रहने की प्रक्रिया में जिदा है। जिमि तथा उसकी पत्नी रोज साथ–साथ न रहकर भी एक–दूसरे से अलग रहते है। रोज की जिदगी वहॉ के लोगो से इतनी कट चुकी थी कि रोज का लोगों से वार्तालाप अर्धाक्षरी शब्दो मे हुआ करता था। मिस्टर टोनी व्हिसलर और उसकी पत्नी एक दूसरे की उपस्थिति मे अजनबी की तरह रहते थे। शारदा और कोहली पति–पत्नी होकर भी एक दूसरे से चिढे और खिंचे से रहते हैं। कोहली अपने भविष्य की बेरोजगारी के प्रति चितित है तो शारदा पिता की गरीबी यादकर कोहली से बधी रहने की अकुलाहट में जीती है। निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि 'न आने वाला कल' उपन्यास के सभी पात्र एक तरफ मिशन स्कूल की पाबदियो मे जीने के लिए अभिशप्त थे। वही दूसरी तरफ घिसी पिटी जिदगी उनकी नितात अकेली रहती है। सुबह से शाम तक काम मे लगे रहना मानो सभी के जीवन का एक मात्र लक्ष्य था। सभी नौकरी छोडकर कही और जाने का निर्णय नही ले पाते है। भविष्य की बेरोजगारी की चिता से सत्रस्त रहते थे। फादर बर्टन स्कूल की चार दीवारी के घेरे मे बन्द रहने की नियति सबकी नियति थी। उनकी अकुलाहट, सत्रास, अकेलापन अजनबीपन ऊब और उदासी यह सारा का सारा बोध मिशन स्कूल की व्यवस्था की देन थी।

'अन्तराल' मे मानव सम्बन्धो की ईमानदारी से तलाश मोहन राकेश ने करनी चाही है उपन्यास की स्थापना है कि जीवन में शारीरिक अपेक्षाओ के अलावा भी कुछ ऐसी अपेक्षाए होती है। जिसको पाने के लिए

मानव नियतिग्रस्त होता है। इस उपन्यास मे नामहीन सम्बन्धो की तलाश मे आधुनिकता की अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन उस तलाश मे आत्मसघर्ष रोमेन्टिक ढग से चलता है। क्योकि आज के जीवन मे समबन्धो को महसूस किया जा सकता है, सम्बन्धो को नाम नही दिया जा सकता है। यूँ कहा जाये तो 'अतराल' मे दाम्पत्य सम्बन्धों का टूटना एवम बिखरना मानसिक है, सामाजिक, आर्थिक नहीं। मल्होत्रा को पत्नी से यौन सम्बन्धो मे सतुष्ट नहीं मिलती क्योंकि उसकी पत्नी यौन तृप्ति को गौण मानती है और घर–गृहस्थी के अन्य कामो को महत्व देती है। कुमार की पत्नी से नही निभती क्योकि दोनो के दाम्पत्य पर विगत जीवन के प्रेम सम्बन्धो की छाया है और वे वर्तमान मे सहज प्रेम सम्ब्न्ध स्थापित करने मे अक्षम हो गए है। श्यामा और देव का दाम्पत्य जीवन यातनामय नर्क बन जाता है। क्योंकि देव का अतीत, उसके वर्तमान पर हावी है और श्यामा का अहम उसके प्यार को छल लेता है। एक भी दम्पत्ति सुखी वैवाहिक जीवन नही जी रहा है। पति–पत्नी का सम्बन्ध मात्र बनकर रह गये है। अतराल मे सभी के दाम्पत्य सम्बन्ध तनाव ग्रस्त है कही पर दाम्पत्येत्तर योनाकर्षण, कहीं पर रूचि वैभिन्य और कहीं पर यौन ग्रन्थियॉ दाम्पत्य सम्बन्धो को तोडने में लगी हुयी है।

वस्तुत राकेश का सम्पूर्ण कथा साहित्य विभाजनोत्तर भारत मे बढते मूल्य–सकट और सम्बन्ध–विघटन के दुष्परिणामो मे छटपटाते मनुष्य की पीडा को मुखर करता है, पर उनके नाटक इस क्षेत्र मे कहानियो और उपन्यासो की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए है। इसलिए मैने मोहन राकेश के कथा साहित्य मे पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन के सन्दर्भ मे मोहन राकेश के तीन नाटको 'आषाढ का एक दिन' , 'लहरो के राजहस' और 'आधे–अधूरे' को सक्षिप्त रूप मे विवेचित करने की कोशिश की है। मोहन राकेश अपने नाटको मे परिवेश की असगति और मूल्यच्युत स्थिति जीने वाले व्यक्ति की असुरक्षा की भावना, वरण और निर्णय की असमर्थता का यातनाप्रद

द्वन्द्व, एकाकीपन और अपरिचय की पीडा, सम्बन्धो के चुकेपन के तनाव और सन्त्रस को बहुत सजीव अभिव्यक्ति देते है। 'आषाढ का एक' दिन से 'आधे–अधूरे' तक राकेश ने प्रतीक रूप मे जीवन मूल्यो और मानवीय सम्बन्धो के विघटन के फलस्वरूप जीवन मे आने वाली त्रासदी को उद्घाटित किया है। स्थापित मूल्यों की अनुपयोगिता देखकर ही उनके नाटको के पात्र वरण और निजता की तलाश मे भटकते है। वरण की स्वतन्त्रता नियति ने व्यक्तित्व से छीन ली है और वाह्य परिवेश निरन्तर उसकी निजता को नष्ट करने का प्रयत्न करता है। यही कारण है कि कालिदास, नन्द महेन्द्रनाथ जीवन मे असुरक्षा व आत्म–निर्वासन के भय और विरोधी मन· स्थितियों को भोगते है। स्वार्थ और अवसरवाद के भ्रष्ट वातावरण ने व्यक्ति के सम्बन्धो के रूप को भी बदल दिया है। व्यक्ति मात्र आडम्बर के लिए निरर्थक और बेमानी सम्बन्धों का बोझ ढो रहा है। राकेश ने स्त्री–पुरूष सम्बन्धो के विभिन्न रूपो नियति और व्यवस्था के अभिशाप और साथ रहने की बेचारगी को अपने नाटको में मूर्त किया है। कालिदास का आत्म केन्द्रित व्यक्तित्व और परिवेश को अनुकूल बनाने की असमर्थता और अपना सर्वस्व लुटाकर त्रासद अन्त पाने वाली मल्लिका स्त्री–पुरूष सम्बन्धो का एक अलग रूप है, 'लहरो के राजहंस' मे पार्थिव–अपार्थिव मूल्यो के द्वन्द्व मे टूटता नन्द और अपने अहम् एव गर्व की पराजय से अपने मे सिमट जाने वाली सुन्दरी के प्रेम मे सशय और द्वन्द्व से आने वाली विषम स्थिति को मूर्त करते है तथा 'आधे–अधूरे' के महेन्द्रनाथ और सावित्री तो चुके, रीते और बोझ बने सम्बन्धो का सबसे निर्मम, पर यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हैं। अपनी असमर्थता और हीन भावना से छटपटाता पुरूष तथा अपनी अतृप्त महात्वाकाक्षाओ की घुटन मे टूटती स्त्री प्रत्येक दिन एक दूसरे से दूर जीने के लिए विवश हो लौट आते है। 'आधे अधूरे' के सभी पात्र महेन्द्रनाथ, जगमोहन, जुनेजा, सावित्री, अशोक, किन्नी एव बिन्नी हमारे चारों ओर के जीते–जागते चेहरे ही है। निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि

राकेश ने उक्त तीनो नाटको मे वर्तमान युग जीवन मे टूटते मानवीय सम्बन्धो और मूल्यो के फलस्वरूप व्यक्ति के आन्तरिक विघटन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्षो को भी स्वर देने का प्रयत्न किया है जो वर्तमान परिवेश की विसंगतियो से उद्‌भूत युग सत्य है।

मोहन राकेश के कथासाहित्य मे पारिवारिक सम्बन्धो के विघटन का यही स्वरूप है। उपन्यास और कहानी का सफर सचमुच डिप्रेसिंग है, क्योकि लेखक जो प्रश्न उठाता है, उसका उत्तर दुनिया से नहीं अपने आप से मागना होता है और इस मुकाम पर हम अपने ही सामने निर्वस्त्र होने को विवश होते हैं, वरना उन समस्याओ का उत्तर मिल ही नहीं सकता। मानवीय सम्बन्धों को एक नई दृष्टि और हृदय की अतल गहराई से कुरेदने वाले राकेश जी ने जिंदगी भर मानवीय सम्बन्धों पर विचार किया। क्योकि उनकी मान्यताए पुरानी लीक छोडकर समाज को देखने की एक नवीन दृष्टि रखती है।

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ और पत्र–पत्रिकाएं

(क) मोहन राकेश की रचनाएं

कहानी–संग्रह

इन्सान के खण्डहर	–	प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, 1950
नये बादल	–	भारतीय ज्ञान पीठ, 1957
जानवर और जानवर	–	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1958
पॉच लम्बी कहानियॉ	–	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1960
एक और जिन्दगी	–	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1961
फौलाद का आकाश	–	अक्षर प्रकाशन दिल्ली 1966
सुहागिने	–	हिन्द पॉकेट बुक्स, 1966
आज के साये	–	राधाकृष्ण प्रकाशन, 1967
रोये रेशे	–	राधाकृष्ण प्रकाशन, 1968
एक–एक दुनिया	–	राधाकृष्ण प्रकाशन, 1968
मिले–जुले चेहरे	–	राधाकृष्ण प्रकाशन, 1969
श्रेष्ठ कहानियॉ	–	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1970
मेरी प्रिय कहानियॉ	–	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1971
क्वार्टर	–	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1972
वारिस	–	राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली,1972
पहचान	–	राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली,1972

एक घटना — राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली, 1974

मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ — राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली,1984, आवृत्ति अक्टूबर 1999

उपन्यास

अँधेरे बन्द कमरे — राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,1961 पेपर बैक्स आ01998

न आने वाला कल — राजकमल एण्ड सन्स दिल्ली,1968, राजपालमे सस्करण 1999

अन्तराल — राजकमल प्रकाशन,दिल्ली 1972, पुनर्मुद्रित 1995

नाटक

आषाढ का एक दिन — राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली, 1959आवृत्ति 1998

लहरो के राजहंस — राजकमल प्रकाशन , दिल्ली 1963, आवृत्ति 2001

आधे–अधूरे — राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली,1969, आवृत्ति 1997

पैर तले की जमीन — राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली, 1975

एकाकी

अण्डे का छिलका,अन्य एकाकी तथा बीज नाटक — राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली 1973

रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक — राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली 1974

यात्रा–सस्मरण

आखिरी चट्टान तक – प्रगति प्रकाशन,1953

निबन्ध/आलेख

परिवेश – भारतीय ज्ञान पीठ ,1967

समय सारथी जीवनी – राधाकृष्ण प्रकाशन ,दिल्ली1972

साहित्यिक और सास्कृतिक दृष्टि – राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली,1975

बकलम खुद – राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली,1975

डायरीः आत्मकथा

मोहन राकेश की डायरी – राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1985

अन्य

1 बिना हाड मास का आदमी – राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली,1974

आइने के सामने(सम्पादित) – राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली1965

पॉच परदे (सम्पादित) – राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली,1965

एन एनथॉलॉजी (आधे अधूर,आइने के सामने ,तेरह कहनियो और एक साक्षात्कार का अग्रेजी अनुवाद) – राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली,1974

रगमच और शब्द (लेख) –

शब्द और ध्वनि (लेख) इनैक्ट–अक 21

अनुवाद (मोहन राकेश द्वारा किये गये)

मृच्छकटिक – शूद्रक के मृच्छकटिक का अनुवाद

शकुन्तल – कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का अनुवाद

अग्रेजी के अनुवाद

एक औरत का चेहरा	–	हेनरी जेम्स के उपन्यास द पोर्ट्रेट ऑफ ए लेडी का अनुवाद
उस रात के बाद	–	ग्राहम ग्रीन के उपन्यास द एण्ड ऑफ द अफेयर का अनुवाद
हिरोशिमा के फूल	–	एडिटा मॉरिस के उपन्यास फ्लावर्स ऑफ हिरोशिमा का अनुवाद

(ख)कहानी –उपन्यास संग्रह

एक दुनिया समानान्तर – स0 राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि0दिल्ली,1999

कंकाल – जय शंकर प्रसाद, भारती भण्डार ,लीडर रोड प्रेस, षष्ट सस्करण 1929

कथानिका प्रतिनिधि कहानिया – (स0) डॉ0 शिवनन्दन प्रसाद, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद तृतीय स01973

गबन – प्रेमचन्द, भार्गव आफसेट, इलाहाबाद, नवीन सस्करण 1986

गुनाहो का देवता – धर्मवीर भारती, प्रयाग साहित्य भवन इलाहाबाद1957

झूठा सच – यशपाल, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद 1960

त्यागपत्र – जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन दरियागज, दिल्ली1994

दिव्या – यशपाल, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, विघार्थी स02000

नदी के द्वीप – अज्ञेय, मयूर प्रकाशन नोएडा,तीसरा सस्करण2001

ज्ञानरजन – प्रतिनिधि कहानियॉ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1988 आ0 1998

(ग) आलोचनात्मक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अनीता–राकेश चन्द सतरे, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्रथम सस्करण 1974

अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या – डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रथम सस्करण 1968 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अधूरे साक्षात्कार – नेमिचद जैन, प्रथम सस्करण 1966 अक्षर प्रकाशन दिल्ली

आत्मनेपद – अज्ञेय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी

आधुनिकता और आधुनिकीकरण – डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1969

आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ – डॉ0 नरेन्द्र मोहन, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली– 1973

आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1978

आधुनिकता और हिन्दी साहित्य– डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सस्करण

आधुनिकता और हिन्दी आलोचना – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, राधकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

आधुनिकता के पहलू – विपिन कुमार, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1972

आंचलिकता से आधुनिकता बोध – डॉ0 भगवती प्रसाद शुक्ल, ग्रन्थम रामबाग कानपुर, प्रथम सस्क्करण 1972

आस्वाद के धरातल – धनजय वर्मा, विद्यामदिर प्रकाशन, दरियागज दिल्ली, सस्करण 1969

क्योकि समय एक शब्द है – डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ, लोकभारती प्रेस 15ए महात्मा गान्धी मार्ग इलाहाबाद सस्करण 1975

चितन के क्षण – विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली, प्रथम सस्करण, 1966

दिल्ली शब्दकार 1977, सुभाष पत, कमलेश्वर तीन दशको की बीच एक वैज्ञानिक यात्रा–लेखक, मधुकर सिह, सपादक कमलेश्वर

नयी पीढी की उपलब्धियॉ, आलोचना – डॉ0 धनजय, विद्यामदिर प्रकाशन दिल्ली, 1969

नयी समीक्षा–नये सन्दर्भ – डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली प्रथम सस्करण 1974

नारीवादी विमर्श – राकेश कुमार, आधार प्रकाशन पचकूला, हरियाणा, प्रथम सस्करण 2001

प्रश्नचिन्हो के जगल मे परिवार आधुनिक परिवेश और नवलेखन – डॉ0 शिवप्रसाद सिह

समकालीन साहित्य एक नयी दृष्टि – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, लिपि प्रकाशन दिल्ली, प्रथम सस्करण

सारिका – सपादक कमलेश्वर टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन, बम्बई अक (1) मई 1968 (2) अगस्त 1968 (3) नवम्बर 1968 (4) फरवरी 1973 (5) जुलाई 1975

साहित्य का नया शास्त्र – डॉ0 गिरिजा राय, शालिनी प्रकाशन, नया अलोपी बाग इलाहाबाद सस्करण 2000

हिन्दू परिवारो के परिवर्तित प्रतिमान – डॉ0 सुषमा चतुर्वेदी, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, सस्करण 2001

(घ) आलोचनात्मक

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कहानी

आधुनिकता और हिन्दी कहानी – जगनसिह, प्रासगिक प्रकाशन (लेखकों द्वारा सचालित) के0 डी0 19 सी अशोक बिहार–1 दिल्ली 110052 पहला

सस्करण 1980

आधुनिक कहानी का – परिपार्श्व लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, साहित्य भवन प्रा0 लि0 इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1966

आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य मे काम मूलक सवेदना – डॉ0 श्रीराम महाजन, चितन प्रकाशन 234/ए विश्व बैक कालोनी, गुजैनी, कानपुर 1986

आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य मे प्रगति चेतना – डॉ0 लक्ष्मण दत्त, गौतम प्रथम सस्करण 1972 कोणार्क प्रकाशन दिल्ली

आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य मे समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति – डॉ0 प्रेमनारायण सिन्हा, अनुपम प्रकाशन, पटना 4 प्रथम संस्करण 1980

कहानीकार मोहन राकेश – डॉ0 सुषमा अग्रवाल, पचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर, 1979

कहानीकार ज्ञानरजन – स0 सत्यप्रकाश मिश्र, नयी कहानी प्रकाशन इलाहाबाद 1978

कहानी की सवेदनशीलता सिद्धान्त और प्रयोग – भगवानदास वर्मा, सस्करण–1972 ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर–12

कहानी नयी कहानी – डॉ0 नामवर सिह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद– द्वितीय सस्करण जनवरी 1973

कहानी स्वरूप और सवेदना – राजेन्द्र यादव, नेशनल पब्लिशिग हाउस 23, दरियागज नई दिल्ली 110002 तृतीय सस्करण 1993

काम सम्बन्धो का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी – डॉ0 वीरेन्द्र सक्सेना, साहित्य भारती के 71 कृष्णनगर, नई दिल्ली 110051 प्रथम सस्करण 1975

द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, प्रथम सस्करण 1973 राजपाल एण्ड सन्स नई दिल्ली।

नयी कहानी की भूमिका – कमलेश्वर, शब्दकार प्रकाशन, 2203, गली डकौतन तर्कमान गेट दिल्ली, 1978

नई कहानी की मूल सवेदना – डॉ0 सुरेश सिन्हा, भारतीय ग्रन्थ निकेतन 113 लाजपत राय मार्केट दिल्ली 6– प्रथम सस्करण 1966

नयी कहानी दशा और दिशा, सम्भावना – सुरेन्द्र, नई कहानी की उपलब्धिया बारह कहानिया, धनजय वर्मा– सस्करण 1970 अभिव्यक्ति प्रकाशन यूनिवर्सिटीरोड इलाहाबाद।

नई कहानी नये प्रश्न – डॉ0सन्त बख्श सिह, साहित्यालोक 86/412 देवनगर कानपुर 208002 प्रथम सस्करण जुलाई 1981

नई कहानी प्रकृति और पाठ – स0 श्री सुरेश, परिवेश प्रकाशन, बी 177 मगल मार्ग, बाबू मार्ग जयपुर प्रथम सस्करण 1968

नयी कहानी मे आधुनिकता बोध – डॉ0 साधनाशाह, पुस्तक सस्थान, 109/50ए नेहरू नगर, कानपुर–12 प्रथम सस्करण, 1986

नयी कहानी– सन्दर्भ और प्रकृति – डॉ0 देवीशकर अवस्थी, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली सस्करण 1966

मोहन राकेश की कहानियो मे आधुनिकता – एम0 एस0 मुजावर, अलका प्रकाशन 128/106 जी ब्लाक किदवई नगर, कानपुर 11

समकालीन कहानी की पहचान – डॉ0 नरेन्द्र मोहन, प्रवीण प्रकाशन, मेहरौली नयी दिल्ली सस्करण 1978

समकालीन कहानी युगबोध का सन्दर्भ – डॉ0 पुष्पपाल सिह, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दरिया गज, नयी दिल्ली प्रथम सस्करण , 1986

समकालीन महिला कहानीकारो की कहानी मे प्रेम का स्वरूप – सरिता सूद, सूर्य प्रकाशन नई सडक, दिल्ली 6, 1978

स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी मे सामाजिक परिवर्तन – भैरूलाल गर्ग, चित्रलेखा प्रकाशन 147 सोहबतियाबाग इलाहाबाद 211006 प्र0 स0 1979

हिन्दी कथा साहित्य मे यथार्थ बोध के विविध रूप – डॉ0 कृपाशकर पाण्डेय, समीक्षा प्रकाशन पिकौराबक्श (निकट हाइडिल कालोनी गॉधी नगर बस्ती) प्रथम सस्करण 1996

हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ – डॉ0 ज्ञान अस्थाना, जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार, मथुरा 281002 प्रथम सस्करण 1981

हिन्दी कहानी अपनी जबानी – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली 6, प्रथम सस्करण 1968

हिन्दी कहानी अलगाव का दर्शन – डॉ0 गार्डन चार्ल्स एडर मल, (अनुवादक) अर्चना वर्मा अक्षर प्रकाशन प्रा0 लि0 2/36 असारी रोड दरियागज नई दिल्ली 110002 प्रथम सस्करण 1982

हिन्दी कहानी – उपेन्द्र नाथ अश्क, प्रथम सस्करण

हिन्दी कहानी एक नयी दृष्टि – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, प्रथम संस्करण

हिन्दी कहानी का मूल्याकन – कान्ता (अरोडा) मेहदी रत्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन 2/38 असारी रोड दरियागज नयी दिल्ली 110002 प्रथम सस्करण 1984

हिन्दी कहानी अतरग पहचान – डॉ0 रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस, नयी दिल्ली , सस्करण 1977

हिन्दी कहानी का विकास – मधुरेश, नई कहानी 170, आलोपीबाग, इलाहाबाद 211006

हिन्दी कहानी का सफर – डॉ0 रमेशचन्द्र शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर (रजि0) सुभाषरोड अलीगढ प्रथम सस्करण 1982

हिन्दी कहानी दो दशक – डॉ0 सुरेश धीगडा, अभिनव प्रकाशन 21ए–दरियागज नई दिल्ली 110002 प्रथम सस्करण 1978

हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा – डॉ0 रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस 2/35 अन्सारी रोड दरियागज, दिल्ली 6, प्रथम सस्करण 1970

हिन्दी कहानी मे जीवन मूल्य – डॉ0 रमेश चन्द्र, लवानिया, स0 महेन्द्र शर्मा अमित प्रकाशन 66 सुभाष द्वार, गाजियाबाद प्र0 सं0 1963

हिन्दी कहानियो मे द्वन्द्व – डॉ0 सुमन मेहरोत्रा, आर्य बुक डिपो 30, नई वाला करौल बाग नई दिल्ली 11005 प्रथम सस्करण 1975

हिन्दी कहानी पहचान और परख – डॉ0इन्द्र नाथ मदान, लिपि प्रकाशन, कृष्ण नगर दिल्ली 10051 प्रथम 1973

हिन्दी कहानी समीक्षा और सन्दर्भ – डॉ0 विवेकीराय, राजीव प्रकाशन–189–ए/1, आलोपीबाग कालोनी इलाहाबाद– प्रथम सस्करण 1985

हिन्दी की 'नयी कहानी' का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – मिथिलेश रोहतगी, शलभ बुक हाउस 101 खत्री चौक, मेरठ 25002, प्रथम सस्करण 1979

हिन्दी . चर्चित कहानियॉ पुनर्मूल्यांकन – डॉ0 कुसुम वार्ष्णेय, साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड के0 पी0 कक्कड रोड इलाहाबाद 211003 प्रथम संस्करण 1983

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उपन्यास

आज का हिन्दी उपन्यास – डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, प्रथम सस्करण

आधुनिक उपन्यास और अजनबीपन – डॉ0 विद्याशकर राय, प्रथम संस्करण

आधुनिकता के सन्दर्भ मे आज का हिन्दी उपन्यास – डॉ0 अतुलवीर अरोरा, पब्लिकेशन ब्यूरो पुजाब यनीवर्सिटी–चण्डी गढ, प्रथम संस्करण 1974

आधुनिक हिन्दी उपन्यास – डॉ0 नरेन्द्र मोहन, प्रथम सस्करण 1975 दि मैकमिलन कम्पनी दिल्ली

आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता– नवल किशोर, प्रकाशन सस्थान 453/1212 पश्चिमपुरी नई दिल्ली– 1100026 प्रथम सस्करण दिसम्बर 1977

आधुनिक हिन्दी उपन्यास मे प्रेम की परिक्रमा – डॉ0 विजय मोहन सिह, रचना प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम सस्करण

उपन्यास कार– भगवती चरण वर्मा – डॉ0 ब्रजनारायण सिंह, प्र0 स0 1972, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

उपन्यास कार मोहन राकेश– अन्तराल के विशेष सन्दर्भ मे विमला कुमारी पण्डित, पचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर प्रथम स0 1978

उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तिया—डॉ0 सुरेश सिन्हा, सभा प्रकाशन नई दिल्ली प्र0 सस्करण

उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान – डॉ0 दगल झाल्टे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र0 स0 1987

कथाकृती—मोहन राकेश – ओम प्रभाकर, नेशनल पब्लिशिग हाउस 23 दरियगज नई दिल्ली 110002

पारिवारिक समस्याए – सावित्री सिन्हा, आत्माराम एण्ड सन्स काइमोरी गेट, दिल्ली—6 1957

प्रेम चंद डॉ0 – रामविलास शर्मा, राधकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम सस्करण

प्रेम चद आलोचनात्मक परिचय – डॉ0 रामविलास शर्मा

प्रेमचद और उनका युग – डॉ0 राम विलास शर्मा, पहला छात्र सस्करण—1983 राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली

प्रेमचद साहित्य मे व्यक्ति और समाज – डॉ0 रक्षापुरी, प्र0 स0 1970 आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली

भूमिका, भूले बिसरे चित्र – देवी शकर अवस्थी, प्रथम सस्करण राजकमल प्रकाशन दिल्ली

व्यक्ति चेतना और स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास – डॉ0 पुरूषोत्तम दूबे, प्र0 स0 1973, अनुपम प्रकाशन दिल्ली

व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सन्दर्भ मे उपन्यास कार भगवती चरण वर्मा – डॉ0 रमाकान्त श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन 61—एफ, कमलानगर दिल्ली 110007 प्रथम सस्करण 1977

हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा – डॉ0 रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 1बी नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली प्र0 सं0 1968, पुनर्मुद्रित 1995

हिन्दी उपन्यास – डॉ0 शिव नारायण श्रीवास्तव, सस्करण 1997, सरस्वती मदिर काशी

हिन्दी उपन्यास – स0 सुषमा प्रियदर्शनी, प्रथम सस्करण 1972, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली

हिन्दी उपन्यास उदभव और विकास – डॉ0 शशि भूषण सिहल, प्र0 सं0 1979 कैलाश पुस्तक सदन ग्वालियर (म0 प्र0)

हिन्दी उपन्यास एक नयी दृष्टि – डॉ0 इन्द्र नाथ मदान, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 नेता जी सुभाष मार्ग, दिल्ली 110006 प्रथम सस्करण 1975

हिन्दी उपन्यास – डॉ0 सुरेश सिन्हा, लोकभारती प्रकाशन– 15ए महात्मा गॉधी मार्ग इलाहाबाद–1, द्वितीय सस्करण 1972

हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तिया – डॉ0 शशिभूषण सिहल, प्र0 स0 1970, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा

हिन्दी उपन्यास में दाम्पत्य चित्रण – डॉ0 उर्मिला भटनागर, अर्चना प्रकाशन 10/890 मालवीय नगर जयपुर 19

हिन्दी उपन्यास मे पारिवारिक सन्दर्भ – डॉ0 उषामन्त्री, नेशनल पब्लिशिग हाउस 23 दरियागंज नई दिल्ली 110001

हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिवेश – डॉ0 प्रेमनाथ भटनागर, प्रथम सस्करण

हिन्दी कथा साहित्य – पदम लाल पुन्ना लाल बख्शी, प्रथम सस्करण, 1954 हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठको की रुचि का प्रभाव – डॉ0 गोपाल राय, ग्रन्थ निकेतन चौधरी टोला, पटना–6 प्रथम सस्करण1965

सन्दर्भ ग्रथ सूची

नाटक

अपने नाटको के दायरे मे मोहन राकेश – डॉ0 तिलकराज शर्मा, आर्य बुक डिपो, दिल्ली 1976

आज के रग नाटक – सपादक अलका जी, प्रथम सस्करण 1973

आधुनिक नाटक का मसीहा– मोहन राकेश, गोविन्द चातक, इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन, के 71 कृष्ण नगर नई दिल्ली 1100051– प्रथम सस्करण 1975

आधुनिक हिन्दी नाटक – डॉ0 सुरेश चन्द्र शुक्ल, लिपि प्रकाशन 1, असारी रोड दरियागज नई दिल्ली 110002 प्रथम सस्करण 1981

आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्रा दशक, भारती भाषा प्रकाशन 518/6ठ विश्वास नगर, शाहदरा दिल्ली– 1100032 प्रथम सस्करण 1979

आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और सवादीय सरचना, तक्षशिला प्रकाशन रॉची 1982

आधे–अधूरे सवेदना और शिल्प – सिद्धनाथ कुमार, सरोज प्रकाशन, देवी मण्डप मार्ग रॉची 834005 प्रथम सस्करण 1987

नटरंग सम्पादक एव प्रकाशक – नेमिचद जैन, अक (21 फरवरी 1973, अप्रैल से सितम्बर 1979) 10–11 सयुक्ताक

नाटककार मोहन राकेश – जीवन प्रकाश जोशी, सन्मार्ग प्रकाशन 16, दिल्ली, 1975

नाटककार मोहन राकेश – डॉ0 सुन्दर लाल कथूरिया, कुमार प्रकाशन मोती नगर, नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1974

नाटककार मोहन राकेश संवाद शिल्प – डॉ0 गिरीश रस्तोगी, दिनमान प्रकाशन 30/4 चर्खेवालान दिल्ली 110006 प्रथम सस्करण 1990

मोहन राकेश और उनके नाटक – डॉ0 गिरीश रस्तोगी, लोक भारती प्रकाशन 15 ए महात्मा गॉधी मार्ग इलाहाबाद–1 प्रथम संस्करण 1976

मोहन राकेश का नाट्य साहित्य – डॉ0 पुष्पा बसल, सूर्य प्रकाशन दिल्ली 1976

मोहन राकेश के नाटक – डॉ0 द्विजराम यादव, साहित्यालोक 104ए/227 पी0 रोट कानपुर 208012 प्रथम संस्करण

मोहन राकेश की रंग सृष्टि – जगदीश शर्मा, प्रथम सस्करण– 1975 राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

लहरो के राजहस छठा सस्करण भूमिका – डॉ0 सुरेश अवस्थी, 1965

विवेक के रंग(स0) – डॉ0 देवी शकर अवस्थी, ज्ञानपीठ वाराणसी सस्करण 1965

षटकोण खण्ड 1 आधुनिक नाटक – डॉ0 ओम प्रकाश शर्मा, साहित्य समारोह–33 फिरोजशाह रोड नई दिल्ली 1972

समकालीन नाट्य साहित्य और मोहन राकेश के नाटक, अनुपम प्रकाशन, जयपुर 1975

सम सामयिक हिन्दी नाटको मे चरित्र सृष्टि – डॉ0 जयदेव तनेजा, सामयिक प्रकाशन दरियागज दिल्ली 1979

स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ मे – डॉ0 रीता कुमार, विभू प्रकाशन साहिबाबाद 201005, प्रथम सस्करण 1980

हिन्दी के प्रतीक नाटक – डॉ0 रमेश गौतम, नचिकेता प्रकाशन दिल्ली 1976

हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन – डॉ0 गिरीश रस्तोगी, प्रथम सस्करण 1967 प्रथम प्रकाशन कानपुर

हिन्दी नाट्य समालोचन – मान्धाताओझा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1979

(ड0) अंग्रेजी पुस्तकें

ए हैन्ड बुक ऑफ सोसियोलॉजी – ऑगबर्न और निमकॉफ

इन साइक्लोपीडिया ऑफ बिट्रानिका

फैमिली – वर्जेस ऑफ लॉक

कम्प्रेटिव लिटरेचर – ए० लेबिन

दि फैमिली इट्स फक्सन एण्ड डेस्टिनी – रूथ एन अन्शेन

दि फैमिली – एम० एफ निमकॉफ

दि फैमिली – सी० सी० हैरिस

दि बेन्जिग पैटर्न ऑफ फैमिली इन इण्डिया – देव नदन थामस

दि हिन्दू फैमिली इन इट्स अरबन सेटिग – एलिन डी रॉस

दि होराइजन ऑफ मैरिज – डॉ० राधाकमल मुखर्जी

मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया – के० एम० कपाडिया

रूरल सोसियोलॉजी इन इण्डिया – डॉ० ए० आर० देसाई

लिटरेचर एण्ड रियेलिटी – हावर्ड फास्ट

सम आस्पेक्ट ऑफ फैमिली इन महुआ – डॉ० ए० आर० देसाई

सोसियोलॉजी ऑफ दि फैमिली – एल्मर एम० सी०

सोसाइटी – मैकाइवर एण्ड पेज

सोसाइटी इट्स ऑरगनाइजेशन एण्ड ऑपरेशन – एण्डरसन पार्कर

ह्यूमन सोसाइटी – किग्सले डेविस

(च) पत्र–पत्रिकाएं

आलोचना

इन्दु

कथाक्रम

कोशोत्सव स्मारक सघ

कल्पना

धर्मयुग

नव भारत टाइम्स

माध्यम

मधुमती

विश्वभारती पत्रिका

सम्मेलन पत्रिका

समीक्षा लोक

सारिका

साप्ताहिक हिन्दुस्तान

सुधा

हस

ज्ञानोदय

☆ ☆ ☆ ☆ ☆